स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय प्रयागराज

MAEC-107
आर्थिक विकास एवं नियोजन

खण्ड 01 : आर्थिक विकास एवं आर्थिक संवृद्धि
खण्ड 02 : आर्थिक विकास के सिद्धान्त
खण्ड 03 : भारत में नियोजन
खण्ड 04 : जनसंख्या एवं आर्थिक विकास
खण्ड 05 : आर्थिक विकास एवं संस्थागत ढांचा

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज-211013
www.uprtou.ac.in

MAEC-107
आर्थिक विकास एवं नियोजन

खण्ड 01 आर्थिक विकास एवं आर्थिक संवृद्धि

इकाई 01 आर्थिक संवृद्धि तथा विकास
02 आर्थिक संवृद्धि एवं मापन
03 आर्थिक विकास अन्तराल
04 आर्थिक संवृद्धि एवं सामाजिक न्याय
05 विकास के बाधक कारक
06 मानव विकास सूचकांक तथा आर्थिक विकास एवं मानव विकास

खण्ड 02 आर्थिक विकास के आंशिक सिद्धान्त

इकाई 01 प्रबल विनियोग तथा न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त
02 संतुलित तथा असंतुलित संवृद्धि
03 गरीबी एवं गरीबी का दुश्चक्र
04 सामाजिक एवं तकनीकी द्वैतवाद
05 लेविस का असीमित श्रम शक्ति का सिद्धान्त
06 फाई–रेनिस आर्थिक संवृद्धि मॉडल

खण्ड 03 भारत में नियोजन

इकाई 01 भारत में नियोजन की रणनीति, उद्देश्य सफलतायें तथा आसफलतायें
02 वर्तमान व्यवस्था में नियोजन की प्रासंगिकता तथा नियोजन के दौरान औद्योगिक क्रान्ति
03 भारत में नियोजन के दौरान कृषि का विकास
04 भारत मे पूर्व योजनाओं का पुनरावलोकन एवं वर्तमान पंचवर्षीय योजना
05 भारत में क्षेत्रीय नियोजन की आवश्यकता
06 भारत में पचांयती राज्य व्यवस्था

खण्ड 04 जनसंख्या एवं आर्थिक विकास

इकाई 01 जनसंख्या एवं आर्थिक विकास में सम्बन्ध
02 प्रमुख जनसंख्या सिद्धान्त–माल्थस, अनुकूलतम तथा जनसंख्या संक्रमण के सिद्धान्त
03 भारत में जनसंख्या का ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों की ओर पलायन–कारण एवं समाधान
04 भारत में गरीबी–कारण एवं निवारण
05 जनसंख्या लाभांश, तात्पर्य, कारण एवं परिणाम, राजकीय–सरकारी योजनाओं एवं मूल्यांकन
06 आय वितरण असमानता, लोरेन्ज वक्र, कारण एवं निदान

खण्ड 05 आर्थिक विकास एवं संस्थागत ढांचा

इकाई 01 भारत में विदेशी व्यापार की संरचना एवं दिशा
02 भारत में बैकिंग सुधार तथा अन्तर्राष्ट्रीय तरलता की समस्या
03 आर्थिक उदारीकरण एवं वैश्वीकरण
04 भारत के आर्थिक विकास में विदेशी पूँजी की आवश्यकता एवं उद्देश्य
05 बहुराष्ट्रीय निगमों का महत्व फेरा एवं फेमा
06 भारत एवं विश्व अर्थव्यवस्था, विश्व व्यपार संगठन

उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

गुरूकुल से छात्रकुल

॥ सरस्वती नः सुभगा मयस्करत्॥

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज-211013
www.uprtou.ac.in

MAEC-107
आर्थिक विकास एवं नियोजन

परामर्श–समिति

प्रोफेसर सीमा सिंह	**कुलपति–अध्यक्ष**
प्रो. सत्यपाल तिवारी	निदेशक, मानविकी विद्याशाखा– कार्यक्रम संयोजक
श्री विनय कुमार	कुलसचिव–सचिव

विशेषज्ञ समिति

प्रो. सत्यपाल तिवारी	**अध्यक्ष**	उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ अनिल कुमार यादव	**संयोजक**	उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो.किरन सिंह		इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. एम.के. सिंह		एम.जे.पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली
डॉ. विश्वनाथ कुमार		एस.बी. पी.जी. कालेज, बड़ागाँव, वाराणसी
डॉ. अनूप कुमार		इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ. अनिल कुमार यादव — सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

सम्पादक

डॉ. अनीता त्यागी — विभागाध्यक्ष, मानविकी विभाग, एम.जे.पी. रूहेलखण्ड वि.वि., बरेली

परिमापक

डॉ. अनिल कुमार यादव — सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

लेखक मण्डल

लेखक

डॉ. अनिल कुमार यादव
सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज
श्री सतेंद्र कुमार
सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज
डॉ. शैलेन्द्र कुमार सिंह
सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

मुद्रित– (माह), (वर्ष)

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज – (वर्ष)

ISBN-

सर्वाधिक सुरक्षित। इस पाठ्य सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से श्री विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, (माह) (वर्ष), (मुद्रक का नाम व पता)

इकाई – 1 आर्थिक संवृद्धि तथा विकास

इकाई की रूपरेखा

1 : 0 उद्देश्य

1 : 1 प्रस्तावना

1 : 2 परिभाषाएँ

1 : 2 : 1 आर्थिक संवृद्धि

1 : 2 : 2 आर्थिक विकास

1 : 3 आर्थिक विकास की अवधाणायें

1 : 3 : 1 परम्परागत् विचारधारा

1 : 3 : 2 आर्थिक विकास की आधुनिक विचारधारा

1 : 4 संवृद्धि एवं विकास में अंतर

1 : 5 अर्थशास्त्र की प्रकृति

1 : 5 : 1 स्थैतिक अर्थशास्त्र

1 : 5 : 2 प्रावैगिक अर्थशास्त्र

1 : 6 अल्पविकसित / विकसित अर्थव्यवस्था

1 : 6 : 1 अल्पविकास के सूचक के रूप में अल्प प्रति व्यक्ति आय

1 : 6 : 2 गरीबी पर आधारित अल्पविकास की संकल्पना

1 : 7 अल्पविकसित / विकासशील देशों के लक्षण

1 : 8 सारांश

1 : 9 शब्दावली आर्थिक विकास

1 : 10 बोध प्रश्न

खंड 1 का परिचय

इस खण्ड में आपको आर्थिक विकास एवं आर्थिक संवृद्धि का अर्थ, परिभाषायें आर्थिक विकास/आर्थिक संवृद्धि की माप एवं माप में कठिनाईयाँ, आर्थिक विकास में बाधक कारक, मानव विकास सूचकांक, विकास की कुछ प्राथमिक संकल्पानयें और कुछ मूल घटक समझायें गये हैं।

इस खंड में कुल छः (6) इकाईयां हैं।

इकाई–01 – यह आर्थिक संवृद्धि एवं विकास के अर्थ एवं परिभाषाओं से संबधिंत है।

इकाई–02 – में आर्थिक विकास के मापन के विषय में बताया गया है।

इकाई–03 – में आर्थिक विकास अन्तराल को समझाया गया है।

इकाई–04 – में आर्थिक संवृद्धि एवं सामाजिक न्याय के सम्बन्ध के बारे में बताया गया है।

इकाई–05 – में आर्थिक विकास में कौन–कौन से कारक बाधक है इंगित करने का प्रयास किया गया है।

इकाई–06 – में मानव विकास सूचकांक, आर्थिक विकास एं मानव विकास के सम्बन्ध पर प्रकाश डाला गया है।

इकाई – 1 आर्थिक संवृद्धि तथा विकास

इकाई की रूपरेखा

1 : 0 उद्देश्य

1 : 1 प्रस्तावना

1 : 0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- आर्थिक विकास एवं आर्थिक संवृद्धि के अर्थ को समझ सकेंगे :
- आर्थिक विकास एवं संवृद्धि के सन्दर्भ में विभिन्न विचारकों के क्या मत है व्याख्या कर सकेंगे।
- अल्पविकसित/विकासशील देश की क्या विशेषताएं है स्पष्ट कर सकेंगे।
- विकसित देशों की क्या विशेषताएं है स्पष्ट कर सकेंगे।
- आर्थिक विकास का सम्बन्ध जीवन की सामाजिक दशाओं, सांस्कृतिक स्थिति, अवसंरचनात्मक स्थिति से कैसा है को स्पष्ट कर सकेंगे।
- अर्थव्यवस्था में गुणात्मक परिवर्तन एवं मात्रात्मक परिवर्तन में अंतर समझ सकेंगे।

1 : 1 प्रस्तावना

विकास का अर्थशास्त्र मुख्य रूप से अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की समस्याओं से सम्बन्ध रखता है। वर्तमान समय की प्रमुख समस्या आर्थिक विकास की समस्या है। अतः इसी सन्दर्भ में आर्थिक विकास की अवधारणा महत्वपूर्ण स्थान रखती है और आर्थिक चिन्तको का यह केन्द्र बिन्दु बना हुआ है। आर्थिक विकास एक ऐसी निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी भी देश के साधनों का अधिकाधिक कुशलता के साथ उपयोग किया जाता है। आर्थिक विकस द्वारा ही सामाजिक, संस्थागत एवं संगठन सम्बन्धी परिवर्तन लाये जा सकते हैं, आर्थिक विकास का आशय है कि देश के प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि पूँजीगत साधनों की उपलब्धता, श्रमिकों की कार्य क्षमता एवं उत्पादकता में वृद्धि, कुशल उत्पादक एवं वितरण परिवहन एवं संचार साधनों का विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं मनोरंजन की सुविधाओं में वृद्धि आदि बातें सम्मिलित होती हैं।

वर्तमान समय में लोग आर्थिक संवृद्धि की बात करते है तमाम अर्थशास्त्रियों के विवेचन के बाद भी आर्थिक संवृद्धि की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं बन पायी है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने, आर्थिक संवृद्धि का अर्थ अलग अलग लगाया है। कुछ अर्थशास्त्रियों की परिभाषा में मूलभूत अन्तर है जबकि कुछ अन्य की परिभाषा में सतही अंतर है।

आर्थिक संवृद्धि को हम एक ऐसी वृद्धि के रूप में देख सकते है जो अत्यन्त नीचे जीवन स्तर में फॅसी हुयी किसी अल्पविकसित अर्थव्यवस्था को कम समय में ही ऊँचे जीवन स्तर पर पहँचा सके। जो देश पहले से ही विकसित है उनमें इसका अर्थ यह होगा कि वर्तमान में विद्यमान उच्च संवृद्धि दरों को बनाए रखना। कुछ अर्थशास्त्रियों के मतानुसार आर्थिक संवृद्धि ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी अर्थव्यवस्था का सकल घरेलू उत्पाद निरंतर दीर्धकाल तक बढ़ता रहता है। सामान्य तौर पर आर्थिक संवृद्धि का तात्पर्य यह लिया जाता है कि देश के उत्पादन में समय के साथ–साथ क्या वृद्धि हुई है, इस इकाई में आर्थिक संवृद्धि एवं आर्थिक विकास की संकल्पना, आर्थिक संवृद्धि एवं आर्थिक विकास में अंतर, अल्पविकसित देश विकसित देश आदि की अवधारणाओं को जानने का प्रयास करेगें।

1: 2 परिभाषाएँ

वर्तमान समये मे प्रायः सभी लोग आर्थिक संवृद्धि की बात करते है इस दृष्टिकोण के फलस्वरूप अर्थशास्त्रियों द्वारा आर्थिक संवृद्धि के सिद्धांत पर निरंतर ध्यान देना और उसका विकास करना एक प्रक्रिया बन गई हे। परन्तु तमाम विवेचन के बाद भी आर्थिक संवृद्धि की सर्वस्वीकारोक्ति परिभाषा नहीं बन पाई। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक संवृद्धि की भिन्न–भिन्न परिभाषायें दी है। कुछ अर्थशास्त्रियों के कथन में मूलभूत अंतर है जबकि कुछ अन्य के विचारधारा में सतही अन्तर है। अर्थशास्त्रियों का एक ऐसा समूह भी है जो आर्थिक संवृद्धि की निश्चित परिभाषा देने की आवश्यकता ही नहीं समझता । इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार, आर्थिक संवृद्धि का अर्थ स्वयं में स्पष्ट है और आर्थिक संवृद्धि को सहजता से राष्ट्रीय आय सम्बन्धी समग्र राशियों (National Income Aggregates) के रूप में मापा जा सकता हे। इस विचारधारा का प्रतिपादन संयुक्त राष्ट्र के विशेषज्ञों द्वारा किए गये अध्ययन (Measures of Economic Development Underdeveloped Country में मिलता है।

कई आर्थिक विचारकों का मत है कि स्पष्ट और दोषरहित परिभाषाओं का होना आवश्यक है इस प्ररिप्रक्ष्य में रोनाल्ड ए शीपर का मत है कि समाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में अनावश्यक वाद–विवादों और भ्रामक विचारों का प्रमुख कारण ही यह है कि मूल परिभाषाओं के बारे में उपयुक्त सावधानी नहीं बरती जाती।

1:2:1 आर्थिक संवृद्धि –

आर्थिक संवृद्धि को हम एक ऐसी वृद्धि के रूप में विवेचना कर सकते है जो अत्यन्त नीचे जीवन–स्तर में फॅसी हुई किसी अल्पविकसित अर्थव्यवस्था को अल्पावधि में ही ऊँचे जीवन स्तर तक पहुॅचा सके। जो देश पहले से ही विकसित है उनमे इसका अर्थ होगा विद्यमान संवृद्धि दरों को बनाए रखना। परन्तु वास्तविक रूप में देखा जाय तो आर्थिक क्रियाओं का अधिकाधिक वाणिज्यीकरण ही आर्थिक संवृद्धि का सूचक है।

आर्थिक संवृद्धि को परिभाषित करते हुए साइमन–कुजनेट्स ने लिखा है कि '' आर्थिक वृद्धि से आश्य किसी राष्ट्र में उसकी जनसंख्या एवं प्रतिव्यक्ति उत्पादन में निरंतर वृद्धि से लगाया जा सकता है। कुछ अर्थशास्त्रियों के मताअनुसार आर्थिक संवृद्धि एक ऐसी प्रकिया होती है जिसके द्वारा किसी भी अर्थव्यवस्था का सकल घरेलू उत्पाद निरंतर दीर्धकाल तक वढ़ता रहता है। इस संदर्भ में सकल राष्ट्रीय आय (Gross National Product) और सकल घरेलू उत्पाद (Gross National Product) में अंतर का ध्यान रखना जरूरी है। ऐसा हो सकता है, कि किसी देश के नागरिक अन्य देशों में भारी निवेश करें। इससे सकल राष्ट्रीय उत्पाद तो बढ़ जाएगा परन्तु अर्थव्यवस्था पर उसका कोई प्रभाव नहीं होगा, इसलिए सकल घरेलू (Gross Domestic Product) में वृद्धि की बात करना

आर्थिक तर्क पूर्ण है। एक प्रसंग यह भी है जिसकी चर्चा करना आवश्यक है। वह यह है कि सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि लगातार दीर्घकाल तक होती रहनी चाहिए। केवल कुछ समय के लिए वृद्धि संवृद्धि नहीं कहलायेगी।

प्रति व्यक्ति उत्पाद में वृद्धि : – ऊपर दिये गये परिभाषा के अनुसार आर्थिक संवृद्धि को परिभाषित करना सही नही है क्यों कि इसका कारण यह है कि यदि जनसंख्या में वृद्धि सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि से अधिक होती है तो प्रतिव्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद में गिरावट पायी जाती है! निश्चित रूप से इसे आर्थिक संवृद्धि नहीं कहेंगे। इसी कारण से बहुत से अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक संवृद्धि को प्रतिव्यक्ति उत्पाद में वृद्धि के रूप में समझाने को प्रयास किया है अतंत आर्थिक संवृद्धि को इस रूप में (प्रति–व्यक्ति उत्पाद/प्रतिव्यक्ति आय) परिभाषित करना अधिक उपयुक्त एवं तर्कसंगत है!

1:2:2 आर्थिक विकास–

अर्थशास्त्र में आर्थिक विकास को अधिकतर आर्थिक संवृद्धि के पर्यायवाची के रूप में बीसवीं सदी के मध्य तक प्रयोग किया जाता था अब इन दोनों संकल्पनाओं में अंतर किया जाता है जहाँ आर्थिक संवृद्धि को राष्ट्रीय उत्पाद या घरेलू उत्पाद या प्रतिव्यक्ति उत्पाद में वृद्धि के रूप में अयति मात्रात्मक रूप में मापने का प्रयास किया जाता है वही आर्थिक विकस में अर्थव्यवस्था के गुणात्मक पहलूओं पर विचार किया जाता है! वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अर्थशास्त्री केवल सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product) या सकल राष्ट्रीय उत्पाद तक सीमित न रहकर विकास प्रक्रिया पर अपना ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं! इस संदर्भ में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री महबूब–उल–हक का कथन महत्वपूर्ण है।'' 'विकास की प्रमुख समस्या गरीबी की सबसे भयानक किस्मों पर सीधा प्रहार करना है। गरीबी, भूखमरी, बीमारी, अशिक्षा, बेरोजगारी और असमानताओं जैसी समस्याओं के उन्मूलन को विकास के मुख्य लक्ष्यों में शामिल किया जाना चाहिए।''

अब तक हम लोगों को यह बतलाया गया था कि सकल राष्ट्रीय उत्पाद को बढ़ाया जाना चाहिये क्योंकि इससे गरीबी का निवारण होगा। अब इस संबंध को उलटने का समय आ गया है। अब आवश्यकता इस बात की है कि हम लोग मुख्यतया गरीबी निवारण पर ध्यान केन्द्रित करें। जिसके फलस्वरूप सकल राष्ट्रीय उत्पाद को अपने–आप उचित महत्त्व मिल जायेगा। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि अब सकल राष्ट्रीय उत्पाद की वृद्धि की अपेक्षा अर्थव्यवस्था में विकास के अवयवों (Contents) पर ज्यादा ध्यान देना चाहिये।

1:3 आर्थिक विकास की अवधाणायें–

आर्थिक विकास से सम्बन्धित दो मुख्य धारणायें पाई जाती हैं।

1:3:1 परम्परागत् विचारधारा (The Traditional Approach)

1:3:2 आर्थिक विकास की आधुनिक विचारधारा (Modern Approachy Economic Development)

- पहली धारणा जिसे परम्परागत् धारणा कह सकते हैं, आर्थिक विकास को आर्थिक संवृद्धि के पर्याय के रूप में परिभाषित करती है। परम्परागत विचारधारा में आर्थिक विकास एक स्थिति है जिसमें सकल राष्ट्रीय (या घरेलू) उत्पाद 5 या 7 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि करती रहे और सकल घरेलू उत्पाद एवं रोजगार–संरचना में इस प्रकार परिवर्तन हो कि उसमें कृषि का योगदान कम होता जाय और विनिर्माण हेतु और तृतीयक हेतु का योगदान बढ़ता जाये। इस प्रकार इस दृष्टिकोण को मानने वाले विद्वानों के वर्ग द्वारा ऐसे कदम उठाने की बात की जाती रही है जिससे कृषि के स्थान पर औद्योगीकरण को बढ़ावा दिया जाये। गरीबी निवारण, आर्थिक असमानताओं में कमी और रोजगार के अवसरों में वृद्धि जैसे उद्देश्यों के लिए यह मान लिया गया कि सकल राष्ट्रीय उत्पाद (घरेलू) उत्पाद में वृद्धि तथा प्रतिव्यक्ति उत्पाद में वृद्धि होने से शेष उद्देश्यों की प्राप्ति स्वयं ही जो जायेगी। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि सकल राष्ट्रीय (या घरेलू) उत्पाद और प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि के लाभ धीरे–धीरे रिसकर अन्य क्षेत्रों को प्रभावित कर सकेंगे। इसे संवृद्धि का रिसाव प्रभाव भी कहा जाता है। (Trickle down effect)

- **आर्थिक विचारधारा का आधुनिक दृष्टिकोण–**

बीसवीं शताब्दी के छठें और सातवें दशक में अल्पविकसित देशों की लगभग 40 प्रतिशत आबादी को आर्थिक संवृद्धि से कोई लाभ नहीं दिखाई दिया। और इन देशों के गरीबी निवारण, आर्थिक असमानता एवं रोजगार के अवसरों में वृद्धि के सन्दर्भ में कोई भी संतोषजनक सुधार दिखाई नहीं दिया। फलस्वरूप अधिकांश आर्थिक विद्वानों ने परम्परागत विकास विचारधारा का परित्याग कर दिया।

आठवें दशक में आर्थिक विकास की अवधारणा को पुनः परिभाषित करने का प्रयास किया गया और आर्थिक विकास का मुख्य उद्देश्य गरीबी, असमानता और बेराजगारी का निवारण रखा गया। इस समय–काल में पुनर्वितरण के साथ संवृद्धि (Redistribution with Growth) का नारा दिया गया। इस सन्दर्भ में चार्ल्स पी0 किन्डरबर्गर और ब्रुस हैरिक का यह कथन अति महत्वपूर्ण है–''आर्थिक विकास की परिभाषा प्रायः आम लोगों के भौतिक कल्याण में सुधार के रूप में की जाती है। जब किस देश में विशेष रूप से नीची आय वाले लोगों के भौतिक कल्याण में बढ़ोत्तरी होती है। जनसाधारण को अशिक्षा, बीमारी और कम उम्र में मृत्यु के साथ–साथ गरीबी से छुटकारा मिलता है, कृषि लोगां का मुख्य व्यवसाय न रहकर औद्योगीकरण होता जाता है। जिससे उत्पादन के स्वरूप में और उत्पादन के लिए प्रयोग होने वाले कारकों के स्वरूप ये परिवर्तन होता है।

कार्यकारी जनसंख्या का अनुपात बढ़ता है और आर्थिक तथा दूसरे प्रकार के निर्णयों में आम लोगों की भागीदारी बढ़ने लगती है तो अर्थव्यवस्था का स्वरूप बदलता है और जब हम कहते हैं कि देश विशेष में आर्थिक विकास हुआ है।''

[Charles P. Kinderberger and Bruce Harrick, Economic Development, (New York) 1977 P.D.)]

डडले सिअर्स (Dudley Sers) ने आर्थिक विकास के अर्थ के विषय में कुछ महत्वपूर्ण बुनियादी प्रश्न उठाये हैं। वे कहते हैं कि किसी भी देश में आर्थिक विकास की प्रक्रिया की चर्चा करते समय जिन प्रश्नों पर ध्यान देना आवश्यक है वे हैं–क्या गरीबी के स्तर में कमी हो रही है? क्या बोराजगारी का स्तर कम हो रहा है? क्या अर्थव्यवस्था में असमानतायें कम हो रही हैं? यदि इन तीनों प्रश्नों का उत्तर सकारात्मक है तो निश्चय ही अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास हुआ है। परन्तु यदि इसमें से एक या दो अथवा सभी प्रश्नों का उत्तर नकारात्मक है तो इस स्थिति को आर्थिक विकास कहना अनुपयुक्त होगा चाहे फिर प्रतिव्यक्ति आय दुगुनी ही क्यों न हो जाये। (Dudely Sers, "The meaning of Development" 11th World Expenses of the Society for International Development (New Delhi, 1969 P-3]

वर्तमान समय में तीव्र दर से आर्थिक संवृद्धि प्राप्त करने के लिये विभिन्न देश जिस तर से पर्यावरण का विनाश कर रहे हैं। उसे देखते हुये अब आर्थिक विकास की परिभाषा का विस्तार किया गया है। आर्थिक विकास की नई परिभाषा में पर्यावरण का संरक्षण (Protection of Environment) विकास का अभिन्न अंग माना गया है। जीन ड्रेज एवं अमर्त्य सेन का कथन है कि–''यदि विकास को मानव की स्वतंत्रता के वृहद् परिप्रेक्ष्य में देखा जाये तो गरीबी से युद्ध तथा पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता को एक दूसरे में जुड़ा हुआ माना जा सकता है। वस्तुतः मानव स्वतंत्रता के महत्वपूर्ण पक्ष (तथा हमारे जीवन की गुणात्मकता के महत्वपूर्ण अंश) हमारे पर्यावरण की गुणक्ता से जुड़े हुए हैं।–जैसे सांस लेने वाली वायु पर, हमारे पेयजल की शुद्धता पर तथा हमारे आसपास के वातावरण पर। जीवनशैली की जो गुणवत्ता हम चाहते हैं वह अन्य वस्तुओं के साथ–साथ इस बात पर भी निर्भर करती है कि हमारा पर्यावरण कितना स्वच्छ व सुंदर है। इस अर्थ में पर्यावरण संरक्षण को विकास का अभिन्न अंग मानना जरूरी है। (Jean Dreze and Amritya Sen, An Uncertain Glory India & Contradiction (N. Delhi 2013) P.42 and P.43-4

1:4 संवृद्धि एवं विकास में अंतर

अब तक हम लोगों ने यह अध्ययन किया कि आर्थिक संवृद्धि का अर्थ यह है कि देश के उत्पादन में (या प्रतिव्यक्ति आय में) समय के साथ–साथ कितनी वृद्धि हुई है। इसके विपरीत आर्थिक विकास की संकल्पना अधिक व्यापक है और उसमें प्रतिव्यक्ति उत्पादन में वृद्धि के साथ–साथ, अर्थव्यवस्था के आर्थिक व सामाजिक ढांचे में क्या–क्या परिवर्तन हुये हैं, देखा जाता है। आर्थिक विकास ऐसी प्रक्रिया है जिसमें सकल राष्ट्रीय उत्पादन में कृषि का हिस्सा लगातार गिरता जाता है। जबकि उद्योगों, सेवाओं, व्यापार, बैंकिंग व निर्माण क्षेत्रों का योगदान बढ़ता जाता है। इस प्रक्रिया के दौरान श्रम–शक्ति के व्यावसायिक ढाँचे में भी परिवर्तन होता है और उनकी कुशलता व उत्पादकता में वृद्धि होती जाती है। इस सन्दर्भ में किंडल वर्गर का कहना है कि आर्थिक सृवद्धि का अर्थ उत्पादन में वृद्धि से होता है तथा आर्थिक विकास का तात्पर्य उत्पादन में वृद्धि के साथ–साथ उत्पादन की तकनीक और संस्थागत व्यवस्था में प्रगति और वितरण प्रणाली में परिवर्तन होता है।

आर्थिक संवृद्धि की तुलना में आर्थिक विकास व्यापक हे। यही कारण है कि आर्थिक विकास को प्राप्त करना आर्थिक संवृद्धि की तुलना में कठिन है। अधिक साधनों की व्यवस्था करके और उनकी उत्पादकता को बढ़ाकर उत्पादन का स्तर तो बढ़ाया जा सकता है (आर्थिक संवृद्धि) परन्तु आर्थिक विकास के लिये उत्पादन के साधनों में संरचनात्मक परिवर्तन एवं तकनीकी परिवर्तन लाना आश्यक होता है।

इस प्रकार से जहाँ आर्थिक संवृद्धि की माप के लिये राष्ट्रीय आय के आंकड़ों पर ध्यान देना होता है। वहीं आर्थिक विकास का अनुमान मुख्य रूप से संरचनात्मक परिवर्तनों के आधार पर लगाया जाता है।

आर्थिक विकास एवं आर्थिक संवृद्धि की प्रक्रियायें किसी भी पिछड़े देश में चलती रहे यह जरूरी नहीं है। यह सम्भव है कि किसी देश में राष्ट्रीय आय में वृद्धि तो हो लेकिन अर्थव्यवस्था के किसी सेतु में विकास न हो। उदाहरण स्वरूप राबर्ट क्लॉवर ने लाइबेरिया के विषय में एक अध्ययन किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वहाँ विदेशी फर्मों को रियायतें देकर निर्यात में भारी वृद्धि कर दी गयी जिसके परिणामस्वरूप वहाँ की राष्ट्रीय आय में वृद्धि हुयी, लेकिन इससे दूसरे आर्थिक क्षेत्रों में कोई पूरक विकास नहीं हुआ न तो कोई ढाँचागत् या संस्थागत परिवर्तन हुये हैं। देश में होने वाली आर्थिक संवृद्धि का लाभ सभी वर्गों को नहीं प्राप्त हुआ है। इसे रॉबर्ट क्लॉवर बिना विकास की संवृद्धि (Robert Clower al Growth Without Development) : An Economic Surry of Liberia III, 1966) कहते हैं।''

अल्प–विकसित देशों में जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है। उनके साधन सीमित हैं, और तकनीकी विकास पर विकसित देशों का एकाधिकार है, केवल आर्थिक संवृद्धि के जरिये ही न तो गरीबी एवं बेरोजगारी का निवारण किया जा सकता है और न ही सामाजिक न्याय प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु इस सन्दर्भ में यह बात महत्वपूर्ण है कि ''यद्यपि आर्थिक विकास के लिये आर्थिक संवृद्धि पर्याप्त नहीं है तथापि जरूरी अवश्य है। बिना आर्थिक संवृद्धि के आर्थिक विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जब तक सकल राष्ट्रीय उत्पाद में तेज वृद्धि नहीं होगी तब तक न तो उद्योगों का और न तो वित्तीय संस्थाओं का और न ही अवसंरचनात्मक विकास हो पायेगा। संवृद्धि के बिना व्यावसायिक ढाँचे में परिवर्तन असम्भव है, आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये आर्थिक संवृद्धि की आवश्यकता पर जोर देते हुए जीन ड्रेज तथा अमर्त्य सेन कहते हं कि ''आर्थिक संवृद्धि जरूरी है अपने आप में नहीं, अपितु इसलिये कि उसके माध्यम से ऐसे संसाधनों का सृजन होता है जिससे वैयक्तिक आयों का प्रसार होता है तथा सरकार को भी अतिरिक्त आय प्राप्त होती है जिसका प्रयेग सार्वजनिक दायित्वों को पूरा करने के लिये किया जा सकता है।'' (Jean Dreze and Amartya Sen op.cit p. 18)

अधिकांशतः अल्पविकसित देश वर्तमान समय के विकसित देशों के उपनिवेश के रूप में रह चुके हैं। अपने लाभों के उद्देश्यों को पूरा करने के लिये विकसित देशों ने इन अल्पविकसित देशों पर एक द्वैतवादी आर्थिक ढाँच

थोपा है। इस द्वैतवादी आर्थिक ढाँचे में दो क्षेत्र–विकसित और अल्पविकसित, इन अर्थव्यवस्थाओं में ज्ञान सकर उत्पन्न किये गये हैं। विकसित क्षेत्रों से लाभ का प्रवाह औपनिवेशिक शक्ति वाले राष्ट्र की ओर तथा अल्पविकसित देश के कुछ चुने हुये लोगों को हुआ है जबकि शेष राष्ट्र विकास से अछूता रहा है और गतिहीनता (Stagnation) व अल्पविकास की खाई में पड़ा रहा।

उपनिवेशवाद के समाप्त होने के बावजूद उसकी छाप अभी भी एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के देशों पर दिखाई पड़ती है। यह अत्यंत दुःख का एवं सोचनीय विषय है कि आधुनिक समय में जो आर्थिक संवृद्धि हुई है उसने जनसंख्या के एक बहुत बड़े भाग को स्पर्श तक नहीं किया है।

उदाहरण के लिये विश्व बैंक के भूतपूर्व अध्यक्ष रॉबर्ट मैटनामारा ने अनुमान लगाया है कि 1950 तथा 1960 के दशकों में जो आर्थिक संवृद्धि हुयी है उससे विकासशील देशों की 40 प्रतिशत जनसंख्या को कोई लाभ प्राप्त नहीं हुआ। (Robert Me Namara, One Hundred Countries Two Billion People, The Dimensirus of Development (New York 1973) p.11) यह स्थिति विकासशील देशों के लिये अत्यन्त ही कष्टकारी है। इसलिये अब आर्थिक विकास की वैकल्पिक अवधारणा को अंगीकार किया जा रहा है जिसे मूल आवश्यकता (दृष्टिकोण) (Basic need Approach) कहा जाता है। इस संकल्पना में आर्थिक विकास को गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी और आय–वितरण की असमानताओं के निवाकरण के रूप में परिभाषित किया जाता है। जो लोग इन कष्टकारी परिस्थितियों गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी से गुजर रहे हैं उनके लिये प्रति व्यक्ति उत्पाद में वृद्धि इतना महत्व नहीं रखती जितना कि इन परिस्थितियों का समाधान करना इस सन्दर्भ में पॉल स्ट्रीज व उनके सहयोगियों का यह कथन महत्वपूर्ण है।

केवल संवृद्धि के द्वारा (चाहे उससे बेहतर वितरण व्यवस्था भी क्यों न हो) मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा नहीं किया जा सकता। इसलिये 'मूल आवश्यकता दृष्टिकोण' में इस बात पर जोर दिया जाता है कि वस्तुओं की आपूर्ति को बढ़ाया जाए और उनका उचित वितरण किया जाए ताकि मूल आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके।''

(Paul Streeten et al First Things First : Meeting Basis Human needs in Developing Countries (New York, 1981 p.108)

1:5 अर्थशास्त्र की प्रकृति–

आर्थिक विकास गतिशील है और इसका प्रमुख्य उद्देश्य आर्थिक प्रगति का अध्ययन करके दीर्घकाल में आर्थिक क्रिया–कलापों का अध्ययन करके बहुमूल्य निष्कर्ष निकालना है चूंकि आर्थिक विकास की प्रकृति अर्थशास्त्र के स्थैतिक एवं प्राबैगिड स्वरूपों पर आधारित है। इसलिये यह आवश्यक है कि इन दोनों शब्दों के अर्थ को समझा जाये।

1:5:1 स्थैतिक अर्थशास्त्र (Static Economics)

स्थैतिक शब्द का अर्थ है ''स्थिर रहना'' प्रवैगिक शब्द का अर्थ है ''गतिमान रहना''। भौतिक शास्त्र में स्थैतिक दशा का अर्थ है जिसमें कोई गति या परिवर्तन न हो जबकि अर्थशास्त्र में स्थैतिक शब्द का अर्थ गतिहीन अवस्था से न होकर इस अवस्था से होता है जिसमें गति नियमित, निरंतर एवं निश्चित ढंग से होती है। किंतु उसमें परिवर्तन नहीं होता है या नगण्य होता है।

प्रो0 क्लार्क के शब्दों में स्थैतिकी अवस्था में पाँच प्रकार के परिवर्तनों का अभाव पाया जाता है जैसे जनसंख्या का आकार, पूँजी की पूर्ति, उत्पादन विधि, व्यावसायिक संगठन का रूप एवं लोगों की जरूरतें। स्थैतिक शब्द की परिभाषा कुछ अर्थशास्त्रियों ने निम्न प्रकार से दी है।

प्रो0 हैडड के अनुसार, ''एक स्थैतिक संतुलन का अर्थ, विश्राम या गतिहीनता की अवस्था से नहीं होता अपितु उस अवस्था से होता है। जिसमें कार्य निरंतर रूप से दिन–प्रतिदिन अथवा वर्ष–प्रतिवर्ष निरंतर चलता रहता है।

परन्तु उसमें वृद्धि या कमी नहीं होती है। इस सक्रिय किंतु अपरिवर्तनशील प्रक्रिया को ही स्थैतिक अर्थशास्त्र कहा जाता है।''

(Harrod, Towards a Dynamic Economic pp 3-4)

स्टिगलर के शब्दों में ''एक स्थैतिक आर्थिक सिद्धांत वह है जिसमें समस्या विशेष की संतुलन की दशा को इस मान्यता पर समझाया जाता है कि उस समस्या से सम्बन्धित सभी बातों में कोई परिवर्तन नहीं दिखाई देता है।''

1:5:2 प्रावैगिक अर्थशास्त्र –

स्थैतिक अवस्था जीवन में वास्तव में कहीं परिलक्षित नहीं होती है। आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया होती है जिसके द्वारा अर्थव्यवस्था में बदलाव दिखाई देता है। कोई भी वस्तु जिसकी वृद्धि होती है, वृद्धि की प्रक्रिया में बदलती है।

आर्थिक विकास में स्थैतिक विश्लेषण का कोई स्थान नहीं है और वह पूर्णतः सामाजिक गति विज्ञान के क्षेत्र में आता है। वह आर्थिक स्थैतिक का भाग न होकर आर्थिक प्रावैगिक का भाग है इस प्रकार से हम यह कह सकते हैं कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया की प्रकृति को समसर्न के लिए आर्थिक प्रावैगिक (Economic Dynomic) को समझना आवश्यक है। प्रावैगिक अर्थशास्त्र का सम्बन्ध सामाजिक अर्थव्यवस्था से होता है जिसमें उन परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है जो अर्थव्यवस्था में सतत् दिखाई देते हैं।

प्रो0 हैरड के अनुसार ''प्रावैगिक (अर्थशास्त्र) का सम्बन्ध विशेषकर निरंतर परिवर्तनों के प्रभाव एवं निर्धारित किये जाने वाले मूल्यों में परिवर्तन की दरों से होती है।''

(R.F. Harriod, Towards a Dynamic Economic)

प्रो0 जे0के0 मेहता के अनुसार–''एक प्रावैगिक अर्थव्यवस्था वह है जिसके घटक समय–समय पर बदलते रहते हैं।'' (J.K. Mehta, Economics Growth)

उपर्युक्त कथानों से स्पष्ट है कि प्रावैगिक अर्थव्यवस्था एक बदलती हुई अर्थव्यवस्था है और आर्थिक प्रावैगिक इन परिवर्तनों की प्रकृति, कारणों एवं प्रभावों का अध्ययन करती है। वस्तुतः यह कहा जा सकता है कि आर्थिक विकास का अध्ययन समाज के प्रावैगिकी आर्थिक विश्लेषण का एक अंग है। आर्थिक विकास एक संचयी प्रक्रिया है जो अर्थव्यवस्था मे अनेक परिवर्तन लाती है। आर्थिक विकास के निर्धारण तत्व अर्थव्यवस्था में निरंतर बदलते रहते हैं और यह परिवर्तन आर्थिक वृद्धि की दर तथा उसकी दशा को निर्धारित करती है।

1:6 अल्पविकसित/विकसित अर्थव्यवस्था

जैसा कि हम लोग जानते हैं कि सम्पूर्ण संसार अमीर एवं गरीब देशों के दो बड़े वर्गों में विभाजित है प्राचीन समय में इन देशों के लिये उन्नत एवं पिछड़े शब्दों का प्रयोग किया जाता रहा है, वर्तमान समय में अविकसित, अल्पविकसित विकासशील तथा विकसित शब्दों का अधिकांशतः प्रयोग किया जा रहा है। आधुनिक समय में संसार के देशों को अर्द्धविकसित एवं विकसित श्रेणी में विभाजित किया जाता है। गरीब, एवं पिछड़े शब्द भी अर्द्धविकसित के पर्यायवाची समझे जाते हैं। प्रो0 बारबरा बार्ड ने 'अर्द्धविकसित' के स्थान पर 'गरीब' शब्द का प्रयोग किया है। आधुनिक अर्थशास्त्री श्री **गुन्नार मिर्डल** ने अर्द्धविकसित देश के लिए 'आर्थिक गत्यात्मक' (Economicd Dynamic) तथा व्यापक शब्दावली का प्रयोग किया है। **प्रो0 शैनन** ने कहा है कि 'जिस क्षेत्र को उचित रूप से विकसित होने पर भी जिसे गरीबीकृत वर्ग में रखा जाता है। वह अर्द्धविकसित देश कहलाता है। और जहाँ विकास की सम्भावनायें विद्यमान न हों तथा जो पूर्णतः अर्द्धविकसित हो ऐसे देश को पिछड़ा हुआ अथवा अविकसित कहा जाता है।

अर्थशास्त्री होफमन (Hoffman) ने एक अर्द्धविकसित देश की सरल शब्दों में व्याख्या की है कि–'' अर्द्धविकसित देश वह होता है जिसकी प्रमुख विशेषता उसकी गरीबी है। जहाँ नगरों की सड़कों पर भिखारी दिखायी

पड़ते हैं तथा ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीण जन जैसे–तैसे अपना जीविकोपार्जन करते हैं। इन देशों में कारखानों और विद्युत शक्ति की अपर्याप्तता रहती है। परिवहन के क्षेत्र में सड़कों एवं रेलों का कम विकास एवं विस्तार तथा अपर्याप्त सरकारी सेवायेंज न–स्वास्थ्य के लिये अस्पताल और उच्च शिक्षा संस्थाओं की कमी रहती है। देश के अधिकांश व्यक्ति निरक्षर होते हैं। लोगों की गरीबी के बावजूद कुछ लोगों के ही पास धन का केन्द्रीयकरण हो जाता है। बैंकिंग सुविधाओं की अपर्याप्तता के कारण साज अथवा ऋण के लिये महाजनों एवं साहूकारों के अत्याचारों का शिकार होना पड़ता है।

उपरोक्त कथनों के अनुसार निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि वह देश जो अपने नागरिकों को उच्चतम जीवन–स्तर प्रदान कर सकता है, विकसित देश कहलाता है। इसके विपरीत वह देश जो अपने नागरिकों को उच्चतम जीवन–स्तर उपलब्ध करा नहीं सकता वह अर्द्धविकसित देश की श्रेणी में रखा जाता है।

कुछ दशक पहले अर्थशास्त्रियों के एक वर्ग ने अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास से जुड़े हुए मुद्दों पर काफी विस्तार से लिखा है, फिर भी 'अल्पविकास' की कोई भी सर्वमान्य परिभाषा दे सकना आसान नहीं है। राष्ट्रों के बीच प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों के वितरण मं ज्यादा असमानतायेंह ैं इसलिये संसार के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों को भी 'विकसित' और 'अल्पविकसित' में विभाजित करना कठिन है। इन देशों के मध्य पूंजी निर्माण का स्तर, तकनीकी ज्ञान और आर्थिक संगठन में भी महत्वपूर्ण अन्तर है। इन्हीं विषमताओं के कारण किसी भी मापदण्ड के आधार पर राष्ट्रों को विकसित और अल्पविकसित के बीच विभाजित करना पूर्ण रूप से उचित प्रतीत रही होता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका, इंग्लैण्ड तथा जर्मनी में प्राकृतिक साधनों का आधिक्य है। ये सभी देश विकसित माने जाते हैं, परन्तु अपवाद स्वरूप लैटिन अमेरिका तथा मध्य पूर्व के कुछ देश प्राकृतिक संसाधनों से सम्पन्न होते हुये भी अल्पविकसित कहे जाते हैं। भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, इंडोनेशिया आदि देशों में जनसंख्या की बहुलता है जबकि अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका के देशों में जनसंख्या का भार कम है इन दोनों समूहों में आने वाले देश अल्पविकसित हैं। इसलिये जनसंख्या की सघनता के आधार पर कुछ निर्णय करना कठिन है।

सामान्यतः यह धारणा बनी हुई है कि अल्पविकसित देशों के राष्ट्रीय आय में कृषि एवं प्राथमिक क्षेत्रों का योगदान अधिक रहता है। भारत, बांग्लादेश, पाकिस्तान, इंडोनेशिया पर जैसे देशों के विषय में यह कथन सत्य है, परन्तु मैक्सिको, ब्राजील, अर्जेन्टाइना की स्थिति इससे भिन्न हे। ये देश कृषि प्रधान नहीं हैं फिर भी अल्पविकसित हैं। लेकिन इनकी प्रतिव्यक्ति आय का स्तर इतना नीचा नहीं है जितना की दक्षिण एशिया के देशों में। किसी भी देश के श्रम–शक्ति के वितरण का अध्ययन कर वहाँ के अर्थव्यवस्था के विकास को काफी स्तर तक समझा जा सकता है।

1:6:1 अल्पविकास के सूचक के रूप में अल्प प्रति व्यक्ति आय

(Low per Capital Income as an Index of Under Devleopment)

संयुक्त राष्ट्र संघ के विशेषज्ञों ने अल्पविकसित देश उसे माना है जिसमें प्रतिव्यक्ति वास्तविक आय संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, फ्रांस, जर्मनी देशों की तुलना में कम हैं। इस प्रकार इस परिभाषा में अफ्रीका, एशिया तथा लैटिन अमेरिकी देशों की 'कम प्रतिव्यक्ति वास्तविक आय' पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। (U.N.O. Report on the Meaures for the Economic Development of Under- Development Countries (New York) 1951 p.3]

किसी भी देश के आर्थिक विकास में वहाँ के प्राकृतिक संसाधनों का बड़ा महत्वपूर्ण योगदान होता है। मनुष्य अपनी बुद्धिमत्ता व मेहनत से उत्पादक शक्तियों को विकसित कर कसता है। परन्तु यदि प्राकृतिक संसाधन सीमित मात्रा में है तो व्यापक औद्योगिक गतिविधियों की संभावनाएं सीमित रह जायेगी। इसलिये यह सम्भव है कि कोई देश अपने तमाम उत्पादक प्राकृतिक संसाधनों का भरपूर उपयोग करने के पश्चात् भी विकास का वह स्तर न प्राप्त कर

पाए जो कि पश्चिमी यूरोपीय देशों से तुलनीय हो। इस प्रकार के देश में वास्तविक प्रतिव्यक्ति आय पश्चिमी एवं यूरोप के देशों की तुलना में कम ही रहेगी परन्तु उसे किसी भी आधार पर अल्पविकसित नहीं माना जाना चाहिये।

इसी तरह हम किसी देश को सिर्फ इसलिये विकसित नहीं मान सकत कि उन देशों की प्रतिव्यक्ति आय अमेरिका या आस्ट्रेलिया की प्रतिव्यक्ति आय से तुलना करने योग्य हो, उदाहरण के तौर पर कई अरब देशों की प्रतिव्यक्ति राष्ट्रीय आय, तेल के अपार भंडारण की वजह से बढ़कर कई धनी पश्चिमी राष्ट्रों की प्रतिव्यक्ति आय से भी अधिक है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं लगाया जा सकता कि ये देश विकसित हो चुके हैं। वस्तुतः इनमें कई देश आज भी अल्पविकसित व पिछड़े हुये देशों में शामिल किये जाते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि किसी देश का विकास अथवा अल्पविकास हमेशा प्रतिव्यक्ति आय के रूप में व्यक्त नहीं किया जा सकता है।

1:6:2 गरीबी पर आधारित अल्पविकास की संकल्पना (Poverty based Concept of Under Development)

विकास को आधुनिक अर्थशास्त्री एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित करते है। जिसके द्वारा गरीबी, आर्थिक असमानताओं और बेरोजगारी जैसे समस्याओं का निदान किया जा सके। इस सन्दर्भ में देखे तो अल्पविकास एक अत्यंत कष्टकारी भौतिक व मानसिक स्थिति है। गरीबी और भुखमरी से संघर्ष करने वाले लोग एक नरक जैसी स्थिति से गुजर रहे होते हैं, और इसका अनुभव वास्तव में उसी व्यक्ति को महसूस हो सकता है जो उसक भुक्तभोगी हो। बीमारी और भूख से ग्रसित, प्राकृतिक विपदाओं का शिकार, अमानवीय वातावरण में रहने को मजबूर, गरीब व्यक्ति की कष्टकारी स्थिति को वह स्वयं ही समझ सकता है। (Denies Goulet The Creul Choice : A New Concept in the Theory of the Development (New York 1971 p.23)

अल्पविकास के ऐसे कष्टकारी दौर से गुजर रहे लोगों के लिये विकास का अर्थ अगर गरीबी और बेराजगारी से छुटकारा नही ंतो और क्या है?

जैकब बाइनर ने विकास की सम्भावनाओं के आधार पर अल्पविकास की परिभाषा दी उनके राष्ट्रों में ''अल्पविकसित देश वह है जिसमें उपकस्य पूँजी, श्रमशक्ति, प्राकृतिक साधनों आदि के अधिक उपयोग की काफी सम्भावनायें हैं। जिससे रहन–सहन के स्तर को ऊँचा किया जा सके और यदि प्रतिव्यक्ति आय पहले से ही अधिक है तो रहन–सहन के स्तर को नीचा किये बिना अधिक जनसंख्या का निर्वाह किया जा सके।

(Jarob Viner : Economics of Development, in Agrwala & Singh (eds) The economics of underdevelopment (New York 1963, p.12)

भारतीय योजना आयोग ने भी प्रथम पंचवर्षीय योजना में अल्पविकास की जो परिभाषा दी वह जैकब वाइनर की परिभाषा से बहुत मिलती–जुलती है। योजना आयोग के अनुसार अल्पविकसित देश वह है जिसमें एक ओर तो मानव शक्ति (Man Power) की क्षमता का बहुत कम उपयोग हो पा रहा है तथा दूसरी ओर प्राकृतिक संसाधनों का भी पूरा प्रयोग नहीं हो पा रहा है।''

जैकब वाइनर और भारतीय योजना आयोग दोनों ही परिभाषा वैज्ञानिक एवं तर्क संगत लगती है क्यों? उसमें अल्पविकसित देशों की विकास सम्भावनाओं पर चर्चा की गयी है।

1:7 अल्पविकसित / विकासशील देशों के लक्षण

अल्पविकसित देश की परिभाषायें क्या हो उनका अर्थ क्या है, के विषय में मतभेद के बावजूद अल्पविकसित देशों के कुछ ऐसे लक्षण हैं जिनके बारे में अधिकांशतः सहमति है। ये लक्षण निम्नलिखित हैं।

- **<u>प्रतिव्यक्ति आय का निम्न स्तर (Low per Captia Income)</u>**

प्रायः सभी अल्पविकसित देशों में प्रमुख विशेषता प्रति व्यक्ति निम्न राष्ट्रीय आय होना है। प्रो0 कुटिहारा ने लिखा है–''एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण लक्षण प्रतिव्यक्ति आय का कम होना है।

विश्व बैंक के एक रिर्पोट अनुसार जहाँ उच्च आय वाले विकसित पूँजीवादी देशों में 2020 में प्रतिव्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद औसतन 44479 डालर था वहीं निम्न आय वाले अल्पविकसित देशों में उस वर्ष यह 669 डालर था। परन्तु इस सन्दर्भ में यह बात भी महत्वपूर्ण है कि सभी अल्पविकसित देशों में प्रतिव्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद का स्तर समान नहीं है। ब्राजील, मेक्सिको तथा मलेशिया अल्पविकसित होते हुये भी आर्थिक सम्पन्नता में भारत, बांग्लादेश, पाकिस्तान, इडोनेशिया, नाइजीरिया, सीरिया आदि देशों से आगे है। विभिन्न स्तर के अल्पविकसित देशों में अल्पविकास की सम्भावनाएं भी अलग–अलग हैं।

- **कृषि की प्रधानता**–कृषि की प्रधानता अल्पविकसित राष्ट्रो की दूसरी विशेषता है। इन राष्ट्रों का एक बड़ा भाग कृषि पर निर्भर है। इन देशों में लगभग 30 से 75 प्रतिशत तक जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। अल्पविकसित देशों में कृषि पर ज्यादा निर्भरता होने के बावजूद कृषि का स्तर नीचा हो जाता है। परन्तु कृषि क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली आय इस क्षेत्र में लगी हुई जनसंख्या के अनुपात में नीची होती है। उदाहरण के तौर पर 2020 में भारत में कार्यशील जनसंख्या का 43 प्रतिशत कृषि–कार्य में संलग्न था जबकि इसी वर्ष देश के सकल वर्धित मूल्य से कृषि का हिस्सा मात्र 18.3 प्रतिशत था।

- **पूंजी निर्माण की निम्न दर (Low Rate of Capital Formation)**

अल्पविकसित देशों में राष्ट्रीय आय के निम्न स्तर होने तथा आय का अधिकांश भाग उपयोग वस्तुओं में व्यय हो जाने के कारण पूँजी निम्रण की दर नीची होती है।

- **बेरोजगारी –** अल्पविकसित देशों की प्रमुख विशेषता बड़े पैमाने पर अकुशल श्रमिकों का बेरोजगार होना है। जनसंख्या की तीव्र वृद्धि, उद्योगों की कमी, कृषि पर जनता का अधिक भार अल्पविकसित राष्ट्रों में बेरोजगारी और अर्द्धबेरोजगारी की स्थिति को बनाये रखने के लिये जिम्मेदार है। अल्पविकसित देशों के ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में कुल जनसंख्या का लगभग 35 प्रतिशत अप्रयुक्त हैं। (Michal P. Tadaro, Economic Development (Pearson Edition Ltd. 74 edi 2020 p.56)

- **प्राकृतिक साधनों का कम उपयोग–** अल्पविकसित राष्ट्रों में प्राकृतिक संसाधनों जैसे खनिज, कोयला, वन लौह अयस्क, जलशक्ति इत्यादि प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। लेकिन इन साधनों का कुशल प्रयोग नहीं हो पाता।

- **औद्योगिक पिछड़ापन (Industrial Backwardness)** अल्पविकसित देशों में कृषि की प्रधानता के कारण औद्योगिक विकास में कमी रहती है। कम उद्योग होने के कारण जहाँ एक ओर इन क्षेत्र में बहुत कम लोगों को रोजगार मिलता है, वहीं दूसरी ओर इस क्षेत्र का सकल घरेलू उत्पाद में योगदान भी कम होता है। भारत के परिप्रेक्ष्य में मात्र 18 प्रतिशत कार्यकारी जनसंख्या उद्योगों में लगी हुई है और सकल घरेलू उत्पाद में इस क्षेत्र का योगदान मात्र 27 प्रतिशत है। दूसरे अल्पविकसित देशों की स्थिति भी लगभग यही है। विकसित देशों जैसे–इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी आदि उद्योग प्रधान देशों में जनसंख्या का एक बड़ा भाग कार्यरत है, तथा औद्योगिक क्षेत्र का सकल घरेलू उत्पाद में कहीं अधिक योगदान है।

- **निर्यात में प्राथमिक वस्तुयें और आयात में निर्मित वस्तुओं की प्रधानता (Predornince of Goods in Exports and Manufactured Goods in Imports)-** अल्पविकसित देश सामान्यतः कृषि उपज और कच्चे माल का निर्यात करते हैं। और ज्यादातर विकसित देशों से उपभोक्ता वस्तुओं और मशीनरी का आयात करते हैं। अल्पविकसित देशों के निर्यात की प्रकृति ऐसी होती है कि अर्थव्यवस्था का उचित प्रकार से विकास नहीं हो पाता और व्यापार की शर्तें **(Terms of Trade)** प्रायः प्रतिकूल रहती हैं।

- **आय वितरण में असमानतायें (Unequal Disttibution of Income):** अल्पविकसित राष्ट्रों में आय के वितरण में व्यापक विषमतायें पायी जाती हैं। और देश की आय प्रायः कुछ चंद लोगों के हाथों में केन्द्रित रहती है।

- **जनसंख्या का आधिक्य–** अल्पविकसित राष्ट्रों में जनाधिक्य की ऐसी स्थिति पायी जाती है। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि जनसंख्या के आधिक्य का अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक अल्पविकसित देश में विकसित देश की तुलना में जनसंख्या की अधिकता होगी इसका कारण यह है कि अल्पविकसित देश में उत्पत्ति के साधनों पर जनसंख्या का भार विकसित देशों की तुलना में अधिक होगा।

- **जनसंख्या वृद्धि की तीव्र दर (High Rate of Population)-** विकसित देशों की तुलना में अल्पविकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि की दर तेज रहती है। इसका कारण यह है कि विकसित देशों का चिकित्सा सम्बन्धी ज्ञान तथा अन्य आवश्यक सुविधायेंज ब अल्पविकसित देशों का बिकनी शुरू हो जाती है तो मृत्यु–दर गिरने लगती है। लेकिन गरीबी, अज्ञानता तथा रूढ़िवादिता के कारण परिवार नियोजन के प्रयास को अधिक सफलता नहीं मिल पाती अतः इन देशों की जनसंख्या तीव्रगति से बढ़ती है। ऐसी स्थिति में आर्थिक विकास कठिन होता है। अफ्रीका, दक्षिण एशिया और लैटिन अमेरिका के देशों में पिछले साठ वर्षों से जनसंख्या जिस तीव्र दर से बढ़ रही है उसके कारण इन देशों के लोगों के जीवन स्तर में सुधार किया जाना बहुत कठिन हो गया है। परिणामस्वरूप कुछ देशों में रहन–सहन के स्तर में गिरावट हुई है।

- **पिछड़ी उत्पादन तकनीक**– अल्पविकसित देशों में उत्पादन तकनीक पिछड़ी अवस्था में है, और हम यह कह सकते हैं कि तकनीकी पिछड़ापन अल्पविकसित होने का कारण एवं परिणाम दोनों हैं।

- **परिवहन एवं संचार सुविधाओं की कमी–** अल्पविकसित देशों में परिवहन एवं संचार सुविधायें अपर्याप्त हैं। जो भी सुविधायें उपलब्ध होती है, उसमें भी पर्याप्त गतिशीलता का अभाव रहता है।

अल्पविकसित देशों की उपरोक्त उल्लेखित विशेषताओं के अतिरिक्त इनकी कुछ और भी विशेषताएँ है। इन देशों के सामाजिक ढाँचे में रूढ़िवादिता अभी भी बनी हुयी है। सामाजिक आर्थिक सम्बन्धों में भी कोई भी विशेष परिवर्तन दिखाई नहीं देता, यह जड़ता ही विकास में बाधा बन गयी है। यद्यपि कुछ अल्पविकसित देशों में भूमि सुधार लागू किये गये हैं। फिर भी ग्रामीण ढाँचा ज्यों का त्यों है। कुछ देशों में कृषि वित प्रदान करने के लिये विशिष्ट संस्थाओं की स्थापना नहीं की गयी है और महाजनों की पकड़ अभी भी बनी हुयी है।

विकसित देशों की तुलना में अल्पविकसित देशों में मानव पूँजी भी बहुत कम विकसित है। उच्च आय वाले देशों में जहाँ वयस्क साक्षरता दर 98 प्रतिशत है वहाँ निम्न आय वाले देशों में यह मात्र 62 प्रतिशत है। शिक्षा और अनुसंधान पर भी अल्पविकसित देशों में अपेक्षाकृत बहुत कम खर्च होता है।

अन्त में यह बताना आवश्यक हो जाता है कि लगभग सभी अल्पविकसित देशों में सामाजिक अनुशासन नहीं है। यहाँ के कानून दोषपूर्ण होते हैं, और फिर प्रशासनिक अधिकारी उनकी भी अवहेलना करते हैं। ये अधिकारी उन लोगों के दबाव में काम करते हैं। जिन्हें राज्य द्वारा नियंत्रित किया जाना चाहिये। गुन्नार मिडेल इसे अल्पविकसित देशों के विकास में महत्वपूर्ण कारण मानते हैं। (Gunnar Mydal The Challenge of World Poverty p.p. 11-12)

1:8 सारांश

विकास के अर्थशास्त्र का सम्बन्ध अर्द्धविकसित देशों के आर्थिक विकास की समस्याओं से होता है। आर्थिक विकास एक सतत् चलने वाली प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी भी देश में उपकरण संसाधनों का अधिकतम कुशलता के साथ उपयोग दिया जाता है। विकास का यह अर्थ लगाया जाना चाहिये कि अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्रों में उत्पादकता बढ़ाया जाना चाहिये जिससे देश के नागरिकों की आय एवं उपयोग के स्तर में वृद्धि हो सके, आर्थिक विकास का उद्देश्य केवल मौद्रिक आय में वृद्धि करना नहीं है अपितु अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्रों में होने वाले विकास को भी इसमें सम्मिलित किया जाता है अपितु विकास द्वारा ही सामाजिक, संस्थागत एवं संगठन सम्बन्धी समस्त परिवर्तन लाये जा सकते हैं।

आर्थिक विकास का अर्थ है कि देश में प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, पूँजीगत साधनों की उपलब्धता, श्रमिकों की कार्यक्षमता एवं उत्पादकता में वृद्धि, कुशल उत्पादन एवं वितरण, परिवहन एवं संचार साधनों का विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं की सुविधाओं में वृद्धि आदि बातें सम्मिलित होती हैं।

आर्थिक संवृद्धि एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी अर्थव्यवस्था का सकल घरेलू उत्पाद लगातार दीर्घाकाल तक बढ़ता रहता है। केवल कुछ समय के लिये वृद्धि (जैसे–व्यापार–चक के क ारण समृद्धि काल में होती है) संवृद्धि नहीं दहलायेगी।

परन्तु आर्थिक संवृद्धि को उपर्युक्त रूप में परिभाषित करना सही नहीं है। इसका कारण यह है कि यदि जनसंख्या में वृद्धि, सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि से अधिक होती है। ऐसी स्थिति में प्रतिव्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद में गिराना होगी। निश्चय ही हम आर्थिक संवृद्धि नहीं कहेंगे। इस प्रकार के संदेह को दूर करने के लिये बहुत से अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक संवृद्धि का प्रतिव्यक्ति उत्पाद में वृद्धि के रूप में परिभाषित करते हैं जो सबसे अधिक उपयुक्त व तर्कसंगत है। परन्तु इस संदर्भ में यह अत्यंत जरूरी है कि देश की अर्थव्यवस्था मं समयोपरि होने वाले संरचनात्मक परिवर्तन कई बार प्रतिव्यक्ति उत्पाद में होने वाली वृद्धि से भी अधिक महत्वपूर्ण है। इसलिये उन पर भी विचार करना आवश्यक है। चार्ल्स बीतक हाइम ने ठीक ही कहा है कि आर्थिक संवृद्धि की चर्चा करते समय उद्देश्य केवल मात्रात्मक परिवर्तन (अधिक उत्पादन) न होकर गुणात्मक परिवर्तन (अधिक श्रमिक उत्पादकता) भी होना चाहिये। केवल गुणात्मक परविर्तन द्वारा ही अर्थव्यवस्था उच्च स्तर पर पहुँच सकती है।

1:9 शब्दावली आर्थिक विकास–

आर्थिक विकास की परिभाषा प्रायः लोगों के भौतिक कल्याण के रूप में की जाती है। जब किसी देश के कम आय वाले लोगों के भौतिक कल्याण में वृद्धि होती हो जनसाधारण को अशिक्षा, बीमारी और छोटी उम्र में मृत्यु के साथ–साथ गरीबी से छुटकारा मिलता है। कृषि लोगों का मुख्य व्यवसाय न होकर औद्योगीकरण होता है और अर्थव्यवस्था का स्वरूप बदलता है तो हम कह सकते हैं कि देश के आर्थिक विकास हुआ है।

आर्थिक संवृद्धि– आर्थिक संवृद्धि से तात्पर्य यह लिया जाता है कि देश के उत्पादन में (प्रतिव्यक्ति उत्पादन में) समय के साथ–साथ क्या वृद्धि हुई है।

अल्पविकसित – अल्पविकसित देश में प्रतिव्यक्ति आय का स्तर बहुत कम होता है। मानव शक्ति का बहुत कम उपयोग हो पा रहा दूसरी ओर प्राकृतिक संसाधनों का भी पूरा प्रयोग नहीं हो पा रहा है। ढाँचागत विकास का स्तर भी कम है।

1:10 बोध प्रश्न

1. आर्थिक संवृद्धि और आर्थिक विकास की व्याख्या कीजिये। (Explain economics Growth and development).
2. आर्थिक वृद्धि और आर्थिक विकास में अंतर बताइए। (Distinguish between economic growth and Economic Development).

   आर्थिक विकास के अभिसूचकों को स्पष्ट कीजिये। (Explain the Indus of Economic Development)
3. अल्पविकसित अर्थव्यवस्था की परिभाषा बताइये तथा इसकी मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए। Define under developed economy and describe the basic characteristics.
4. क्या भारत एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था है। Is India an under developed economy?
5. स्थैतिक एवं गतिशील अर्थशास्त्र को परिभाषित कीजिए।

उपयोगी पुस्तकें

भारतीय अर्थव्यवस्था – वी0के0 पुरी, एस0के0 मिश्र (हिमालया पब्लिकेशन हाउस)

भारतीय अर्थव्यवस्था – दत्त एवं सुदरम्

The meaning of development – Dudley Seers

Economic development – Charles P. Kinder Berger and Bruce Herrick (New York 1977) P.1

An Uncertain Glory : India and its Contradiction (Jean Draze and Amartya Sen) N. Delhi 2016

Jacob Viner "Economics Development in Agarwal and Singh (eds) The Economics of Development (New York 1963)

Government of India, Planning Commission Report

Michall Todar Economics Development (Person Education)

Development Economy – Devraj Raj (Oxford pro)

विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन –डॉ0 योगेश कुमार सिंह

विकास का अर्थशास्त्र एवं नियोजन – आलोक गर्ग

विकास का अर्थशास्त्र एवं नियोजन – डॉ0 रामरतन शर्मा

समस्टि–अर्थशास्त्र – एम0 एफ0 झिंगन–वृंदा पब्लिकेशन

उच्चतर आर्थिक सिद्धांत–एच0एफ0 आहूजा

समस्टिमापी अर्थशास्त्र – Prof. S.N. Lal शिव पब्लिकेशन

इकाई – 2 आर्थिक संवृद्धि एवं मापन

इकाई की रूपरेखा

1 : 0 उद्देश्य

1 : 1 प्रस्तावना

1 : 2 आर्थिक संवृद्धि के मापदण्ड

1 : 2 : 1 आर्थिक संवृद्धि के मापक

1 : 2 : 2 आर्थिक कल्याण का माप

1 : 3 आर्थिक संवृद्धि के माप की आधुनिक विधियाँ

1 : 3 : 1 मानव विकास सूचकांक

1 : 3 : 2 मानव विकास सूचकांक

1 : 4 सारांश

1 : 5 शब्दावली

1 : 6 बोध प्रश्न

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप–

1. सकल राष्ट्रीय उत्पाद की अवधारणा को समझ सकेंगे।
2. प्रतिव्यक्ति वास्तविक आय की गणना कर सकते हैं।
3. आर्थिक संवृद्धि के मापन से सम्बन्धित विभिन्न अभिसूचकों को समझ सकेंगे।
4. आर्थिक संवृद्धि के मापन के संदर्भ में जीवन की भौतिक गुणवत्ता सूचक, मानव विकास सूचक के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।
5. आर्थिक विकास के मापक, सामाजिक अभिसूचकों जैसे जीवन प्रत्यागा, शिशु मृत्यु दर, साक्षरता दर आदि के विषय में तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगे।

1 : 1 प्रस्तावना

सन् 1960 के विकास दशक के लिये संयुक्त राष्ट्र ने एक प्रस्ताव द्वारा अल्पविकसित देशों के लिये राष्ट्रीय आय में 5 प्रतिशत की विकास दर का लक्ष्य निर्धारित किया गया। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये अर्थशास्त्रियों ने शहरीकरण के साथ तीव्र औद्योगीकरण का सुझाव दिया। अर्थशास्त्रियों का सुझाव था कि राष्ट्रीय आय (GNP) की वृद्धि से प्राप्त लाभ स्वयं ही 'आय एवं रोजगार के अवसरों' में वृद्धि के रूप में गरीबों तक धीरे–धीरे पहुँच जायेंगे। इस प्रकार विकास के इस माप के अनुसार गरीबी, बेरोजगारी और आय असमानता की समस्याओं को गौण महत्व दिया गया।

आर्थिक संवृद्धि के मापक के रूप में राष्ट्रीय आय एवं प्रतिव्यक्ति आय मापदण्ड मानव–विकास और उसकी गुणवत्ता को नहीं मापती। 1970 के दशक से अर्थशास्त्रियों ने विकास प्रक्रिया की गुणवत्ता की ओर ध्यान देते हुए जीवन प्रत्याशा, शिशु मृत्यु दर, साक्षरता दर जैसे सामाजिक अभिसूचकों (Social Indicators) पर ध्यान देना आरंभ किया। इन अभिसूचकों की विशेषता यह है कि वे लक्ष्यों से जुड़े हैं और वे लक्ष्य है मानव विकास (Human Development) आर्थिक विकास इन लक्ष्यों को प्राप्त करने का एक साधन है।

आर्थिक विकास के सूचक के रूप में राष्ट्रीय आय (GNP) के विरूद्ध प्रोफेसर डडले सीयर्स (Dudely Seers) ने 1969 में नई दिल्ली में आयोजित (XIth World Conference of the Society for International Development) के अध्यक्षीय भाषण में मत व्यक्त किया। तत्कालीन विश्व बैंक के गर्वनर राबर्ट मैक्नमारा ने भी 1970 में विकासशील देशों में आर्थिक विकास के मापदण्ड के रूप में राष्ट्रीय आय (GNP) की विफलता को स्वीकार किया। विकास से सम्बद्ध आधुनिक अर्थशास्त्री यह मानते हैं कि आर्थिक विकास 'मानव विकास' अथवा समुदाय के कल्याण से संबंधित होता है। मानव विकास शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, भोजन, आवास आदि के रूप में मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं (Basic Human Needs) पर निर्भर करती है। नारमन हिक्स ने भी अपने अध्ययन में यह पाया है कि कई विकासशील देशों की आर्थिक विकास दर मूलभूत आवश्यकताओं की नीति द्वारा बढ़ी है।

आर्थिक संवृद्धि अथवा आर्थिक विकास के मापदण्ड के रूप में राष्ट्रीय आय को (GNP) प्रतिव्यक्ति आय को (GNP Percaptia) आर्थिक कल्याण को उपयोग एवं जीवन स्तर (Consumption and Living Standard) तथा सामाजिक अभिसूचक को 'मानव विकास सूचक'(Human Development Index) के रूप में विकासवादी अर्थशास्त्री प्रस्तुत करते हैं। इन मापकों में सर्वश्रेष्ण मापक कौन सा है? यह आज भी विचार–विमर्श का मुद्दा है क्यों

कि इन मापदण्डों में किसी को सर्वश्रेष्ण नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि इस मापकों के अपने अपने गुण–दोष, एवं सीमाएं हैं, यदि 'राष्ट्रीय आय' और 'आर्थिक कल्याण' मापकों को विकसित अर्थव्यवस्था से सम्बद्ध किया जाये तथा 'प्रतिव्यक्ति आय' और 'सामाजिक आय सूचक' मापकों को अल्पविकसित अर्थव्यवस्था से सम्बद्ध किया जाये तो इसे उचित ही कहा जायेगा क्योंकि अल्पविकसित देशों की समस्या कम आय, कम उपयोग की समस्या है। विकास की समस्या मुख्य रूप से अल्पविकसित देशों के विकास की समस्या से संबंधित है। इन देशों में मानव विकास का लाभ 'सामाजिक सूचक' के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

1 : 2 आर्थिक संवृद्धि के मापदण्ड–

आज विश्व का प्रत्येक राष्ट्र आर्थिक संवृद्धि एवं आर्थिक विकास की दौड़ में शामिल है और एक दूसरे से आगे निकलने के लिये प्रयासरत् हैं। इस सन्दर्भ में मुख्यतः दो बिन्दु हैं।

1. आर्थिक संवृद्धि / आर्थिक विकास का मापदण्ड क्या हो, तथा
2. इसके मापदण्ड / मापन की गणना किस प्रकार से किया जाये जिससे किसी देश के आर्थिक संवृद्धि का पता लगाया जा सके।

   उपरोक्त बिन्दुओं में से प्रथम बिन्दु का सम्बन्ध आर्थिक संवृद्धि अथवा आर्थिक विकास के माप अभिसूचकों (Indicators to Measures Economic Development) से है तो दूसरे बिन्दु का सम्बन्ध आर्थिक संवृद्धि की माप की विधियों (Methods to Measures Economic Growth).

   विकासवादी अर्थशास्त्रियों ने किसी देश की आर्थिक संवृद्धि अथवा विकास के लिये निम्नलिखित मापकों (अभिसूचकों) अथवा मापदण्डों का उल्लेख किया है।

   1. सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) अथवा वास्तविक राष्ट्रीय आय (Real National Income)
   2. प्रतिव्यक्ति राष्ट्रीय उत्पादन (GNP per capita अथवा प्रति व्यक्ति वास्तविक आय (Per captia Real Income)
   3. आर्थिक कल्याण (Economic Welfare) अथवा उपयोग एवं जीवन–स्तर (Consumption and Living Standard)।
   4. सामाजिक अभिसूचक ''मानव विकास सूचक'' के रूप में। (Social Indicator as Human Development-HDI)

किसी भी अर्थव्यवस्था में हो रही आर्थिक क्रियाओं दीर्घकाल में दो प्रकार के परिवर्तनों को पैदा करती हैं–के समग्र चरों जैसे–सकल राष्ट्रीय आय, प्रतिव्यक्ति आय में परिवर्तन जिन्हें मापा जा सकता है। जो मात्रात्मक परिवर्तन से सम्बन्धित है। ऐसे परिवर्तनों को आर्थिक संवृद्धि कहते हैं।

इन परिवर्तनों (मात्रात्मक) के साथ जब हम अर्थव्यवस्था के गुणात्मक परिवर्तनों को भी सम्मिलित कर लेते हैं तो इसे हम आर्थिक विकास कहते हैं।

आर्थिक संवृद्धि से आशय किसी समयावधि में किसी अर्थव्यवस्था में होने वाली वास्तविक आय की वृद्धि से है।

सामान्यतः हम यह देखते हैं कि सकल राष्ट्रीय उत्पाद, सकल घरेलू उत्पाद तथा प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि हो रही हो तो हम कह सकते हैं कि आर्थिक संवृद्धि हो रही है। सत्तर के दशक के पूर्ण आर्थिक संवृद्धि तथा आर्थिक विकास को पर्यायवाची के रूप में प्रयोग में लाया जाता था परन्तु बाद में इनमें भेद स्थापित किया गया। आर्थिक संवृद्धि को आर्थिक विकास के एक भाग के रूप में देखा गया। आर्थिक विकास की धारणा आर्थिक संवृद्धि की धारणा से अधिक व्यापक है। आर्थिक संवृद्धि उत्पादन की वृद्धि से सम्बन्धित है। जबकि आर्थिक विकास सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक गुणवत्ता एवं परिमाणात्मक सभी परिवर्तनों से सम्बन्धित है। जहाँ आर्थिक संवृद्धि परिमाणात्मक परिवर्तन से सम्बन्धित है आर्थिक विकास परिमाणात्मक एवं गुणात्मक दोनों प्रकार के परिवर्तनों से सम्बन्धित हैं। जहाँ आर्थिक संवृद्धि वस्तुनिष्ठ है, वहीं आर्थिक विकास व्यक्ति निष्ठ है। आर्थिक विकास तभी कहा जायेगा जबकि जीवन की गुणवत्ता quality life में सुधार हो।

1:2:1 आर्थिक संवृद्धि के मापक

- **वास्तविक राष्ट्रीय आय**–राष्ट्रीय आय लेखांकन में शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP) में से अप्रत्यक्ष करों को घटाने पर शुद्ध राष्ट्रीय आय (Net National Income) प्राप्त होता है। शुद्ध राष्ट्रीय आय में घरों की व्यवसायों की और सरकार की आय शामिल है। शुद्ध राष्ट्रीय आय को इस प्रकार से परिभाषित किया गया है कि सकल घरेलू उत्पाद में विदेशों से मजदूरी, वेतन और संपत्ति आय की शुद्ध प्राप्तियों को जोड़ने से प्राप्त योगफल में से स्थायी पूँजीगत सम्पत्तियां (आवास, भवन, मशीनरी, परिवहन, उपकरण और भौतिक अवसंरचना) के टूट–फूट और अप्रचलित हो जाने के कारण हुये मूल्यह्वास को घटाने पर शुद्ध राष्ट्रीय आय प्राप्त होता है।

वास्तविक राष्ट्रीय आय मुद्रा के रूप में व्यक्त आय$^{-1}$ जैसे 1000 मौद्रिक आय है पर जब हम उस 1000 रूपये को क्रयशक्ति में व्यक्त करें तो उसे हम वास्तविक आय कहते हैं। मौद्रिक आय को जब इस मूल्य स्तर से भाग देते हैं तो हमें वास्तविक आय प्राप्त होती है।

स्थिर मूल्य या किसी आधार वर्ष के आधार पर व्यक्त आय को हम वास्तविक आय के रूप में दर्शाते हैं। साघन लागत पर व्यक्त वास्तविक घरेलू उत्पाद, राष्ट्रीय उत्पाद तथा प्रतिव्यक्ति आय को हम सामान्यतया आर्थिक संवृद्धि के माप के रूप में स्वीकार करते हैं। चूँकि प्रतिव्यक्ति आय की गणना करते समय हम जनसंख्या को भी ध्यान में रखते है, इसलिये हम प्रतिव्यक्ति आय की वृद्धि को ही आर्थिक संवृद्धि की माप के लिये अधिक स्वीकार करते हैं। परन्तु प्रतिव्यक्ति माप की कुछ सीमायें हैं और प्रतिव्यक्ति आय की वृद्धि आवश्यक रूप से आर्थिक संवृद्धि नहीं प्रदर्शित करेगी जैसे यदि राष्ट्रीय उत्पाद तो स्थिर हो पर जनसंख्या की तेजी से कमी जैसे अकाल या आपदा से लोगों का मरना, प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि ला रही है तो आर्थिक संवृद्धि नहीं कही जायेगी, इसलिये बहुत से अर्थशास्त्री दोनों विधियों को समन्वित करते हैं, तथा यह विचार व्यक्त करते हैं कि यदि राष्ट्रीय उत्पाद की वृद्धि के कारण प्रतिव्यक्ति आय बढ़े तो इस संवृद्धि का सूचक कहेंगे। सामान्यतया आर्थिक संवृद्धि की माप के लिये प्रतिव्यक्ति आय को ही लिया जाता है। प्रतिव्यक्ति आय सकल राष्ट्रीय आय तथा सकल घरेलू उत्पाद दोनों पर आधारित हो सकती है, परन्तु सकल घरेलू उत्पाद को ही प्रतिव्यक्ति आय के लिये वरीयता दी जाती है।

ऐसा भारत में भी किया जाता है, पर HDR 2010 में प्रतिव्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय को लिया गया है क्यों कि ऐसे देशों में जिनमें विदेशों से अधिक आय प्राप्त होती है, वहाँ सकल घरेलू उत्पाद आर्थिक विकास का सही चित्र नहीं प्रदर्शित कर पाता।

- **सकल राष्ट्रीय उत्पाद–(Gross National Product-GNP)** – सकल राष्ट्रीय उत्पाद (उत्पादन) किसी देश के नागरिकों द्वारा किसी दी गयी समयावधि सामान्यतया एक वर्ष में उत्पादित कुल अंतिम वस्तुओं तथा सेवाओं का मौद्रिक मूल्य होता है। इसी प्रकार देश के अन्दर विदेशियों द्वारा उत्पादित आय को **GNP** में से घटा दिया जाता है। सूत्र के रूप में–

  $$GNP = GDP – (X – M)$$

  जहाँ X = देशवासियों द्वारा विदेशों में अर्जित आय तथा M = विदेशियों द्वारा देश के अंदर अर्जित की गयी आय है। यदि X = M है तो सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) सकल घरेलू उत्पाद (GDP) के बराबर होगी।

- **शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP) –**शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद को ज्ञात करने के लिये (GNP) में से सम्पूर्ण पूँजी स्टॉक की खपत से उत्पन्न मूल्य ह्वास (Depie Ciation) को घटाना होता है मुद्रा के रूप में।

  NNP = GMP – Dep

- **राष्ट्रीय आय (National Income NI or Y) –** NNP में उत्पादित वस्तुओं की बाजार कीमतें इसमें अप्रत्यक्ष–कर (Indinect Tax) तथा सब्सिडी के प्रभाव सम्मिलित होते हैं।

  NNP की गणना दो प्रकार से की जा सकती है।

1. वस्तुओं तथा सेवाओं की बाजार कीमतों पर तथा 2. कुल उत्पादन के साघन लागत के रूप में।

$NNP_{FC} = N_{MP}$ MP – शुद्ध अप्रत्यक्ष कर

इस तरह से प्राप्त मूल्य को साघन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद

(Net Material Product at Factor Cost)

N.B. (शुद्ध अप्रत्यक्ष कर = कुल अप्रत्यक्ष कर – सब्सिडी)

अथवा राष्ट्रीय आय कहते हैं।

1:2:2 आर्थिक कल्याण का माप (Measurement of Economic Welfare)

अर्थशास्त्रियों का मानना है कि ''अधिक–उपयोग' उच्च जीवन स्तर को प्रभावित करता है, तथा उच्च जीवन–स्तर आर्थिक कल्याण को प्रभावित करता है। इस आधार पर आर्थिक कल्याण के माँग पक्ष एवं पूर्ति पक्ष पर प्रकाश डाला जा सकता है।

I- आर्थिक कल्याण का माँग पक्ष

अधिक उपयोग – उच्च जीवन–स्तर – मनुष्य की कार्य क्षमता में वृद्धि – आर्थिक विकास

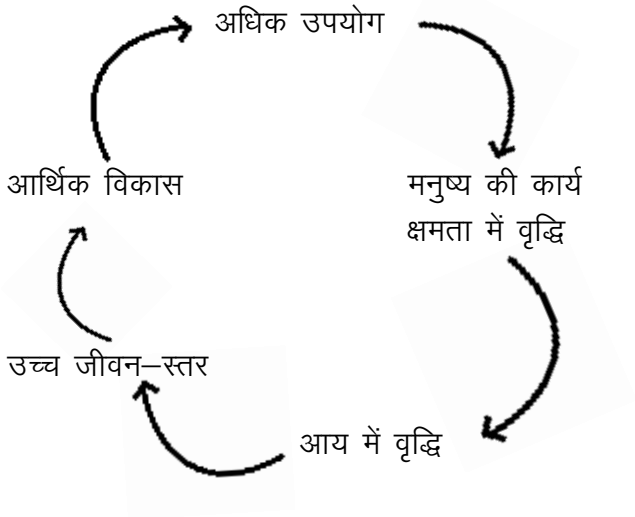

II- आर्थिक कल्याण का पूर्ति–पक्ष

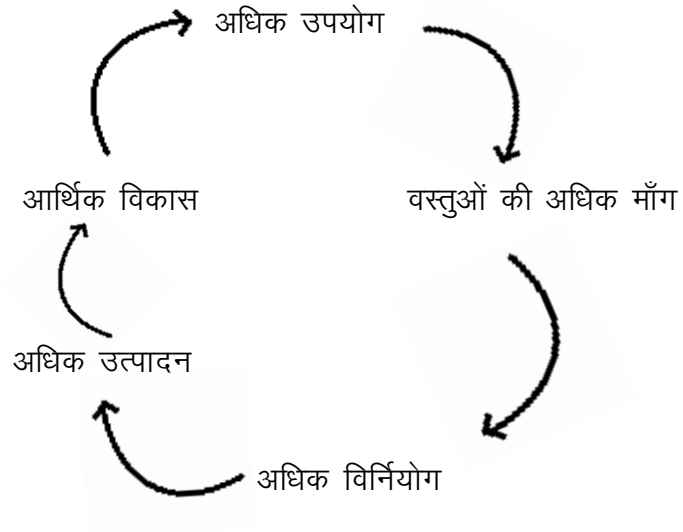

आर्थिक कल्याण के माँग एवं पूर्ति–पक्ष के आधार पर अर्थशास्त्री 1. उपभोग प्रवृत्तियों तथा बचत प्रवृत्तियों की गणना करता है।

1. **उपयोग प्रवृत्ति–(Propensition to Consume)** –उपभोग प्रवृति को दो रूपों में मापा जा कसता है।

I. औसत उपभोग प्रवृत्ति (Average Propensity to Consume)

$$\text{औसत उपभोग प्रवृत्ति} = \frac{\text{अर्थव्यवस्था का सम्पूर्ण उपभोग व्यय}}{\text{राष्ट्रीय आय}}$$

$$APC = \frac{e}{y}$$

II. सीमांत उपभोग प्रवृत्ति –(Marginal Propensity to Consume)

$$\text{सीमांत उपभोग प्रवृत्ति} = \frac{\text{अर्थव्यवस्था का सम्पूर्ण उपभोग में वृद्धि}}{\text{कुल राष्ट्रीय आय में वृद्धि}}$$

$$MPC = \frac{\Delta c}{\Delta y}$$

2. **बचत प्रवृत्ति –(Propensity to Save) –**आर्थिक कल्याण के पूर्ति–पक्ष में 'उत्पादन' का महत्वपूर्ण स्थान होता है। उत्पादन पूँजी के निवेश पर निर्भर करता है और निवेश अर्थव्यवस्था की 'बचत' पर सम्पूर्ण बचत–प्रवृत्तियों को दो रूपों में मापा जा सकता है।

I. **औसत बचत प्रवृत्ति** (Average Propensity to Save)

$$\text{औसत बचत प्रवृत्ति} = \frac{\text{अर्थव्यवस्था की सम्पूर्ण बचत}}{\text{राष्ट्रीय आय}}$$

$$APC = \frac{s}{y}$$

II. सीमांत बचत प्रवृत्ति –(Marginal Propensity to Save)

$$\text{सीमांत बचत प्रवृत्ति} = \frac{\text{अर्थव्यवस्था का सम्पूर्ण बचत में वृद्धि}}{\text{राष्ट्रीय आय में वृद्धि}}$$

$$MPS = \frac{\Delta s}{\Delta y}$$

Δs = बचत में वृद्धि

Δy = आय में वृद्धि

1:3 आर्थिक संवृद्धि के माप की आधुनिक विधियाँ (Modern Methods to Measure Economic Growth)

मुख्य रूप से आर्थिक संवृद्धि (आर्थिक विकास) के माप की दो विधियाँ प्रयोग में लायी जाती हैं।

1. **मानव विकास सूचक विधि (Method of Human Development Index)-** इस विधि का प्रयोग 1990 में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDPI) के साथ जुड़े अर्थशास्त्री महबूबल हक द्वारा किया गया है।

2. **क्रयशक्ति समता विधि–(Purchasing Power Parity Method PPP Model)-** इस विधि का प्रयोग विश्व बैंक द्वारा विभिन्न देशों के रहन–सहन के स्तर (जीवन–स्तर) की तुलना के लिये किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत किसी देश की सकल राष्ट्रीय आय को किसी पूर्व निश्चित अन्तर्राष्ट्रीय विदेशी विनिमय दर पर व्यक्त न करके उस देश के अंदर प्रचलित मुद्रा की क्रय शक्ति के आधार पर व्यक्त किया जाता है। इस प्रकार की तुलना के लिये क्रय शक्ति समता स्थापित की जाती है।

1:3:1 मानव विकास सूचकांक

सकल राष्ट्रीय उत्पाद के विकल्प के रूप में आर्थिक विकास के मापन के लिये मापक की खोज करते हुये एवरैट ई0 हैजन (Everett E. Hagen), डोनाल्ड एच. नीवैरोस्की (Donald H. Niewiaroski), इर्मा एडल मैन (Ima Adel man) और सिन्धियाँ टाफ्ट मोरिस (Cynthia Taft Morris) तथा हार्विन्सन (Harbinson), मैरूहनिक (Maruhnic) और रेजनिक (Resnick) ने विकास के मापन के लिये व्यापक सूचकांक तैयार किये हैं। जीवन के भौतिक गुणों के सूचकांक (Physical Quality of Life Index) की संकल्पना मोरिस डी. मोरिस (Morris D. Morris) ने विकसित की है। जबकि पॉल–स्ट्रीटन (Paul Streeten) ने मूल आवश्यकता दृष्टिकोण (Basic need Approach) को अपनाने पर जोर दिया। इन प्रयासों के द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ के विकास कार्यक्रम (United Nations Development Programme) द्वारा मानव विकास सूचकांक (Human Development Index) के प्रस्तुतीकरण के लिये मार्ग प्रशस्त किया। मानव विकास सूचकांक सर्वप्रथम 1990 की (Human Development Report) में प्रकाशित हुआ था और इसे महबूब–उल–हक (Mahbub ul Haq) के निर्देशन में तैयार किया गया था।

1:3:2 मानव विकास सूचकांक (Human Development Index)

पिछले कुछ वर्षों में विकास अर्थशास्त्रियों का ध्यान आर्थिक संवृद्धि से हटकर मानव विकास पर केन्द्रित हुआ है। बहुत लम्बे समय तक अर्थशास्त्रियों के सामने यह प्रश्न था कि राष्ट्र कितना उत्पादन कर रहा है, परन्तु अब यह पूछा जाता है कि लोगों का रहन–सहन कैसा है? इस बदलाव का कारण यह है कि अब अर्थशास्त्री मानने लगे है। कि विकास का वास्तविक उद्देश्य जनता के विकल्पों का विस्तार करना है। जीवन–स्तर में सुधार के लिये आय को एक विकल्प के रूप में देखा जाता है।

निश्चित रूप से यह एक महत्वपूर्ण विकल्प है, परन्तु आय मानव जीवन के लिये सब कुछ नहीं है। शिक्षा, साक्षरता, स्वास्थ्य, भौतिक पर्यावरण सभी स्त्रियों एवं पुरुषों के लिए (बिना भेदभाव किये) समान अवसर, राजनैतिक स्वतंत्रता, इत्यादि उतने ही महत्वपूर्ण हो सकते हैं जितनी की आय है।

सभी आर्थिक गतिविधियों का अंतिम लक्ष्य 'मानव विकास' है परन्तु उसकी माप करना आसान नहीं है। जहाँ आर्थिक संवृद्धि को सामान्यतया सकल राष्ट्रीय उत्पाद के रूप में मापा जाता है, वहाँ मानव विकास का माप करना बहुत मुश्किल है, क्योंकि मानव विकास के कई आयाम हैं। एक ऐसी माप की तलाश के फलस्वरूप जिनमें इन सभी आयामों को शामिल किया जा सके। संयुक्त विकास कार्यक्रम ने 1990 में प्रकाशित अपनी पहली Human Developmetn Report) में मानव विकास सूचकांक (HDI) की संकल्पना प्रस्तुत की। यह सत्य है कि मानव विकास की संकल्पना इतनी व्यापक है कि उसे एक सूचकांक में पूरी तरह व्यक्त कर पाना संभव नहीं है, परन्तु इस प्रकार के सूचकांक से मानव विकास की महत्ता को स्पष्ट करना तथा विकास का एक व्यापक दृष्टिकोण प्राप्त करना संभव हो पाता है। स्ट्रीटन (Streeten) ने कहा है, इन सूचकांकों के पक्ष में सबसे महत्वपूर्ण तर्क यह है कि इनसे सकल राष्ट्रीय उत्पाद जैसे सूचकांकों की अपर्याप्तता स्पष्ट करने में सहायता मिलती है।

मानव विकास सूचकांक (HDI) सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) का प्रतिस्थापन नहीं करता परन्तु देश एवं समस्त की वास्तविक स्थिति को दर्शाने में कई प्रकार से मदद करता है।

HDI मानव विकास का 'माप' है। वह किसी भी देश की मानव विकास के सन्दर्भ में तीन मूलभूत आयामों के क्षेत्र में उपलब्धियों की माप करता है। ये तीन मूलभूत आधार हैं–दीर्घ व स्वस्थ जीवन, ज्ञान की उपलब्धि तथा एक अच्छा जीवन–स्तर।

HDR-2010 तथा उसके बाद से मानव विकास सूचकांक को ज्ञात करने के लिये इन तीनों आयामों के लिये आकलित सूचकांकों की ज्यामितीय माध्य (Geometric Mean) ली गई है। HDR-2010 से पहले की रिपोर्टों में साधारण–माध्य (Arthmetic Mean) ली जाती थी।

HDR-2010 में लम्बी स्वस्थ जीवन–यापन की योग्यता (या क्षमता) को पहली रिपोर्ट की तरह ही जन्म के समय जीवन–संभावना (Life Expectency at Birth) के रूप में परिभाषित किया गया है। परन्तु ज्ञान–सम्बन्धी तथा अच्छे जीवन–स्तर संबंधी आयामों में परिवर्तन किये गये हैं। पहले की रिपोर्टों में अच्छे जीवन–स्तर आयामक` माप के लिये क्रय–शक्ति समता द्वारा समायोजित प्रतिव्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद को लिया जाता था जबकि HDR-2010 में क्रय–शक्ति समता द्वारा समायोजित प्रतिव्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product) को लिया गया है। सकल घरेलू उत्पाद के स्थान पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद का प्रतिस्थापन इसलिये आवश्यक समझा गया क्योंकि वैश्वीकरण के दौर में देश के नागरिकों की आय तथा घरेलू उत्पादन के बीच महत्वपूर्ण अन्तर हो सकते हैं। जहाँ तक ज्ञान संबंधी आयाम की बात है, साक्षरता के स्थान पर अब 'स्कूल में व्यतीत औसत वर्ष' (Mean Years of Schooling) तथा सकल नामांकन के स्थान पर 'स्कूल में व्यतीत किये जाने वाले संभावित वर्ष' (Expected Years of Schooling) अर्थात वर्तमान नामांकन दरों के लिये होने पर, शिशु के स्कूल में व्यतीत किये जाने वाले संभावित वर्षों को लिया गया है। HDR-2010 के अनुसार ''विभिन्न देशों में स्कूल में व्यतीत औसत वर्षों से संबंधी जानकारी अधिक आसानी से उपलब्ध है तथा विभिन्न देशों के बीच अन्तर करने में वह अधिक समक्षमह`। दूसरी ओर, स्कूल में व्यतीत किये जाने वाले संभावित वर्षों का प्रयोग ज्ञान संबंधी आयाम को वर्षों के रूप में परिभाषित करने के लिये अधिक उपयुक्त है।''

1:4 सारांश

आर्थिक संवृद्धि अथवा आर्थिक विकास के मापदण्ड के रूप में राष्ट्रीय आय को GNP, प्रतिव्यक्ति आय को GNP Perceptia, आर्थिक कल्याण को 'उपयोग एवं जीवन–स्तर' तथा सामाजिक अभिसूचकों को 'मानव विकास सूचक' (Human Development Index) के रूप में विकासवादी अर्थशास्त्री प्रस्तुत करते हैं। इन मापकों में सर्वश्रेष्ठ मापक कौन–सा है? यह आज भी विचार–विमर्श का मुद्दा है, क्योंकि इन मापदण्डों में किसी को सर्वश्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि इन मापदण्डों के अपने–अपने गुण–दोष एवं सीमाएँ हैं। यदि ''राष्ट्रीय आय'' और ''आर्थिक कल्याण'' मापकों को विकसित अर्थव्यवस्था से सम्बद्ध किया जाये तथा 'प्रतिव्यक्ति आय और सामाजिक अभिसूचक' मापकों को अल्पविकसित अर्थव्यवस्था से सम्बद्ध किया जाये तो इसे उचित ही कहा जायेगा, क्योंकि अल्पविकसित देशों की समस्या कम आय, कम उपयोग की समस्या है। विकास की समस्या मुख्य–रूप से अल्पविकसित देशों के विकास की समस्या से सम्बन्धित हैं।

आर्थिक संवृद्धि के मापक के रूप में राष्ट्रीय आय एवं प्रतिव्यक्ति आय मापदण्ड मानव विकास और उसकी गुणवत्ता को नहीं मापती। 1970 के दशक से अर्थशास्त्रियों ने विकास प्रक्रिया की गुणवत्ता की ओर ध्यान देते हुये, जीवन प्रत्याशा, शिशु मृत्यु–दर, साक्षरता–दर जैसे सामाजिक अभिसूचकों पर ध्यान देना आरम्भ किया। इन आर्यसूचकों की विशेषता यह है कि वे लक्ष्यों से जुड़े हैं और वे लक्ष्य है मानव विकास।

आर्थिक विकास इन लक्ष्यों को प्राप्त करने का एक साधन है।

संयुक्त विकास कार्यक्रम ने 1990 में प्रकाशित अपनी पहली Human Development Report में मानव विकास सूचकांक (HDI) की संकल्पना प्रस्तुत की। यह सही है कि मानव विकास की संकल्पना इतनी व्यापक है कि उसे एक सूचकांक में पूरी तरह व्यक्त कर पाना संभव नहीं है। परन्तु इस प्रकार के सूचकांक से मानव विकास की महत्ता को स्पष्ट करना तथा विकास का एक व्यापक दृष्टिकोण प्राप्त करना संभव हो पाता है।

1:5 शब्दावली

1. **सकल राष्ट्रीय उत्पाद–** सकल राष्ट्रीय उत्पाद किसी राष्ट्र के निवासियों द्वारा एक वर्ष में उत्पादित सभी अन्तिम वस्तुओं एवं सेवाओं का मौद्रिक मूल्य है।
2. **सकल घरेलू उत्पाद–** सकल घरेलू उत्पाद एक वर्ष की समयावधि के भीतर किसी देश की सीमाओं के भीतर।
3. **प्रतिव्यक्ति आय–**किसी देश में रहने वाले व्यक्तियों की औसत आय होती है। जिसका अनुमान उस देश में रहने वाले सभी लोगों की आय के योग को देश की कुल जनसंख्या से विभाजित कर के लगाया जाता है।

1:6 बोध प्रश्न

1. क्या राष्ट्रीय आय आर्थिक विकास का संतोषजनक मापदण्ड है?
2. आर्थिक विकास की माप के अभिसूचकों को स्पष्ट कीजिए।
3. सकल घरेलू उत्पाद एवं सकल राष्ट्रीय उत्पाद को समझाइये।
4. आर्थिक विकास किस प्रकार मापा जाता है?

आर्थिक वृद्धि और

<u>उपयोगी पुस्तकें</u>

भारतीय अर्थव्यवस्था – वी0के0 पुरी, एस0के0 मिश्र (हिमालया पब्लिकेशन हाउस)

भारतीय अर्थव्यवस्था – दत्त एवं सुदरम्

The meaning of development – Dudley Seers

Economic development – Charles P. Kinder Berger and Bruce Herrick (New York 1977) P.1

An Uncertain Glory : India and its Contradiction (Jean Draze and Amartya Sen) N. Delhi 2016

Jacob Viner "Economics Development in Agarwal and Singh (eds) The Economics of Development (New York 1963)

Government of India, Planning Commission Report

Michall Todar Economics Development (Person Education)

Development Economy – Devraj Raj (Oxford pro)

विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन –डॉ0 योगेश कुमार सिंह

विकास का अर्थशास्त्र एवं नियोजन – आलोक गर्ग

विकास का अर्थशास्त्र एवं नियोजन – डॉ0 रामरतन शर्मा

समस्टि–अर्थशास्त्र – एम0 एफ0 झिंगन–वृंदा पब्लिकेशन

उच्चतर आर्थिक सिद्धांत–एच0एफ0 आहूजा

समस्टिमापी अर्थशास्त्र – Prof. S.N. Lal शिव पब्लिकेशन

खण्ड–01
इकाई–3
आर्थिक विकास अन्तराल

विकास का अंतर दुनिया भर में सबसे समृद्ध (अत्यधिक विकसित) और सबसे गरीब (अविकसित) देशों के बीच प्रगतिशील असमानता से संबंधित है। इस संदर्भ में, विकास को या तो आर्थिक विकास के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसमें काउंटी की संपत्ति में वृद्धि शामिल है, या मानव विकास, जो इसके निवासियों के लिए जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाने पर केंद्रित है। विभिन्न संकेतक विकास की प्रगति को समझने में सहायता कर सकते हैं। आर्थिक विकास का आकलन अक्सर प्रति व्यक्ति जीडीपी (सकल घरेलू उत्पाद) या प्रति व्यक्ति जीएनआई (सकल राष्ट्रीय आय) के माप से किया जाता है। जीडीपी और जीएनआई के बीच अंतर को समझना महत्वपूर्ण है। सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) एक निश्चित समय अवधि, अक्सर एक वर्ष के भीतर किसी देश की सीमाओं के भीतर उत्पादित सभी अंतिम उत्पादों और सेवाओं का कुल मौद्रिक मूल्य है। सकल राष्ट्रीय धन (जीएनआई) सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) से संबंधित है, जिसमें घरेलू स्तर पर उत्पादित उत्पादों और सेवाओं के कुल मूल्य के अलावा, किसी देश द्वारा अन्य देशों में निवेश से उत्पन्न धन को शामिल किया जाता है। प्रति व्यक्ति किसी माप की गणना को संदर्भित करता है, जैसे कि सकल घरेलू

उत्पाद या जीएनआई, देश की जनसंख्या द्वारा कुल मूल्य को विभाजित करके। यह एक अंतिम आंकड़ा प्रदान करता है जो प्रति व्यक्ति औसत राशि का प्रतिनिधित्व करता है। 1981 में, एक मानदंड के रूप में प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद का उपयोग करके एक कार्टोग्राफिक प्रतिनिधित्व तैयार किया गया था, जिसके तहत ब्रांट लाइन के रूप में ज्ञात एक काल्पनिक सीमांकन का उपयोग मानचित्र को 'समृद्ध उत्तर' और 'गरीब दक्षिण' के रूप में संदर्भित अलग-अलग क्षेत्रों में विभाजित करने के लिए किया गया था। यह देखा गया कि उत्तरी गोलार्ध के देशों में प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद अधिक था, जबकि दक्षिणी गोलार्ध में प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद कम था।

आर्थिक विकास का महत्व

आर्थिक विकास एक महत्वपूर्ण कारक है जो हमारी अर्थव्यवस्था के विस्तार को बढ़ावा देता है, अच्छी तरह से मुआवजे वाले रोजगार के अवसर पैदा करता है और समग्र जीवन स्तर को बढ़ाता है। ऑरलैंडो इकोनॉमिक पार्टनरशिप की बिजनेस डेवलपमेंट टीम ऑरलैंडो क्षेत्र के लिए रोजगार के अवसरों को आकर्षित करने और बनाए रखने का प्रयास करती है।

आर्थिक डेवलपर्स की गतिविधि, हालांकि अक्सर किसी का ध्यान नहीं जाता है, रोजगार के अवसरों को स्थापित करने और बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जो एक संपन्न अर्थव्यवस्था और समुदाय के लिए आवश्यक हैं।

- आर्थिक विकास से राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि होती हैं।
- राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय बढ़ती हैं।
- पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि होती हैं।
- इसमें निवेश बढ़ता हैं और विविध प्रकार के उघोगों की स्थापना होती हैं।
- इसमें पूँजी की गतिशीलता बढ़ती हैं।
- श्रम एवं पूँजी विनियोग के लिए चयन क्षेत्र का विस्तार होता हैं।
- कृषि पर निर्भरता कम होती हैं और विविध प्रकार की वस्तुएं और सेवाएं उपलब्ध होने लगती हैं।
- उपलब्ध प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों का उपयोग होता हैं।
- इसमें सामाजिक सेवाओं का विस्तार होता हैं।
- जिसमें प्राकृतिक आपदाओं पर एक सीमा तक नियंत्रण संभव होता हैं।
- आर्थिक एवं सामाजिक विषमताएँ कम होती हैं और सामाजिक कल्याण में वृद्धि होती हैं।

आर्थिक विकास की विशेषताएँ
आर्थिक विकास की महत्वपूर्ण विशेषताएँ इस प्रकार हैं।

1. आर्थिक विकास एक सतत प्रक्रिया है।
प्रत्येक विकासशील अर्थव्यवस्था आर्थिक विकास के लिए आर्थिक योजनाओं और कार्यक्रमों को लागू करने का प्रयास करती है। यह एक बार का काम नहीं है बल्कि लंबी अवधि के लिए एक सतत प्रक्रिया है।

क्योंकि इससे वित्तीय और मानव संसाधन का बेहतर उपयोग, वस्तुओं और सेवाओं की मांग और आपूर्ति में वृद्धि, जीवन की बेहतर गुणवत्ता और राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।

2. आर्थिक विकास से राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।
आर्थिक विकास की एक महत्वपूर्ण विशेषता है कि यह प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाने में मदद करता है। और यह तय है कि जब किसी व्यक्ति की आय में वृद्धि होगी तो देश की राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि होगी।

3. आर्थिक विकास से जीवन स्तर में सुधार होता है।
प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि से व्यक्ति की क्रय शक्ति में वृद्धि होगी। आर्थिक विकास की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उत्पादों और सेवाओं की बेहतर खपत जीवन की बेहतर गुणवत्ता, बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं, व्यापार उद्योग में विस्तार और व्यक्तियों के बेहतर जीवन स्तर में सुधार होगा ।

4. आर्थिक विकास राष्ट्रीय संसाधन के उपयोग में मदद करता है।
आर्थिक विकास की प्रक्रिया में राष्ट्रीय संसाधन संपत्ति का पूरी तरह से दोहन किया जाता है और विश्व अर्थव्यवस्थाओं के साथ तालमेल बनाया जाता है।

यह मानव, प्राकृतिक और भौतिक संसाधनों का पूरी क्षमता से उपयोग करने में मदद करता है और अपने लोगों और समुदायों को शिक्षा, श्रम सहायता, व्यवसाय विस्तार और अधिक नौकरियों जैसे प्रोत्साहन और अवसर प्रदान करता है ।

5. आर्थिक विकास से आधारिक संरचना में परिवर्तन होते हैं।
आर्थिक विकास की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इस प्रक्रिया से संरचनात्मक परिवर्तन और कृषि से लेकर, निर्माण क्षेत्र से लेकर सेवा क्षेत्र तक के अधिक अवसर प्राप्त करने में मदद मिलेगी।

एक समय था जब एक विकासशील देश का प्रमुख व्यवसाय कृषि था, लेकिन नई नौकरियों

और व्यापार में अवसरों के साथ, इसे सेवा क्षेत्र द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है जो कुल

राष्ट्रीय आय के आधे से अधिक का योगदान देता है।

6. आर्थिक विकास सामाजिक-आर्थिक समानता की ओर ले जाता है।

अर्थव्यवस्था में विकास के परिणामस्वरूप आय, धन, स्थिति, जीवन की गुणवत्ता और लोगों के जीवन स्तर में सामाजिक और आर्थिक समानता दोनों में वृद्धि होती है।

आर्थिक विकास के स्रोत

आर्थिक विकास के स्रोतों की गणना निम्नानुसार की जा सकती है।

- प्राकृतिक कारक जिसमें कच्चे माल और भूमि की गुणवत्ता शामिल है।
- मानव कारक जिसमें मानव संसाधन की गुणवत्ता शामिल है।
- भौतिक कारक जिसमें भौतिक पूंजी जैसे कारखाने, मॉल, मशीनरी, कार्यालय आदि शामिल हैं।
- बैंकिंग प्रणाली, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा आदि जैसे संस्थागत कारक।

आर्थिक विकास में बाधाएं

आर्थिक विकास में विभिन्न बाधाएं हैं।

1. बाजार अपूर्णता

अर्थशास्त्री पाते हैं कि बाजार में पर्याप्त श्रम समर्थन नहीं होता, विस्तार की कोई स्पष्ट योजना नहीं होती है और पर्याप्त नौकरियां नहीं होते हैं जिसके परिणामस्वरूप अक्सर

बाजार की अपूर्णता होती है और यह आर्थिक विकास में सबसे महत्वपूर्ण बाधाओं में से एक है।

2. संसाधन का कम उपयोग

कुछ अर्थव्यवस्था अपने राष्ट्रीय संसाधनों का पूरी क्षमता से उपयोग नहीं कर पाती हैं और यह आर्थिक विकास के लिए एक महत्वपूर्ण बाधा बन जाती है

3. मांग की कमी

कम आय, छोटी क्रय शक्ति और निम्न जीवन स्तर आर्थिक वृद्धि और विकास में बाधक होते हैं।

आर्थिक सुधारों अथवा नई आर्थिक नीति के उद्देश्य

आर्थिक सुधारों अथवा नई आर्थिक नीति के उद्देश्य निम्नलिखित हैं।

- उत्पादन के स्तर में सुधार लाना।
- आर्थिक विकास की दर को बढ़ाना।
- आर्थिक विकास के लिए विश्वव्यापी संसाधनों का प्रयोग करना।
- वित्तीय क्षेत्र में सुधार लाना।
- तकनीक का अधिक से अधिक उपयोग करना।

आर्थिक विकास ने गरीबी को कम करने में मदद की है, जिससे यह साफ है कि आर्थिक विकास और गरीबी में कमी के बीच एक मजबूत संबंध है।

आर्थिक विकास लोगों को शिक्षा से बेहतर आर्थिक लाभ प्राप्त करने की उम्मीद में लड़कियों के साथ साथ अपने बच्चों को स्कूलों में भेजने के लिए प्रोत्साहित करता है। यह अवसरों को भी बढ़ाता है और मानव विकास में निवेश करने के लिए आवश्यक संसाधन प्रदान करता है।

निष्कर्ष

विभिन्न देशों में आर्थिक प्रगति में महत्वपूर्ण भिन्नताओं के लिए किसी एक स्रोत को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। इसके अलावा, किसी निश्चित तत्व का सापेक्ष प्रभाव पूरे समय स्थिर रहने की संभावना नहीं है। भौगोलिक चर ने विभिन्न आबादी की आर्थिक क्षमता को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया है। हालाँकि, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि आर्थिक प्रगति भी भूगोल के प्रभाव को प्रभावित करती है। समकालीन परिवहन और संचार बुनियादी ढांचे के विकास ने भौगोलिक चर के प्रभाव को कम कर दिया है, जो एक बार आर्थिक प्रगति की सुविधा प्रदान करता था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

खण्ड–1
इकाई–4

आर्थिक संवृध्दि एवं सामाजिक न्याय

सामाजिक न्याय, आर्थिक संवृध्दि के साथ मिलकर, आमजन के लिए उनके नागरिक और राजनीतिक अधिकारों को प्राप्त करने वाले मार्ग के रूप में कार्य करता है। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार सामाजिक सुरक्षा, रोजगार व जीवन की संतोषजनक गुणवत्ता की आवश्यकता से प्राप्त होते हैं। सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए आर्थिक सफलता की उपस्थिति आवश्यक है, क्योंकि वे आपस में जुड़े हुए हैं। हालाँकि, अकेले आर्थिक संवृध्दि का कोई महत्व नहीं है अगर उसके साथ सामाजिक न्याय न हो। सामूहिक रूप से, हम एक संरचित समाज में रहते हैं जहां व्यक्ति सम्मेलनों, परंपराओं, योजनाओं, योजनाओं, विभिन्न अंतर्संबंधों, नियमों-विनियमों, कानूनी संरचना व संस्थानों के आदान-प्रदान में भाग लेते हैं। साझा करने से सामाजिक बंधनों को बढ़ावा मिलता है, जिससे व्यक्ति अराजकता व भ्रम में शामिल होने से हतोत्साहित होते हैं। वे स्वयत्ता की पहुंच बढ़ाने हेतु स्वतंत्र सामाजिक संरचना को बढ़ावा देते हैं और समाज संस्थानों से सुविधाप्रदाता के रूप में कार्य करने का

आग्रह करते हैं। ऐसे संरचित समाज की स्थापना का उद्देश्य इसके घटकों की भलाई, शारीरिक स्वास्थ्य और संतुष्टि की गारंटी देना है। ये व्यक्ति उन आवश्यक गुणों को प्राप्त कर और अपने पास रखना चाहते हैं जो उन्हें अक्सर भौतिक संपदा के मामले में समृद्धि प्राप्त करने में सक्षम बनाएंगे। संवृध्दि की यह स्थिति कैसी प्रतीत होती है? हालाँकि इस घटना की सीमा, प्रकृति, क्षेत्रों और समाजों के बीच काफी भिन्न हो सकती है, लेकिन इसके महत्व को समझने में जो चीज सुसंगत रहती है वह विशिष्ट संसाधनों की उपलब्धता है। जिन्हें मूल्यवान संपत्तियों में बदला जा सकता है, जिससे भौतिक समृद्धि का विस्तार हो सकता है। इसमें व्यक्तियों के लिए अपने वांछित लक्ष्यों को प्राप्त करने के अवसर, परिस्थितियाँ जो लोगों को इन लक्ष्यों को बनाए रखने व आगे बढ़ाने में सक्षम बनाती हैं। बाह्य व आंतरिक चुनौतियों से सुरक्षा, जरूरत पड़ने पर समर्थन प्राप्त करने के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ और विशेष अधिकारों तक पहुंच भी शामिल हैं।

सामाजिक न्याय और आर्थिक प्रगति दोनों ही समकालीन संस्कृतियों में आर्थिक नीति के सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत उद्देश्य हैं। इस प्रकार, देशों के बीच कोई भेदभाव नहीं है, भले ही उनकी संपत्ति, आर्थिक प्रणाली या योजना के प्रति विचारधारा कुछ भी हो। निःसंदेह, व्यक्तिगत और राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर बढ़ी हुई आर्थिक समृद्धि की आकांक्षा, दूसरों के पास पहले से मौजूद चीज़ों को हासिल करने की आवश्यकता के साथ गहराई से जुड़ी हुई है। इसके

साथ ही, पेशेवर प्रकृति के अर्थशास्त्री संघर्ष की अवधारणा और इन मूल उद्देश्यों के बीच चयन करने की आवश्यकता पर विचार करते हैं। क्या इस स्थिति में वास्तव में निर्णय लेने का कोई मामला है? क्या हम सामाजिक न्याय की धारणा के लिए एक स्पष्ट और निश्चित परिभाषा स्थापित कर सकते हैं जो हमें संघर्ष और निर्णय लेने पर चर्चा करने की अनुमति देती है? क्या उन सभी स्थानों को, जहां दोनों उद्देश्य प्रतिच्छेद करते हैं, अनसुलझे मामलों के रूप में देखा जाना चाहिए जिन्हें हल करने की आवश्यकता है, या क्या ऐसे कुछ क्षेत्र हैं जिन्हें सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत मानवीय मूल्यों के आधार पर हल किए गए के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए? जब कोई वास्तविक संघर्ष या निर्णय शुरू से ही हल नहीं किया जा सकता है तो क्या आर्थिक उन्नति के साथ सामाजिक न्याय का सामंजस्य बिठाना असंभव है? आख़िरकार, हम भारत में सामाजिक समानता के साथ आर्थिक उन्नति के सामंजस्य की समस्या को प्रभावी ढंग से संबोधित करने में कितने सफल रहे हैं?

जब सामाजिक न्याय आर्थिक संवृध्दि के साथ संरेखित होता है, तो व्यक्ति अपने नागरिक और राजनीतिक अधिकारों को पहचानने लगते हैं, जो जीवन, स्वतंत्रता और खुशी की खोज के सिद्धांतों से उत्पन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त, वे अपने आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकारों के प्रति जागरूक हो जाते हैं, जो सामाजिक सुरक्षा, रोजगार और सभ्य जीवन

स्तर की आवश्यकता से उत्पन्न होते हैं। इसके अलावा, वे आर्थिक व सामाजिक विकास के अपने अधिकार को स्वीकार करते हैं, जो आत्मनिर्णय की इच्छा से उत्पन्न होता है। जब सामाजिक न्याय आर्थिक संवृध्दि में प्रतिबिंबित होता है, तो यह शांति की लंबी अवधि की ओर ले जाता है। यह जीवन स्तर में अंतर को कम करने, निष्पक्ष और परिणाम-उन्मुख नियमों को लागू करने, आर्थिक संवृध्दि की गुणवत्ता में सुधार करने वाले प्रतिस्पर्धी बाजारों को बढ़ावा देने और अनावश्यक प्रतिबंधों से बचने के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। इसमें कम व सुसंगत कर दरों को बनाए रखकर सतत और समावेशी विकास हासिल किया जाता है। इसके अतिरिक्त, व्यक्ति अपनी पसंद और कार्यों का सम्मान करने को महत्व देते हैं, और वे सामाजिक न्याय और आर्थिक संवृध्दि के मध्य परस्पर निर्भरता को समझते हैं।

आर्थिक संवृध्दि

आर्थिक संवृध्दि से तात्पर्य ऐसी अर्थव्यवस्था से है जो विनिर्माण प्रक्रिया में रचनात्मकता और नवीनता के उपयोग के माध्यम से आगे बढ़ती है। आर्थिक विकास को बढ़ाने और जीवन स्तर में सुधार करने के लिए, उद्योगों को बढ़ावा देना, उच्च गुणवत्ता वाले रोजगार के अवसर प्रदान करना, अनुकूल निवेश स्थितियों को बढ़ावा देना और नवाचार, प्रतिस्पर्धा व उद्यमशीलता गतिविधियों को प्रोत्साहित करना महत्वपूर्ण है। वैश्वीकरण के संदर्भ में अर्थशास्त्र का उद्देश्य सामाजिक न्याय प्राप्त करना है, जिसमें किसी भी प्रकार के भेदभाव के

बिना समाज के सभी सदस्यों के लिए समानता, एकता एवं मानवाधिकारों की स्थापना शामिल है। व्यक्ति के महत्व व सम्मान पर विशेष बल देना है। यह प्रत्येक देश के लिए आवश्यक लक्ष्यों के दायरे में है। इसके साथ ही, सामाजिक न्याय व आर्थिक सफलता की खोज एक कल्याणकारी राज्य की धारणा को समाहित करती है। समकालीन दुनिया में, एक प्रतिस्पर्धी संरचना मौजूद है जो अर्थव्यवस्था के भीतर विकसित और अविकसित श्रेणियों के बीच अंतर करती है। किसी राष्ट्र की सफलता अधिकतर उसकी सामाजिक निष्पक्षता के प्रति प्रतिबद्धता के बजाय उसकी आर्थिक उपलब्धियों से आवलोकित की जाती है। इस परिदृश्य में, आर्थिक सफलता एवं सामाजिक निष्पक्षता को संतुलित करने के मुद्दे की पहचान की जा सकती है। इसलिए, यह पहचानना आवश्यक है कि सामाजिक न्याय के अस्तित्व के लिए आर्थिक सफलता एक शर्त है। यह एक मूलभूत कारक है जिसे अवश्य समझना चाहिए।

आर्थिक संवृद्धि को प्रभावित करने वाले कारक इस प्रकार हैं:

- बुनियादी ढांचे के विकास में सड़क और रेलमार्गों जैसी आवश्यक आर्थिक संपत्तियों का निर्माण शामिल है, जो दक्षता को बढ़ाने और पैमाने की अर्थव्यवस्थाओं में परिणाम देता है।
- अपशिष्ट को कम करके और उत्पादन को बढ़ाकर आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम दोहन महत्वपूर्ण है।

- अनुसंधान और विकास क्षेत्र में संसाधनों को आवंटित करने से विकास पर लाभकारी प्रभाव पड़ता है, क्योंकि इससे श्रमिक उत्पादकता बढ़ती और संबंधित लागत कम हो जाती है।
- किसी अर्थव्यवस्था के विकास के लिए कार्यबल महत्वपूर्ण है। जैसे-जैसे कार्यबल की योग्यताएँ और प्रतिभाएँ बढ़ती हैं, आर्थिक विकास भी बढ़ता है।

आर्थिक समृद्धि का उद्देश्य

आर्थिक समृद्धि को संकीर्ण रूप से समझा जाता है। समृद्धि को अक्सर धन के समान माना जाता है। हालाँकि सफलता प्राप्त करने के लिए धन का होना निर्विवाद रूप से एक महत्वपूर्ण घटक है, लेकिन यह इसका एक पहलू है। यदि एकमात्र ध्यान अधिकतम मुनाफा कमाने व जीडीपी बढ़ाने पर है, तो यह अनिवार्य रूप से अर्थहीन है, क्योंकि प्रत्येक आपराधिक कृत्य, प्रदूषण और इसका प्रबंधन, स्वास्थ्य मुद्दे जीडीपी में योगदान करते हैं, लेकिन व्यक्तियों व समाजिक हित पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं। अंततः, यह व्यक्ति ही हैं जो आर्थिक समृद्धि के नकारात्मक परिणाम भुगतते हैं। इसलिए, यदि कोई व्यवस्था पूरी तरह से पूंजीवादी है, तो वह समृद्धि की ओर नहीं ले जाती है। हमारे समाज की नकारात्मक, परिस्थितियों में सुधार और उपचारों की पहचान के माध्यम से, लोगों को प्रभावी ढंग से समर्थन व सहायता करने, उनके जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए आर्थिक समृद्धि महत्वपूर्ण है। धन की

ऐसी स्थिति होने पर ही सामाजिक न्याय की गारंटी होती है। व्यक्तियों की सहायता करने की क्षमता के अभाव में और उनके जीवन को बेहतर बनाने और उनके संज्ञानात्मक विकास को बढ़ावा देने की क्षमता व प्रतिबद्धता के अभाव में, आर्थिक संपदा महत्व से रहित हो जाती है। यदि आर्थिक संपदा कुछ व्यक्तियों के हाथों में केंद्रित हो जाती है, यदि आर्थिक सफलता कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित हो जाती है, तो इसे सकारात्मक समृद्धि नहीं माना जा सकता है। इसी तरह, यदि आर्थिक समृद्धि का आनंद केवल कुछ ही घरों, परिवारों या सामाजिक समूहों को मिलता है, तो इसे सामाजिक निष्पक्षता के रूप में नहीं देखा जा सकता है। आर्थिक सफलता से सम्बन्धित चुनौती उन लोगों द्वारा संभावित शोषण और दुरुपयोग में निहित हैं जिनके पास शक्ति है और सरकारी हस्तक्षेप करने की क्षमता है। इसलिए, यदि आर्थिक सफलता मौजूद है लेकिन सामाजिक न्याय से रहित है, तो इसका कोई मूल्य नहीं होगा, जिससे यह महत्व से रहित हो जाएगी।

सामाजिक न्याय

सामाजिक न्याय न केवल एक अभिव्यक्ति है, बल्कि एक गतिशील शक्ति है। यदि सामाजिक न्याय को एक शब्द के रूप में अपनाया जाता है, तो यह एक शक्तिशाली आंदोलन में विकसित होता है। सामाजिक न्याय से संबंधित प्रमुख मुद्दे गरीबी, बेरोजगारी, लिंग भेदभाव

और संसाधनों का अपर्याप्त आवंटन हैं। इन मुद्दों का समाधान आर्थिक समृद्धि पर निर्भर है, क्योंकि यह नए उद्योगों की स्थापना, निवेश व रोजगार सृजन को प्राथमिकता देता है। यह, बदले में, किसी व्यक्ति की पर्याप्त संसाधनों तक पहुंच को बढ़ाता है और उन्हें अपनी दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करते हुए बचत जमा करने में सक्षम बनाता है। जो व्यक्ति के भविष्य में स्थायी संतुष्टि एवं मजबूती प्रदान करता है। इसी तरह, आर्थिक विकास का दूसरा पहलू समृद्धि और जीवन की गुणवत्ता से जटिल रूप से जुड़ा हुआ है। ऐसी परिस्थितियों में, कोई व्यक्ति शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और अन्य आवश्यकताओं में निवेश करने के लिए धन का उपयोग करके अपनी मानव पूंजी को बढ़ा सकता है। मानव पूंजी का उपयोग करके, व्यक्ति बदलती परिस्थितियों के अनुरूप ढल सकते हैं और नवीन अवधारणाओं को एकीकृत कर सकते हैं। वर्तमान में, कई देश कौशल विकास, नौकरी केंद्र, कम आय वाले व्यवसायों की स्थापना, कुटीर उद्योग और पशुपालन जैसी पहलों के माध्यम से सामाजिक मुद्दों को संबोधित करके आर्थिक पक्ष को प्राथमिकता दे रहे हैं। वर्तमान में, मानव विकास सूचकांक, गरीबी और व्यापार करने में आसानी इत्यादि का मूल्यांकन आर्थिक संरनचा के आधार पर किया जाता है। इन कारकों के आधार पर सामाजिक न्याय और समानता प्रदर्शित की जाती है। इस परिदृश्य में, केवल आर्थिक सफलता ही सामाजिक न्याय प्राप्त करने के उपाय के रूप

में कार्य कर सकती है। हालाँकि, यह स्वीकार करना महत्वपूर्ण है कि इसका उलटा भी सच है कि सामाजिक न्याय के बिना, आर्थिक समृद्धि का कोई महत्व नहीं है। सामाजिक न्याय किसी राष्ट्र की उन्नति के माप के रूप में कार्य करता है, क्योंकि यह सामाजिक स्तर पर राष्ट्र की स्थिति को दर्शाता है। गरीबी, भेदभाव, बेरोजगारी, शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल की कमी और पर्यावरण प्रदूषण जैसे कारक राष्ट्र के लिए प्रतिकूल वातावरण में योगदान करते हैं। शिक्षा व स्वास्थ्य सामाजिक न्याय प्राप्त करने के मूलभूत तत्व हैं। शिक्षा व स्वास्थ्य अर्थव्यवस्था के मूलभूत स्तंभ हैं। शिक्षा विशिष्ट नौकरी के अवसरों और एक स्थिर कार्य वातावरण के विकास को बढ़ावा देती है। इष्टतम स्वास्थ्य एक उत्पादक कार्य संस्कृति, बेहतर जीवनशैली एवं एक अच्छे माहौल को बढ़ावा देता है। वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप सामाजिक न्याय सुधार की धारणा बढ़ी है। गरीबी और बेरोजगारी जैसे मुद्दे आर्थिक विकास पर सीधा प्रभाव डालते हैं।

एक न्यायसंगत, निष्पक्ष और सामंजस्यपूर्ण दुनिया में प्रत्येक व्यक्ति एक बेहतर तरीके से रहने की आकांक्षा व प्रयास करता है। इस आकांक्षा को साकार करना केवल उसी समाज में संभव है जो सामाजिक निष्पक्षता की धारणा पर आधारित है। इसे प्राप्त करने के लिए संरचनात्मक और वैचारिक दोनों स्तरों पर बुनियादी परिवर्तन आवश्यक है। हमारी आर्थिक, सामाजिक, नैतिक, शैक्षिक और राजनीतिक संस्थागत संरचनाओं को सामाजिक न्याय के

सिद्धांतों पर स्थापित करना प्रगति का प्रतिनिधित्व करता है। फिर भी, इसका साकार होना अप्राप्य लगता है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि सामाजिक न्याय सामाजिक प्रगति के लिए एक शक्तिशाली साधन है, नीतियों का उचित व न्यायसंगत कार्यान्वयन सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है। उदारवाद व्यक्तिगत स्वतंत्रता को अत्यधिक महत्व देता है, यह मानते हुए कि ऐसी स्वतंत्रता का तब तक कोई महत्व नहीं है जब तक कि उसके साथ सुरक्षा और समानता की भावना न हो। एक समावेशी सामाजिक नीति को सबसे अधिक हाशिए पर रहने वाले व्यक्तियों के लिए संभावनाएं प्रदान करनी चाहिए और एक मजबूत सामाजिक सुरक्षा जाल स्थापित करना चाहिए जो अप्रत्याशित संकटों का प्रबंधन करने की उनकी क्षमता को सुविधाजनक बनाए।

सामाजिक न्याय की अवधारणा

सामाजिक न्याय की अवधारणा मूलतः प्रत्येक व्यक्ति को समान मानने के सिद्धांत पर आधारित है। इसके आधार पर, यह जरूरी है कि किसी भी व्यक्ति को सामाजिक, धार्मिक या सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों के कारण भेदभाव का सामना नहीं करना पड़े। सामाजिक न्याय में एक ऐसे समुदाय या संगठन की स्थापना की अवधारणा शामिल है जो समानता और एकजुटता के आदर्शों पर आधारित है, जो मानवाधिकारों को स्वीकार करता है और उनकी सराहना करता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के अंतर्निहित मूल्य को स्वीकार करता है। "सामाजिक न्याय" सभी के लिए एक निष्पक्ष एवं न्यायसंगत आर्थिक संरचना को बहाल करने के उद्देश्य से,

किसी प्रणाली की आने व जाने वाली प्रक्रियाओं में किसी भी असंतुलन या विकृतियों को पहचानने व सुधारने की धारणा को संदर्भित करता है। इस अवधारणा का उल्लंघन तब होता है जब अनुचित बाधाएं दूसरों को भाग लेने से रोकती हैं, जब एकाधिकार मौजूद होता है, या जब व्यक्ति अपनी संपत्ति के माध्यम से दूसरों का शोषण करते हैं। आर्थिक सद्भाव तब प्राप्त होता है जब सहभागी और वितरणात्मक न्याय दोनों को किसी प्रणाली या संगठन के अंदर प्रत्येक व्यक्ति के लिए पूरी तरह से लागू किया जाता है। सामाजिक न्याय एकाधिकार को विनियमित करने, सामाजिक संगठनों के भीतर जवाबदेही के तंत्र स्थापित करने और भागीदारी के स्तर के साथ संसाधनों के आवंटन को संरेखित करने के लिए सिद्धांत प्रदान करता है। आर्थिक न्याय के पहले दो सिद्धांत व्यापक अर्थों में न्याय की सतत मानवीय विकल्पों को समावेशित करता है।

सामाजिक न्याय एक ढांचा है जो समाज के संस्थानों के भीतर अधिकारों और जिम्मेदारियों को आवंटित करता है, यह सुनिश्चित करता है कि व्यक्ति मौलिक लाभ तक पहुंचने और सहयोग के सामूहिक दायित्वों में हिस्सा लेने में सक्षम हैं। प्रासंगिक प्रतिष्ठानों में आम तौर पर कराधान, सामाजिक बीमा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सार्वजनिक शिक्षा, सार्वजनिक सेवाएं, श्रम कानून, बाजार विनियमन, अवसर मुद्रीकरण, निष्पक्ष प्रशासन, संस्थागत लचीलापन और आर्थिक विस्तार शामिल हैं। इसके अतिरिक्त, उनमें करियर परिवर्तन के विकल्प और

विकसित हो रही गिग अर्थव्यवस्था के अनुकूल ढलने की बढ़ी हुई क्षमता शामिल है, साथ ही वे समान धन वितरण और समान अवसरों को प्रभावी बनाने के दृढ़ संकल्प और क्षमता का प्रदर्शन भी करते हैं। सामाजिक न्याय में एक व्यक्ति की एक स्थापित व्यवस्था को बदलने, समाज में व्यवस्था बहाल करने और किसी भी बाधा का सामना किए बिना राष्ट्र के कल्पित भविष्य को आकार देने में अन्य नीति निर्माताओं के साथ सक्रिय रूप से भाग लेने की क्षमता शामिल है।

सामाजिक न्याय का तात्पर्य समाज में स्वयं के लिए एक विशिष्ट स्थान स्थापित करने की क्षमता से है, जो किसी की योग्यता, कौशल और दृढ़ संकल्प से निर्धारित होता है। सामाजिक न्याय में समाज में सभी को केवल मौद्रिक संसाधन प्रदान करना शामिल नहीं है, बल्कि इन वित्तीय साधनों का प्रभावी ढंग से उपयोग करने के लिए उन्हें सशक्त बनाने पर ध्यान केंद्रित किया गया है। इसके अलावा, समाज के सभी सदस्यों के लिए समान अवसर प्रदान करना महत्वपूर्ण है, जिससे वे स्वयं की एक विशिष्ट भावना स्थापित करने के लिए अपनी प्रतिभा और मानव पूंजी का प्रभावी ढंग से उपयोग कर सकें। सामाजिक न्याय की व्यापक अवधारणा के अंतर्गत आर्थिक न्याय को शामिल किया गया है। सामाजिक न्याय वह नैतिक सिद्धांत है जो हमें संरचित मानवीय संबंधों को स्थापित करने में निर्देशित करता है जिन्हें हम संस्थाएं कहते हैं। सामाजिक संस्थाएँ, जब उचित रूप से संरचित होती हैं, तो हमें

व्यक्तियों के लिए लाभकारी संसाधनों और दूसरों के साथ हमारी बातचीत तक पहुँच प्रदान करती हैं। सामाजिक न्याय में व्यक्तिगत और सामाजिक प्रगति के साधन के रूप में हमारी संस्थाओं को बनाने और लगातार बढ़ाने के लिए दूसरों के साथ सहयोग करने का व्यक्तिगत दायित्व भी शामिल है।

सतत प्रगति लक्ष्यों की धारणा के अन्तर्गत वर्तमान में सामाजिक न्याय, पर्यावरण संरक्षण, राजनीतिक सुरक्षा और आर्थिक प्रगति शामिल है। आने वाले दशकों में विकास लक्ष्यों की प्राप्ति निस्संदेह वैश्विक स्तर पर सतत विकास, आर्थिक प्रगति और सामाजिक समानता को साकार करेगी। वैश्विक स्तर पर 'डिजिटल अर्थव्यवस्था में सामाजिक न्याय के लिए एक आह्वान' था, जो सामाजिक और डिजिटल सशक्तिकरण दोनों के महत्व पर प्रकाश डालता है। इसी प्रकार, कॉर्पोरेट निकायों, निजी निकायों, गैर-लाभकारी संगठनों और स्वयं सहायता समूहों का कर्तव्य है कि वे अपनी सामाजिक सेवाओं की सीमा को व्यापक बनाएं। उन्हें उच्च गुणवत्ता वाली सेवा प्रदान करने और हाशिये पर मौजूद समूहों की क्षमताओं को बढ़ाने को प्राथमिकता देनी चाहिए। महात्मा गांधी का रामराज्य दर्शन भी इन्हीं विषयों पर जोर देता है। अत: नागरिक का दायित्व भी रामराज्य के सिद्धांत पर आधारित होना चाहिए। इसलिए, सामाजिक न्याय और आर्थिक सफलता दोनों का समावेश विकास के लिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि एक की उपेक्षा दूसरे पर प्रभाव डाल सकती है। इसलिए, व्यापक

विकास के लिए प्रयास करना महत्वपूर्ण है। सामाजिक न्याय और आर्थिक संवध्दि दोनों प्राप्त करने के लिए इस व्यापक प्रगति के बीच, परिवार, समाज, देश और नागरिक समुदाय की जिम्मेदारियों को स्थापित करना महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष

किसी समुदाय के समग्र कल्याण के लिए आर्थिक संवृध्दि और सामाजिक न्याय के मध्य परस्पर निर्भरता महत्वपूर्ण है। आर्थिक संवृध्दि निष्पक्ष कानूनों को लागू करने के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधन प्रदान करके सामाजिक न्याय की नींव स्थापित करती है, जबकि सामाजिक न्याय एक सक्षम और एकजुट कार्यबल तैयार करके दीर्घकालिक आर्थिक संवृध्दि को बढ़ावा देता है। आर्थिक संवृध्दि और सामाजिक न्याय दोनों समान रूप से महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि आर्थिक संवृध्दि के बीच सामाजिक न्याय की अनुपस्थिति के परिणामस्वरूप असमानता और अस्थिरता हो सकती है, जबकि आर्थिक समृद्धि के बिना सामाजिक न्याय की प्राप्ति एक अप्राप्य लक्ष्य रह सकती है। एक समृद्ध एवं निष्पक्ष समाज का निर्माण करना। आर्थिक संवृध्दि और सामाजिक निष्पक्षता दोनों के लिए एक साथ प्रयास करना, उनकी परस्पर निर्भरता को स्वीकार करना महत्वपूर्ण है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- https://www.cesj.org/learn/definitions/defining-economic-justice-and-social-justice/
- Bertelsmann Stiftung. (n.d.). Social justice index. [Online; accessed 1-March-2016]. Retrieved 2016, from http://www.sgi-network.org/sgi-studies/
- Galor, O. et al. (2009a). Inequality and economic development: an overview. Inequality and Economic Development: The Modern Perspective. Elgar Publishing.
- Miller, David. 1999. Principles of Social Justice. Cambridge, Ma: Harvard University Press.
- Young, Iris Marion. Justice and the Politics of Difference. Princeton University Press
- Nussbaum, Martha. 1992. "Human Functioning and Social Justice. In Defense of Aristotelian Essentialism". Political Theory 20(2), 202-246.
- डॉ. राम आउजा, भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रावत पब्लिकेशन, जयपुर दिल्ली 1995

- चन्द्रा बृजेश, समाजशास्त्र वं सामाजिक समस्याएँ, एस.आर.एस.पब्लिकेशन, आगरा 2004
- डॉ. प्रकाश इन्दालिया, डॉ. महेन्द्र सिंह, सामाजिक न्याय की अवधारणा, इन्टरनेशनल जर्नल फार इनोवेटिव रिसर्च इन मल्टीडीशिपनरी फील्ड, वाल्यूम2 ईशू6, जून 2016
- https://www.iilsindia.com/blogs/economics-basis-social-justice/
- https://www.iasstudyexam.com/2021/04/iasmainsessay2020socialjustice.html
- Liu Junqiang. Economic Growth, Vol. 6 (2004) No 53, p.25-26
- Hu Jianguo. Economic Growth, Vol. 29 (2008) No 27, p.21-23
- पटेल, आई.जी. (1986)। सामाजिक न्याय और आर्थिक विकास. इन: आर्थिक नीति और आर्थिक विकास में निबंध। पालग्रेव मैकमिलन, लंदन। https://doi.org/10.1007/978-1-349-18358-6_9

खण्ड–1
इकाई–4
विकास के बाँधक

विकासशील देशों को अक्सर अपनी अधिकांश स्थिर अर्थव्यवस्थाओं को पुनर्जीवित करने और अपनी बढ़ती आबादी के लिए जीविका, शिक्षा और आवास प्रदान करने के जटिल कार्यों को संबोधित करने में महत्वपूर्ण बाधाओं का सामना करना पड़ता है। कम विकसित देशों को कई और जटिल चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, कुछ देशों को विशेष रूप से कठिन बाधाओं का सामना करना पड़ता है जिन्हें दूर करने के लिए नवीन दृष्टिकोण और लगातार प्रयासों की आवश्यकता होती है। हालाँकि, इन सभी देशों में चुनौतियाँ हैं जो ज्यादातर अप्रचलित मूल्यों, दृष्टिकोण, विचार पैटर्न और समय और प्रयास के महत्व के लिए मान्यता की कमी से उत्पन्न होती हैं। इसके अतिरिक्त, कई व्यक्तियों को तेजी से जनसंख्या विस्तार, अक्सर निरक्षरता की बढ़ी हुई दर, जातीयता और धर्म के आधार पर संघर्ष, अप्रचलित पारंपरिक शैक्षिक प्रणालियों और सरकारी भ्रष्टाचार के उदाहरणों से उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। फिर भी, प्राथमिक विकट मुद्दों को निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

- औपनिवेशिक विरासत
- सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत
- आर्थिक संरचना
- सामाजिक-राजनीतिक संरचना और संगठन
- समय की अवधारणा
- **औपनिवेशिक विरासत**

औपनिवेशिक विरासत के अन्तर्गत दुनिया के अधिकांश देश सदियों तक उपनिवेश रहे और राजनीतिक व आर्थिक शोषण के अधीन रहे। पारंपरिक शिक्षाविद्, धार्मिक नेता और राष्ट्रवादी आंदोलन पश्चिमी विचारों, प्रगतिशील आदर्शों और सोचने के नए तरीकों से लड़ने के लिए घृणित अतीत का इस्तेमाल करते हैं एवं वैध राजनीतिक सुधार पहलों में बाधा डालते हैं। पारंपरिक नेताओं का कहना है कि पश्चिम अपना राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक प्रभुत्व फिर से हासिल करना चाहता है, न कि गरीब देशों को फलने-फूलने में मदद करना चाहता है। ऐसे तर्कों के कारण, लोगों में स्थापित सांस्कृतिक मानदंडों का पालन करने, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन को अस्वीकार करने और नई आर्थिक अवधारणाओं और राजनीतिक संस्थानों पर अविश्वास करने की अधिक संभावना है। उपनिवेशवाद ने उपनिवेशवादियों और उपनिवेशित जनता के बीच बफर करने के लिए एक आर्थिक अभिजात वर्ग का भी निर्माण किया, जिससे पूर्व को उनके साथ जुड़े बिना अपने

भाग्य का शोषण और नियंत्रण करने की अनुमति मिली। उपनिवेशवाद और पिछले उपनिवेशवादियों के कॉर्पोरेट हितों से उनके संबंधों के परिणामस्वरूप, इस अभिजात वर्ग के पास बहुत अधिक शक्ति और धन है। अपनी सामाजिक पृष्ठभूमि, शिक्षा और संबंधों के कारण, वे अर्थव्यवस्था पर हावी हैं और जनता को निराश्रित और आज्ञाकारी बनाए रखने के लिए राजनेताओं के साथ सहयोग करते हैं। महत्वपूर्ण वस्तुओं के आयातक और निर्यातक, विदेशी व्यापार प्रतिनिधि, पारंपरिक नेता और रियल एस्टेट मालिक जिनके पास विनिर्माण के लिए आवश्यक उद्यमशीलता क्षमताओं की कमी है, इन अभिजात वर्ग में से हैं। उनके पास आर्थिक या राजनीतिक सुधारों को बढ़ावा देने के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं है क्योंकि उनके पास अपनी स्थिति बनाए रखने के लिए पर्याप्त आय और प्रभाव है।

- **सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत**

  लोग आमतौर पर आर्थिक प्रोत्साहन पसंद करते हैं। आय के कुछ स्तरों पर, पारंपरिक सभ्यताओं के अधिकांश व्यक्ति काम करना धीमा कर देते हैं और अधिक ख़ाली समय को प्राथमिकता देते हैं। संतुष्टि, न कि अधूरी अपेक्षाएँ, रोज़गार के संबंध में तीसरी दुनिया के अधिकांश श्रमिकों के विचारों को प्रेरित करती है। कुछ विकास अर्थशास्त्रियों का मानना है कि कुछ संस्कृतियाँ प्रगति और मौद्रिक लाभ के लिए स्वाभाविक रूप से महत्वपूर्ण बाधाएँ हैं, इसलिए ऐसी संस्कृतियों के व्यक्तियों को अलग करने के लिए प्रेरित करने का

प्रयास प्रयास की बर्बादी है। कृषि युग के लोग जीने के लिए काम करते हैं, न कि औद्योगिक युग के लोगों की तरह काम करने के लिए जीते हैं। पहला दृष्टिकोण खाने, रहने और खुश रहने के लिए पर्याप्त धन प्राप्त करने के एक तरीके के रूप में काम करता है, अमीर बनने के तरीके के रूप में नहीं। औद्योगिक युग में रोजगार व्यक्तिगत तृप्ति तथा सामाजिक सम्मान का मुख्य साधन है। बहुत से लोग खुश रहने के लिए जीने और जीने के लिए काम करते हैं। इसमें कुछ भी गलत नहीं है, लेकिन यह उत्पादकता को बढ़ावा नहीं देता है। संस्कृति आर्थिक और गैर-आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण है, लेकिन यह परिवर्तन का एकमात्र कारक या बाधा नहीं है। मुद्दा यह नहीं है कि संस्कृति कोई भूमिका निभाती है या नहीं, बल्कि मुद्दा यह है कि समृद्धि के बड़े निर्धारकों के आलोक में इसे कैसे समझा जाए। कुछ सभ्यताएँ दूसरों की तुलना में संस्कृति को अधिक महत्व देती हैं क्योंकि कुछ संस्कृतियाँ कुछ विचारों का विरोध करती हैं, विशेष राष्ट्रों में तेजी से विकसित होती हैं, और विशिष्ट परिस्थितियों में अधिक सक्रिय भूमिका निभाती हैं। संस्कृति और समाज में इसके महत्व को समझने के लिए, हमें इसे एक जीवित जीव के रूप में देखना चाहिए जो जीवन स्थितियों और प्रोत्साहनों के साथ विकसित होता है। संस्कृति के मूल्यों, रीति-रिवाजों और युवाओं के प्रति दृष्टिकोण को आर्थिक प्रणाली और समाज को लाभ पहुंचाने के उद्देश्य के अनुरूप होना चाहिए। कृषि समुदाय में संतुष्टि की

संस्कृति बचत-आधारित आर्थिक प्रणाली में विनिर्माण या कठिन श्रम और वित्तीय लाभ के माध्यम से उच्च स्तर की खोज का समर्थन नहीं कर सकती है। पारंपरिक संस्कृतियों में व्यवसाय को विकसित करने के लिए आवश्यक सामाजिक और आर्थिक संरचनाओं का अभाव है। इस प्रकार, नई आर्थिक अवधारणाओं, संस्थानों और विनिर्माण से संबंधित गतिविधियों और औद्योगिक अर्थव्यवस्था की मांग वाली वित्तीय व्यवस्था को समायोजित करने के लिए संस्कृति को बदलना होगा।

- **आर्थिक संरचना**

आर्थिक संरचना के अन्तर्गत विकास में, समृद्धि, शिक्षा, संस्कृति, सूचना और अधिकतर भौतिक बाधाएँ अमीर व गरीब को विभाजित करती हैं। पहले व दूसरे के बीच सामाजिक-आर्थिक, सामाजिक-सांस्कृतिक और सामाजिक-राजनीतिक अंतर घरेलू बाजार के आकार को सीमित करके एवं गरीबों में नाराजगी व उदासीनता पैदा करके विकास में बाधा डालते हैं। आक्रोश एवं उदासीनता श्रमिकों की कड़ी मेहनत करने और अपने नियोक्ताओं के प्रति वफादार रहने की प्रेरणा को कम कर देती है। अमीर और गरीब के बीच आय और शैक्षिक अंतर समाज के आर्थिक जीवन में भाग लेने में सक्षम मध्यम वर्ग को विकसित करने के प्रयासों को कमजोर करता है और गरीबों को यह महसूस कराता है कि चाहे वे अपने जीवन को बेहतर बनाने के लिए कितनी भी कोशिश कर लें, उनका जीवन नहीं बदलेगा। आम धारणा के विपरीत, किसी भी विकासशील देश में मध्यम वर्ग नहीं था और अब वह इसका

उत्पादन नहीं कर सकता है। 'विशेषज्ञ' जिसे मध्यम वर्ग के रूप में देखते हैं वह छोटे व्यापारियों और व्यवसायों, सरकारी एजेंसियों, शैक्षणिक संस्थानों और सेना के परस्पर विरोधी हितों वाले श्रमिकों का एक समूह है। ये कंपनियाँ मध्यम वर्ग के लोगों को सम्मानजनक वेतन पर नियुक्त करती हैं, लेकिन उनके पास कोई सामान्य हित या कारण नहीं होते हैं, इसलिए उनके पास सामाजिक वर्ग के रूप में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए कोई वर्ग चेतना नहीं होती है। वे किसी सामान्य उद्देश्य को बढ़ावा देने या साझा हित की रक्षा के लिए आर्थिक या राजनीतिक गतिविधियों में भाग नहीं ले सकते।

सामाजिक विकास में आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक बाधाओं को दूर करने के लिए एक राष्ट्रीय प्रतिबद्धता की आवश्यकता है। ऐसी प्रतिबद्धता केवल एक स्पष्ट दृष्टि व्यक्त करके ही प्राप्त की जा सकती है जो सांस्कृतिक और गैर-सांस्कृतिक बाधाओं की पहचान करती है, राष्ट्रीय उद्देश्य निर्धारित करती है, और बाधाओं को दूर करने और दृढ़ संकल्प के साथ लक्ष्यों को आगे बढ़ाने के लिए यथार्थवादी रणनीति बनाती है।

- **सामाजिक-राजनीतिक संरचना और संगठन**

स्वतंत्रता के बाद, नये दौर की दुनिया के कई नेताओं ने अपनी अर्थव्यवस्थाओं के निर्माण और आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए समाजवाद और आर्थिक योजना को चुना, इस बात

से अनजान कि आर्थिक स्वतंत्रता एक गलत धारणा थी और मध्य शताब्दियों के अंत से गायब हो गई थी। हालाँकि, उपनिवेशवाद और स्वतंत्रता के लिए युद्ध से प्रेरित और सोवियत संघ द्वारा प्रायोजित, अफ्रीका, एशिया और लैटिन अमेरिका में कई नए स्वतंत्र गणराज्यों ने पूंजीवाद के बजाय राज्य पूंजीवाद और केंद्रीय योजना को अपनाया। लोकतंत्र एक पश्चिमी अवधारणा है, इसलिए इसे अनपढ़ और अज्ञानी लोगों के सामने उनके स्वदेशी रीति-रिवाजों और मान्यताओं के साथ असंगत के रूप में प्रस्तुत किया गया।

विचारधाराएँ जन आंदोलनों, शीर्ष नेताओं और राष्ट्रीय नायकों का निर्माण करती हैं जो अभिजात वर्ग और बाकी आबादी के बीच सामाजिक-सांस्कृतिक और सामाजिक-आर्थिक अंतर को चौड़ा करती हैं और नए रिश्ते बनाती हैं जो सभी को अमानवीय बनाती हैं। शीर्ष लोग अक्सर स्वयं को श्रेष्ठ और दैवीय रूप से प्रेरित महसूस करते हैं, वास्तविकता से संपर्क खो देते हैं और निचले स्तर के लोगों को तुच्छ समझते हैं। दुर्भाग्य से, अधिकांश गरीबों का मानना है कि उनका जीवन केवल उतना ही मूल्यवान है जितना वे अपने आराध्य नेताओं और पवित्र लोगों के लिए हासिल कर सकते हैं। इस प्रकार, अधिकांश लोग अवांछनीय को सहन करते हैं, जैसे अस्पष्ट कारणों से मरना, और असंभव, ऐसे अप्रमाणित चमत्कारों में विश्वास करते हैं। सामाजिक और राजनीतिक आलोचकों, बुद्धिजीवियों और स्वतंत्र

विचारकों को देनदारों के रूप में देखा जाता है जिनका दमन या विनाश राजनीतिक स्थिरता, वैचारिक शुद्धता और सामूहिक प्रभुत्व को बनाए रखने के लिए उचित है।

- **समय की अवधारणा**

कुछ सभ्यताएँ समय के महत्व और अपने युग की अनिवार्यताओं को समझती हैं, जबकि अन्य समय को एक समस्या और दायित्व के रूप में देखती हैं। पहले समय का प्रभावी ढंग से उपयोग करने की अधिक संभावना है; दूसरा, बिना कुछ खोए समय बर्बाद करने की अधिक संभावना है। समय और लोग इसे कैसे देखते और संभालते हैं, इसने पूरे इतिहास में उनके जीवन और विकास को आकार दिया है। प्रत्येक देश को समय का सामना करना पड़ता है, और समय के स्पष्ट दृष्टिकोण के बिना किसी भी भविष्य का निर्माण नहीं किया जा सकता है। लोग किसी भी समय अपने समय का अधिकतम उपयोग करते हैं, समय को एक लाभ के रूप में देखा जाता है। ऐसा करने से, व्यक्ति अक्सर मानव प्रयास के सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रगति हासिल करते हैं और जीवन का अधिक आनंद लेते हैं। जब समय को बेकार समझा जाता है तो लोग इसे बर्बाद कर देते हैं। वे संभावनाओं को समझने, अपनी अर्थव्यवस्थाओं का निर्माण करने, अपनी संस्कृतियों को बदलने और आगे बढ़ने में विफल रहते हैं। जब समय

को बोझ के रूप में देखा जाता है, तो लोग इससे छुटकारा पाने के लिए अपना जीवन और पैसा खर्च करने का आनंद लेते हैं।

आज, अधिकांश लोग समय को महत्व देते हैं, लेकिन ऐतिहासिक रूप से, अधिकांश लोगों ने ऐसा नहीं किया है। हाल तक इतिहास में लगभग सभी लोगों ने समय को लाभ के बजाय बोझ के रूप में देखा। लोग समय गुजारने के लिए अपनी क्षमताओं और ऊर्जा का उपयोग करने को तैयार थे। समय केवल क्षणिक रूप से स्वयं को छिपाता है, उन व्यक्तियों और देशों को दंडित करता है जो व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में इसके महत्व को समझने में विफल रहते हैं।

आदिम जनजातीय संस्कृति, जो लगभग 30,000 साल पहले बनी थी, को समय की कोई धारणा नहीं थी और वह अपनी समस्याओं की सराहना नहीं कर सकती थी। समय के अनुरूप ढलने के बजाय आदिवासियों ने अपनी स्वतंत्रता और परंपराओं को बरकरार रखा। हालाँकि, समय ने जनजातियों को बेहतर जलवायु, मौसम और रहने की स्थितियों में स्थानांतरित होने के लिए मजबूर किया। समय की एक विशिष्ट धारणा होने से जनजातीय संस्कृति को स्वतंत्र रहने दिया गया, लेकिन इसने इसे अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थितियों, अस्तित्व कौशल और सुरक्षा में सुधार करने से रोक दिया।

भारत और अन्य देशों में आर्थिक विकास की बाँधाए

बाजार की अपूर्णता - बाज़ार की खामियाँ किसी भी देश में प्रगति की कमी में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। किसी अर्थव्यवस्था के कुशल संचालन और उसके बाद के विकास में प्राथमिक बाधाएँ मूल्य निर्धारण कठोरता, गतिहीनता, अनम्य सामाजिक संस्थाएँ और बाज़ार की परिस्थितियों के बारे में जानकारी की कमी हैं।

गरीबी का दुष्चक्र - रेंजर नर्कसे का मानना है कि गरीबी का दुष्चक्र आर्थिक विकास में सबसे बड़ी बाधा है। अविकसित देशों में, अल्प आय स्तर की उपस्थिति बचत और निवेश दोनों में बाधा डालती है, जिससे आर्थिक प्रगति बाधित होती है।

प्राकृतिक संसाधनों का कम उपयोग - सभी उभरते देशों में प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता के बावजूद, उनका अनुचित उपयोग उनकी क्षमता में बाधा डालता है।

प्रौद्योगिकी की प्रतिगामी स्थिति - सभी उभरते देशों में पर्याप्त प्राकृतिक संसाधनों की मौजूदगी के बावजूद, उचित उपयोग की कमी उनके विकास में बाधा डालती है।

मुद्रा स्फ़ीति - उच्च मुद्रास्फीति दर आर्थिक प्रगति में एक महत्वपूर्ण बाधा है। मुद्रास्फीति के कारण व्यक्तियों की क्रय शक्ति में गिरावट आती है, जिसके परिणामस्वरूप उनकी खपत और बचत दोनों में गिरावट आती है। अपर्याप्त बचत से निवेश कम होता है, जिसके परिणामस्वरूप देश गरीब और अविकसित हो जाता है।

विकास को प्रभावित करने वाले कारक

विकास में वास्तविक आय में वृद्धि और कल्याण के अन्य संकेतकों, जैसे अधिक साक्षरता दर, उन्नत बुनियादी ढांचे, कम गरीबी और बेहतर स्वास्थ्य देखभाल के माध्यम से आर्थिक कल्याण में वृद्धि शामिल है। विकास के लिए आर्थिक क्षमता को बढ़ाने के लिए एक निश्चित स्तर की राजनीतिक स्थिरता, निवेश और सार्वजनिक और निजी गतिविधियों के संयोजन की आवश्यकता होती है।

चित्र.1 आर्थिक विकास के कारक

आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले मुख्य कारकों में शामिल हैं-

- **बुनियादी ढांचे के स्तर –** बुनियादी तौर पर आर्थिक विकास की स्थिति को काफी मजबूत करना चाहिए अपने आसपास की चीजों का विस्तार करते हुए वैश्विक स्तर पर विकास को संभव बनाने के लिए बुनियादी संरचना को मजबूत करना बहुत ही आवश्यक होता है। जिसमें सड़क, ट्रेन और बंदरगाह जैसे बुनियादी ढाँचे में निवेश की लागत को बढ़ाना चाहिए। अपने आसपास के देशों में निवेश की स्थिरता को बनाये रखने हेतु कूटनीति तरीके से बुनियादी ढाँचे को सक्रिया बनाना होगा।

- **शिक्षा-** शिक्षा के स्तर और गुणवत्ता का श्रम उत्पादकता पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। बुनियादी पढ़ने और संख्यात्मक कौशल की कमी किसी अर्थव्यवस्था को शारीरिक श्रम से सेवा क्षेत्र के उन्नत क्षेत्रों में स्थानांतरित करने में एक महत्वपूर्ण बाधा उत्पन्न करती है। भारत की मजबूत शिक्षा प्रणाली ने विकास के लिए पर्याप्त संभावनाएं प्रदान करके सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) और संपर्क केंद्रों जैसे सेवा व्यवसायों के विस्तार की सुविधा प्रदान की है।
- **निवेश के स्तर-** विकासशील देश जो विदेशी निवेश को आकर्षित करने में सक्षम हैं, उन्हें बढ़ी हुई पूंजी और बहुराष्ट्रीय निगमों को अपनी अर्थव्यवस्था में लुभाने के लाभों के परिणामस्वरूप पर्याप्त विकास और प्रगति देखने को मिल सकती है। नव औद्योगीकृत देशों (एनआईसी) के संदर्भ में, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) ने आर्थिक वृद्धि और विकास को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 2011 में ब्राज़ील में विदेशी निवेश की रकम 101 अरब डॉलर थी.
- **बचत/पूंजी के स्तर-** विकास संरचना को स्वरुप में बचत और पूंजी के स्तर को आर्थिक विकास के महत्वपूर्ण निर्धारक माना जाता है। अधिक बचत, बढ़े हुए निवेश, उन्नत विकास और इस प्रकार, बड़ी बचत के सकारात्मक चक्र को सुविधाजनक बनाती है।
- **राजनीतिक स्थिरता/कानून एवं व्यवस्था-** वैश्विक स्तर पर उभरते देशों में निवेश को बढ़ावा देने के लिए राजनीतिक स्थिरता की प्राथमिकता और निजी संपत्ति की सुरक्षा

को प्राथमिक उत्प्रेरक के रूप में पहचाना गया। अस्थिरता की उपस्थिति उभरते देशों में निवेश से जुड़े आर्थिक और व्यक्तिगत खतरे को बढ़ाती है।

आर्थिक विकास सम्बन्धित अन्य कारकों का मूल्यांकन

- **उद्यमशील संस्कृति-** पिछले दो दशकों में, भारत ने भौतिक प्रगति पर जोर देते हुए एक पारंपरिक धार्मिक देश से अधिक धर्मनिरपेक्ष देश में परिवर्तन देखा है।
- **शासन संरचना-** कुछ लोगों का तर्क है कि अर्थव्यवस्था पर पकड़, जैसा कि क्यूबा में है, के परिणामस्वरूप आर्थिक स्थिरता आ सकती है। चीन ने कम्युनिस्ट पार्टी के तहत राजनीतिक अधिकार बनाए रखते हुए बाजार-उन्मुख अर्थव्यवस्था में आंशिक परिवर्तन को प्रभावी ढंग से लागू किया है।
- **विनियमन/मुक्त बाज़ार व्यवस्था**- अर्थव्यवस्था के भीतर नियामक ढांचा। मिल्टन फ्रीडमैन जैसे मुक्त बाजार सिद्धांतों की वकालत करने वाले अर्थशास्त्रियों का मानना है कि किसी अर्थव्यवस्था में खुलेपन की डिग्री का महत्वपूर्ण महत्व है। निजीकरण और अविनियमन, जैसे निवेश में बाधाओं को कम करना और आर्थिक विकास को बढ़ावा देना।

निष्कर्ष

अविकसित देशों में आर्थिक विकास को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। आर्थिक प्रगति में आने वाली सभी बाधाओं को दूर करना एक बहुत ही चुनौतीपूर्ण कार्य है, जबकि

यह दुर्गम नहीं है। सरकार को आत्मनिर्भरता की रणनीति लागू करनी चाहिए और इन जटिलताओं को खत्म करने के लिए उन्नत तकनीकों को अपनाना चाहिए। प्रारंभ में निम्न उत्पादकता, प्राकृतिक संसाधनों की कमी (जैसे प्रतिबंधित कृषि भूमि), और तेजी से जनसंख्या विस्तार की उपस्थिति विकास के लिए महत्वपूर्ण चुनौतियाँ प्रदान कर सकती हैं। निस्संदेह, यह मुद्दा स्पष्ट हो सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डेविड लैंडेस, "कल्चर मेक्स ऑलमोस्ट ऑल द डिफरेंस," कल्चर मैटर्स में, लॉरेंस ई. हैरिसन और सैमुअल हंटिंगटन, संपादक, (बेसिक बुक्स, 2000) 13
- माइकल ई. पोर्टर, "दृष्टिकोण, मूल्य, विश्वास और समृद्धि का सूक्ष्मअर्थशास्त्र," कल्चर मैटर्स में, 14
- रिचर्ड गिल, आर्थिक विकास: अतीत और वर्तमान, (प्रेंटिस हॉल, 1967) 32
- बाल्डविन: आर्थिक विकास और वृद्धि, (जॉन विली एंड संस 1966) 20
- मोहम्मद रबी, अरब हार का दूसरा चेहरा, (रियाद अल रेयेस पब्लिशर्स, 1987)
- मोहम्मद रबी, संस्कृति और अरब पहचान संकट, (द अरब थॉट फोरम, 2010)
- जेफरी सैक्स, "विकास के नए समाजशास्त्र पर नोट्स," कल्चर मैटर्स में, 34
- जेराल्ड मायर, एक विषय की जीवनी: विकास अर्थशास्त्र का एक विकास, (ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2005) 137
- पॉल कैनेडी: अफ़्रीकी पूंजीवाद, (कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1988) 69-70

- रज़ीन सैली, सहायता, व्यापार, विकास: बाउर लिगेसी, वैश्विक आयाम, जून 2002 http://www.lse.ac.uk/collections/globaldynamics/research/aidTradeDevelopment/Default.htm
- विश्व बैंक विकास संकेतक 2008, http://www.globalissues.org/print/article/26
- वैश्विक मुद्दे, http://www.globalissues.org/print/article/26
- https://link.springer.com/chapter/10.1007/978-1-137-37138-6_13

खण्ड–1
इकाई–6

मानव विकास सूचकांक तथा आर्थिक विकास एवं मानव विकास

मानव विकास और आर्थिक विकास अलग-अलग प्रतिमान हैं जिनमें अलग-अलग लक्ष्य, मूल्यांकन पद्धतियां और रणनीतियां शामिल हैं। फिर भी, आर्थिक प्रगति और मानव विकास के बीच एक मजबूत और अन्योन्याश्रित संबंध है, दोनों कारक एक दूसरे को प्रभावित और समर्थन करते हैं। विशेष रूप से, मानव विकास और आर्थिक विकास के बीच संभावित संबंधों की अन्वेषण सिद्धांत और नीतिगत प्रभाव दोनों के संदर्भ में उनकी पारस्परिक प्रकृति पर विशेष बल देती है। इसके अलावा, प्राथमिक परिकल्पनाओं के साथ-साथ वास्तविक आँकड़ों की प्रस्तुति भी होती है। अंत में, ऐसे समर्पित अनुभाग हैं जो संक्रमण के दौर से गुजर रहे देशों के नीतिगत परिणामों और अद्वितीय विशेषताओं पर ध्यान केंद्रित करते हैं। मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) वैश्विक स्तर पर देशों की सामाजिक और आर्थिक प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए संयुक्त राष्ट्र द्वारा बनाया गया एक समग्र संकेतक है। मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) मानव विकास के तीन प्रमुख मापों को ध्यान में रखता है जिसमें जीवन प्रत्याशा, शिक्षा और प्रति व्यक्ति आय है।

1990 के बाद से, संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) ने वार्षिक मानव विकास रिपोर्ट (एचडीआर) का एक क्रम जारी किया है जो प्रत्येक राष्ट्र के लिए मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) की गणना करता है। उपरोक्त सूचकांक प्रगति के पारंपरिक एक-आयामी संकेतक, अर्थात् सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के लिए एक महत्वपूर्ण विकल्प के रूप में उभरा है। पारिस्थितिक कारकों की अनुपस्थिति के बावजूद, सूचकांक ने विकास मूल्यांकन पर चर्चा का विस्तार किया है। अफसोस की बात है कि मानव विकास रिपोर्ट (एचडीआर) ने समय के साथ प्रगति की कमी दिखाई है, क्योंकि वे मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) की उपयोगिता को बढ़ाए बिना उन्हीं विचारों को दोहराते रहते हैं। यह आलेख समीक्षा करता है कि इन रिपोर्टों ने किस हद तक अपने इच्छित उद्देश्य को पूरा किया है और विकास पर चर्चा को आगे बढ़ाने के लिए एचडीआई की क्षमता का मूल्यांकन किया है। हमने देखा है कि रिपोर्टें अपनी प्रारंभिक दृष्टि से भटक गई हैं और सूचकांक उस दुनिया की वास्तविक प्रकृति को सटीक रूप से चित्रित करने में असमर्थ है जिसका वह प्रतिनिधित्व करना चाहता है। इसके अलावा, सूचकांक मुख्य रूप से राष्ट्रीय प्रदर्शन और रैंकिंग पर ध्यान केंद्रित करता है, वैश्विक विकास पर महत्वपूर्ण विचार करने की उपेक्षा करता है। इन सीमाओं को संबोधित करने के पहले उपाय के रूप में, हम सूचकांक में तीन सरल सुधार लागू करने का सुझाव देते हैं।

मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) एक पैमाना है जिसका उपयोग किसी देश के आर्थिक और सामाजिक संकेतकों पर विचार करके उसके विकास के स्तर का आकलन करने के लिए

किया जाता है। यह उपकरण इस बात पर जोर देने के लिए बनाया गया था कि किसी राष्ट्र की व्यापक प्रगति का मूल्यांकन न केवल उसकी आर्थिक उन्नति से बल्कि उसके लोगों की भलाई और उनकी प्रतिभा से भी किया जाता है। किसी राष्ट्र के सामाजिक और आर्थिक पहलुओं में जनसंख्या का स्वास्थ्य, शैक्षिक उपलब्धि, जीवन की गुणवत्ता और प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय (जीएनआई) जैसे कारक शामिल होते हैं। मानव विकास सूचकांक उपरोक्त तीन मानदंडों में से प्रत्येक के व्यक्तिगत सूचकांकों को एकत्रित करके प्राप्त किया जाता है। एचडीआई का उपयोग किसी देश की घरेलू नीति का अवलोकन करने और इसे उन देशों के साथ तुलना करने के लिए भी किया जाता है जिनकी प्रति व्यक्ति जीएनआई तुलनीय है। इस तुलना का उद्देश्य प्रति व्यक्ति समान सकल राष्ट्रीय आय (जीएनआई) के बावजूद मानव विकास के भिन्न स्तरों के पीछे के कारणों का अन्वेषण करना है।

"विकास" शब्द की व्यक्तियों के विभिन्न समूहों के बीच अलग-अलग व्याख्याएँ हैं। प्रगति को कुछ व्यक्तियों द्वारा धन, भूमि और घर जैसी मूर्त संपत्ति की प्राप्ति के रूप में देखा जा सकता है। वैकल्पिक रूप से, दूसरों के लिए, प्रगति दमनकारी परिस्थितियों से मुक्ति से जुड़ी है विद्वान और विकास चाहने वाले व्यक्ति इसे एक जटिल और व्यापक प्रक्रिया के रूप में देखते हैं जिसमें कई आयाम और क्षेत्र शामिल हैं। इसमें लोगों के जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाने के उद्देश्य से सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन शामिल हैं। मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) और क्षमताओं के दृष्टिकोण के समावेश ने विकास साहित्य में कमी को संबोधित

किया है। इसने अर्थशास्त्रियों और विकास विशेषज्ञों के लिए आर्थिक विस्तार के लिए एक वैकल्पिक लक्ष्य की पेशकश की है। हालाँकि एचडीआई को इसके माप और व्यक्तिपरक डेटा के संबंध में आलोचना का सामना करना पड़ा है, इसने व्यावहारिक विकास अर्थशास्त्र के क्षेत्र में दो महत्वपूर्ण उद्देश्यों को पूरा किया है। सबसे पहले, इसने मानव विकास की अवधारणा को भलाई की एक नई समझ के रूप में लोकप्रिय बनाने में मदद की है। दूसरे, इसने विभिन्न देशों में विकास के स्तरों की तुलना करने के साधन के रूप में प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद का उपयोग करने का एक विकल्प प्रदान किया है। मानव विकास रिपोर्ट के सभी पहलुओं में लगातार सुधार लागू किए गए हैं, विशेष रूप से संकेतकों और कार्यात्मक आवश्यकताओं पर ध्यान केंद्रित करते हुए। इसके अतिरिक्त, दायरे को व्यापक बनाने और अधिक महत्वपूर्ण विकास संबंधी चिंताओं को शामिल करने के प्रस्ताव भी आए हैं। मेरा मानना है कि अधिक शोध और अकादमिक जांच करने से भविष्य की रिपोर्टें बेहतर और बेहतर होंगी, जिससे उन्हें मानव क्षमताओं और विकासात्मक चिंताओं के कई क्षेत्रों को व्यापक रूप से संबोधित करने की अनुमति मिलेगी।

मानव विकास सूचकांक के आयाम

मानव विकास सूचकांक तीन प्राथमिक आयामों के आधार पर किसी राष्ट्र की प्रगति का आकलन करता है:

- **दीर्घ और स्वस्थ जीवन**

दीर्घ और स्वस्थ जीवन का आयाम जन्म के समय जीवन प्रत्याशा के पैमाने द्वारा निर्धारित किया जाता है। जन्म के समय जीवन प्रत्याशा एक सांख्यिकीय संकेतक है जो जन्म वर्ष और वर्तमान आयु जैसी जनसांख्यिकीय जानकारी के आधार पर किसी व्यक्ति के औसत जीवनकाल का अनुमान लगाता है।

- **शिक्षा**

शिक्षा मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) की गणना के लिए उपयोग किए जाने वाले घटकों में से एक है। शिक्षा संकेतकों में स्कूली शिक्षा की अनुमानित अवधि और स्कूली शिक्षा की औसत अवधि शामिल होती है। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, शिक्षा की औसत अधिकतम अवधि 18 वर्ष है, हालाँकि स्कूली शिक्षा की औसत अधिकतम अवधि 15 वर्ष है।

- **जीवन स्तर**

जीवन की गुणवत्ता का आकलन करने के लिए अक्सर इस्तेमाल किया जाने वाला मीट्रिक प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय (जीएनआई) है। सकल राष्ट्रीय आय (जीएनआई) एक निश्चित राष्ट्र की घरेलू और विदेशी आबादी द्वारा उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं के कुल मूल्य का प्रतिनिधित्व करती है।

मानव विकास सूचकांक का महत्व

मानव विकास सूचकांक का महत्व काफी अहम होता है क्योंकि यह किसी देश की सामाजिक-आर्थिक स्थिति एवं उसके निवासियों की भलाई के बुनियादी माप के रूप में कार्य

करता है। इन क्षेत्रों की प्रगति का आकलन करने में कई विशेषताओं पर विचार करने के कारण, यह प्रत्येक देश के प्रदर्शन का मूल्यांकन करने के लिए एक बहुत प्रभावी तरीका है। परिणामस्वरूप, सर्वेक्षण के पश्चात्, संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम प्रत्येक राष्ट्र को वार्षिक रैंकिंग प्रदान करता है। उच्च रेटिंग उन लोगों को दी जाती है जिन्होंने सभी या अधिकांश विशेषताओं में उत्कृष्ट प्रदर्शन किया है। इसी तरह, जिन देशों ने अधिकांश या सभी मानदंडों में निम्न प्रदर्शन किया है, उन्हें रैंकिंग में निचला स्थान दिया गया है। एचडीआई वार्षिक आधार पर देशों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का आकलन करने और समय के साथ उनकी प्रगति की निगरानी करने के लिए एक पैमाने के रूप में कार्य करता है।

एचडीआई की सीमाएँ:

- एचडीआई मानव कल्याण के अन्य महत्वपूर्ण पहलुओं जैसे असमानता, गरीबी, मानव सुरक्षा और सशक्तिकरण को प्राथमिकता नहीं देता है। उच्च सकल राष्ट्रीय आय (जीएनआई) प्रदर्शित करने वाले देशों में समवर्ती रूप से असमानता का स्तर उच्च हो सकता है और अपर्याप्त सुरक्षा और संरक्षा उपाय हो सकते हैं।
- एचडीआई किसी देश के समग्र विकास का व्यापक माप प्रदान करता है। चीन और केन्या जैसे बड़े देशों के मामले में, मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) स्कोर देश के

क्षेत्र के आधार पर महत्वपूर्ण रूप से बदलता है। हालाँकि, यह भिन्नता केवल एचडीआई द्वारा आसानी से समझ में नहीं आती है।

- मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) जीवन प्रत्याशा में सुधार जैसे दीर्घकालिक परिवर्तनों के संकेतक के रूप में कार्य करता है। परिणामस्वरूप, अत्यावश्यक और अल्पकालिक परिवर्तनों की उपेक्षा की जाती है।
- मानव सफलता सूचकांक (एचडीआई) कई अन्य कारकों को ध्यान में रखने में विफल रहता है जो देश की आर्थिक सफलता में योगदान करते हैं, जिनमें प्रदूषण स्तर, स्वच्छ और सुरक्षित पेयजल की उपलब्धता और स्वच्छता की स्थिति शामिल है।
- एचडीआई किसी देश में सामाजिक और आर्थिक विकास की वर्तमान स्थिति को मापता है, लेकिन यह भविष्य के विकास के अवसरों या संभावनाओं के बारे में कोई अंतर्दृष्टि प्रदान नहीं करता है।

आर्थिक विकास एवं मानव विकास

आर्थिक विकास वह शब्द है जिसका उपयोग एक निश्चित अवधि में किसी अर्थव्यवस्था के भीतर उत्पन्न सभी उत्पादों और सेवाओं के मौद्रिक मूल्य में वृद्धि का वर्णन करने के लिए किया जाता है। यह एक मात्रात्मक मापन है जो अर्थव्यवस्था में होने वाले व्यापारिक लेनदेन की संख्या में संभावित वृद्धि को इंगित करता है। जीडीपी और जीएनपी जैसे आर्थिक सिद्धांतों का उपयोग करके, उत्पन्न पूरक उत्पादों और सेवाओं के समग्र बाजार मूल्य में वृद्धि

का आकलन करके माप की मात्रा निर्धारित की जा सकती है। आर्थिक विकास का संबंध किसी देश के भीतर संपूर्ण आबादी के समग्र कल्याण, सामाजिक कल्याण और शैक्षिक उपलब्धि की व्यवस्थित वृद्धि से है। इसके अतिरिक्त, यह तकनीकी विकास के परिणामस्वरूप बढ़ी हुई विनिर्माण मात्रा से संबंधित है। किसी देश में रहने वाले लोगों के जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि का सबसे अच्छा मूल्यांकन मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) द्वारा किया जाता है। किसी राष्ट्र की समग्र सफलता कई कारकों पर निर्भर करती है जैसे रोजगार की संभावनाएं, तकनीकी उन्नति, जीवन स्तर, रहने की स्थिति, प्रति व्यक्ति आय, जीवन की गुणवत्ता, आत्म-सम्मान की मांग में वृद्धि, जीडीपी और औद्योगिक और ढांचागत विकास इत्यादि।

मानव विकास और आर्थिक विकास अलग-अलग प्रतिमान हैं जिनमें अलग-अलग लक्ष्य, मूल्यांकन पद्धतियां और रणनीतियां शामिल हैं। यह कहीं न कहीं तथ्य निर्गीत करता है कि आर्थिक प्रगति व मानव विकास के मध्य एक मजबूत और अंतर्निहित संबंध है। ये दोनों कारक अन्योन्याश्रित, सह-विकासशील और परस्पर वृद्धि करने वाले हैं। विशेष रूप से, मानव विकास और आर्थिक विकास के बीच संभावित संबंधों की जांच सिद्धांत और नीतिगत प्रभाव दोनों के संदर्भ में उनके पारस्परिक प्रभाव को रेखांकित करती है। इसके अलावा, प्राथमिक परिकल्पनाओं के साथ-साथ, कुछ तथ्यात्मक आंकड़ों की प्रस्तुति भी है। अंत में,

दस्तावेज़ में समर्पित अनुभाग शामिल हैं जो वैश्विक स्तर पर देशों के नीतिगत परिणामों और अद्वितीय विशेषताओं पर चर्चा करते हैं।

मानव विकास सूचकांक (HDI) की रिपोर्ट

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) द्वारा जारी आंकड़ों के माध्यम से हमें यह पता चलता है कि मानव विकास सूचकांक के अन्तर्गत भारत में 189 देशों से 130 वें स्थान पर है, जहां 1 के पैमाने पर एचडीआई कीमत 0.640 है, अन्य यह "मध्यम मानव विकास समूह के देशों के लिए औसत 0.645 से नीचे" है, फिर भी, यह दक्षिण एशिया के देशों के औसत 0.638 से अधिक है। फिर भी, "2018 वेयरहाउस अपडेट" के लिए भारत पर यूएनडीपी के ब्रीफिंग पेपर के अनुसार, जबकि अनाधिकृत स्टॉक अंततः समाप्त हो जाते हैं, उनकी सामग्री दक्षिण एशिया में औसत से कम है। 2017 के लिए भारत का समग्र मानव विकास सूचकांक (HDI) 0.640 है। हालाँकि, जब उपलब्ध संसाधनों की कीमत को ध्यान में रखा जाता है, तो एचडीआई, जिसे व्यक्तिगत-सामाजिक एचडीआई या रियायती एचडीआई के रूप में भी जाना जाता है, घटकर 0.468 हो जाता है, जो संसाधनों के एक अलग आवंटन को दर्शाता है। इससे एचडीआई आयाम में 26.8 प्रतिशत की कमी आई है। भारत में 26.8 प्रतिशत की गिरावट देखी गई, जबकि मध्यम एचडीआई देशों में औसतन 25.1 प्रतिशत की कमी हुई

और पूरे दक्षिण एशिया में 26.1 प्रतिशत की कमी हुई। ब्रीफिंग पेपर में कहा गया है कि एचडीएआई का लक्ष्य मानव विकास के तीन मूलभूत पहलुओं: शारीरिक कल्याण, शैक्षिक अवसर और आर्थिक स्थितियों में हासिल की गई पिछली प्रगति के संक्षिप्त संकेतक के रूप में काम करना है। जीवन की गुणवत्ता वयस्कों के बीच शैक्षिक प्राप्ति के औसत स्तर से निर्धारित होती है, विशेष रूप से 25 वर्ष और उससे अधिक उम्र के लोगों द्वारा अपने जीवनकाल के दौरान पूरी की गई स्कूली शिक्षा के वर्षों की औसत संख्या को संदर्भित करती है। जीवन स्तर का निर्धारण प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय (जीएनआई) द्वारा किया जाता है, जिसे क्रय शक्ति समता (पीपीपी) का उपयोग करके 2011 अंतर्राष्ट्रीय डॉलर में समायोजित किया जाता है। एआईएच पता लगाने की विधि अंतराल स्तर के आधार पर प्रत्येक आयाम के औसत मूल्य से विचलन पर विचार करती है।

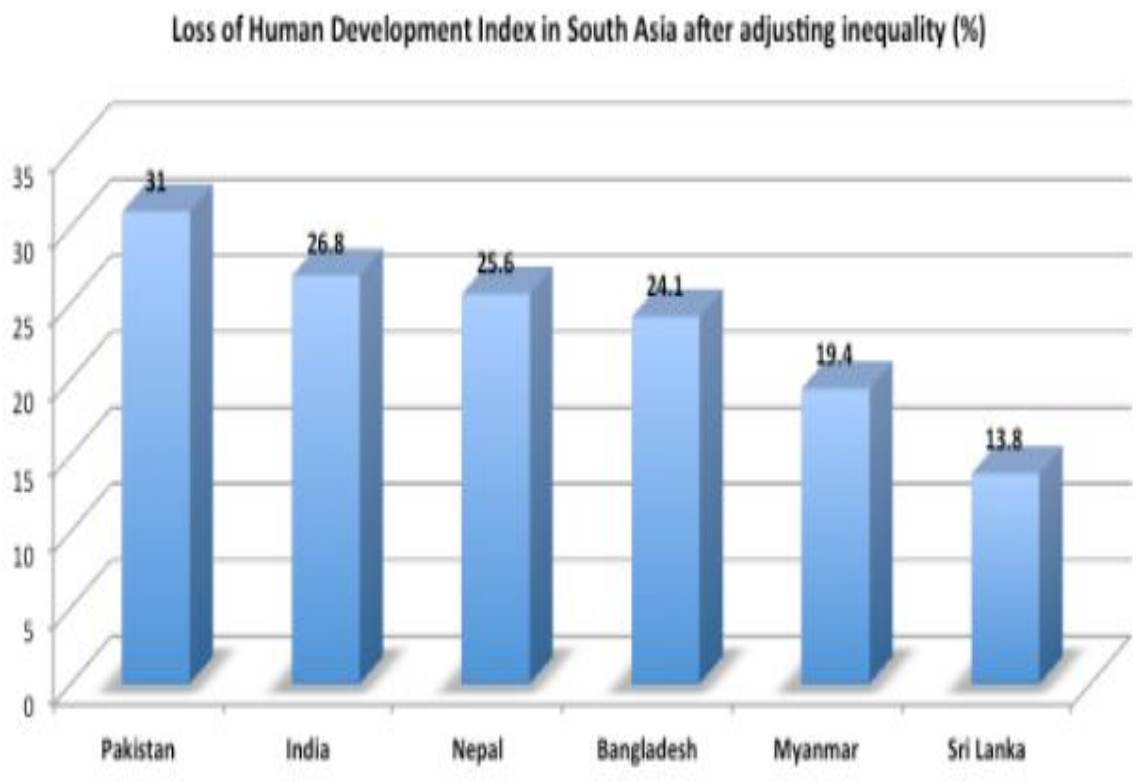

आंकड़ों के मुताबिक, 2017 के लिए भारत का एचडीआई स्कोर 0.640 है, जो श्रीलंका को छोड़कर अधिकांश सीमावर्ती देशों की तुलना में अधिक है। श्रीलंका को 0.770 के एचडीआई मूल्य के साथ 76वां दर्जा दिया गया है। बांग्लादेश 0.608 के एचडीआई मूल्य के साथ 136वें स्थान पर है। म्यांमार 0.578 के एचडीआई मूल्य के साथ 148वें स्थान पर है। नेपाल 0.574 के एचडीआई मूल्य के साथ 149वें स्थान पर है। दक्षिण एशिया में सबसे निचले स्थान पर रहने वाला देश पाकिस्तान, 0.562 के एचडीआई मूल्य के साथ 150वें स्थान पर है। भारत सबसे खराब समायोजित एचडीआई या आईएच कारक के मामले में 26.8 प्रतिशत के साथ पाकिस्तान के बाद दूसरे स्थान पर है। सबसे कम नुकसान वाला देश श्रीलंका है, जिसकी दर 13.8 प्रतिशत है। इसके बाद 19.4 फीसदी की दर के साथ म्यांमार,

उसके बाद 24.1 फीसदी के साथ बांग्लादेश, 25.6 फीसदी के साथ नेपाल और सबसे ज्यादा 31 फीसदी की दर पाकिस्तान में देखी गई है। भारत का IH स्कोर 0.468 है, जो दो अन्य देशों, बांग्लादेश (0.462) और म्यांमार (0.466) के स्कोर के काफी समान है। दूसरी ओर, श्रीलंका का IH स्कोर 0.644 से कहीं अधिक है।

ब्रिक्स देशों (ब्राजील, रूस, भारत, चीन और दक्षिण अफ्रीका) पर चर्चा करते समय अक्सर भारत की अर्थव्यवस्था की तुलना की जाती है। एचडीएआई रेटिंग के मामले में भारत की जीडीपी काफी पीछे है। दक्षिण अफ्रीका, ब्राज़ील, चीन और रूस की रैंकिंग क्रमशः 113, 79, 86 और 49 है। यदि कोई व्यक्ति अव्यवस्थित तरीके से व्यवहार करता है और सतर्क रहते हुए गलती करता है, तो सबसे बड़ा नुकसान दक्षिण अफ्रीका में देखा जाता है, जिसमें 33.2 प्रतिशत की हानि होती है, इसके बाद भारत में 26.8 प्रतिशत की हानि होती है। ब्राज़ील में 23.9 प्रतिशत, चीन में 14.5 प्रतिशत और रूस में 9.5 प्रतिशत हिस्सेदारी है।

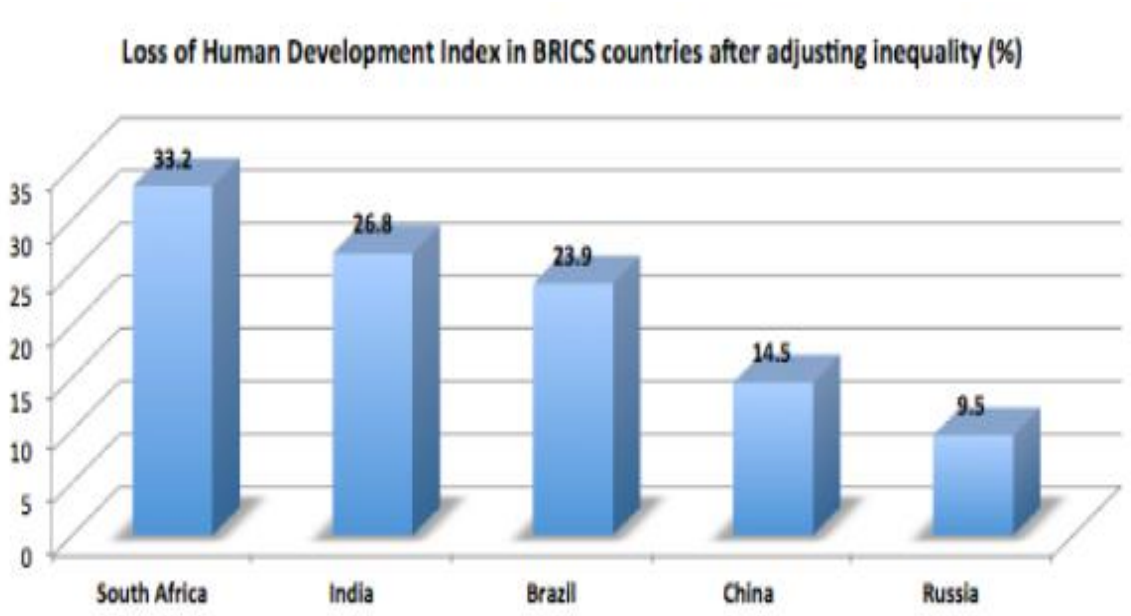

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) ने हाल ही में मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) तैयार किया है। मानव विकास सूचकांक में भारत को 191 देशों में से 132वें स्थान पर रखा गया है। मानव विकास सूचकांक वर्ष 2021-2022 के लिए मानव विकास रिपोर्ट का एक घटक है। यूएनडीपी इसे वार्षिक आधार पर जारी करता है। मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) मानव विकास के तीन मूलभूत आयामों में किसी देश के समग्र प्रदर्शन को मापता है: जीवन प्रत्याशा, शिक्षा या ज्ञान तक पहुंच, और आय या जीवन स्तर की गुणवत्ता संकेतक। वैश्विक मानव विकास में 32 वर्षों की अवधि में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखा गया है। गति बाधित हो गई है। लगभग 90% देशों में एचडीआई मूल्य में कमी देखी गई है। इस कमी में योगदान देने वाले प्राथमिक कारक हैं: COVID-19 महामारी, यूक्रेन में संघर्ष और पर्यावरणीय प्रतिकूलताएँ। वैश्विक औसत जीवनकाल 2019 में 72.8 वर्ष से घटकर 2021 में 71.4 वर्ष हो गया। 2020 में, भारत को 189 देशों और क्षेत्रों में से 131 वें स्थान पर

रखा गया था। 2021 तक की रैंकिंग में 191 देशों में से इसका 132वां स्थान है। रैंकिंग के मामले में भारत से बेहतर प्रदर्शन करने वाले देश इस प्रकार हैं: श्रीलंका (73वां), चीन (79वां), भूटान (127वां), और बांग्लादेश (129वां)। इसी समय सीमा के दौरान, महिलाओं के लिए शिक्षा की औसत अवधि 12.6 से घटकर 11.9 वर्ष हो गई। गंभीर बहुआयामी गरीबी 8% आबादी को प्रभावित करती है।

Human Development Index (HDI) 2021

Rank	Country
1	Switzerland
2	Norway
3	Iceland
4	Hong Kong, China (SAR)
4	Australia
6	Denmark
6	Sweden
8	Ireland
9	Germany
10	Netherlands

India and its neighbours

Sri Lanka	Bhutan	India	Nepal
73	127	132	143

China	Bangladesh	Pakistan
79	129	162

2021 मानव विकास सूचकांक में भारत की रैंकिंग एक स्थान घट गई है, जिससे वह 191 देशों में से 132वें स्थान पर है। यह जानकारी संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) द्वारा निर्मित 'अनसर्टेन टाइम्स, अनसेटल्ड लाइव्स: शेपिंग अवर फ्यूचर इन ए ट्रांसफॉर्मिंग वर्ल्ड'

नामक अध्ययन से मिली है। भारत का मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) परिणाम 0.633 देश को मध्यम मानव विकास वाले देश के रूप में वर्गीकृत करता है, जो 2020 संस्करण में इसके मूल्य 0.645 से कम है। "दुनिया भर के पैटर्न के समान, भारत के मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) में 2019 में 0.645 से 2021 में 0.633 तक की गिरावट को जीवन प्रत्याशा में कमी के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, जो 69.7 से घटकर 67.2 वर्ष हो गई है।" शोध में कहा गया है कि भारत की शिक्षा की अनुमानित अवधि 11.9 वर्ष है, जबकि शिक्षा की औसत अवधि 6.7 वर्ष है।

निष्कर्ष

मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) एक व्यापक सांख्यिकीय माप है जो जीवन प्रत्याशा, शिक्षा (स्कूली शिक्षा के समाप्त वर्षों और शिक्षा प्रणाली में शामिल होने पर स्कूली शिक्षा के अनुमानित वर्षों दोनों द्वारा मापा जाता है), और प्रति व्यक्ति आय के सूचकांकों को जोड़ता है। इसका उपयोग राष्ट्रों को मानव विकास की चार श्रेणियों में वर्गीकृत करने के लिए किया जाता है। मानव विकास और आर्थिक विकास अलग-अलग प्रतिमान हैं जो अलग-अलग लक्ष्यों, मूल्यांकन पद्धतियों और रणनीतियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। फिर भी, विद्वानों के एक बड़े समूह ने दिखाया है कि आर्थिक विकास और मानव विकास के बीच एक मौलिक और अन्योन्याश्रित संबंध है, दोनों प्रक्रियाएं एक दूसरे को प्रभावित और मजबूत करती हैं।

मानव विकास और आर्थिक विकास के बीच संबंध पारस्परिक है, क्योंकि प्रत्येक एक दूसरे को सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरीकों से प्रभावित करता है। आर्थिक विकास मानवीय क्षमताओं में वृद्धि के माध्यम से प्राप्त किया जाता है, और वांछित विकास व्यक्तियों की भलाई में प्रकट होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- https://corporatefinanceinstitute.com/resources/economics/human-development-index/
- Alkire, S. (2010), Human development: Definitions, critiques, and related concepts
- "Political Institutions and Human Development." A Contribution to the Empirics of Economic and Human Development, by Sebastian Vollmer, NED - New edition ed., Peter Lang AG, Frankfurt Am Main; Berlin; Bern; Bruxelles; New York; Oxford; Wien, 2009, pp. 69–88.
- Engineer, Merwan, and Ian King. "Maximizing Human Development." The Canadian Journal of Economics / Revue Canadienne D'Economique, vol. 46, no. 2, 2013, pp. 497– 525.
- Madhav Godbole. "Human Development: Some Issues." Economic and Political Weekly, vol. 37, no. 42, 2002, pp. 4265–4268.
- Parayil, Govindan. "The 'Kerala Model' of Development: Development and Sustainability in the Third World." Third World Quarterly, vol. 17, no. 5, 1996, pp. 941–957.
- Oommen, M. A. "Reforms and the Kerala Model." Economic and Political Weekly, vol. 43, no. 2, 2008, pp. 22–25.

- Gerring, John, et al. “Democracy and Human Development.” The Journal of Politics, vol. 74, no. 1, 2012, pp. 1–17.
- Singh, Ayushi, Status of Human Development Index (March 25, 2020). Available at SSRN: https://ssrn.com/abstract=3560804 or http://dx.doi.org/10.2139/ssrn.3560804
- https://youthdestination.in/मानव-विकास-सूचकांक-2021-22
- https://hindi.gstimes.in/current-affairs-in-hindi/ मानव-विकास-सूचकांक-2021

रोडान का बड़े धक्के (अथवा प्रबल प्रयास) का सिद्धांत

(Rodan's Theory of the "Big-Push")

प्रोफेसर पॉल एन०रोजेस्टीन रोडान (अथवा रोडा रोदा अथवा रोटान) (Paul N.Rosenstein Rodan) ने अपने 1943 में प्रकाशित एक लेख में संतुलित शब्द का प्रयोग न करते हुए भी "संतुलित विकास सिद्धान्त" का प्रतिपादन किया है जिसे "बड़े धक्के का सिद्धान्त" (The Big-Push Theory) आदि नामों से जाना जाता है। यह सिद्धान्त हार्वे लाइबेंस्टीन के "आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त" से काफी मिलता–जुलता है।

रोडान संतुलित विकास नीति के समर्थक थे किन्तु विकास की धीमी प्रक्रिया से सहमत न थे। रोडान का मत था कि अल्पविकसित देशों में विकास की बाधाओं को पार करने और उसे प्रगति के रास्ते पर चलाने के लिए "बड़ा धक्का" अथवा बड़ा व्यापक कार्यक्रम जरूरी है, जो न्यूनतम किन्तु उच्च मात्रा में पूंजीनिवेश (विनियोग) के रूप में हो। दीर्घकालीन स्थिरता और निर्धनता के कुचक्र (दुश्चक्र) में फँसी अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं को आत्मनिर्भर विकास मार्ग पर लाने के लिए 'प्रबल प्रयास' अथवा 'बड़ा धक्का' बहुत जरूरी है। यह ठीक उसी तरह है जिस प्रकार एक सोते हुए व्यक्ति को एकदम झकझोर कर ही जगाना पड़ता है। नियोजित विकास का उद्देश्य अर्थव्यवस्था को उसके 'निम्न स्तरीय साम्य' से झटके के साथ निकालकर संचयी विकास पर आरूढ़ होना चाहिए।

अपने तर्क की पुष्टि के लिए रोडान महोय ने MIT अध्ययन प्रस्तुत किया और एक उदाहरण देते हुए कहा कि 'यदि विकास कार्यक्रम को थोड़ा भी सफल बनाना है तो संसाधनों को एक न्यूनतम स्तर उस कार्यक्रम में लगाना ही पड़ेगा। किसी देश को आत्मनिर्भर संवृद्धि की अवस्था में लाना ठीक वैसा ही है जैसा हवाई जहाज को जमीन से हवा में उड़ाना। जिस प्रकार हवाई हजाज को उड़ने के लिए जमीन पर एक 'आवश्यक न्यूनतम गति' को बनाये रखना पड़ता है ठीक उसी प्रकार विकास कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए साधनों (संसाधनों) की एक अनावश्यक न्यूनतम मात्रा होती है जिसका विनियोग (पूंजी निवेश) करना जरूरी है।"

रोडान महोदय का प्रबल प्रयास का सिद्धांत इस मान्यता पर आधारित है कि यदि थोड़ी–थोड़ी मात्रा में विनियोग (पूंजी निवेश) किया जायेगा तो इसका कोई प्रभव देश के आर्थिक विकास पर नहीं पड़ेगा। पिछड़ेपन का गुरूत्वाकर्षण देश को "अल्पस्तरीय साम्य" से बाहर नहीं निकलने देगा और एक तरह से यह दुर्लभ साधनों का अपव्यय मात्र होगा। प्रो० रोडान के अनुसार, 'धीरे–धीरे' चलने से आर्थिक बाधाएं दूर नहीं हो सकती। उदाहरण के लिए एक कमजोर मनुष्य द्वारा किसी शक्तिशाली शिकंजे से मुक्त होने के लिए हल्का–फुल्का प्रयास (लाइबेंस्टीन के शब्दों में आवश्यक न्यूनतम प्रयास) करना अपनी शक्ति को व्यर्थ करने के समान है। उसे तो पनी बची–खुची सम्पूर्ण शक्ति का एक बार समेट कर लगाना होगा ताकि मुक्ति की सम्भावना प्रबल हो सके। यही बात अल्पविकसित देशों के साथ भी लागू होती है।

प्रो० बेंजामिन हिगिंस ने प्रबल प्रयास के सिद्धांत का समर्थन करते हुए लिखा है– "आर्थिक विकास की प्रक्रिया असतत उछालों (विच्छिन्न उछालों) की श्रृखंला है। आर्थिक संवृद्धि के हेतुक कारणों में पाया जाने वाला फलनात्मक सम्बन्ध उछालों तथा विच्छिन्नताों से भरा हुआ है इसलिए न्यूनतम प्रयास या प्रबल धक्का की जरूरत होती है जिससे कि एक गतिहीन अर्थव्यवस्था की प्रारंभिक जड़ता को समाप्त किया जा सके और अर्थव्यवस्था उत्पादन तथा आय के उच्चस्तर को प्राप्त कर सके।"

सिद्धांत का तार्किक आधार (Ligical base of the theory)

रोडान के प्रबल प्रयास (प्रबल धक्का अथवा बड़ा धक्का) सिद्धांत के अनुसार 'धीरे–धीरे' चलने से अर्थव्यवस्था को सफलतापूर्वक विकास मार्ग पर नहीं लाया जा सकता, बल्कि इसके लिए एक आवश्यक न्यूनतम मात्रा में पूंजी निवेश करना जरूरी है। इसके लिए बाहरी बचतों को प्राप्त करना आवश्यक है जो तकनीकी रूप में स्वतंत्र उद्योगों की एकसाथ स्थापना से उत्पन्न होती है। अतः बाहरी बचतों (अथवा बाह्म मितव्ययिताओं) को प्राप्त करने की सम्भावना रोडान महोदय के इस सिद्धांत का प्रमुख आधार है। रोडान महोदय के अनुसार आर्थिक विकास की दृष्टि से किया गया कोई भी नियोजित कार्यक्रम कम से कम एक आवश्यक

न्यूनतम आकार का अवश्य होना चाहिए जिससे कि एक तरफ अर्थव्यवस्था में पायी जाने वाली अविभाज्यताओं को कम किया जा सके तो दूसरी ओर बड़े पैमाने पर बाहरी बचतों अथवा बाह्म मितव्ययिताओं को प्राप्त किया जा सके। सारांश यह है कि आर्थिक विकास का आरंभ करने के लिए पूंजी–निवेश (विनियोग) की निश्चित न्यूनतम मात्रा का होना जरूरी है और इसके लिए जरूरी है अविभाज्यताओं को कम करना तथा बाहरी बचतों को प्राप्त करना।

बेंजमिन हिगिन्स के अनुसार रोडान महोदय ने बाहरी बचतों (बाह्म मितव्ययिताओं) का समावेश करके अपने सिद्धांत को एक स्थैतिक सिद्धांत होने से बचा लिया है। हिगिन्स के अनुसार स्थैतिक सिद्धांत में 'बाहरी बचतें' महत्वपूर्ण नहीं होती किन्तु एक विकास सिद्धांत में बाहरी बचतों का महत्व बहुत अधिक होता है। रोडान का प्रबल प्रयास का सिद्धांत के विपरीत है।

अविभाज्यताओं तथा बाहरी बचतों के रूप (Forms of Indivisibilities and External Economies)

रोडान ने चार प्रकार की अविभाज्यताओं तथा बाहरी बचतों का उल्लेख किया है–

1. **उत्पादन फलन की अविभाज्यतायें–**प्रथम प्रकार की अविभाज्यतायें उत्पादन फलन से संबधित है। जिसमें सामाजिक उपरि पूंजी की पूर्ति की अविभाज्यतायें उत्पादन फलन से संबंधित हे। जिसमें सामाजिक उपरि पूंजी की पूर्ति संबंधी अविभाज्यताएँ प्रमुख हैं यहाँ सामाजिक उपरि पूंजी का अर्थ है– शिक्षा, शक्ति, यातायात, परिवहन एवं संचार आदि विकास मदों पर किया जाने वाला अन्तसंरचना संबंधी पूंजी निवेश। यह अर्थव्यवस्था के औद्योगिक विकास के लिए महत्वपूर्ण तथा आवश्यक होता है। यद्यपि सामाजिक उपरि पूंजी प्रत्यक्ष रूप से उत्पादक न होकर अप्रत्यक्ष रूप से उत्पादक होती है और इसकी गर्भ अवधि भी अपेक्षाकृत लम्बी होती है। लेकिन इसके बावजूद बड़ी मात्रा में इस प्रकार पूंजी–निवेश किया जाना जरूरी होता है क्योंकि–

1. थोड़ी–थोड़ी में अथवा टुकड़ों में व्यय न कर पाने की कठिनाई इस अविभाज्यता को जन्म देती है। इस प्रकार का पूंजी निवेश बाहरी बचतों तथा बढ़ते हुए प्रतिफल का एक प्रभावी स्रोत होता है।

2. ये अविभाज्यताएं संतुलन सिद्धांत के स्थैतिक स्तर पर अपना प्रभाव डालकर उन्हें प्रवैगिक (गत्यात्मक) बनाती है और बढ़ते हुए प्रतिफल तथा तकनीकी बाह्य मितव्ययिताओं (बाहरी बचतों) को प्रोत्साहित करती है।
3. इस प्रकार के पूंजी निवेश (विनियोग) का सबसे बड़ा लाभ अन्य उद्योगों में विनियोग के अवसर उत्पन्न करना है।
4. यह विनियोग समय की दृष्टि से अप्रत्यावर्ती होता है और इसलिए यह जरूरी है कि इसे अन्य प्रकार के विनियोग से पहले किया जाना चाहिए।
5. इन विकास सेवाओं का आयात नहीं किया जा सकता, इसलिए उनका निर्माण देश के अन्दर ही करना पड़ता है।
6. इस प्रकार का पूंजी निवेश एक मुश्त किये जाने की प्रवृत्ति रखता है क्योंकि इसमें टिकाऊपन अथवा गठीलापन का गुण पाया जाता है।
7. इससे प्राप्त होने वाले लाभ भले ही देर से हो किन्तु लम्बे समय तक प्राप्त होते रहते है।

रोडान महोदय के अनुसार उत्पादन फलन संबंधी अविभाज्यतायें आगत, निर्गत तथा उत्पादन प्रक्रिया की दृष्टि से महत्वपूर्ण होती है। इनमें हमें 'बड़ी मात्रा में' तथा 'अनिवार्य रूप से' पूंजी–निवेश (विनियोग) करना ही पड़ता है क्योंकि इन क्षेत्रों में टुकड़ों में विनियोग नहीं किया जा सकता और इन क्षेत्रों को अधूरा भी नही छोड़ा जा सकता। आर्थिक विकास के लिए इन्हें आधार माना जा सकता है। अतः आर्थिक अन्तसंरचना के निर्माण के लिए बड़ा मात्रा में, अनिवार्य रूप से एक मुश्त विनियोग करना अर्थात पूंजी निवेश का प्रबल प्रयास करना अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में विकास की स्वपोषित शक्तियों को जन्म देने की एक अनिवार्य पूर्वशर्त है।

2. **माँग की अविभाज्यता (Indivisibility of Demand)–** माँग अथवा मांग की अविभाज्यता के कारण यह आवश्यक है कि अल्पविकसित देशों में परस्पर निर्भर उद्योगों की स्थापना एक साथ की जाये। व्यक्तिगत निवेश परियोजनाओं अथवा स्वतंत्र प्रकृति के उद्योगों में यह जोखिम होता है इन उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं की मांग

होगी भी अथवा नहीं। अतः अल्पविकसित देशों में यह आवश्यक हो जाता है कि परस्पर निर्भर प्रकृति वाले अनेक उद्योगों में एक साथ विनियोग (पूंजी निवेश) किया जाये। एक साथ कई उद्योगों में विनियोग होने से अन्तःउद्योग मांग बढ़ेगी जिससे कुल मांग (वस्तुओं और सेवाओं की मांग) बढ़ेगी। अर्थव्यवस्था में रोजगार, उत्पादन व आय के स्तर बढ़ जायेंगे। इस तरह संवृद्धि सिद्धांत के संदर्भ में रोडान का प्रबल प्रयास का सिद्धांत केवल संतुलन बिन्दु की व्याख्या न करके संतुलन–पथ की व्याख्या करता है। रोडान महोदय के अनुसार स्थैतिक संतुलन बिन्दु पर शुद्ध पूंजी–निवेश 'शून्य' होता है किन्तु जैसे–जैसे परस्पर निर्भर उद्योगों में पूंजी निवेश की मात्रा बढ़ती जाती है, संतुलन–पथ ऊधर्वगामी होकर विकासोन्मुख हो जाता है। अतः संवृद्धि मोटे तौर पर पूंजी निवेश सिद्धांत हो जाता है। अपनी बात स्पष्ट करने के लिए रोजेस्टीन रोडान ने जूता फैक्टरी या प्रसिद्ध उदाहरण दिया है। शुरू में बंद अर्थव्यवस्था का उदाहरण लेकर रोडान ने अपनी बात स्पष्ट की है। उनके अनुसार मान लिया जूता बनाने के कारखाने में 100 बेरोजगारों को काम में लगाया जाता है। इससे इन बेरोजगारों (श्रमिकों) को रोजगार तो मिलता ही है, उनकी आय भी बढ़ती है। यदि इस कार्य में लगाये गये श्रमिक अपनी समस्त आय जूतों को खरीदने में खर्च कर दे ंतो इस कारखाने के उत्पादन की मांग सदैव बनी रहेगी और कारखाना सफल होकर स्थापित हो जायेगा। किन्तु श्रमिकों की आवश्यकताएं किसी एक वस्तु जूता की न होकर विविध वस्तुओं की होती है। अतः श्रमिक अपनी समस्त आय जूता क्रय (एक वस्तु के क्रय) में नहीं लगायेंगे। कारखाने के बाहर के लोग गरीब हैं। अपनी अनिवार्यता को पूरी करने में वे सक्षम (समर्थ) नहीं हैं। अतः उनके द्वारा भी इन अतिरिक्त, जूतों की मांग नहीं होगी। मांग की कमी के कारण कारखाना बंद हो सकता है। इसके विपरीत, यदि 100 कारखानों में 10,000 श्रमिक काम में लगे हों और विविध प्रकार की उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करते हों तो वे परस्पर बढ़ी आय से एक दूसरे के उत्पादन की मांग करेंगे। अतः मांग की पूरकता (अथकपूरक मांग की अविभाज्यता) बाजार खोजने के जोखिम को घटाती है। इससे पूंजी निवेश की प्रेरणा को बढ़ावा मिलता है।

चित्र द्वारा व्याख्या (Explannation by diagram)

रोडान महोदय द्वारा जूते की फैक्टरी के सम्बन्ध में दिये गये इस उदाहरण को एक रेखा चित्र के माध्यम से इस प्रकार और स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र–18.1 में जूता फैक्टरी जिस प्लांट पर कार्य कर रही है उसकी औसत लागत AC तथा सीमांत लागत MC है। AR_1 जूता फैक्टरी की माग MR_1 उसकी सीमात आय को बताता है। ये दोनों उस स्थिति को दर्शाते है जब अर्थव्यवस्था में विनियोग केवल जूता की फैक्टरी के लिए किया जाता है। इस स्थिति में MC तथा MR_1 के कटन बिन्दु E_1 के आधार पर उत्पादन OQ_1 (अर्थात 10,000 जूते मान लिया) है जिन्हें OP कीमत पर बेचा जाता है। इस दशा में मांग में कमी के कारण फैक्टरी अपनी लागत नहीं प्राप्त कर पा रही है जिससे फैक्टरी को PC AB हानि उठानी पड़ रही है।

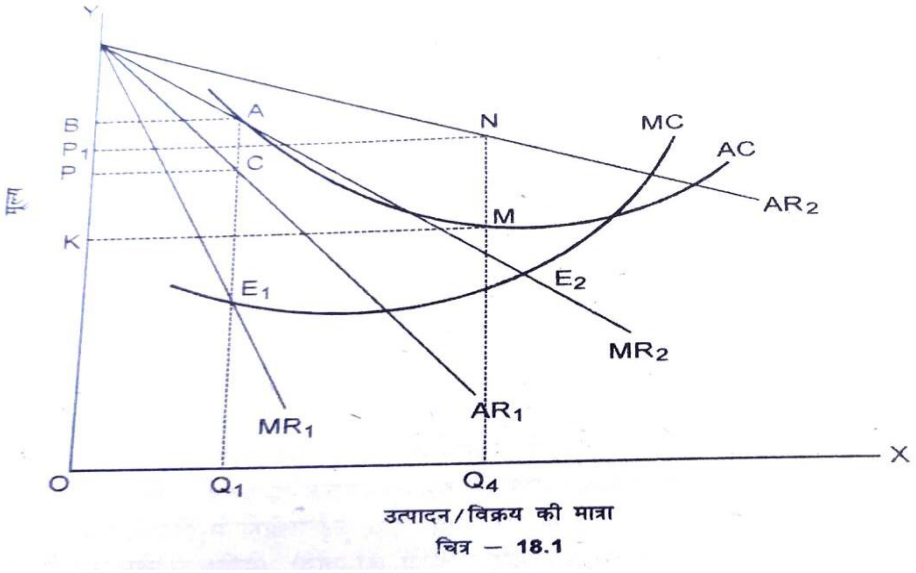

चित्र – 18.1

अब मान लिया. अनेक उद्योगों द्वारा एक साथ अधिक मात्रा में पूजी निवेश (विनियोग) कर दिया जाता है जिससे जूते की मांग में वृद्धि हो जाती है। और बाजार का विस्तार (फैलाव) हो जाता है। मान लिया मांग में चार गुनी वृद्धि अर्थात 40,000 जूते की मांग हो जाती है जिससे चित्र में AR_2 औसत आय रेखा तथा MR_2 सीमांत आय रेखा प्राप्त हो जाती है। इस स्थिति में अब MR_2 तथा MC के कटन बिन्दु E_2 के

आधार पर उत्पादन OQ_4 (अर्थात् 40,000 जूते) होगी जिन्हें OP_1 कीमत बेचा जायेगा। इस दशा में फैक्टरी अपनी लागत भी पूरी कर लेगी और P_1 NMK लाभ भी कमायेगी।

इस उदाहरण के आधार पर रोजेस्टीन रोहान ने यह स्पष्ट किया है कि–

1 परस्पर निर्भर प्रकृति वाले अनेक उद्योगों में एक साथ एक न्यूनतम आवश्यक विनियोग किया जाय।

2. जब तक इस बात का आश्वासन न हो जाये कि आवश्यक पूरक परियोजनाओं में विनियोग किया जायेगा, किसी एक परियोजना को खोलना जोखिम भरा होगा।

सारांश यह है कि निर्णय लेने की प्रक्रिया में अविभाज्यता (Indivisibilities in the decision making process)–की स्थिति होगी जिससे उबरने के लिए प्रबल प्रयास अथवा एक साथ बहुत अधिक संख्या में पूरक उद्योगों में विनियोग करना होगा।

3. बचतों की पूर्ति में अविभाज्यता (Indivisibility in the supply of saving)–एक साथ बहुत अधिक संख्या में पूरक उद्योगों में विनियोग करने के लिए बहुत अधिक मात्रा में पर्याप्त बचत की आवश्यकता होती है। किन्तु अल्प विकसित देशों में आय के निम्न स्तर पर होने के कारण बचत की दर नीची होती है। प्रबल प्रयास के समर्थन में रोडान महोदय का तीसरा तर्क बचतों को पूर्ति में अविभाज्यता से सम्बद्ध है। यह अविभाज्यता इसलिए उत्पन्न होती है क्योंकि आय का उच्चस्तर वचत तथा विनियोग के उच्च स्तर की एक पूर्व शर्त है। विशेष रूप से अल्पविकसित देशों में यह बहुत जरूरी हो गया है कि जब विनियोग वृद्धि के फलस्वरूप आय में वृद्धि हो तो बचत की औसत दर की अपेक्षा बचत की सीमांत दर अधिक तेजी से बढ़े अन्यथा विनियोग निष्क्रिय सिद्ध होगा और पुनर्विनियोग आधिक्य (reinvestible surplus) बहुत कम होगा। प्रो० रोडान के शब्दों में, श्एक न्यूनतम ऊँची मात्रा के विनियोग के लिए ऊंची मात्रा में बचत की आवश्यकता होती है, जिसे अल्पविकसित निम्न आय वाले राष्ट्रों में प्राप्त करना कठिन है। अतः इस विषम चक्र से निकलने के लिए आवश्यक है। कि पहले आय में वृद्धि की

जाये तथा ऐसी व्यवस्था की जाय जिससे दूसरी अवस्था में बचत की सीमांत दर बचत की औसत दर से पर्याप्त ऊँची रहे।

सारांश यह है कि बचत की मात्रा में वृद्धि करने के लिए आय के स्तर को ऊंचा करना एक अनिवार्य शर्त है। बचत अत्यधिक आय–सापेक्ष (Highly Income elastic) होता है। इसका अर्थ यह है कि आग का एक निश्चित स्तर प्राप्त हो जाने के बाद से बचतों में वृद्धि कर पाना संभव हो पाता है। इसके अतिरिक्त आय का स्तर उसी स्थिति में ऊँचा सकता है जब अर्थव्यवस्था में विनियोग बड़ी मात्रा में होगा। विनियोग के बढ़ने पर देश में विद्यमान साधनों का अनुकूलतम प्रयोग होने लगेगा जिससे उत्पादन व आय के स्तर में वृद्धि होगी। इस प्रकार बचत की अविभाज्यता के कारण बड़ी मात्रा में विनियोग आवश्यक बात है। यह विनियोग विदेशी सहायता प्राप्त करके भी किया जा सकता है।

4. मनोवैज्ञानिक अविभाज्यता (Psychological Indivisibility) रोवान के प्रबल प्रयास सिद्धांत में मनोवैज्ञानिक अविभाज्यता का भी समावेश है। रोहान के अनुसार, छोटे और हल्के प्रयास विकास के लिए अल्पविकसित देशों में श्उपयुक्त वातावरण नहीं तैयार कर पाते विकास को बाधाओं को लांघने के लिए बड़ी छलांग या प्रबल प्रयास ही आवश्यक है। रोडान माडल में विकास के लिए प्रेरक तत्व **'और जोर से, और देव और ऊँचे'** वाक्यांश से मेल खाते है जो अपनी सम्पूर्ण ताकत पर आधारित कर्तव्य कर्म (duty) करने का सुझाव देता है।

प्रबल प्रयास में संतुलन
(Equilibrium in Big-Push Effort)

रोजेंस्टीन रोडान का प्रबल प्रयास सिद्धांत के अनुसार आर्थिक विकास केवल बड़ी छलांग (अथवा बड़े धक्के अथवा प्रबल प्रयास) के द्वारा ही सम्भव है। इस व्याख्या में प्रबल प्रयास सिद्धांत स्थैतिक संतुलन के प्रतिष्ठित (परम्परागत) सिद्धांत से श्रेष्ठ है क्योंकि–

1. यह प्रबल प्रयास सिद्धांत स्थैतिक संतुलन–सिद्धांत द्वारा प्रतिपादित इस वाक्य का खंडन करता है कि प्रकृति निश्चित ही चौकड़ियाँ भरती है।
2. प्रबल प्रयास सिद्धांत संतुलन की परिस्थितियों का एक बिन्दु पर नहीं बल्कि संतुलन–पथ (अथवा संतुलन के मार्ग) पर निरीक्षण करता है।
3. प्रबल प्रयास सिद्धांत के अनुसार पूंजी उद्योगों, मध्यम उद्योगों तथा उपभोक्ता वस्तु उद्योगों में लम्बवत् संतुलन होना चाहिए।
4. प्रबल प्रयास सिद्धांत के अनुसार विभिन्न उपभोक्ता वस्तु उद्योगों में उनकी सापेक्षिक मांग के अनुसार समस्तर अथवा क्षैतिजीय संतुलन होना चाहिए।
5. प्रबल प्रयास सिद्धांत के अनुसार पूंजीगत उद्योगों, उपभोक्ता उद्योगों तथा सामाजिक उपरिसुविधाओं के बीच सामान्य संतुलन बना रहना चाहिए।

प्रबल प्रयास सिद्धांत का समीक्षात्मक मूल्यांकन
(A Critical Appraisal of Big-Bush Theory)

गुण (Merits) प्रबल प्रयास सिद्धांत के मुख्य गुण (विशेषताएं) निम्नलिखित है–

1. एक वैज्ञानिक सिद्धांत– प्रबल प्रयास सिद्धांत में इस बात का उल्लेख कि जिस प्रकार हवाई जहाज को उड़ने के लिए जमीन पर एक आवश्यक न्यूनतम गति (a critical ground speed) को बनाये रखना पड़ता है, ठीक उसी प्रकार विकास कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए साधनों की एक आवश्यक न्यूनतम मात्रा होती है जिसका विनियोग करना जरूरी है, प्रस्तुत सिद्धांत को वैज्ञानिक आधार प्रदान करता है।

2. एक तार्किक सिद्धांत– यह सिद्धांत तार्किक दृष्टि से भी काफी उचित जान पड़ता है क्योंकि निर्धनता के कुचक्र से निकलने का एकमात्र उपाय पूरी तरह से सुसंगठित एवं शक्तिशाली ढंग से नियोजित प्रयास करना ही होगा। इस संदर्भ में और जोर से और तेज और ऊँचे वाक्यांश को रोडान महोदय के मनोवैज्ञानिक अविभाज्यता का आधार माना जा सकता है जिसमें श्कर्तव्य कर्मश करने का संदेश निहित है।

3. **एक व्यावहारिक सिद्धांत–** रोहान महोदय की अविभाज्यताओं की व्याख्या सिद्धांत को अधिक व्यावहारिक बनती है। उदाहरण के लिए 1. उत्पादन फलन की अविभाज्यतों में शिक्षा, ऊर्जा, परिवहन, यातायात आदि बुनियादी (अन्तसंरचनात्मक) उद्योगों में विनियोग, 2. माँग की अविभाज्यता के संदर्भ में एकसाथ पूरक उद्योगों में विनियोग आदि प्रबल प्रयास सिद्धांत को अधिक व्यावहारिक बनती है।

इस तरह रोडान का प्रस्तुत सिद्धांत अल्पविकसित देशों में अपूर्ण बाजारों से संबंधित पूंजी निवेश (विनियोग का सिद्धांत है जो इन देशों को विकास के उच्च मार्ग पर पहुंचाने की कार्य करता है।

दोष (Defects) अथवा सीमायें (Limitations)

प्रबल प्रयास सिद्धांत को दोषों से मुक्त नहीं कहा जा सकता। कुछ मुख्य दोष (अथवा कमिया) अथवा सीमाये (Limitations) निम्नलिखित है–

1. सिद्धांत अवास्तविक है–नई पीढ़ी के अनेक अर्थशास्त्री यह स्वीकार करते हैं कि अल्पविकसित देशों के संदर्भ में प्रबल प्रयास सिद्धांत अवास्तविक है क्योंकि ये देश निम्न आय निम्न पूंजी निम्म बचत व पूँजीगत साधनों के अभाव से मस्त होते है अतः बड़ी मात्रा में एकसाथ विनियोग करना आकाश के तारे तोड़ने जैसा है। नयी पीढ़ी के अर्थशास्त्रियों के मुख्य नाम है– मिन्ट ऐडलर, किंडलेवगर, एलिस, वाइनर, रिचर्डनेल्सन, लाइबेस्टीन, रेनिस, फाई, हिंगिस, मायर आदि।

2. सिद्धांत को अपनाने में अनेक कठिनाइयों–प्रो० एच०इ. एलिस (H.E.Ellis) के अनुसार रोडान के प्रबल प्रयास सिद्धांत को अल्पविकसित देशों में अपनाने में (लागू करने में) अनेक कठिनाइयाँ है। उदाहरण के लिए–

(1) ऐतिहासिक कठिनाई– यदि अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास के इतिहास का अध्ययन किया जाय तो जात होता है कि इन राष्ट्रों का विकास बड़े धक्के के आधार पर नहीं हुआ है।

(2) सामाजिक सांस्कृतिक कठिनाई–अत्यविकसित देशों के आर्थिक विकास प्रक्रिया में सामाजिक–राजनीतिक–सांस्कृतिक कठिनाइयां अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि अधिकांश

समाज की सोच व काम करने का तरीका परम्परागत है तो राजनीति में राष्ट्रवादी सोच (अथवा राष्ट्रवादी भावना) का अभाव व अस्थिरता है। समाज नवप्रवर्तनों, नये सुधारों व शिक्षा के मूल्य को समझने में अभी बहुत पीछे है।

(3) बचत की कठिनाई–अल्प विकसित देशों की आय निम्न स्तरीय होती है जिससे वहाँ लोगों की बचत करने की क्षमता भी निम्न स्तरीय ही होती है। बचत आय के उच्च स्तर पर निर्भर करती है किन्तु इसका अल्प विकसित देशों में अभाव पाया जाता है क्योंकि अधिकांश जनसंख्या निर्वाह स्तर पर अपना जीवन यापन करती है।

(4) औद्योगीकरण की गलत मान्यता– यह सिद्धांत यह स्वीकार करता है कि तीव्र औद्योगीकरण से तीव्र आर्थिक विकास संभव होता है किन्तु यह त्रुटिपूर्ण है। अधिकांश देशों ने अपना आर्थिक विकास कृषि में उन्नति से ही किया है।

3. वाह्म मितव्ययिताओं पर अनावश्यक बल–प्रो0 जेकब वाइनर (Jacob Vinor) के अनुसार प्रबल प्रयास सिद्धांत में बाह्य मितव्ययिताओं अथवा बाहरी बचतों पर रोडान ने अनावश्यक बल दिया है क्योंकि इसे विदेशी सहायता से सरलता से प्राप्त किया जा सकता है।

4. अन्य क्षेत्रों की उपेक्षा– यह सिद्धांत कृषि तथा प्राथमिक उद्योगों में विनियोग करने को उपेक्षा करता है। केवल पूंजीगत परियोजनाओं, बड़े उद्योगों में विनियोग सिद्धांत को एकांगी बनाता है।

5. स्फीतिकारी दबावों का उत्पन्न होना– सामाजिक उपरिपूंजी निवेश का प्रभाव लम्बी अवधि में विकास कार्यों पर पड़ता है। इनकी गर्भ अवधि लम्बी होने के कारण अर्थव्यवस्था पर स्फीतिकारी दबाव ही पड़ता है।

6. एक जोशीला नुस्खा– प्रोफेसर हैगन के अनुसार रोहान का प्रबल प्रयास सिद्धांत अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास के लिए 'जोशीला नुस्खा' है जो पढ़ने में अधिक अच्छा लगता है। सिद्धांत भावना प्रधान अधिक है।

ईकाई–01
प्रवल विनियोग तथा न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् शिक्षार्थी यह समझ सकेगें कि–

- प्रबल विनियोग की मूल अवधारणा क्या है–
- नेल्सन के निम्न संतुलन पारा माडल को समझ सकेंगे।
- आर्थिक नीति के मसौदे को बनाते समय यह माडल किस तरह से उपयोगी है।
- आर्थिक विकास के मॉडल में न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की क्या भूमिका है।
- लाइबेंस्टीन के विकास मॉडल को समझ सकेंगे।
- विकास–मॉडल के सन्दर्भ में, बचत, विनियोग कुशलता, अर्थव्यवस्था के प्रोत्साहन एवं झटकों के विषय में विश्लेषण कर सकेंगे।

प्रस्तावना

आर्थिक–विकास के सिद्धान्त में एवं लेक्स्टीन का आवश्यक न्यूनतम प्रयास–सिद्धान्त बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। रोड़ा मॉडल जो कि प्रवल विनियोग सिद्धान्त के आधार पर अल्पविकसित देशों के विकास में किस तरह की भूमिका का निर्वहन कर सकता है। रोडा ने स्वयं द्वारा किये गये अध्ययनों से यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि ऐसे देशों में जनसंख्या से संबन्धित अनेक ऐसी बाधायें प्राप्त होती हैं। जिनसे आर्थिक विकास की शुरूआत ही नहीं हो पाती है। लाइबेस्टीन का आर्थिक विकास–सिद्धान्त पिछड़े देशों के अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला की अल्पविकसित देश जो गरीबी के दुश्चक्र में कैसे हैं से बाहर निकालने के लिये एक न्यूनतम आवश्यक प्रयास की आवश्यकता होती है। यह प्रयास 'झटको एवं प्रोत्साहनों के अधीन होती है झटके मूलतः प्रति व्यक्ति आय में कमी लाते है। जबकि प्रोत्साहन उसे बढ़ाता है। इस इकाई में प्रस्तुत मॉडल का आधार लाइबेस्टीन का अनुभव जनित विश्लेषण है, एवं इस माडल के आधार पर नीति–निर्माण के समय आने वाली

व्यवहारिक कठिनाईयों का भी वर्णन किया गया है। इार्वे लेबेंस्टीन एवं रोजेस्टीन रोडा के सिद्धान्तों की समानता एवं अंतर को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है।

रोजेस्टीन रोडा संतुलित विकास नीति के समर्थक थे किन्तु विकास की धीमी प्रक्रिया से सहमत नहीं थे। रोडा का मानना था कि अल्पविकसित देशों में विकास की बाधाओं को पार करने और उसे विकास के रास्ते पर चलाने के लिये बड़ा धक्का अथवा बड़ा व्यापक कार्यक्रम जरूरी है जो–उच्च मात्रा में पूंजी निवेश (विनियोग) के रूप में हो। दीर्घकालीन स्थिरता अर्थात पिछड़ेपन में फॅसी अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर विकास के मार्ग पर लाने के प्रबल–प्रयास अथवा बड़ा–धक्का बहुत ही आवश्यक है।

रोडान का बड़े धक्के (अथवा प्रबल प्रयास) का सिद्धांत

(Rodan's Theory of the "Big-Push")

प्रोफेसर पॉल एन०रोजेस्टीन रोडान (अथवा रोडा रोदा अथवा रोटान) (Paul N.Rosenstein Rodan) ने अपने 1943 में प्रकाशित एक लेख में संतुलित शब्द का प्रयोग न करते हुए भी "संतुलित विकास सिद्धान्त" का प्रतिपादन किया है जिसे "बड़े धक्के का सिद्धान्त" (The Big-Push Theory) आदि नामों से जाना जाता है। यह सिद्धान्त हार्वे लाइबेंस्टीन के "आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त" से काफी मिलता–जुलता है।

रोडान संतुलित विकास नीति के समर्थक थे किन्तु विकास की धीमी प्रक्रिया से सहमत न थे। रोडान का मत था कि अल्पविकसित देशों में विकास की बाधाओं को पार करने और उसे प्रगति के रास्ते पर चलाने के लिए "बड़ा धक्का" अथवा बड़ा व्यापक कार्यक्रम जरूरी है, जो न्यूनतम किन्तु उच्च मात्रा में पूंजीनिवेश (विनियोग) के रू॰ में हो। दीर्घकालीन स्थिरता और निर्धनता के कुचक्र (दुश्चक्र) में फँसी अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं को आत्मनिर्भर विकास मार्ग पर लाने के लिए 'प्रबल प्रयास' अथवा 'बड़ा धक्का' बहुत जरूरी है। यह ठीक उसी तरह है जिस प्रकार एक सोते हुए व्यक्ति को एकदम झकझोर कर ही जगाना पड़ता है। नियोजित विकास का उद्देश्य अर्थव्यवस्था को उसके 'निम्न स्तरीय साम्य' से झटके के साथ निकालकर संचयी विकास पर आरूढ़ होना चाहिए।

d

अपने तर्क की पुष्टि के लिए रोडान महोय ने MIT अध्ययन प्रस्तुत किया और एक उदाहरण देते हुए कहा कि 'यदि विकास कार्यक्रम को थोड़ा भी सफल बनाना है तो संसाधनों को एक न्यूनतम स्तर उस कार्यक्रम में लगाना ही पड़ेगा। किसी देश को आत्मनिर्भर संवृद्धि की अवस्था में लाना ठीक वैसा ही है जैसा हवाई जहाज को जमीन से हवा में उड़ाना। जिस प्रकार हवाई हजाज को उड़ने के लिए जमीन पर एक 'आवश्यक न्यूनतम गति' को बनाये रखना पड़ता है ठीक उसी प्रकार विकास कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए साधनों (संसाधनों) की एक अनावश्यक न्यूनतम मात्रा होती है जिसका विनियोग (पूंजी निवेश) करना जरूरी है।"

रोडान महोदय का प्रबल प्रयास का सिद्धांत इस मान्यता पर आधारित है कि यदि थोड़ी–थोड़ी मात्रा में विनियोग (पूंजी निवेश) किया जायेगा तो इसका कोई प्रभव देश के आर्थिक विकास पर नहीं पड़ेगा। पिछड़ेपन का गुरूत्वाकर्षण देश को "अल्पस्तरीय साम्य" से बाहर नहीं निकलने देगा और एक तरह से यह दुर्लभ साधनों का अपव्यय मात्र होगा। प्रो० रोडान के अनुसार, 'धीरे–धीरे' चलने से आर्थिक बाधाएं दूर नहीं हो सकती। उदाहरण के लिए एक कमजोर मनुष्य द्वारा किसी शक्तिशाली शिकंजे से मुक्त होने के लिए हल्का–फुल्का प्रयास (लाइबेंस्टीन के शब्दों में आवश्यक न्यूनतम प्रयास) करना अपनी शक्ति को व्यर्थ करने के समान है। उसे तो पनी बची–खुची सम्पूर्ण शक्ति का एक बार समेट कर लगाना होगा ताकि मुक्ति की सम्भावना प्रबल हो सके। यही बात अल्पविकसित देशों के साथ भी लागू होती है।

प्रो० बेंजामिन हिगिंस ने प्रबल प्रयास के सिद्धांत का समर्थन करते हुए लिखा है– "आर्थिक विकास की प्रक्रिया असतत उछालों (विच्छिन्न उछालों) की श्रृखंला है। आर्थिक संवृद्धि के हेतुक कारणों में पाया जाने वाला फलनात्मक सम्बन्ध उछालों तथा विच्छिन्नताों से भरा हुआ है इसलिए न्यूनतम प्रयास या प्रबल धक्का की जरूरत होती है जिससे कि एक गतिहीन अर्थव्यवस्था की प्रारंभिक जड़ता को समाप्त किया जा सके और अर्थव्यवस्था उत्पादन तथा आय के उच्चस्तर को प्राप्त कर सके।"

सिद्धांत का तार्किक आधार (Ligical base of the theory)

रोडान के प्रबल प्रयास (प्रबल धक्का अथवा बड़ा धक्का) सिद्धांत के अनुसार 'धीरे–धीरे' चलने से अर्थव्यवस्था को सफलतापूर्वक विकास मार्ग पर नहीं लाया जा सकता, बल्कि इसके लिए एक आवश्यक न्यूनतम मात्रा में पूंजी निवेश करना जरूरी है। इसके लिए बाहरी बचतों को प्राप्त करना आवश्यक है जो तकनीकी रूप में स्वतंत्र उद्योगों की एकसाथ स्थापना से उत्पन्न होती है। अतः बाहरी बचतों (अथवा बाह्म मितव्ययिताओं) को प्राप्त करने की सम्भावना रोडान महोदय के इस सिद्धांत का प्रमुख आधार है। रोडान महोदय के अनुसार आर्थिक विकास की दृष्टि से किया गया कोई भी नियोजित कार्यक्रम कम से कम एक आवश्यक न्यूनतम आकार का अवश्य होना चाहिए जिससे कि एक तरफ अर्थव्यवस्था में पायी जाने वाली अविभाज्यताओं को कम किया जा सके तो दूसरी ओर बड़े पैमाने पर बाहरी बचतों अथवा बाह्म मितव्ययिताओं को प्राप्त किया जा सके। सारांश यह है कि आर्थिक विकास का आरंभ करने के लिए पूंजी–निवेश (विनियोग) की निश्चित न्यूनतम मात्रा का होना जरूरी है और इसके लिए जरूरी है अविभाज्यताओं को कम करना तथा बाहरी बचतों को प्राप्त करना।

बेंजमिन हिगिन्स के अनुसार रोडान महोदय ने बाहरी बचतों (बाह्म मितव्ययिताओं) का समावेश करके अपने सिद्धांत को एक स्थैतिक सिद्धांत होने से बचा लिया है। हिगिन्स के अनुसार स्थैतिक सिद्धांत में 'बाहरी बचतें' महत्वपूर्ण नहीं होती किन्तु एक विकास सिद्धांत में बाहरी बचतों का महत्व बहुत अधिक होता है। रोडान का प्रबल प्रयास का सिद्धांत के विपरीत है।

अविभाज्यताओं तथा बाहरी बचतों के रूप (Forms of Indivisibilities and External Economies)

रोडान ने चार प्रकार की अविभाज्यताओं तथा बाहरी बचतों का उल्लेख किया है–

1. **उत्पादन फलन की अविभाज्यतायें**–प्रथम प्रकार की अविभाज्यतायें उत्पादन फलन से संबधित है। जिसमें सामाजिक उपरि पूंजी की पूर्ति की अविभाज्यतायें उत्पादन फलन से संबंधित हे। जिसमें सामाजिक उपरि पूंजी की पूर्ति संबंधी अविभाज्यताएँ प्रमुख हैं यहाँ सामाजिक उपरि पूंजी का अर्थ है– शिक्षा, शक्ति, यातायात, परिवहन एवं संचार

आदि विकास मदों पर किया जाने वाला अन्तसंरचना संबंधी पूंजी निवेश। यह अर्थव्यवस्था के औद्योगिक विकास के लिए महत्वपूर्ण तथा आवश्यक होता है। यद्यपि सामाजिक उपरि पूंजी प्रत्यक्ष रूप से उत्पादक न होकर अप्रत्यक्ष रूप से उत्पादक होती है और इसकी गर्भ अवधि भी अपेक्षाकृत लम्बी होती है। लेकिन इसके बावजूद बड़ी मात्रा में इस प्रकार पूंजी–निवेश किया जाना जरूरी होता है क्योंकि–

1. थोड़ी–थोड़ी में अथवा टुकड़ों में व्यय न कर पाने की कठिनाई इस अविभाज्यता को जन्म देती है। इस प्रकार का पूंजी निवेश बाहरी बचतों तथा बढ़ते हुए प्रतिफल का एक प्रभावी स्रोत होता है।
2. ये अविभाज्यताएं संतुलन सिद्धांत के स्थैतिक स्तर पर अपना प्रभाव डालकर उन्हें प्रवैगिक (गत्यात्मक) बनाती है और बढ़ते हुए प्रतिफल तथा तकनीकी बाह्म मितव्ययिताओं (बाहरी बचतों) को प्रोत्साहित करती है।
3. इस प्रकार के पूंजी निवेश (विनियोग) का सबसे बड़ा लाभ अन्य उद्योगों में विनियोग के अवसर उत्पन्न करना है।
4. यह विनियोग समय की दृष्टि से अप्रत्यावर्ती होता है और इसलिए यह जरूरी है कि इसे अन्य प्रकार के विनियोग से पहले किया जाना चाहिए।
5. इन विकास सेवाओं का आयात नहीं किया जा सकता, इसलिए उनका निर्माण देश के अन्दर ही करना पड़ता है।
6. इस प्रकार का पूंजी निवेश एक मुश्त किये जाने की प्रवृत्ति रखता है क्योंकि इसमें टिकाऊपन अथवा गठीलापन का गुण पाया जाता है।
7. इससे प्राप्त होने वाले लाभ भले ही देर से हो किन्तु लम्बे समय तक प्राप्त होते रहते है।

रोडान महोदय के अनुसार उत्पादन फलन संबंधी अविभाज्यतायें आगत, निर्गत तथा उत्पादन प्रक्रिया की दृष्टि से महत्वपूर्ण होती है। इनमें हमें 'बड़ी मात्रा में' तथा 'अनिवार्य रूप से' पूंजी–निवेश (विनियोग) करना ही पड़ता है क्योंकि इन क्षेत्रों में टुकड़ों में विनियोग नहीं किया जा सकता और इन क्षेत्रों को अधूरा भी नही छोड़ा जा सकता। आर्थिक विकास

के लिए इन्हें आधार माना जा सकता है। अतः आर्थिक अन्तसंरचना के निर्माण के लिए बड़ा मात्रा में, अनिवार्य रूप से एक मुश्त विनियोग करना अर्थात पूंजी निवेश का प्रबल प्रयास करना अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में विकास की स्वपोषित शक्तियों को जन्म देने की एक अनिवार्य पूर्वशर्त है।

2. **माँग की अविभाज्यता (Indivisibility of Demand)–** माँग अथवा मांग की अविभाज्यता के कारण यह आवश्यक है कि अल्पविकसित देशों में परस्पर निर्भर उद्योगों की स्थापना एक साथ की जाये। व्यक्तिगत निवेश परियोजनाओं अथवा स्वतंत्र प्रकृति के उद्योगों में यह जोखिम होता है इन उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं की मांग होगी भी अथवा नहीं। अतः अल्पविकसित देशों में यह आवश्यक हो जाता है कि परस्पर निर्भर प्रकृति वाले अनेक उद्योगों में एक साथ विनियोग (पूंजी निवेश) किया जाये। एक साथ कई उद्योगों में विनियोग होने से अन्तःउद्योग मांग बढ़ेगी जिससे कुल मांग (वस्तुओं और सेवाओं की मांग) बढ़ेगी। अर्थव्यवस्था में रोजगार, उत्पादन व आय के स्तर बढ़ जायेंगे। इस तरह संवृद्धि सिद्धांत के संदर्भ में रोडान का प्रबल प्रयास का सिद्धांत केवल संतुलन बिन्दु की व्याख्या न करके संतुलन–पथ की व्याख्या करता है। रोडान महोदय के अनुसार स्थैतिक संतुलन बिन्दु पर शुद्ध पूंजी–निवेश 'शून्य' होता है किन्तु जैसे–जैसे परस्पर निर्भर उद्योगों में पूंजी निवेश की मात्रा बढ़ती जाती है, संतुलन–पथ ऊधर्वगामी होकर विकासोन्मुख हो जाता है। अतः संवृद्धि मोटे तौर पर पूंजी निवेश सिद्धांत हो जाता है। अपनी बात स्पष्ट करने के लिए रोजेस्टीन रोडान ने जूता फैक्टरी या प्रसिद्ध उदाहरण दिया है। शुरू में बंद अर्थव्यवस्था का उदाहरण लेकर रोडान ने अपनी बात स्पष्ट की है। उनके अनुसार मान लिया जूता बनाने के कारखाने में 100 बेरोजगारों को काम में लगाया जाता है। इससे इन बेरोजगारों (श्रमिकों) को रोजगार तो मिलता ही है, उनकी आय भी बढ़ती है। यदि इस कार्य में लगाये गये श्रमिक अपनी समस्त आय जूतों को खरीदने में खर्च कर दे ंतो इस कारखाने के उत्पादन की मांग सदैव बनी रहेगी और कारखाना सफल होकर स्थापित हो जायेगा। किन्तु श्रमिकों की आवश्यकताएं किसी एक वस्तु जूता की न होकर विविध

वस्तुओं की होती है। अतः श्रमिक अपनी समस्त आय जूता क्रय (एक वस्तु के क्रय) में नहीं लगायेंगे। कारखाने के बाहर के लोग गरीब हैं। अपनी अनिवार्यता को पूरी करने में वे सक्षम (समर्थ) नहीं हैं। अतः उनके द्वारा भी इन अतिरिक्त, जूतों की मांग नहीं होगी। मांग की कमी के कारण कारखाना बंद हो सकता है। इसके विपरीत, यदि 100 कारखानों में 10,000 श्रमिक काम में लगे हों और विविध प्रकार की उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करते हों तो वे परस्पर बढ़ी आय से एक दूसरे के उत्पादन की मांग करेंगे। अतः मांग की पूरकता (अथकपूरक मांग की अविभाज्यता) बाजार खोजने के जोखिम को घटाती है। इससे पूंजी निवेश की प्रेरणा को बढ़ावा मिलता है।

चित्र द्वारा व्याख्या (Explannation by diagram)

रोडान महोदय द्वारा जूते की फैक्टरी के सम्बन्ध में दिये गये इस उदाहरण को एक रेखा चित्र के माध्यम से इस प्रकार और स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र–18.1 में जूता फैक्टरी जिस प्लांट पर कार्य कर रही है उसकी औसत लागत AC तथा सीमांत लागत MC है। AR_1 जूता फैक्टरी की माग MR_1 उसकी सीमात आय को बताता है। ये दोनों उस स्थिति को दर्शाते है जब अर्थव्यवस्था में विनियोग केवल जूता की फैक्टरी के लिए किया जाता है। इस स्थिति में MC तथा MR_1 के कटन बिन्दु E_1 के आधार पर उत्पादन OQ_1 (अर्थात 10,000 जूते मान लिया) है जिन्हें OP कीमत पर बेचा जाता है। इस दशा में मांग में कमी के कारण फैक्टरी अपनी लागत नहीं प्राप्त कर पा रही है जिससे फैक्टरी को PC AB हानि उठानी पड़ रही है।

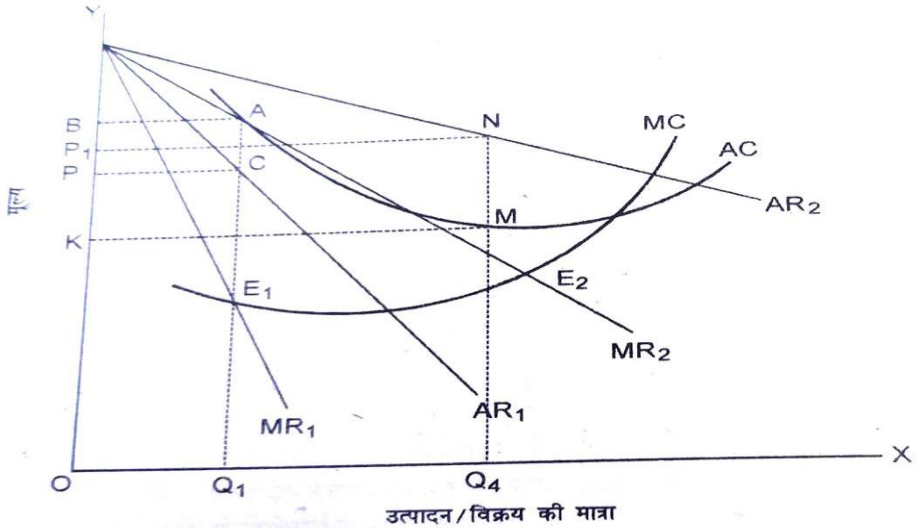

चित्र – 18.1

d

अब मान लिया. अनेक उद्योगों द्वारा एक साथ अधिक मात्रा में पूजी निवेश (विनियोग) कर दिया जाता है जिससे जूते की मांग में वृद्धि हो जाती है। और बाजार का विस्तार (फैलाव) हो जाता है। मान लिया मांग में चार गुनी वृद्धि अर्थात 40,000 जूते की मांग हो जाती है जिससे चित्र में AR_2 औसत आय रेखा तथा MR_2 सीमांत आय रेखा प्राप्त हो जाती है। इस स्थिति में अब MR_2 तथा MC के कटन बिन्दु E_2 के आधार पर उत्पादन OQ_4 (अर्थात् 40,000 जूते) होगी जिन्हें OP_1 कीमत बेचा जायेगा। इस दशा में फैक्टरी अपनी लागत भी पूरी कर लेगी और P_1 NMK लाभ भी कमायेगी।

इस उदाहरण के आधार पर रोजेस्टीन रोहान ने यह स्पष्ट किया है कि–

1 परस्पर निर्भर प्रकृति वाले अनेक उद्योगों में एक साथ एक न्यूनतम आवश्यक विनियोग किया जाय।

2. जब तक इस बात का आश्वासन न हो जाये कि आवश्यक पूरक परियोजनाओं में विनियोग किया जायेगा, किसी एक परियोजना को खोलना जोखिम भरा होगा।

सारांश यह है कि निर्णय लेने की प्रक्रिया में अविभाज्यता (Indivisibilities in the decision making process)–की स्थिति होगी जिससे उबरने के लिए प्रबल प्रयास अथवा एक साथ बहुत अधिक संख्या में पूरक उद्योगों में विनियोग करना होगा।

3. बचतों की पूर्ति में अविभाज्यता (Indivisibility in the supply of saving)–एक साथ बहुत अधिक संख्या में पूरक उद्योगों में विनियोग करने के लिए बहुत अधिक मात्रा में पर्याप्त बचत की आवश्यकता होती है। किन्तु अल्प विकसित देशों में आय के निम्न स्तर पर होने के कारण बचत की दर नीची होती है। प्रबल प्रयास के समर्थन में रोडान महोदय का तीसरा तर्क बचतों को पूर्ति में अविभाज्यता से सम्बद्ध है। यह अविभाज्यता इसलिए उत्पन्न होती है क्योंकि आय का उच्चस्तर वचत तथा विनियोग के उच्च स्तर की एक पूर्व शर्त है। विशेष रूप से अल्पविकसित देशों में यह बहुत जरूरी हो गया है कि जब विनियोग वृद्धि के फलस्वरूप आय में वृद्धि हो तो बचत की औसत दर की अपेक्षा बचत की सीमांत दर अधिक तेजी से बढ़े अन्यथा विनियोग निष्क्रिय सिद्ध होगा

और पुनर्विनियोग आधिक्य (reinvestible surplus) बहुत कम होगा। प्रो० रोडान के शब्दों में, श्एक न्यूनतम ऊँची मात्रा के विनियोग के लिए ऊंची मात्रा में बचत की आवश्यकता होती है, जिसे अल्पविकसित निम्न आय वाले राष्ट्रों में प्राप्त करना कठिन है। अतः इस विषम चक्र से निकलने के लिए आवश्यक है। कि पहले आय में वृद्धि की जाये तथा ऐसी व्यवस्था की जाय जिससे दूसरी अवस्था में बचत की सीमांत दर बचत की औसत दर से पर्याप्त ऊँची रहे।

सारांश यह है कि बचत की मात्रा में वृद्धि करने के लिए आय के स्तर को ऊंचा करना एक अनिवार्य शर्त है। बचत अत्यधिक आय–सापेक्ष (Highly Income elastic) होता है। इसका अर्थ यह है कि आग का एक निश्चित स्तर प्राप्त हो जाने के बाद से बचतों में वृद्धि कर पाना संभव हो पाता है। इसके अतिरिक्त आय का स्तर उसी स्थिति में ऊँचा सकता है जब अर्थव्यवस्था में विनियोग बड़ी मात्रा में होगा। विनियोग के बढ़ने पर देश में विद्यमान साधनों का अनुकूलतम प्रयोग होने लगेगा जिससे उत्पादन व आय के स्तर में वृद्धि होगी। इस प्रकार बचत की अविभाज्यता के कारण बड़ी मात्रा में विनियोग आवश्यक बात है। यह विनियोग विदेशी सहायता प्राप्त करके भी किया जा सकता है।

4. मनोवैज्ञानिक अविभाज्यता (Psychological Indivisibility) रोवान के प्रबल प्रयास सिद्धांत में मनोवैज्ञानिक अविभाज्यता का भी समावेश है। रोहान के अनुसार, छोटे और हल्के प्रयास विकास के लिए अल्पविकसित देशों में श्उपयुक्त वातावरण नहीं तैयार कर पाते विकास को बाधाओं को लांघने के लिए बड़ी छलांग या प्रबल प्रयास ही आवश्यक है। रोडान माडल में विकास के लिए प्रेरक तत्व **'और जोर से, और देव और ऊँचे'** वाक्यांश से मेल खाते है जो अपनी सम्पूर्ण ताकत पर आधारित कर्तव्य कर्म (duty) करने का सुझाव देता है।

प्रबल प्रयास में संतुलन
(Equilibrium in Big-Push Effort)

रोजेंस्टीन रोडान का प्रबल प्रयास सिद्धांत के अनुसार आर्थिक विकास केवल बड़ी छलांग (अथवा बड़े धक्के अथवा प्रबल प्रयास) के द्वारा ही सम्भव है। इस व्याख्या में प्रबल प्रयास सिद्धांत स्थैतिक संतुलन के प्रतिष्ठित (परम्परागत) सिद्धांत से श्रेष्ठ है क्योंकि–

1. यह प्रबल प्रयास सिद्धांत स्थैतिक संतुलन–सिद्धांत द्वारा प्रतिपादित इस वाक्य का खंडन करता है कि प्रकृति निश्चित ही चौकड़ियाँ भरती है।
2. प्रबल प्रयास सिद्धांत संतुलन की परिस्थितियों का एक बिन्दु पर नहीं बल्कि संतुलन–पथ (अथवा संतुलन के मार्ग) पर निरीक्षण करता है।
3. प्रबल प्रयास सिद्धांत के अनुसार पूंजी उद्योगों, मध्यम उद्योगों तथा उपभोक्ता वस्तु उद्योगों में लम्बवत् संतुलन होना चाहिए।
4. प्रबल प्रयास सिद्धांत के अनुसार विभिन्न उपभोक्ता वस्तु उद्योगों में उनकी सापेक्षिक मांग के अनुसार समस्तर अथवा क्षैतिजीय संतुलन होना चाहिए।
5. प्रबल प्रयास सिद्धांत के अनुसार पूंजीगत उद्योगों, उपभोक्ता उद्योगों तथा सामाजिक उपरिसुविधाओं के बीच सामान्य संतुलन बना रहना चाहिए।

प्रबल प्रयास सिद्धांत का समीक्षात्मक मूल्यांकन
(A Critical Appraisal of Big-Bush Theory)

गुण (Merits) प्रबल प्रयास सिद्धांत के मुख्य गुण (विशेषताएं) निम्नलिखित है–

1. एक वैज्ञानिक सिद्धांत– प्रबल प्रयास सिद्धांत में इस बात का उल्लेख कि जिस प्रकार हवाई जहाज को उड़ने के लिए जमीन पर एक आवश्यक न्यूनतम गति (a critical ground speed) को बनाये रखना पड़ता है, ठीक उसी प्रकार विकास कार्यक्रम

को सफल बनाने के लिए साधनों की एक आवश्यक न्यूनतम मात्रा होती है जिसका विनियोग करना जरूरी है, प्रस्तुत सिद्धांत को वैज्ञानिक आधार प्रदान करता है।

2. एक तार्किक सिद्धांत– यह सिद्धांत तार्किक दृष्टि से भी काफी उचित जान पड़ता है क्योंकि निर्धनता के कुचक्र से निकलने का एकमात्र उपाय पूरी तरह से सुसंगठित एवं शक्तिशाली ढंग से नियोजित प्रयास करना ही होगा। इस संदर्भ में और जोर से और तेज और ऊँचे वाक्यांश को रोडान महोदय के मनोवैज्ञानिक अविभाज्यता का आधार माना जा सकता है जिसमें श्कर्तव्य कर्मश करने का संदेश निहित है।

3. **एक व्यावहारिक सिद्धांत–** रोहान महोदय की अविभाज्यताओं की व्याख्या सिद्धांत को अधिक व्यावहारिक बनती है। उदाहरण के लिए 1. उत्पादन फलन की अविभाज्यतों में शिक्षा, ऊर्जा, परिवहन, यातायात आदि बुनियादी (अन्तसंरचनात्मक) उद्योगों में विनियोग, 2. माँग की अविभाज्यता के संदर्भ में एकसाथ पूरक उद्योगों में विनियोग आदि प्रबल प्रयास सिद्धांत को अधिक व्यावहारिक बनती है।

इस तरह रोडान का प्रस्तुत सिद्धांत अल्पविकसित देशों में अपूर्ण बाजारों से संबंधित पूंजी निवेश (विनियोग का सिद्धांत है जो इन देशों को विकास के उच्च मार्ग पर पहुंचाने की कार्य करता है।

दोष (Defects) अथवा सीमायें (Limitations)

प्रबल प्रयास सिद्धांत को दोषों से मुक्त नहीं कहा जा सकता। कुछ मुख्य दोष (अथवा कमिया) अथवा सीमाये (Limitations) निम्नलिखित है–

1. सिद्धांत अवास्तविक है–नई पीढ़ी के अनेक अर्थशास्त्री यह स्वीकार करते हैं कि अल्पविकसित देशों के संदर्भ में प्रबल प्रयास सिद्धांत अवास्तविक है क्योंकि ये देश निम्न आय निम्न पूंजी निम्म बचत व पूँजीगत साधनों के अभाव से मस्त होते है अतः बड़ी मात्रा में एकसाथ विनियोग करना आकाश के तारे तोड़ने जैसा है। नयी पीढ़ी के अर्थशास्त्रियों के मुख्य नाम है– मिन्ट ऐडलर, किंडलेवगर, एलिस, वाइनर, रिचर्डनेल्सन, लाइबेस्टीन, रेनिस, फाई, हिंगिस, मायर आदि।

2. सिद्धांत को अपनाने में अनेक कठिनाइयों—प्रो० एच०इ. एलिस (H.E.Ellis) के अनुसार रोडान के प्रबल प्रयास सिद्धांत को अल्पविकसित देशों में अपनाने में (लागू करने में) अनेक कठिनाइयाँ है। उदाहरण के लिए—

(1) ऐतिहासिक कठिनाई— यदि अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास के इतिहास का अध्ययन किया जाय तो जात होता है कि इन राष्ट्रों का विकास बड़े धक्के के आधार पर नहीं हुआ है।

(2) सामाजिक सांस्कृतिक कठिनाई—अत्यविकसित देशों के आर्थिक विकास प्रक्रिया में सामाजिक—राजनीतिक—सांस्कृतिक कठिनाइयां अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि अधिकांश समाज की सोच व काम करने का तरीका परम्परागत है तो राजनीति में राष्ट्रवादी सोच (अथवा राष्ट्रवादी भावना) का अभाव व अस्थिरता है। समाज नवप्रवर्तनों, नये सुधारों व शिक्षा के मूल्य को समझने में अभी बहुत पीछे है।

(3) बचत की कठिनाई—अल्प विकसित देशों की आय निम्न स्तरीय होती है जिससे वहाँ लोगों की बचत करने की क्षमता भी निम्न स्तरीय ही होती है। बचत आय के उच्च स्तर पर निर्भर करती है किन्तु इसका अल्प विकसित देशों में अभाव पाया जाता है क्योंकि अधिकांश जनसंख्या निर्वाह स्तर पर अपना जीवन यापन करती है।

(4) औद्योगीकरण की गलत मान्यता— यह सिद्धांत यह स्वीकार करता है कि तीव्र औद्योगीकरण से तीव्र आर्थिक विकास संभव होता है किन्तु यह त्रुटिपूर्ण है। अधिकांश देशों ने अपना आर्थिक विकास कृषि में उन्नति से ही किया है।

3. वाह्म मितव्ययिताओं पर अनावश्यक बल—प्रो0 जेकब वाइनर (Jacob Vinor) के अनुसार प्रबल प्रयास सिद्धांत में बाह्य मितव्ययिताओं अथवा बाहरी बचतों पर रोडान ने अनावश्यक बल दिया है क्योंकि इसे विदेशी सहायता से सरलता से प्राप्त किया जा सकता है।

4. अन्य क्षेत्रों की उपेक्षा— यह सिद्धांत कृषि तथा प्राथमिक उद्योगों में विनियोग करने को उपेक्षा करता है। केवल पूंजीगत परियोजनाओं, बड़े उद्योगों में विनियोग सिद्धांत को एकांगी बनाता है।

5. स्फीतिकारी दबावों का उत्पन्न होना– सामाजिक उपरिपूंजी निवेश का प्रभाव लम्बी अवधि में विकास कार्यों पर पड़ता है। इनकी गर्भ अवधि लम्बी होने के कारण अर्थव्यवस्था पर स्फीतिकारी दबाव ही पड़ता है।

6. एक जोशीला नुस्खा– प्रोफेसर हैगन के अनुसार रोहान का प्रबल प्रयास सिद्धांत अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास के लिए 'जोशीला नुस्खा' है जो पढ़ने में अधिक अच्छा लगता है। सिद्धांत भावना प्रधान अधिक है।

विकास एवं लाबेंस्टीन–माडल

(Leibenstein-Model of development)

प्रो० हार्वे लाइबेंस्टीन ने भारत, इंडोनेशिया तथा चीन जैसे पिछड़े देशों का अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि अल्पविकसित देशों को गरीबी के दुश्चक्र से मुक्त कराने के लिए एक न्यूनतम आवश्यक प्रयास की आवश्यकता होती है यह निष्कर्ष उन्होंने अपनी 'इकानॉमिक बैकवार्डनेस एण्ड इकानॉमिक ग्रोथ'[1] नामक पुस्तक में दिया है। उसने अल्पविकसित देशों को स्थिरता की अवस्था से उबारने के लिए 'काष्ठान्यूनतम प्रयत्न' अथवा 'आवश्यक न्यूनतम' सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। इसे विकास का लाइबेंस्टीन–सिद्धान्त अथवा माडल भी कहा जाता है। लाइबेंस्टीन–माडल (अथवा) की प्रमुख कड़ियाँ इस प्रकार है–

लाइबेंस्टीन–माडल

(Leibenstein-Model)

बचत विनियोग की एक आवश्यक न्यूनतम मात्रा तथा साहस जनित कुशलता के आधार पर हार्वे लाइबेंस्टीन ने अल्पविकसित एवं विकासशील देशों के आर्थिक विकास के संदर्भ में अपना एक माडल विकसित किया है जिसमें उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि ऐसे देशों में गरीबी का दुश्चक्र [2] पाया जाता है, जो पूरी व्यवस्था को प्रति व्यक्ति निम्न आय संतुलन दशा के अत्यंत समीप रखता है। इस दलदल से निकलने का मार्ग है 'आवश्यक न्यूनतम प्रयास' का किया जाना। यह प्रयास अर्थव्यवस्था में 'झटकों' एवं 'प्रोत्साहनों' के अधीन होती है। झटके मूलतः प्रति व्यक्ति आय में कमी लाते है। जबकि प्रोत्साहन उसे बढ़ावा है। वस्तुतः कुछ देश इस

लिए अल्प विकसित हैं क्योंकि उनमें प्रोत्साहनों का आकार थोड़ा रहा है जबकि झटकों का आकार अधिक।

जनसंख्या–वुद्धि प्रति व्यक्ति आय का फलन (Population Growth a Function of Percapita Income)

प्रस्तुत माडल का आधार लाइबेंस्टीन का अनुभव जनित विश्लेषण है जो इस तथ्य की पुष्टि करता है कि जनसंख्या वृद्धि की दर (1) प्रति व्यक्ति आय स्तर का फलन होती है, तथा (2) आर्थिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं से गहरा संबंध रखती है। प्रारम्भ में, निर्वाह संतुलन स्तर आय पर जनसंख्या की जीवित दर के अनुरूप, जन्म तथा मृत्यु दरें अधिकतम होती हैं (तुलनीयः सी०पी० ब्लेकर द्वारा प्रस्तुत जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त की प्रथम अवस्था) परन्तु यदि प्रति व्यक्ति आय को निर्वाह के संतुलन स्थिति से ऊपर बढ़ा दिया जाये तो मृत्यु दर गिर जायेगी किन्तु जन्मदर में कोई कमी नहीं होगी। ऐसा इसलिए होगा क्योंकि जन्मदर प्रजनन हेतु क्षमता, प्रजनन हेतु निर्णय, प्रजनन हेतु अवसर, परिवार का आकार, व्यक्ति की मनोदशा आदि से संबंधित अन्तर्जात तत्वों पर निर्भ करता है किन्तु मृत्युदर उत्तम सफाई व्यवस्था, स्वास्थ्य सुविधाएं आदि बहिर्जात तत्वों पर निर्भर करता है। अन्तर्जात तत्वों पर नियंत्रण मे समय लगता है जबकि बहिर्जात तत्वों के लागू होने में, तुलना की दृष्टि में, अल्प समय की ही आवश्यकता पड़ती है। परिणामस्वरूप जनसंख्या वृद्धि की दर बढ़ जाएगी। इस प्रकार प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि जनसंख्या की वृद्धि (दर) को बढ़ाती है (तुलनीयः सी०पी०ब्लेकर द्वारा प्रस्तुत जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त की द्वितीय एवं तृतीय अवस्थायें)। एक निश्चित सीमा तक ही ऐसा होता है। इसके बाद प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि जन्मदर को घटा देती है और ज्यों ज्यों विकास की गति बढ़ती जाती है जनसंख्या की वृद्धि दर गिरती जाती है (तुलनीयः जनांकिकीय संक्रमण सिद्धांत की चतुर्थ एवं पंचम अवस्थायें)। लाइबेंस्टीन के प्रस्तुत तर्क का आधार ड्यूमोण्ट का 'सामाजिक कैशिकी शोध प्रबंध' है जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होने पर माता–पिता की आय अनुपूर्ति हेतु अधिक बच्चों की इच्छा घट जाती है। बढ़ते हुए आय स्तर के कारण स्वरूप बढ़ता हुआ विशेषीकरण और परिणामतः सामाजिक तथा आर्थिक गतिशीलता बड़े परिवार के पोषण को कठिन तथा महंगा बना देते है। इसलिए ज्यों ज्यों अर्थव्यवस्था विकास के पथ पर बढ़ती है, जनसंख्या

वृद्धि की दर पहले तेजी से बढ़ती है, बाद में स्थिर होती है और अन्त में, धीरे धीरे गिरा शुरू करती है। ज्ञातव्य है कि, लाइबेंस्टीन जनसंख्या की जैव निर्धारित अधिकतम वृद्धि दर को 3 और 4 प्रतिशत के बीच मानते है। उनके अनुसार इस जनसंख्या उभार को, जिसे अब 'जनसंख्या विष्फोट' की संज्ञा दी जाती है, को पार करने के लिए किया जाने वाला आवश्यक न्यूनतम प्रयास काफी बड़ा अर्थात प्रति व्यक्ति आय वृद्धि दर 4 प्रतिशत से अधिक होना चाहिए।

माडल (सिद्धांत) की व्यख्या (Explanation of the Model or Theory)

लाइबेंस्टीन ने अपने माडल में यह स्पष्ट किया कि बचत एवं विनियोग के रूप में प्रति व्यक्ति आय वृद्धि हेतु किया जाने वाला आवश्यक न्यूनतम प्रयास अर्थव्यवस्था में दो प्रकार की शक्तियों को जन्म देती हैः एक, ऐसी शक्तियां जो आय को नष्ट करती है या कम करती है, जेसेः जनसंख्या वृद्धि, एवं दूसरे, ऐसी शक्तियां जो आय को बढ़ाती है। इन्हें आय हासक शक्तियां एवं आय जनक शक्तियाँ कहेगें। अब यदि आवश्यक न्यूनतम प्रयास कम है और प्रति व्यक्ति आय भी एक निश्चित सीमा से कम है तो आय नष्ट करने वाली शक्तियां अधिक प्रबल होगी तथा आय उत्पन्न करने वाली शक्तियां कमजोर होगी। अतः आर्थिक विकास को प्रारंभ करने के लिए यह आवश्यक है कि आय वृद्धिके रूप में कम से कम इतना प्रयास किया जाय कि आय को उत्पन्न करने वाली शक्तियां आय को नष्ट करने वाली शक्तियों से अधिक शक्तिशाली हो सकें।

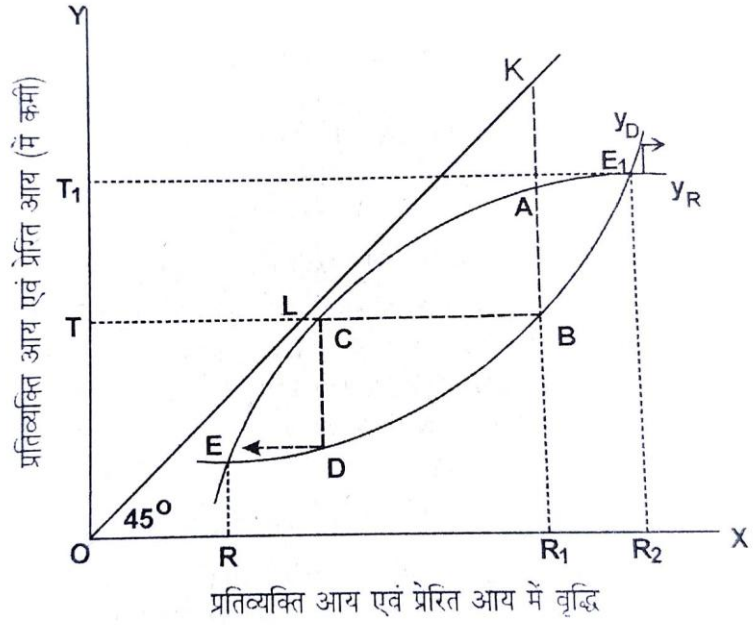

चित्र – 20.1

d

लाइबेंस्टीन के आवश्यक न्यूनतम प्रयास माडल की सरल व्याख्या को रेखाचित्र–20.1 द्वारा देखा जा सकता है जिसमें OX पर प्रति व्यक्ति आय तथा प्रेरित आय वृद्धि और OY पर प्रति व्यक्ति आय तथा प्रेरित आय हास (कमी) को मापा गया है। प्रेरित आय वृद्धि जो आय जनक शक्तियों का परिणाम है, और प्रेरित आय ह्रासक शक्तियों का परिणाम है, को 45^0 रेखा द्वारा माया गया है। Y_R वक्र आय उत्पन्न करने वाली शक्तियों को दिखाती है और Y_D वक्र आय नष्ट करने वाली शक्तियों को तथा बिन्दुओं पर ये वक्र आपस में एक दूसरे को काटते है जहाँ आय जनक शक्तियां आय ह्रासक शक्तियों के बराबर है। अब यदि आवश्यक न्यूनतम प्रयास के प्राथमिक चरण में एक इकाई का विनियोग किय जाता है जिससे प्रति व्यक्ति आय बढ़कर OR_1 होती है तो इस अवस्था में आय जनक शक्तियां एवं आय ह्रासक शक्तियां क्रमशः AK तथा BK के बराबर है। क्योंकि आय नष्ट करने वाली शक्तियां अधिक है आय वृद्धि करने वाली शक्तियों से अर्थात (BK>AK) । अतः अर्थव्यवस्था की विकास प्रक्रिया निर्भरित होकर संचयी न हो सकेगी। आय धीरे–धीरे घटकर E बिन्दु पर पहुंच जाएगी, जैसा कि चित्र (20.1) में तीर द्वारा दिखाया गया है। स्पष्ट है, प्रथम दशा में जब आय घटती है तो दूसरी दशा में OT के बराबर है जिस पर भी आय को नष्ट करने वाली शक्तियां अधिक हैं आय को उत्पन्न करने वाली शक्तियों (LB>LC) से। अतः अर्थव्यवस्था अब D की ओर मुड़ेगी और यह क्रिया तब तक अवाध गति से (निरंतर रूप से) चलती रहेगी जब तक कि E वह पर न पहुंच जाये जो आय का निम्न स्तरन है और जहां ये दोनों शक्तियां संतुलन में है। स्पष्ट है कि R से R_1 तक बीच में जो भी विनियोग किया जाता है उससे आय ह्रासक शक्तियां अधिक शक्तिशाली है आय को उत्पन्न करने वाली शक्तियों से। दूसरे, R_1 तक किया गया यह विनियोग और उससे उत्पन्न आय आवश्यक न्यूनतम प्रयास से कम है और इसलिए प्राथमिक चरण में किया गया यह विनियोग आर्थिक विकास को सृजित न कर सकेगा। किन्तु यदि विनियोग की मात्रा OR_1 से अधिक होती है उस दशा में आय को उत्पन्न करने वाली शक्तियां अधिक शक्तिशाली है आय को नष्ट करने वाली शक्तियों से अर्थात (AK>BK) इस दशा में अर्थव्यवस्था आत्म–निर्भरित एवं संचयी अर्थिक विकास के लिए अनुकूल दशा में है। जैसा कि रेखा चित्र–20.1 में संकेत किया गया है कि जैसे–जैसे विनियोग की मात्रा OT से अधिक होगी आर्थिक विकास की क्रिया उतनी ही आत्म निर्भर एवं संचयी होगी।

d

लाइबेंस्टीन माडल का आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Appraisal of Leibentein-Model)

आवश्यक न्यूनतम प्रयास–सिद्धान्त (अथवा माडल) के संदर्भ में हार्वे लाइबेंस्टीन का विश्लेषण अर्थव्यवस्था द्वारा किये जाने वाले समग्र बचत, विनियोग एवं साहस जनित कुशलता जैसे आर्थिक चरों के प्रति हमारा ध्यान आकर्षित करता है। इसके अतिरिक्त, लाइबेंस्टीन – माडल विकास–क्रिया को आरंभ करने के लिए अर्थव्यवस्था में प्राप्त 'झटको' में कमी तथा 'प्रोत्साहनो' में वृद्धि करने का सुझाव देता है। माडल की ये विशेषतायें हैं। इन विशेषताओं के आधार पर अल्पविकसित देशों की विकास–क्रिया का आरंभ किया जा सकता है और विकास–प्रक्रिया को बचत, विनियोग एवं साहस जनित कुशलता के आधार पर 'आत्मनिर्भर' स्वचालित तथा संचयी बनाया जा सकता है।

किन्तु उपर्युक्त सुझावों के संदर्भ में कुछ व्यावहारिक कठिनाइयां है जिनका संक्षिप्त उललेख इस प्रकार है–

1. **जनसंख्या में वृद्धि प्रति–व्यक्ति आय में वृद्धि का परिणाम नहीं** बल्कि शिशु मृत्युदर में वृद्धि का परिणाम है। शिशु मृत्युदर में वृद्धि होने से लोग अधिक संतान की उम्मीद करते हैं और यह मानते है कि इनमें से कुछ तो जिन्दा रह सकेंगे।
2. **बचत–वृद्धि का उचित आधार नहीं–** लाइबेंस्टीन माडल में बचत–वृद्धि को विनियोग के लिए आवश्यक माना गया है किन्तु बचत में यह वृद्धि किस तरह की जा सकेगी, इसका उल्लेख नहीं है।
3. **माडल की आधारभूत मान्यता का दोषपूर्ण होना–** प्रो० मिंट लाइबेंस्टीन की इस मान्यता से भी सहमत नहीं है कि अगर प्रारंभिक विनियोग आवश्यक न्यूनतम आकार से कम हुआ तो जनसंख्या बढ़ जायेगी। किन्तु यह व्यवहार में सही नहीं है।
4. **जन्म दर में कमी का कारण प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि नहीं–** ऐसा विकसित देशों के लिए सही माना जा सकता है किन्तु अल्पविकसित देशों में जन्मदर में कमी सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारणों से भी प्रभावित होती है। हाल के वर्षों में जन्म दर में इस कमी का मुख्य कारण शिशु मृत्यु दर में कमी को पाया गया है।

5. **बन्द अर्थव्यवस्था आधारित माडल–** लाइबेंस्टीन–माडल में अर्थव्यवस्था को बंद मान लिया गया है जबकि आधुनिक युग में वैश्वीकरण के कारण अर्थव्यवस्थायें खुले प्रकार की हो चुकी हैं। इस माडल में विनियोग का आधार घरेलू 'बचतो' को ही स्वीकार कर लिया गया है।

रोजेस्टीन रोडान तथा हार्वे लाइबेंस्टीन के विचारों में समानता व अन्तर–

अल्प विकसित देशों में प्राप्त गरीबी (निर्धनता) के कुचक्र को तोड़ने के लिए 'आवश्यक न्यूनतम प्रयास' का किया जाना बहुत जरूरी तथा व्यावहारिक है। यह समयानुसार व युक्ति पूर्ण और लोकतंत्रात्मक नियोजन से मेल खाता है।

रोजेस्टीन रोडान अपने प्रबल धक्के के सिद्धान्त में गरीबी के कुचक्र को तोड़ने का उपाय बताते हुए यह कहते हैं कि अल्प विकसित देशों में औद्योगीकरण व विकास के लिए 'प्रबल प्रयास' किया जाना चाहिए। रोडान के अनुसार प्रबल–प्रयास के रूप में विनियोग एकमुश्त के रूप में किया जाना चाहिए। जबकि लाइबेंस्टीन के अनुसार विनियोग छोटी–छोटी बचतों के रूप में प्राप्त छोटी–छोटी मात्रा के रूप में किया जा सकता है। इससे प्रतिव्यक्ति आय को बढ़ाया जा सकता है। अतः लाइबेंस्टीन के सुझाव अल्पविकसित देशों के संदर्भ में अधिक सरल व व्यावहारिक हैं।

सारांश

रोजेस्ट्रीन रोडा के थीसिस का निष्कर्ष यह था कि यदि थोड़ी मात्रा में विनियोग किया जायेगा तो इसका कोई भी दीर्घकालीन प्रमुख देश के आर्थिक विकास पर नहीं दिखायी देगा क्योंकि पिछड़ेपन का गुरूत्वाकर्षण देश को बाहर निकलने नहीं देगा और एक प्रकार से यह दुकये साधनों की बर्वादी ही होगी धीरे–धीरे चलने से आर्थिक बाधायें दूर नहीं हो सकती, पिछड़ेपन से बाहर आने के लिये अपनी सम्पूर्ण शक्ति को एक बार इक्ठ्ठा करके लगाना होगा ताकि पिछड़ेपन से बाहर निकलने की संभावना प्रबल हो सके यही बात रोड़ा ने अल्पविकसित देशों के साथ लागू होने के लिये बताई।

लाइबेस्टीन का आवश्यक न्यूनतम प्रयास का उद्देश्य भी रोड़ा की तरह अल्पविकसित अर्थव्यवस्था को निर्धनता के कुचक्र से छुटकारा दिलाकर सतत विकास के मार्ग पर लाना है लाइबेस्टीन का विश्लेषण अर्थव्यवस्था द्वारा किये जाने वाले सम्पूर्ण बचत, निवेश, एवं उद्यमी की कुशलता जैसे आर्थिक चरों के प्रति हमारा ध्यान आकर्षित करता है। इसके अतिरिक्त लाइबेस्टीन मॉडल विकास की प्रक्रिया को प्रारंभ करने के लिये अर्थव्यवस्था में प्राप्त झटकों में कमी तथा प्रोत्साहनों में वृद्धि करने का सुझाव देता है। उन्होंने यह विश्लेषित किया कि बचत एवं विनियोग के रूप में प्रति व्यक्ति आय वृद्धि हेतु किया जाने वाला आवश्यक न्यूनतम प्रयास अर्थव्यवस्था में दो प्रकार की शक्तियों को जन्म देती है। एक ऐसी शक्ति जो आय को नष्ट कर देती है या कम कर देती है। जैसे जनसंख्या वृद्धि दूसरी ऐसी शक्ति जो आय को बढ़ाती है। लाइबेस्टीन महोदय का मानना है कि आवश्यक है कि आय वृद्धि के रूप में कम से कम इतना प्रयास निश्चित रूप से किया जाय कि आय को उत्पन्न करने वाली शक्तियां आय को नष्ट करने वाली शक्तियों से अधिक प्रभावशाली हो।

बोध–प्रशन

- आर्थिक विकास के 'प्रबल–प्रयास' सिद्धान्त क्या है। किन परिस्थितियों मे इसे लागू किया जाता है।
- रोजस्टीन रोडा के बड़े–धक्के के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।
- प्रबल–प्रयास सिद्धान्त में अविभाज्यताओं को समझाइये।
- आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।
- क्रांतिक न्यूनतम प्रयास की धारणा पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
- आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की भारत जैसे विकासशील देश में इसकी प्रसंगिकता बताइयें।

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से शिक्षार्थी यह समझ सकेंगे कि–

- स्तुलित एवं असंतुलित विकास की अवधारणा क्या है।
- कौन–कौन से अर्थशास्त्री संतुलित–विकास सिद्धान्त के पक्ष में थे।
- किस अर्थशास्त्री का मंतत्य असन्तुलित विकास के सिद्धांत के पक्षद्यर समूह के विद्धानों के साथ था।
- संतुलित विकास दृष्टिकोण के सन्दर्भ में रोजेस्टीन रोडा, रेगनर नर्क्स आचार का समझ सकेंगे।
- सन्तुलित विकास में साकार की क्या भूमिका है।
- असन्तुलित विकास के प्रवर्तक एवं समर्थक अर्थशास्त्रियों के दृष्टिकोण को समझ सकेंगे।

प्रस्तावना

आर्थिक विकास एक प्रावैगिक प्रक्रिया है। जिसके अन्तर्गत किसी अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय निरंतर लम्बे समय तक बढ़ती रहती है और यदि आर्थिक विकास की दर जनसंख्या वृद्धि की दर से अधिक होती है। तो प्रतिव्यक्ति आय बढ़ेगी। आर्थिक विकास की प्रक्रिया का उद्देश्य किसी अर्थव्यवस्था को आर्थिक विकास के प्रस्थान की दशा से आत्मनिर्भरता की दशा में परिवर्तन करने से है। आर्थिक विकास की अवश्यकताओं में प्रस्थान की दशा (आत्म स्फूर्ति की अवस्था) का महत्वपूर्ण स्थान है। अधिकांशता अल्पविकसित देश आज या तो आत्मस्फूर्ति की अवस्था में है। अथवा आत्मस्फूर्ति की पूर्व की अवस्था में है।

अल्पविकसित देशों में निर्धनता के दुःचक्र को तोड़ने तथा उसे आत्मनिर्भर बनाने के लिये आर्थिक विकास की नीति क्या हो इस संबध में विकासवादी अर्थशास्त्रियों में मतभेद है।

कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार पिछड़ेपन वाले देशों को विकास की सन्तुलित नीति अपनानी चाहिये । तो कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार इन देशों को विकास की असन्तुलित नीति अपनानी चाहिये, अतः देश का विकास सन्तुलित विकास नीति के आधार पर करना चाहिये अथवा असन्तुलित विकास नीति के आधार पर, यह आज की चर्चा का विषय बना हुआ है। अर्थशास्त्रियों ने इस समस्या के समाधान के लिये सन्तुलित विकास सिद्धान्त तथा असन्तुलित विकास सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

सन्तुलित तथा असन्तुलित समृद्धि

(DOCTRINE OF BALANCED AND UNBALANCED GROWTH)

अल्प–विकसित देशों के आर्थिक विकास की नीति क्या हो, इस सम्बन्ध में विकास अर्थशास्त्रियों में एक गहरा मतभेद है। कुछ विचारकों की राय है कि अल्प–विकसित देशों को विकास की सन्तुलित पद्धति को अपनाना चाहिए तो दूसरे पक्ष की राय में असन्तुलित विकास नीति, आर्थिक विकास के लिये एक श्रेष्ठतम विकल्प है। कहने का अभिप्राय यह है कि देश का आर्थिक विकास, सन्तुलित आधार पर किया जाये अथवा असन्तुलित आधार पर, यह विचार आज भी एक विवाद–ग्रस्त समस्या बनी हुई है। अतः इस दृष्टि से किसी वास्तविक निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए यह अधिक उचित होगा कि पहले इन दोनों पद्धतियों की पूरी जानकारी प्राप्त कर ली जाये।

सन्तुलित विकास का अर्थ

सन्तुलित विकास शब्द का अर्थ अलग–अलग अर्थशस्त्रियों ने भिन्न–भिन्न ढंग से लगाया है। एक मत के अनुसार सन्तुलित विकास का अर्थ है। किसी अर्थ–व्यवस्था के सभी क्षेत्रों तथा उद्योगों का समान रूप से विकास करना अर्थात् उनमें एक–साथ निवेश करना। इसके विपरीत एक अन्य अर्थ में सन्तुलित विकास, उपभोक्ता उद्योगों और पूँजीगत उद्योगों के समान विकास का प्रतीक है। कुछ अन्य लोगों ने सन्तुलित विकास को निर्माणकारी उद्योगों और कृषि; तथा घरलू क्षेत्र ओर निर्यातक क्षेत्र में सन्तुलन स्थापित करने के विचार को सन्तुलित विकास का नाम दिया है। एक अन्य विचारधारा के अनुसार परोक्ष उत्पादक–निवेश

अर्थात् आर्थिक व सामाजिक उपरि–सुविधाओं में निवेश तथा प्रत्यक्ष उत्पादक–निवेश में सन्तुलन ; और अनुलम्ब तथा क्षैतिज बाहरी बचतों के बीच सन्तुलन बनाए रखने को सन्तुलित विकास की संज्ञा दी है। सिद्धान्त की स्पष्ट व्याख्या करने की दृष्टि से नीचे कुछ परिभाषायें दी जा रही है–

प्रो० अलक घोष– के शब्दों में "नियोजन के साथ सन्तुलित विकास का अर्थ है कि अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का एक ही अनुपात में विकास हो ताकि उपभोग, निवेश और आय समान दर से बढ़ सकें।"

प्रो० रैडावे– के अनुसार "सन्तुलित विकास का अर्थ, अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों में सन्तुलन प्राप्त करना है जैसे उत्पादन तथा उपभोग के ढाँचे के बीच; उपभोग क्षेत्र तथा पूंजीगत क्षेत्र के मध्य; और उत्पादन की विभिन्न प्रणालियों के बीच, जिससे कि एक तरफ कच्चे माल व अन्तर्वर्ती वस्तुओं तो दूसरी तरफ औद्योगिक आवश्यकताओं के बीच सन्तुलन स्थापित हो सके।"

सामान्य स्वीकृत परिभाषा–"सन्तुलित वृद्धि से अशय अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों तथा उद्योगों का एक–साथ विकस करना है जिससे कि विभिन्न क्षेत्रों की उपज के लिये तैयार बाजार मिल सके और असन्तुलन उत्पन्न न होने पायें।"

सन्तुलित विकास का सिद्धान्त मुख्य रूप से समन्वित एवं सजातीय विकास की मान्यता पर आधारित है। हमारी राय में विकास की कोई भी नीति अथवा सिद्धान्त इस बात की अनुमति नहीं देता कि राष्ट्रीय विनियोग केवल निजी लाभ की भावना को दृष्टि में रखकर किये जायें अथवा केवल पूर्व उन्नत उद्योगों में ही किये जायें अथवा केवल उन्हीं उद्योगों में किये जायें जहाँ सम्भावित प्रतिफल अधिक होने की सम्भावना है। **चूंकि देश के आर्थिक विकास का विचार किसी एक उद्योग या वर्ग विशेष के विकास का प्रश्न नहीं, बल्कि देश के सभी उद्योगों और समाज के सभी लोगों के सामूहिक व सजातीय विकास का प्रश्न है। इसलिए इस बात को गवारा नहीं किया जा सकता है कि उपलब्ध क्षेत्रों को पूरक न बनाकर उन्हें परस्पर प्रतियोगी बनाया जाये और आर्थिक असन्तुलनों, संघर्षात्मक प्रवृत्तियों व हीन**

भावनाओं को उत्पन्न होने दिया जाये। सन्तुलित विकास के सिद्धान्त का यही मुख्य सार है। सन्तुलित विकास की नीति निर्धनता के दुश्चक्र को तोड़ने, बाहरी बचतों को उत्पन्न करने, अन्तर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण प्राप्त करने, उत्पादकता में वृद्धि करने तथा आर्थिक विकास को तीव्रता प्रदान करने में सहायक होती है।

सन्तुलित विकास के प्रवर्तक एवं समर्थक

सन्तुलित विकास के सिद्धान्त के प्रवर्तक के रूप में एडम स्मिथ तथा फ्रैडरिक लिस्ट का नाम लिया जा सकता है। वर्तमान समय में रोजेन्स्टीन रोडान, रागनर नर्कसे, आर्थर लुईस, सीटोबास्की, रोस्टोव तथा हार्वे लीबिन्स्टीन इस विकास–नीति के प्रमुख समर्थक माने जाते हैं।

सन्तुलित विकास–सिद्धान्त की व्याख्या

सन्तुलित विकास–सिद्धा'न्त की प्रो० नर्कसे, रोडान तथा लुइस द्वारा की गई व्याख्या नीचे दी गयी है–

1. प्रो० रागनर नर्कसे का विचार

नर्कसे के अनुसार अल्प–विकसित देशों में निर्धनता का दुश्चक्र कार्यशील रहता है जो आर्थिक विकास में सदैव बाधा पैदा करता है। यह दुश्चक्र मांग और पूर्ति दोनों ही पक्षों अर्थात् रूपों में लागू होता है। पूर्ति पक्ष की दृष्टि से अल्प–विकसित देशों में बचत करने की क्षमा कम होती है क्योंकि वास्तवित आय का स्तर काफी नीचा होता है। कम वास्तविक आय निम्न–उत्पादकता का परिणाम होती है जो स्वयं पूंजी के अभाव के कारण पैदा होती है। इसी प्रकार मांग पक्ष की दृष्टि से अल्प–विकसित देशों में विनियोग करने की प्रेरणा शिथिल होती है क्योंकि लोगों द्वारा वस्तुओं की मांग कम की जाती है। वस्तुओं की मांग इसलिये कम होती है क्योंकि क्रय–शक्ति कम होती है और क्रय–शक्ति निम्न आय का कारण कम होती है जबकि आय का निम्न–स्तर स्वयं नीची उत्पादकता का परिणाम होता है। इस प्रकार अल्प–विकसित देशों में न्मि उत्पादकता के कारण–कमआय–अल्प–बचतें–तथा अल्प वस्तु–मांग के फलस्वरूप–निवेश की प्रेरणा कम होती है **जिससे बाजार का आकार सीमित बना रहता है।**

इस दुश्चक्र को किस प्रकार तोड़ा जाए? इसका अत्यन्त सरल व सीधा उपाय यह है कि उत्पादकता में वृद्धि की जाय। लेकिन उत्पादकता में वृद्धि तभी हो सकती है जब बड़े पैमाने पर उत्पादन अथवा पूंजी का निवेश किया जाए। और यह दोनों बातें तभी सम्भव है जब लोगों द्वारा वस्तुओं की पर्याप्त मांग की जाती हो और उनके हाथ में पर्याप्त क्रय–शक्ति उपलब्ध हो। चूंकि खरीदने की क्षमता ही, सही अर्थो में, राष्ट्रीय उत्पादन करने की क्षमता है इसलिये उत्पादकता–वृद्धि का प्रश्न मुख्यतः इस बात पर निर्भर करता है कि उत्पादन में पूंजी का प्रयोग किस सीमा तक किया जा रहा है किन्तु इस निवेश–सीमा का निर्धारण स्वयं बाजार के आकार पर निर्भर करता है। **नकंसे** का कहना है कि कोई भी **अकेला उद्योग की अपने माल की मांग स्वयं पैदा नहीं कर सकता बल्कि मांग का सृजन उद्योगों की विविधता और आवश्यकताओं की विभिन्नता के कारण होता है।** उन्होंने अपने तर्क की पुष्टि हेतु रोडान की तरह जूता–उद्योग का उदाहरण देते हुए कहा कि मान लीजिए एक नया जूता–उद्योग लगाया गया है। यदि क्रय–शक्ति (उत्पादकता) के बढ़ाने की दृष्टि से अर्थव्यवस्था में कोई अन्य प्रयास नहीं किये जाते तो जूता–उद्योग की अतिरिक्त उपज की पूरी खपत बाजार में नहीं हो सकेगी और कुछ माल बिना बिके रह जाएगा। इसका कारण यह है कि एक तो इस उद्योग में लगे हुए व्यक्ति अपनी अन्य आवश्यकताओं के कारण समस्त आय जूतों पर खर्च नहीं करेंगे और दीूसरे, इस उद्योग के बाहर के लोग भी प्रत्येक वर्ष जूता नहीं खरीदेंगे क्योंकि उनके पास अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये पहले से ही धन का अभाव है। अतः स्पष्ट है कि यदि अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में लगे लोगों की क्रय–शक्ति बढ़ाने का प्रयास नहीं किया गया तो नीची वास्तविक आय पर बेलोच–मांग बाजार के आकार को सीमित कर, देगी जिससे निवेश की प्रेरणा घटेगी और फलस्वरूप यह 'नया उद्योग' फेल हो जाएगा।

बाजार का विस्तार किस प्रकार किया जाए? उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि इस दुश्चक्र को तोड़ने के लिए बाजार का विस्तार करना अत्यावश्यक है। इसके लिये मोद्रिक प्रसार, विक्रय कला, विज्ञापन या व्यापार नियंत्रण हटाकर अथवा आर्थिक अर्द्ध–संरचना का विकास करक बाजार का विस्तार किया जा सकता है। इसके अलावा

कीमतें घटाकर अथवा मौद्रिक आय में वृद्धि करके भी वस्तुओं की मांग को बढ़ाया जा सकता है। लेकिन इसके लिये आवश्यक है कि उत्पादकता व आय–स्तर में पर्याप्त वृद्धि हो और वस्तुओं का उत्पादन बड़े पैमाने र किया जाये ताकि उत्पादन को लागतें कम हो सकें। एक अल्प–विकसित देश में ऐसा करना सम्भव नहीं हो पाता क्योंकि उपभोक्ता–मांग लोच रहित होती है; उन्नत तकनीक व उद्यम का अभाव होता है अैर फलस्वरूप पूंजी निवेश की प्रेरणा के अभाव में बाजार का आकार सीमित बना रहता है।

इसलिये नर्कसे का कहना है ि कइस दलदल से निकलने का एक मात्र उपाय यह है कि अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों अर्थात विभिन्न उद्योगों में एक–साथ पूंजी लगायी जाए। इसका परिणाम यह होगा कि सभी क्षेत्रों में आर्थिक क्रियाओं तथा कुशलताओं के बढ़ने के फलस्वरूप बाजार का विस्तार होने लगेगा। सन्तुलित विकास का उद्देश्य, वास्तव में, पूरक उद्योगों का विकास करना है जो एक–दूसरे के माल के ग्राहक बनकर पूंजी की मांग को बढ़ा देते हैं। **नर्कसे के अपने शब्दों में "अनेक पूरक परियोजनाओं में अधिक और उत्तम औजारों से काम करने वाले लोग एक दूसरे के ग्राहक बन जाते हैं। सामान्य उपभाग की वस्ुयें पैदा करने वाले अधिकांश उद्यद्वोग इसलिये एक–दूसरे के पूरक होते हैं क्योंकि वे परस्पर एक–दूसरे की वस्तुओं की मांग उत्पन्न करके बाजार का विस्तार करते रहते हैं, और इस प्रकार एक–दूसरे का पोषण करते हैं। अतः सन्तुलित विकास का प्रश्न 'सन्तुलित आहार' की आवश्यकता पर आश्रित है।"**

सन्तुलित विकास बाहरी बचतें सम्भव बनाता है!

नर्कसे का कहना है कि विभिन्न उद्योगों के अन्तर्गत परियोजनाओं के विस्तृत क्षेत्र में में पूंजी का एक–साथ तथा एक–समय में किया गया निवेश आर्थिक दक्षता तथा बाजार के कुल आकार का विस्तार करता है। नर्कसे के अनुसार **"इस प्रकार का सीधा आक्रमण अर्थात् अनेक विभिन्न उद्योगों में पूंजीगत निवेशों की लहर ही वास्तव में सन्तुलित विकास है।"** विस्तृत क्षेत्र वाले निवेश बाजार के आकार को बढ़ाकर बाहरी बचतें उत्पन्न करते हैं जो प्रायः एक व्यक्तिगत फर्म के लिये सम्भव नहीं होती। विभिन्न

प्रकार के उद्योगों में निवेश करने से उद्योगों का अनुलम्ब तथा क्षैतिज समाकलन होता है, श्रम विभाजन अधिक श्रेष्ठ हो जाता है, कच्चा माल तथा तकनीकी ज्ञान की पूर्ति सहज हो जाती है, बाजार का आकार विस्तु होता है और सामाजिक तथा आर्थिक उपरिव्यय पूंजी का श्रेष्ठतर उपयोग होने लगता है। कुछ मिलकर सन्तुलित विकास की नीति बाहरी बचतों की सम्भव बनाती है जोकि तीव्र आर्थिक विकास के लिये अत्यावश्यक है।

घरेलू तथा विदेशी व्यापार में सन्तुलन

आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए देशों में बाजार का सीमित आकार उनके अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की सबसे बड़ी बाधा है। पिछड़े हुए कृषि प्रधान देश निम्न उत्पादकता तथा कम क्रय–शक्ति के कारण न तो आयात और न ही निर्यात करने की स्थिति में होते हैं। सन्तुलित विकास नीति के अन्तर्गत जब विविध क्षेत्रों में निवेश किया जाता है तो इससे एक तरफ उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि होने से आयातों को बढ़ावा मिलता है तो दूसरी तरफ उद्योगों की पूरकता और विविधता के फलस्वरूप निर्यात–व्यापार बढ़ने लगता है। इस प्रकार सन्तुलित विकास की नीति घरेलू तथा विदेशी व्यापार दोनों सन्तुलन बनाए रखती है। **नर्कस के अनुसार "सन्तुलित विकास अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए एक अच्छा आधार है और उसका सबसे अच्छा मित्र भी; है।"** नर्कसे ने कृषि तथा उद्योगों में भी उचित सन्तुलन बनाए रखने पर जोर दिया है क्योंकि ये दोनों क्षेत्र एक–दूसरे के पूरक हैं।

सन्तुलित विकास और सरकार की भूमिका

सन्तुलित विकास के लिये सरकार द्वारा अर्थव्यवस्था का केन्द्रीय नियोजन तथा नियमन करना जरूरी है। यद्यपि नर्कसे का यह मत रहा है कि निजी उद्यम मूल्यप्रेरणाओं (अर्थात् कीमत–यन्त्र) के द्वारा पूरक उद्योगों की स्थापना करके सन्तुलित विकास को सम्भव बना सकता है। लेकिन आधुनिक अर्थशास्त्री कई कारणों से इस मत से सहमत नहीं है–(1) निजी उद्यम लाभ भावना से प्रेरित होने के कारण सभी प्रकार के उद्योगों में निवेश करने के लिये तैयार नहीं होता। (2) निजी उद्यमी द्वारा साधनों के दोषपूर्ण आवंटन की सम्भावना प्रायः बनी रहती है। (3) कीमत–यन्त्र पूंजीगत निवेशों

की परस्पर पोषक लहर उत्पन्न करने में असमर्थ रहता है। (4) तीव्र विकास के लिये भौतिक तथा मानवीय पूंजी में एक–साथ निवेश करना जरूरी है और मानव–पूंजी में बड़े पैमाने पर निवेश केवल सरकार ही कर सकती है निजी उद्यमी नहीं। (5) सामाजिक उपरि पूंजी या अद्ध–संरचना का निर्माण, जोकि सन्तुलित विकास की एक पूर्व शर्त है, केवल सरकार द्वारा ही सम्भव है।

2- रोजेन्स्टीन रोडान (Rosenstein Rodan) का मत

नर्कसे की भाँति रोडान ने भी अल्प–विकसित देशों के आर्थिक विकास के लिये सन्तुलित विकास पद्धति का समर्थन किया है। परन्तु उनकी विचारधारा नर्कसे से इस दृष्टि से भिन्न है ि कवे सन्तुलित विकास की नीति को, एक **'बड़े धक्के'** के रूप में लागू करना चाहते है। बड़े धक्के से उनका अभिप्राय सभी क्षेत्रों में एक–साथ और 'आवश्यक न्यूनतम मात्रा' में विनियोग करना है। विस्तृत अध्ययन के लिये अध्याय 17 देखिये।

सन्तुलित विकास के समर्थन में एक अन्य तर्क का सहारा लेते हुए रोडान का कहना है कि आमतौर पर निवेश का 'सामाजिक सीमान्त उत्पाद' (SMP) उसके 'निजी सीमान्त उत्पाद' (PMP) से भिन्न होता है और जब विभिन्न उद्योगों के एक समूह का उनकी SMP_s के अनुसार एक–साथ नियोजन किया जाता है तो अर्थव्यवस्था की विकास–दर निश्चित ही अधिक होती है, अपेक्षाकृत उस स्थिति के, जब ऐसा न किया जाता। इसका कारण यह है कि एक व्यक्तिगत उद्यमी की रूचि केवल निवेश के PMP में होती है : और दूसरा, उसके लिए SMP का सही–सही अनुमान लगाना बहुत कठिन होता है। रोडान ने इस बात की पुष्टि में कि निवेश का SMP उसके PMP से अधिक होता है, एक जूता–फैक्टरी का उदाहरण भी दिया है। मान लीजिये एक नयी शुरू की गयी जूता फैक्टरी में 20 हजार बेरोजगार श्रमिकों को काम पर लगाया जाता है। यदि ये सभी कार्यरत् श्रमिक अपनी समस्त आय जूतों पर व्यय कर दे ंतो जूतों के लिए आवश्यक बाजार उपलब्ध होने लगेगा। लेकिन ऐसा हो नहीं पायेगा। सभी श्रमिक अपनी समस्त आय जूतों पर इसलिए खर्च नहीं करेंगे क्योंकि उन्हें अपनी अन्य

आवश्यकताओं को भी पूरा करना है। हाँ ! इसके विपरीत यदि सभी प्रकार की उपभोगीय वस्तुओं क उत्पादन करने वाले उद्योगों का जाल (श्रृखलाएँ) फैला दिया जाये (जिन पर श्रमिक अपनी आय व्यय करें) तो ऐसी स्थिति में उद्योगों का विस्तार गुणक प्रक्रिया के रूप में होगा। इस प्रकार परस्पर पूरक उद्योगों का योजन–बद्ध ढंग से विकास होने पर बाजार के आकार का विस्तार हेाता है, माल के न बिकने की जोखिम घटती है और औद्योगिक विकास तीव्र होने लगता है।

संक्षेप में, **प्रो० रोडान** द्वारा सन्तुलित विकास के पक्ष में दिये जाने वाले तर्क इस प्रकार है–(1) तीव्र आर्थिक विकास के लिये जरूरी है कि परस्पर–पुरक उद्योगां में एक आवश्यक–न्यूनतम मात्रा में निवेश किया जाए। (2) सन्तुलित विकास का अर्थ है, **श्रम–प्रधान तकनीक** का अपनाया जाना। यह वह तकनीक है जिसमें पूंजी की अपेक्षा श्रम का अधिक प्रयोग किया जाता है। श्रम–प्रधान तकनीक के अपनाने से रोजगार के साथ–साथ क्रय–शक्ति बढ़ती है जिससे प्रभावपूर्ण मांग में वृद्धि होकर आर्थिक विकास तेज हो जाता है। (3) विभिन्न प्रकार के उद्योगों में एक–साथ विनियोग करने पर निजी क्षेत्र के लाभ कम हो जायेंगे और सामाजिक लाभ में वृद्धि हो जायेगी। यही आर्थिक विकास का मुख्य लक्ष्य है। (4) सन्तुलित विकास पद्धति, बाहरी बचतों को पैदा करके अन्य क्षेत्रों में निवेश के अवसर बढ़ा देती है।

3. प्रो० आर्थर लुइस (W. Arthur Lewis) के विचार

प्रो० लुइस ने आर्थिक विकास के लिये सन्तुलित विकास पद्धति को ही उचित ठहराया है। उनके मतानुसार "विकास योजनाओं में अर्थ–व्यवस्था के सभी क्षेत्रों का एक–साथ विकास होना चाहिये जिससे कि कृषि एवं उद्योग के बीच तथा घरेलू उपभोग हेतु उत्पादन और निर्यात हेतु उत्पादन के बीच एक उचित सन्तुलन बनाया रखा जा सके। हाँ ! यह धारणा देखने में जितनी सरल है उतनी ही युक्तिपूर्ण भी, किन्तु फिर भी इसे आसानी से झुठलाया नही जा सकता।" सन्तुलित विकास का सबसे बड़ा गुण यह है कि विकास के मार्ग में आने वाले विभिन्न प्रकार के अवरोध स्वतः ही समाप्त होने लगते

है। कुछ लोगों द्वारा सन्तुलित विकास की आलोचना प्रायः इस आधार पर की जाती है कि सभी क्षेत्रों में समान दर से विकास करना सम्भव नहीं है। प्रो० लुइस ने इस आलोचना का उत्तर देते हुए कहा दे कि, **"सन्तुलित विकास का अर्थ, सभी क्षेत्रों का समान विकास नहीं है बल्कि विकास के वे अनुपात हैं जो विकास की भिन्न दरों की मांगों से चालित होते हैं। दूसरे शब्दों में, सभी क्षेत्रों का उनकी आवश्यकता और सामर्थ्य के अनुसार वाँछनीय दर से विकास होना, सन्तुलित विकास कहलाता है।"**

सन्तुलित विकास–सिद्धान्त एक दृष्टि में

1. सन्तुलित विकास का अर्थ एक–साथ सभी उद्योगों में निवेश करना है। जिस प्रकार शरीर के लिए सन्तुलित भोजन की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार तीव्र आर्थिक विकास के लिए सन्तुलित विकास का होना आवश्यक है।
2. सन्तुलित विकास की प्रक्रिया एक 'बड़े धक्के' से आरम्भ की जानी चाहिये। दूसरे शब्दों में, सन्तुलित विकास के लिये सभी क्षेत्रों में आवश्यक न्यूनतम निवेश किया जाना जरूरी है।
3. सन्तुलित विकास पूरक उद्योगों का विकास करके बाजार को विस्तृत करता है जिससे बहरी बचतें प्राप्त होती हैं।
4. यह सिद्धान्त बहुमुखी विकास के सिद्धान्त की धारणा पर आधारित है।
5. यह सिद्धान्त मांग की दृष्टि से विभिन्न प्रकार के उद्योगों के बीच सन्तुलन बनाए रखने की आवश्यकता पर बल देता है।
6. अल्प–विकसित देशों में व्याप्त 'विषैले वृत्तों' विशेषकर 'निर्धनता के दुश्चक्र' को तोड़ने के लिये सन्तुलित विकास पद्धति को अपनाया जाना अत्यावश्यक है, ताकि उपलब्ध पूंजी का सर्वोत्तम उपयोग हो सके।
7. सन्तुलित विकास से विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन मिलता है।
8. सन्तुलित विकास की पद्धति निजी उपकम अर्थव्यवस्था के लिये अधिक उपयोगी है (जैसा कि नर्कसे का विचार है)। किन्तु नियोजित अर्थ–व्यवस्था में इसका महत्व कम है।

9. सन्तुलित विकास से अनेक प्रकार के लाभ प्राप्त होते है– (1) अतिरिक्त बाहरी बचतें, (2) सामाजिक लाभ में वृद्धि, (3) जोखिम में कमी, (4) रोजगार में वृद्धि (5) मूल्य स्थिरता, (6) देश का सर्वांगीण विकास, (7) सन्तुलित विदेशी व्यापार तथा (8) आर्थिक नियोजन के लिये स्वस्थपूर्ण वातावरण का निर्माण होना।

सन्तुलित विकास के सिद्धान्त की आलोचना

जहाँ सन्तुलित विकास के विचार के समर्थकों की कमी नहीं, वहाँ इसके आलोचकों का भी अभाव नहीं है। प्रो० सिंगर, मार्क्स फ्लेमिंग, प्रो० एलबर्ट तथ हर्ष–मैन सन्तुलित विकास के मुख्य आलोचक माने जाते हैं। सिद्धान्त की मुख्य आलोचनायें इस प्रकार हैं–

1. **अल्प–विकसित देशों की सामर्थ्य से बाहर–**सन्तुलित विकास की तकनीक को लागू करने के लिये पर्याप्त पूंजी, तकनीकी ज्ञज्ञन, प्रबन्धकीय क्षमता व कुशल श्रम–शक्ति की आवश्यकता होती है। जबकि इन सभी साधनों का अल्प–विकसित देशो में अभाव होता है। ऐसी दशा में एक तरफ पर्याप्त साधनों के उपलब्ध होने की शर्त और दूसरी ओर उनका अभाव स्वयं में ही एक विरोधाभास है अर्थात् एक असंगत समीकरण है। इससे भी अजीब बात तो यह है किजो देश (अल्प–विकसित) खण्डगत विकास करने की स्थिति में नहीं होता, वह सम्पूर्ण विकास एक–साथ कैसे कर सकता है। यह बात बिल्कुल ऐसे है जैसे भवन की पहली मन्जिल बनाने की सामर्थ्य न करने वाले शिल्पी को, अगली दो मजिलें बनाने का सुझाव देना। अतः प्रो० हिगीन्स का कहना है कि अल्प–विकसित देशों को 'बड़ा सोचने' की सलाह देना तो अच्छा है लेकिन सामर्थ्य न होने पर 'बड़ा काम करने' इनके लिए मूर्खता का सुझाव है। सिद्धान्त की इस अव्यावहारिकता को देखते हुए प्रो० सिंगर ने कहा है कि "बहुमुखी विकास के लाभ अर्थशास्त्रियों के पढ़ने के लिये रोचक तो हो सकते हैं किन्तु अल्प–विकसित देशों के लिए वे वास्तव में निराशजनक समाचार है।"

2. **उद्योगों के पूरक होने की दोषपूर्ण मान्यता–** सन्तुलित विकास के समर्थकों की यह एक बहु बड़ी मूल रही है कि उन्होंने विभिन्न उद्योगों को परस्पर परिपूरक माना है। वास्तविकता तो यह है कि विकास की प्रारम्भिक अवस्था में विभिन्न उद्योगों के बीच सम्बन्ध पूरक न होकर प्रतियोगी होता है। जिसके फलस्वरूप उत्पादन लागतें बढ़ने, आर्थिक प्रेरणाओं के घटने और अपव्ययों के अधिक होने की सम्भावना बनी रहती है। प्रो० मार्क्स फ्लेमिंग का भी कहना है कि "सन्तुलित विकास का सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि उद्योगों के बीच सम्बन्ध अधिकांशतः पूरक होता है किन्तु व्यवहार में साधनों की पूर्ति की सीमितता इस सम्बन्ध को अधिकांश रूप से प्रतियोगी बना देती है।"
3. **सीमित साधनों का अपव्यय–**अगर थोड़ी देर के लिए सन्तुलित विकास के सिद्धान्त को स्वीकार भी कर लिया जाय, तो यह हो सकता है कि सभी क्षेत्रों में थोड़े–थोड़े पूंजीगत विनियोग के कारण किसी भी क्षेत्र में प्रगति न होने पाये। जिसका अर्थ होगा–**राष्ट्र के सीमित साधनों का पूर्ण अपव्यय।** वास्तव में, यह बात ठीक उसी प्रकार होगी जिस प्रकार यह कहना कि 'एक आदमी तब तक कुछ नहीं कर सकता ज तक िकवह सब कुछ करने के काबिल न हो'। सच, तो यह है कि 'जो आदमी सब कुछ करने की सोचता है वह कुछ भी नही कर पाता। प्रो० बैंजामिन हिंगीन्स का कहना है कि **"वहाँ सैकड़ों फूल कैसे खिल सकतें हैं जहाँ पर एक फूल भी उचित देखभाल के अभाव में मुरझा जाता हो।"**
4. **साधनों का अभाव–**सन्तुलित विकास का सिद्धान्त 'से' बाजार नियम पर आधारित है कि "पूर्ति अपनी मांग स्वयं उत्पन्न कर लेती है।" लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि वस्तुओं की पूर्ति का सम्बन्ध साधनों (विशेष रूप से पूंजी) की मांग से होता है जो अपनी पूर्ति नहीं कर सकती। जब अनेक उद्योगों में एक–साथ निवेश किया जायेगा तो साधनों के लिये मांग प्रतियोगी बन जायगी। परन्तु अल्प–विकसित देशों में साधनों की पूर्ति बेलोचदार होती है। इस प्रकार सिद्धान्त का प्रमुख तर्क ही गलत सिद्ध हो जाता है। आर्थिक विकास की सर्वोपयुक्त नीति यह होगी कि उपलब्ध साधनों का उन क्षेत्रों में निवेश किया जाए जो पहले से ही अपेक्षाकृत

विकसित हैं और जिनमें शीघ्रफल देने, जल्दी विकसित होने तथा देश की अर्थ–व्यवस्था को लचीला बनाने की सम्भावनाएँ विद्यमान है। इसलिये डा० मिगर का कहना है **"अल्प–विकसित देशों की परिस्थितियों के लिये सामने से प्रहार करने की अपेक्षा छापामार युद्ध कला अधिक उपयोगी कही जायेगी।"**

5. **साधनों की लागत में वृद्धि–**इस सिद्धान्त के अनुसार अनेक उद्योगों में एक–साथ निवेश करने पर उत्पादन की वास्तविक तथा मौद्रिक लागतें घट जाती है। लेकिन सच यह है कि लागतें घटने के बजाय बढ़ती हैं। इसका कारण यह है कि नये उद्योग पुराने उद्योगों के साथ सीमित साधनों की पूर्ति के लिये प्रतियोगिता करते हैं जिससे इन साधनों की कीमत बढ़ जाती है। इस सम्बन्ध में प्रो० किण्डलबजंर का कहना है कि नर्कसे मॉडल का सबसे बड़ा दोष यह है कि वह नए उद्योगों की स्थापना की बात तो करता है लेकिन वर्तमान उद्योगों में उत्पादन–लागत को घटाने की सम्भावना पर विचार नहीं करता। ध्यान रहे, जब नए उद्योग स्थापित किये जाते हैं तो इससे वर्तमान फर्मो के माल की मांग कम हो जाने से वे अलाभप्रद हो जायेंगी। यह बात तो ठीक उसी प्रकार होगी जिस प्रकार कि "नये पौधे लगाते रहो; भले ही पुराने सूखते रहें।"
6. **साधनों में व्यनुपातिता–**सन्तुलित विकास नीति को लागू करने की एक बड़ी कठिनाई अल्प–विकसित देशों में उत्पादन के साधनों के बीच व्यनुपातिता का पाया जाना है। कुछ देशों में श्रम की अधिकता होती है तो पूंजी तथा उद्यम का अभाव होता है। जबकि अन्य देशों में यह स्थिति अन्यथा हो सकती है। इस प्रकार साधनों की पूर्ति की गैर–आनुपातिकता सन्तुलित विकास की नीति को सार्वभौमिक रूप से लागू करने में एक रूकावट सिद्ध होती है।
7. **विकास के सिद्धान्त के रूप में असफल–**एल्बर्ट हर्षमैन के मतानुसार सन्तुलित वृद्धि का सिद्धान्त आर्थिक विकास के सिद्धान्त के रूप में असफल है अर्थात् इसे विकास का सिद्धान्त माना ही नहीं जा सकता। विकास से आशय है एक प्रकार की अर्थव्यवस्था को दूसरी प्रकार की उन्नत अर्थव्यवस्था में बदलना। लेकिन इसके विपरीत सन्तुलित विकास का सिद्धान्त किसी एकदम नये तथा आत्म–निर्भर

आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र को एक स्थिर तथा समानरूप से आत्म–निर्भर परम्परागत क्षेत्र के ऊपर आरोपित करने की बात करता है। इसलिये हर्षमैन का कहना है कि "यह सही अर्थो में विकास नहीं है और किसी पुरानी चीज पर किसी एकदम नई चीज का उपरोपण करना भी नहीं है; यह तो विकास का पूर्ण रूप से दोहरा आदर्श है।"

8. **बाधाओं की उपेक्षा**–इस सिद्धान्त का एक दोष यह है कि इसने विकास के मार्ग में आने वाली बाधाओं कमियों व आधिक्य क्षमताओं आदि की पूर्णतया उपेक्षा की है।
9. **सिद्धान्त की अल्प–विकसित देशों के लिये अर्थव्यवस्था**–हर्षमैन का कहना है कि सन्तुलित विकास का सिद्धान्त विकसित देशों के लिये तो उपयुक्त है लेकिन उसे अल्प–विकसित देशों पर लागू करना गलत होगा। "वास्तव में यह सिद्धान्त कीन्स की अल्प–रोजगार स्थिति का एक अल्प–विकसित देश पर निरर्थक प्रयोग है।" इसका कारण यह है कि विकसित देशों में व्यापार चक्र के कारण आर्थिक क्रियाओं में जो एक अस्थायी शिथिलता आ जाती है। बहुविध (सन्तुलित) विकास से इस आर्थिक क्रिया का समुत्थान होना सम्भव है क्योंकि विकास की सभी शक्तियाँ एवं घटक जोकि अस्थायी रूप से निलम्बित होते हैं, फिर से विकास शुरू किये जाने की प्रतीक्षा में मौजूद रहते हैं। किन्तु अल्प–विकसित देशों की स्थिति इससे सर्वथा भिन्न होती है। इन देशों में आर्थिक क्रियाएँ विकसित देशों की भाँति अस्थायी रूप से रुकी न होकर स्थैतिक अर्थात अवरूद्ध होती हैं। पूंजी, साधन–कुशलता, साधन–पूर्तियाँ तथा आर्थिक अद्ध–संरचना का अभाव होता है इसलिये सन्तुलित विकास का सिद्धान्त अल्प–विकसित देशों पर लागू करना गलत है।
10. **सफल सरकारी निदेशन तथा निवेश की दोषपूर्ण मान्यता**–यह सिद्धान्त आर्थिक विकास करने का उत्तरदायित्व सरकार को सौंपता है और केन्द्रीय नियोजन तथा निदेशन की सफलता को पहले से ही मानकर चलता है। आलोचकों ने सरकारी निदेशन तथा निवेश की कुशलता पर सन्देह व्यक्त किया है और यह ठीक भी है क्योंकि निजी क्षेत्र की तुलना में सरकारी क्षेत्र की कुशलता से हम सभी लोग पूरी तरह से परिचित है। फिर केन्द्रीय नियोजन तथा सार्वजनिक निवेश तभी विकास

कारक हो सकते हैं जब आर्थिक बाहरी बचतें आन्तरिक बनाई जा सकें अमितव्ययिताएँ कम की जा सकें और सामाजिक लागतें समाप्त की जा सकें। चूंकि सन्तुलित विकास में इन परिणामों की आशा करना व्यर्थ है इसलिये इसकी सफलता भी सन्देहप्रद है।

11. **बढ़ते प्रतिफल की दोषपूर्ण मान्यता**—इस सिद्धान्त की यह मान्यता है कि सन्तुलित ढंग से निवेश करने पर मांग मे वृद्धि होती है और पैमाने के बढ़ते प्रति—फल प्राप्त होते हैं। किन्तु यह मान्यता दोषपूर्ण है क्योंकि ये दोनों शक्तियाँ विपरीत दिशाओं में जोर लगाती हैं। उदाहरण के तौर पर यदि पैमाने के प्रतिफल बहु अधिक हो जाएं तो ऐसी दशा में एक अल्प—विकसित देश उन्ही क्षेत्रों में निवेश करने के बजाए अब दीर्घकालीन पूंजीगत परियोजनाओं में निवेश करने के लिये अधिक प्रेरित होगा। इसके विपरीत यदि सभी सम्बद्ध क्षेत्रों में एक—साथ निवेश किया जायेगा तो इससे कच्चे माल, कीमतों, साधन—न्यूनताओं इत्यादि की अड़चनें उत्पन्न होंगी जिसका परिणाम होगा घटते प्रतिफल का प्राप्त होना। इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि सन्तुलित विकास का सिद्धान्त बढ़ते प्रतिफल के स्थान पर घटते प्रतिफल प्रदान करता है।

12. **आर्थिक विकास बाधाओं से प्रेरित होता है**—पॉल स्ट्रीटन का कहना है कि आर्थिक इतिहास इस बात का गवाह है कि आज उन्नत कहे जाने वाले देश अपना आर्थिक विकास असन्तुलित विकास पद्धति से ही कर सके है। वास्तव में सन्तुलित विकास नहीं बल्कि अभाव, दुर्लभताएँ तथा अड़चनों ने ही आविष्कारों को जन्म दिया है और इंग्लैण्ड तथा संसार की अर्थव्यवस्थाओं में क्रान्ति पैदा की है। उन आविष्कारों ने फिर आगे नई अड़चनें या असन्तुलन उत्पन्न किये और इस प्रकार आर्थिक विकास असाभ्यों के बने रहने अथवा असन्तुलनों की श्रृंखला का परिणाम होता है।

असन्तुलित विकास का सिद्धान्त

असन्तुलित विकास का अर्थ व औचित्य

असन्तुलित विकास का सिद्धान्त सन्तुलित विकास की धारणा के बिल्कुल विपरीत है। **असन्तुलित विकास का अर्थ है किसी अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का एक–साथ विकास न करके कुछ चुने हुए प्रमुख क्षेत्रों का गहन विकास करना।** असन्तुलित विकास पद्धति का 'औचित्य' इस मान्यता पर आधारित है कि अल्प–विकसित देशों के पास पूंजी व अन्य आवश्यक साधन इतने नहीं होते कि सभी क्षेत्रों में एक–साथ निवेश किया जा सके। फिर उपलब्ध सीमित साधनों का सभी क्षेत्रों में समान वितरण करना न केवल अनार्थिक सिद्ध होता है बल्कि अल्प–विनियोग से सभी क्षेत्रों में विकास की दर या तो शून्य बनी रहती है अथवा उसमें नाम मात्र की वृद्धि होती है। इस करण ऐसे देशों में कुछ चुने हुए महत्वपूर्ण क्षेत्रों या उद्योगों में बड़ी मात्रा में निवेश करके विकास की गति तीव्र की जाती है और उनसे उत्पन्न होने वाली बचतों में वृद्धि होने से अन्य क्षेत्रो का भी सामयिक विकास होने लगता है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था धीरे–धीरे असन्तुलित विकास से सन्तुलित विकास की ओर अग्रसर होती है। असन्तुलि विकास में विकास की शुद्ध दर, सन्तुलि विकास की औसत दर से अधिक होती है। इसको एक उदाहरण द्वारा आगे स्पष्ट किया गया है।

काल्पनिक उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण–मान लीजिये एक पिता के तीन पुत्र है। बड़ा पुत्र बुद्धिमान है और उसमें प्रगति करने की क्षमता और आकांक्षायें विद्यमान है। इसके विपरीत मँझला डफर (मूर्ख) है और छोटा लोफर है। उदाहरण की मान्यता यह है कि पिता के पास 30 हजार रुपया है जो वह तीनों लड़कों के भविष्य निर्माण के लिये शिक्षा आदि पर खर्च करना चाहता है। अगर पिता समदर्शी है अर्थात् तीनों बच्चों का सन्तुलित विकास चाहता है तो यह राशि तीनों पर लगभग समान रूप में व्यय की जायेगी। फलस्वरूप बड़ा लड़का एम०ए० पास करता है, मँझला हाई–स्कूल की सीमा पर रुका हुआ है और छोटा प्रइमरी से आगे न बढ़ने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ है। इस दशा में परिवार की आर्थिक स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं होगा। हाँ ! इसके विपरीत अगर पिता यह सारा धन बड़े लड़के पर व्यय करे और

उसे विदेश में जाकर अध्ययन करके विकास करने की पूर्ण सुविधा हो तो यह निश्चित है कि उसके विकास का प्रतिफल पहले वाली स्थिति से अधिक होगा। रही बात दोनों छोटे लड़कों की, यह उचित होगा कि मँझले को बिना पढ़ाई का कष्ट दिये हुए पहले से ही, साईकिल मरम्मत की दुकान खुलवा दी जाये और छोटे को सिनेमा की गेट कीपरी का उम्मीदवार बनाया जाये। धन के विनियोग की इस व्यवस्था से परिवार की आय में वृद्धि, पहले की अपेक्षा निश्चित रूप से अधिक होगी। वास्तव में, असन्तुलित विकास का भी यही अभिप्राय है। (उदाहरण को सन्तुलित और असन्तुलित विकास पर पूर्णतया लागू न किया जाये, यह तो केवल एक संकेत मात्र है)।

असन्तुलित विकास के प्रवर्तक एवं समर्थक

प्रो० हर्षमैन तथा **सिंगर** असन्तुलित विकास के प्रवर्तक हैं जबकि इस पद्धति का समर्थन करने वालों में **मार्कस फ्लेमिंग, बौयर एवं यामी, प्रो० रुजीना जे० शीहान** और **किन्डलबर्जर** जैसे अर्थशास्त्रियों का नाम उल्लेखनीय है। नीचे हम कुछ विचारों का अध्ययन करेंगे–

प्रो० हर्षमैन की कूट–नीति–

असन्तुलित विकास–सिद्धान्त के प्रवर्तक प्रो० हर्षमैन का कहना है कि विकास की प्रारम्भिक अवस्था में निवेश ऐसे क्षेत्रों (पूंजीगत उद्योगों) में केन्द्रित किये जाने चाहिए जो आगे चलकर विकास की दर को बढ़ाने वाले हों। चूंकि आर्थिक विकास असन्तुलनों की श्रृंखला द्वारा होता है इसलिये "एक पूर्व–निर्धारित योजना के अनुसार अर्थव्यवस्था का जानबूझ कर असन्तुलित किया जाना आर्थिक विकास का सबसे अच्छा तरीका है।" असन्तुलनों को हर्षमैन ने विकास की आत्मा तथा प्रेरणा दोनों माना है। इसलिये उनका मतह ै कि "सामान्यता विकसित नीति का उद्देश्य असन्तुलनों को समाप्त करने की बजाय उन्हें जीवित रखने का होना चाहिये। यदि अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाने रहना है तो विकास–नीति का कार्य तनाव, व्यनुपातों तथा असन्तुलनों को बनाए रखना होना चाहिए।" एक आदर्श स्थिति वह होती है जब

एक असन्तुलन ऐसे विकास को प्रेरित करे जिसके फलस्वरूप फिर उसी प्रकार का असन्तुलन उत्पन्न हो और यह क्रम इसी प्रकार निरन्तर चलता रहे।

हर्षमैन के सिद्धान्त का सार यह है कि अर्थ–व्यवस्था को असन्तुलित करके ही विकास किया जा सकता है और यह तभी सम्भव है जब (1) या तो सामाजिक उपरिव्यय पूंजी में, (2) अथवा प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं में विनियोग किया जाये, क्योंकि उपरिव्यय पूंजी बाह्म मितव्ययिताओं को पैदा करती है और प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियायें मितव्ययिताओं का पुनविनियोजन सम्भव बनाती है।

सामाजिक उपरिव्यय पूंजी द्वारा निर्मित असन्तुलन

सामाजिक उपरिव्यय पूंजी से अभिप्राय उन आधारभूत सेवाओं से है जिनके बिना प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक प्रकार की उत्पादक क्रियाएँ नहीं चल सकतीं। उदारणार्थ, शिक्षा स्वास्थ्य, संचार, परिवहन, जल विद्युत तथा सिचाई आदि पर किये गये निवेश को संज्ञा दी जाती है। डॉ० हर्षमैन का मत है कि यदि बड़ी मात्रा निवेश किया जाये तो यह प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं में निजी निवेश को प्रोत्साहन करता है। उदाहरण के तौर पर यदि देश में विद्युत शक्ति की पूर्ति सस्ती दों पर होने लगे अथवा यातायात की सुविधाओं का पूरा विकास हो जाये तो इससे कृषि, उद्योग एवं व्यापार के विकास को बढ़ावा लिता है क्योंकि इससे इन क्षेत्रों में एक तरफ उत्पादकता बढ़ती है तो दूसरी ओर उत्पादन लागत घट जाती है। अतः आर्थिक विकास की व्यूह–रचना का तरीका यह होना चाहिये कि बढ़ावा देकर अर्थव्यवस्था को असन्तुलित बनाया जाए ताकि आगे चलकर निवेश को प्रोत्साहन मिल सके। हर्षमैन ने स्वयं कहा है कि "सामाजिक उपरिव्यय मदों में निवेश का समर्थन इसलिए नहीं किया जाता कि इससे अन्तिम उत्पाद पर कोइ प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है यह तो वास्तव में, प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं को आगे बढ़ने का एक निमन्त्रण है अतः निवेश के लिये निवेश का होना एक आवश्यक शर्त है।"

प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं से अर्थ–व्यवस्था को असन्तुलित बनाना

प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं से आशय निर्माणी उद्योगों के विस्तार से है। यदि कोई सरकार निवेश करने की बजाए पहले निवेश करती है तो इससे सामाजिक उपरिव्यय सुविधाओं के अभाव में उत्पादन की लागतें बढ़ जायेंगी और विकास की गति धीमी बनी रहेगी। हाँ ! यह बात अलग है कि कुछ समय पश्चात् राजनैतिक दबावों के कारण निवेश की मात्रा बढ़ा दी जाये, परन्तु इससे समय–अन्तराल के कारण उत्पन्न लागत–वृद्धि प्रभाव को रोका नहीं जा सकता है।

विकास का मार्ग

उपर्युक्त दोनों स्थितियों को हर्षमैन ने विकास के दो विभिन्न मार्ग बताए है। पहले क्रम को उसने **"सामाजिक उपरिव्यय पूंजी की अतिरिक्त क्षमता के मार्ग से विकास"** और दूसरे को **"सामाजिक उपरिव्यय पूंजी की न्यूनतम के विकास मार्ग"** की संज्ञा दी है। हर्षमैन का कहना है कि इन दोनों क्रमों में से उस क्रम को प्राथमिकता दी जानी चाहिये जो उपेक्षाकृत अधिक 'प्रबलतः आत्म–प्रणोदी हो। इसे रेखाचित्र 18.1 से नीचे स्पष्ट किया गया है–

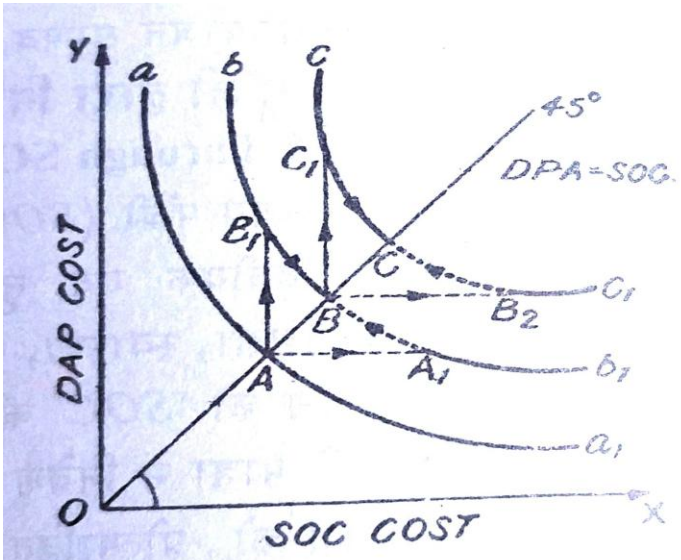

रेखाचित्र 18·1

चित्र में तीन वक्र aa_1 bb_1 तथा सम–मात्रा वक्र हैं जो DPA और SOC के उन विभिन्न संयोगों अर्थात् मात्राओं को प्रकट करते हैं जिनके किसी भी बिन्दु पर राष्ट्रीय आय की कुल मात्रा समान होगी। हाँ ! दायीं ओर का प्रत्येक वक्र राष्ट्रीय आय के उच्च स्तर को बतलाता है। मूल बिन्दू O से खींची गयी 45^0 की रेखा तीनों सम–मात्रा वक्रों के अनुकूलतम बिन्दुओं को मिलाती है और साथ ही यह रेखा SOC तथा DPA की सन्तुलित वृद्धि को दर्शाती है। हर्षमैन ने विकास प्रक्रिया नीति के लिये दो मान्यताएँ मानी हैं– प्रथम, SOC और DPA का एक साथ विस्तार नहीं किया जा सकता और दूसरा, विकास की वह रूपरेखा अपनाई जाये जो प्रेरित निर्णयकरण को अधिकतम कर दे।

यदि कोई देश प्रथम क्रम अर्थातृ 'SOC की अतिरिक्त क्षमता के मार्ग' से विकास की नीति को अपनाता है तो ऐसी दशा में अर्थव्यवस्था बिन्दुकिंत रेखा–मार्ग AA_1BB_2C का अनुसरण करेगी। यदि SOC को A से A_1 तक बढ़ाया जाता है तो इससे प्रेरित DAP निवेश B_1 तक लगातार बढ़ता रहेगा जब तक कि B बिन्दु पर पुनः सन्तुलन स्थापित नहीं हो जाता। इस बिन्दु पर समस्त अर्थव्यवस्था उत्पादन के पहले से अधिक ऊँचे स्तर पर होगी। अब यदि सरकार इसे बढ़े हुए राष्ट्रीय उत्पादन से प्रेरित होकर SOC को और अधिक बढ़ाकर B से B_2 पर लाती है तो इससे DAP भी बढ़कर बिन्दु C पर पहुंच जायेगा।

हाँ! उपरोक्त के विपरीत यदि 'SOC **की न्यूनता**' वाले विकास–मार्ग को अपनाया जाये तो अर्थव्यवस्था सपाट रेखा AB_1BC_1C के मार्ग से आगे बढ़ती है। जब DPA की मात्रा में B_1 तक वृद्धि की जाती है तो SOC को A_1 बिन्दु तक और फिर B बिन्दु तक बढ़ाना पड़ता है। इसी प्रकार यदि DPA को आगे C_1 बिन्दु तक बढ़ाया जाता है तो सन्तुलन से लिए आवश्यक है कि SOC भी बढ़कर C बिन्दु पर आ जाये।

अतः स्पष्ट है कि निवेश का प्रथम विकल्प अर्थात् विकास की पहली नीति दूसरे की अपेक्षा अधिक निदिध्न एवं सपाट है और आत्म–प्रणोदी भी। हर्षमैन के अपने शब्दों में, **"न्यूनतम के मार्ग से विकास की व्यह–रचना अव्यवस्थित एवं विवशताकारी अनुक्रम का प्रतीक है जबकि SOC की अतिरिक्त क्षमता का विकास–मार्ग मूलतः अनुज्ञापक है।"**

अनुबन्धन या सहलग्नता प्रभाव

हर्षमैन के अनुसार अब समस्या यह उठती है कि अर्थ–व्यवस्था में असन्तुलन किस प्रकार उत्पन्न किये जाए अर्थात् असन्तुलनों का वह ढंग ढूँढा जाये जो कि अधिकतम प्रभावशाली सिद्ध हो सके। किसी भी निवेश परियोजना के अप्रगामी अनुबन्धन प्रभाव तथा प्रतिगामी अनुबन्धन प्रभाव दोनों हो सकते है। उत्पादन की 'आगामी अवस्थाओं' में निवेश को बढ़ावा देते हैं जबकि उत्पादन की पिछली या 'प्रारम्भिक अवस्थाओं' में निवेश को प्रोत्साहित करते है। हर्षमैन का कहना है कि हमारा उद्देश्य पहले उन उद्योगों का पता लगाना होना चाहिये जिनका **'कुल अनुबन्धन प्रभाव'** अधिकतम हो। यद्यपि परियोजनाएँ अलग–अलग देशों में तथा भिन्न–भिन्न समय पर अलग–अलग हो सकती हैं तथापि हर्षमैन के अनुसवार लौह एवं इस्पात उद्योग सबसे अधिक होता है। यही करण है कि अल्प–विकसित देश प्रायः इस्पात उद्योग को सर्वाधिक महत्व देते है। किन्तु इसका कारण यह है कि अल्प–विकसित देशों में परस्पर निर्भरता तथा अनुबन्धन का प्रायः अभाव होता है जैसे कृषि या खनन उद्योगों में दोनों निर्बल होते हैं। इसलिये हर्षमैन का कहना है **"अन्तिम उद्योग पहले"** स्थापित किये जाने चाहिये क्योंकि उनमें उधोगामी अनुबन्धन अधिक होने के कारण वे अन्य उद्योगों की स्थापना को बल प्रदान करते हैं।

प्रो० रोस्टोव के विचार (W.w.Rostow's Views)

प्रो० रोस्टोव के अनुसार "किसी भी देश में आर्थिक विकास का कार्य कुछ अग्रगामी और आधारभूत क्षेत्रों की उत्पादकता में होने वाली वृद्धि ही सम्पूर्ण अर्थ–व्यवस्था को गति प्रदान करती है।" इसलिए उनका कहना है कि प्राविधिक ज्ञान, उत्पादन तकनीक और सीमान्त उत्पादकता की दृष्टि से जो क्षेत्र दूसरों की तुलना में अधिक श्रेष्ठ हैं, सर्वप्रथम उन्हीं क्षेत्रों में ही विनियोग किया जाना चाहिए। असन्तुलित विकास की पद्धति अर्थ–व्यवस्था के विकास को स्वयं–संचालिकता प्रदान करती है।

प्रो० सिंगर का मत (Hans W. Singer's View Point)

यद्यपि प्रो० सिंगर ने कुछ दशाओं में अल्प–विकसित देशों के आर्थिक विकास के लिए संतुलित विकास पद्धति को ही उचित माना है; तथापि उनका कहना है कि तीव्र आर्थिक विकास का प्रश्न, मूलरूप से असन्तुलित विकास की प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है। मांग और पूर्ति के असन्तुलन और साधनों के बेलोचपूर्ण होने के कारण विकास की प्रारम्भिक अवस्था में विकास का सन्तुलित ढंग कारगर सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिये उनके मतानुसार "एक अधिक अच्छी नीति यही मानी जा सकती है कि उपलब्ध साधनों को उस प्रकार के निवेशों पर केन्द्रित किया जाये जो अर्थ–व्यवस्था को अधिक लोचदार तथा बढ़ती हुई मांग तथा बढ़ते हुए बाजारों की प्रेरणा के अन्तर्गत विकास करने के अधिक योग्य बनाते हों।" अतः अल्प–विकसित देशों को प्रारम्भ से ही असन्तुलित विकास पद्धति को स्वीकार कर लेना चाहिये।

असन्तुलित विकास का सिद्धान्त एक दृष्टि में

असन्तुलित विकास के मुख्य तत्व इस प्रकार हैं– (1) असन्तुलित विकास का सिद्धान्त प्रोत्साहन एवं दबाव पर आधारित है। (2) विकास की यह पद्धति बड़े–धक्के के सिद्धान्त को स्वीकार करती है परन्तु यह बड़ा धक्का सम्पूर्ण अर्थ–व्यवस्था पर विकेन्द्रित न होकर कुछ खास क्षेत्रों में केन्द्रित होना चाहिये। (3) असन्तुलित विकास प्रक्रिया विभिन्न प्रकार के असन्तुलनों की एक कड़ी है। अर्थ–व्यवस्था में असन्तुलन की एक कड़ी दूसरी नवीन कड़ी को उत्पन्न कर देती है और यही आर्थिक प्रेरणाओं के उत्पन्न होने का मूल सार है। (4) विकास की इस पद्धति में, निवेश सदैव कुछ विशेष क्षेत्रों में ही किये जाते हैं जिसके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले आर्थिक दबाव, अन्य क्षेत्रों के विकास को सरल बना देते है। (5) असन्तुलित विकास प्रक्रिया में सामाजिक ऊपरी पूंजी का विशेष महत्व है।

असन्तुलित विकास के लाभ

1. **तीव्र औद्योगिक एवं आर्थिक विकास**–असन्तुलित विकास पद्धति का सबसे बड़ा लाभ देश का तीव्र आर्थिक एवं औद्योगिक विकास माना जाता है। पूंजी प्रधान तथा भारी

उद्योगों की विकास–दर ऊँची होती है जिससे देश प्रगति के मार्ग पर शीघ्रतः आरूढ़ हो जाता है।

2. **आधारभूत उद्योगों की स्थापना**–किसी भी देश का आर्थिक मोक्ष अन्ततः आधारभूत उद्योगों की स्थापना पर निर्भर करता है जो केवल असन्तुलित विकास की प्रक्रिया के अनतर्गत ही पनप सकते हैं।
3. **सहायक उद्योगों का विकास**–असन्तुलित विकास के अन्तर्गत जब भारी उद्योगों की स्थापना की जाती है तो इससे उपभोक्ता उद्योगों का विकास भी स्वतः ही होने लग जाता है।
4. **आर्थिक विकास का स्थायी स्वरूप**–असन्तुलित विकास के अन्तर्गत जो परियोजनाएँ शुरू की जाती हैं यद्यपि वे दीर्घकाल में प्रतिफल देती हैं लेकिन कालान्तर में चलकर ये योजनायें देश की औद्योगिक नींव को मजबूत करके अर्थ–व्यवस्था को पूर्ण स्वावलम्बी एवं आत्मनिर्भर बना देती है।
5. **साधनों का अधिक उपयुक्त उपयोग**–अल्प–विकसित देशों में पूंजी जैसे साधनों का सर्वथा अभाव होता है। जो थोड़ी बहुत पूंजी उपलब्ध होती भी है उसे छोटे–छोटे टुकड़ों में सभी क्षेत्रों में बाँट देने पर पूंजी का सार्थक उपयोग नहीं हो पाता। सीमित साधनों का सर्वोपयुक्त उपयोग तभी माना जा सकता है जब उससे मिलने वाला प्रतिफल पर्याप्त हो और यह केवल असन्तुलित विकास के अन्तर्गत ही सम्भव हो पाता है।
6. **आर्थिक अद्ध–सरंचना का सुदृढ़ आधार**–किसी देश के आर्थिक विकास की आधारशिला उसकी अद्ध–आर्थिक संरचना अर्थात् यातायात, संचार, जल शक्ति, विद्युत, बैंक व बीमा आदि के विस्तार पर निर्भर हुआ करती है। चूंकि असन्तुलित विकास के अन्तर्गत सामाजिक ऊपरी पूंजी के रूप में पर्याप्त विनियोग किया जाता है जिससे इन क्षेत्रों का विधिवत् विकास होने पर आर्थिक प्रगति की दर तीव्र हो जाती है।

असन्तुलित विकास–सिद्धान्त की आलोचनाएँ

1. **असन्तुलन प्रक्रिया की अपूर्ण व्याख्या**–असन्तुलित विकास के अन्तर्गत अर्थ–व्यवस्था में असन्तुलनों को पैदा किया जाना जरूरी समझा जाता है। लेकिन पॉल स्ट्रीटन तथा प्रो० मायर का इस सम्बन्ध में कहना है कि 'महत्वपूर्ण' प्रश्न यह नहीं कि असन्तुलन पैदा किया जाए, अथवा नहीं, बल्कि यह देखना है कि असन्तुलन की इष्टतम मात्रा **'क्या'** हो तथा शीघ्र विकास के लिये **'कहीं'** और **'कितना'** असन्तुलन पैदा किया जाए; तथा वृद्धिशील बिन्दु कौन से है?, इस प्रकार यह सिद्धान्त विकास–बिन्दुओं की खोज करने में असमर्थ रहा है और इसमें विकास की संरचना, दिया व समय पर उचित ध्यान नहीं दिया जा सका।
2. **प्रतिरोधों की अवहेलना**–इस सिद्धान्त का एक दोष यह बताया जाता है कि यह विस्तार की प्रेरणाओं पर तो ध्यान देता है लेकिन असन्तुलित विकास के फलस्वरूप उत्पन्न प्रतिरोधों की सर्वथा उपेक्षा करता है।
3. **विकास का अपव्ययपूर्ण ढंग**–असन्तुलित विकास की यह रीति अपव्ययपूर्ण है क्योंकि इसके अन्तर्गत फालतू उत्पादन–क्षमता को अनावश्यक रूप से बनाए रखना पड़ता है। चूँकि असन्तुलित विकास के अनतर्गत सभी क्षेत्र समान रूप से विकसित नहीं होते बल्कि कुछ क्षेत्र अन्य क्षेत्रों के मुकाबिले में ऊँची दर से बढ़ते है। अतः कम गति से बढ़ने वाले क्षेत्रों के लिये पूंजीगत उपकरण उपलब्ध तो रहते हैं लेकिन उनका प्रयोग नहीं किया जा पाता जोकि एक प्रकार से साधनों का अपव्यय मात्र है।
4. **स्फीतिकारी दबावों का उत्पन्न होना**–असन्तुलित विकास की प्रक्रिया अर्थव्यवस्था के अन्दर स्फीतिकारी दबाव उत्पन्न करती है। जब अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण विकास बिन्दुओं (पूंजीगत परियोजनाओं) पर बड़ी मात्रा में निवेश किया जाता है तो उससे मौद्रिक आय बढ़ती है तो उपभोक्ता वस्तुओं की पूर्ति की तुलना में उनकी मांग बढ़ा देती है। फलस्वरूप कीमत–स्तर में स्फीतिकारी वृद्धि होती है जिससे उपभोक्ताओं को भी अतिरिक्त आर्थिक भार और मानसिक कष्ट उठाना पड़ता है।

5. **आधारभूत सुविधाओं का अभाव**–असन्तुलित विकास पद्धति के लिये उच्चस्तरीय तकनीकी ज्ञान, पर्याप्त शक्ति व परिवहन तथा विस्तृत बाजार जैसी आधारभूत सुविधाओं की आवश्यकता होती है जिनका अल्प–विकसित देशों में सर्वथा अभाव होता है।
6. **अनुबन्धन प्रभाव की कम उपयुक्तता**–हर्षमैन द्वारा प्रस्तुत अनुबन्धन प्रभाव–विश्लेषण दोषपूर्ण है क्योंकि वह अल्प–विकसित देशों के आँकड़ों पर आधारित नहीं है। इन देशों में सामाजिक ऊपरिव्यय सुविधाओं के पूर्णतः विकसित न होने के कारण अनुबन्धन प्रभाव काफी कमजोर होता है।
7. **अल्प–विकसित देशों की क्षमता से बाहर**–असन्तुलित विकास के सिद्धान्त के अनुसार निवेश असन्तुलनों को जन्म देते है जिनसे आर्थिक प्रक्रिया में दबाव तथा बनाव उत्पन्न होते है। आलोचकों का कहना है कि अल्प–विकसित देशों में ये दबाव तथा तनाव गम्भीर परिणाम लिये होते है क्योंकि ये विकास की प्रक्रिया को अवरूद्ध कर देते है। इसलिये असन्तुलनों के माध्यम से विकास करना इन देशों के लिये उचित नहीं कहा जा सकता।

विकास की कौन सी पद्धति अधिक श्रेष्ठ है?

जहाँ तक इन दोनों पद्धतियों की श्रेष्ठता निर्धारण की बात है यह कहना बहुत कठिन है कि इनमें से कौन सी पद्धति अधिक उपयुक्त समझी जाए, क्योंकि इन दोनों पद्धतियों के अपने कुछ गुण व दोष हैं। विकास की इन दोनों पद्धतियों का अन्तिम ध्येय तीव्र आर्थिक विकास करना है। अन्तर केवल इतना है कि विकास प्रक्रिया को क्या स्वरूप दिया जाए? अतः प्रो० पॉल स्ट्रीटन का कहना है कि सन्तुलित विकास और असन्तुलित विकास के सिद्धान्त के बीच चुनाव सम्बन्धी विवाद उत्पन्न करना निःसन्देह एक निरर्थक विचार है। यह दोनों पद्धतियाँ सही अर्थों में, प्रतियोगी न होकर पूरक हैं। इसलिए इन दोनों पद्धतियों में चुनाव करने की अपेक्षा इनके समन्वित उपयोग की चर्चा करना अधिक उपयोगी होगा।

फिर भी अल्प–विकसित देशों की मूल विशेषताओं को देखते हुए अधिकांश विचारक असन्तुलित विकास नीति का ही समर्थन करते हैं क्योंकि इससे निवेश वृद्धि, आय–वृद्धि की अपेक्षा अधिक होती है और राष्ट्रीय आय, राष्ट्रीय उपभोग की अपेक्षा ऊँची दर से बढ़ती है। दूसरा, भारी उद्योगों की अधिक महत्व दिए जाने के कारण बाह्म मितव्ययिताएँ अधिक प्राप्त होती हैं जो आर्थिक विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। चूंकि विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में असन्तुलनों का होना अनिवार्य है इस लिये प्रो० मायर का कहना है कि "जब विकास–रत देश असन्तुलन से बच नहीं सकता भले ही वह इसे पसन्द करे या न करे, तो फिर जान–बूझकर असन्तुलन पैदा करना (अर्थात असन्तुलित विकास नीति को ही अपनाना अच्छा होगा) जिससे तीव्र विकास की सम्भावना अधिक हो सके।"

सारांश

सन्तुलित विकास मॉडल एक आर्थिक सिद्धान्त है जिसके प्रणता प्रसिद्ध अर्थशास्त्री रेग्नर नर्क्स (1907–1959) ने किया था। इस मॉडल की परिकल्पना यह है कि किसी भी अल्पविकसित देश की सरकार को एक साथ कई उद्योगों में बड़े निवेश करने की आवश्यकता है। इससे बाजार का अनुपात, वर्गीकरण और र्निजी क्षेत्रों में निवेश के लिये प्रोत्साहन मिलता है। औद्योगिक एवं कृषि दोनों क्षेत्रों में चरणबद्ध तरीके से क्रमिक विकास करना चाहिये। इस सिद्धान्त में माना गया है कि कृषि और विनिर्माण के बीच विस्तार और अंतर क्षेत्रीय असन्तुलित आवश्यक है ताकि प्रत्येक क्षेत्र से दूसरे के लिये एक बाजार पेश किया जाये और बदले में, विकास और विकास के लिये आवश्यक कच्चे माल की आपूर्ति की जाए।

प्रो० राग्नर नर्क्स, रोजेंस्टीन रोडा, आर्थर लुईस, मेयर एण्ड वाल्डविन तथा एलन यंग जैसे विकास अर्थशास्त्री असन्तुलित विकास पद्धति को अपनाने पर जोर देते है।

असन्तुलित वृद्धि दोहा सिद्धान्त को मानने वाले विकासवादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार विकास असमानता की एक श्रृखला मात्र है जिसे एक असमान अर्थव्यवस्थाओं में लक्षण और नुकसान के असमानता को समाप्त करने के बजाय जीवित रखा जाना चाहिए। यह निवेश, आय, और उपभोग की वृद्धि दर से सन्दर्भ में असन्तुलित वृद्धि की व्याख्या करता है। किसी

भी अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का एक साथ विकास न करते हुये कुछ चुने हुये प्रमुख क्षेत्रों का विकास करना। इस सिद्धान्त के प्रवर्तक हर्षमैन के अनुसार आर्थिक विकास असन्तुलनों की श्रृखला द्वारा होता है। इसलिये एक पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार अर्थव्यवस्था को जानबूझकर असन्तुलित किया जाना आर्थिक विकास का सबसे अच्छा तरीका है। हर्षमैन ने सामाजिक उपरि–पूंजी एवं प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं के माध्यम से अर्थव्यवस्था को असन्तुलित बनाये रखने में विश्वास करते है। असन्तुलित वृद्धि सिद्धान्त में हर्षमैन ने अनुगामी अनुबन्ध प्रभाव की चर्चा की है।

बोध–प्रश्न

- संतुलित एवं असंतुलित विकास मॉडल को समझाइये।
- सामाजिक उपरि–पूंजी एवं प्रत्यक्ष–उत्पादक क्रियाओं से क्या आशय है।
- प्रो० हर्षमैन के असंतुलन वृद्धि सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।
- आपके दृष्टिकोण से भारत जैसे देश के लिये कौन सा माडल (संतुलन/असंतुलन) श्रेष्ठ हो सकता है।

शब्दावली

संतुलित विकास– अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र का विकास एक ही अनुपात में हो जिससे कि उपयोग, विनियोग, तथा आय एक ही अनुपात में बढेंगे।

असंतुलित विकास– किसी भी अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का एक साथ विकास न हो कर कुछ चुनिदा प्रमुख क्षेत्रों का गहन विकास करना।

खण्ड–02
इकाई–03 गरीबी एवं गरीबी का दुचक्र

प्रस्तावना

निर्धनता

गरीबी का आशय उस स्थिति से है जिसमें समाज का एक भाग अपने जीवन जीने की बुनियादी आवश्यकताओं को भी प्राप्त करने की स्थिति में नहीं रहता है। दूसरे शब्दों में– जब एक व्यक्ति अपने जीवन–निर्वाह हेतु न्यूनतम आवश्यकताओं, भोजन,कपड़ा शिक्षा, स्वाथ्य, आवास आदि को प्राप्त करने में असमर्थ हो तो उसे गरीब माना जाता है। गरीबी अल्पविकसित देशों के लिये प्रमुख बाधा है। और ये आय–असमानता एवं कुपोषण के रूप में दिखायी देती है। सामान्यतया गरीबी की माप के लिये सापेक्ष गरीबी एवं निरपेक्ष गरीबी का प्रयोग किया जाता है। गरीबी के कुपोषण वाला पक्ष निरपेक्ष गरीबी का लक्षण है। और आय की असमानता सापेक्ष गरीबी का लक्षण है। प्रसिद्ध विकासवादी अर्थशास्त्री नेगनर नर्क्स ने गरीबी के दुःचक्र का सिद्धांत दिया जिसमें उन्होंने गरीबी को ही गरीबी का कारण माना है।

इस इकाई में गरीबी का अर्थ, अवधारण मापन एवं गरीबी के दुःचक्र के सिद्धांत के विषय में अध्ययन किये।

रोजगार की समस्या के वैज्ञानिक विश्लेषण में बेरोजगारी से आशय उस स्थिति से है जिसमें लोग मजदूरी की प्रचलित दरों पर काम करने के लिए इच्छुक हैं परंतु उनको काम करने का अवसर उपलब्ध नहीं होता है इस प्रकार की बेरोजगारी को अनैच्छिक बेरोजगारी कहते हैं जिसके अंतर्गत आने वाला व्यक्ति अपनी इच्छा से बेरोजगार नही रहता है यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है की बेरोजगारी या कार्यकारी जनसंख्या में केवल उन लोगों को शामिल किया जाता है जो काम करने योग्य अर्थात शारीरिक मानसिक दृष्टि से स्वस्थ एवं न्यूनतम आयु 18 वर्ष को प्राप्त कर चुके हो, काम करने की इच्छा रखता हो, वह वृद्ध, बीमार, अपाहिज, पागल, भिखारी आदि ना हो तथा किसी दूसरे प्रकार के उत्पादक कार्यों के लिए आयोग्य व्यक्ति कार्यकारी जनसंख्या की श्रेणी में नहीं आते है।

कार्यकारी जनसंख्या का एक भाग या तो रोजगार का इच्छुक नहीं होता या फिर प्रचलित दरों से अधिक मजदूरी पर काम करने को तैयार होता है इस प्रकार के लोगों को स्वेच्छा से बेरोजगार माना जाता है तथा ऐसी स्थिति को ऐच्छिक बेरोजगारी कहते हैं सामान्य रूप से बेरोजगारी शब्द का प्रयोग अनैच्छिक बेरोजगारी के अर्थ में ही किया जाता है अतः बेरोजगारी के अनेक आर्थिक एवं सामाजिक दुष्परिणाम होते हैं जो व्यक्ति और समाज दोनों

के लिए बहुत गंभीर व घातक होते हैं जिसके व्यापक परिणाम होते हैं जैसे कि राष्ट्रीय उत्पादन की मात्रा में कम हो जाती है, पूंजी निर्माण में कमी आती है, व्यापार तथा व्यवसाय की प्रगति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, निर्धनता में वृद्धि होती है, सामाजिक सुरक्षा में कमी होती है जैसे की चोरी, डकैती, आदि की बुराइयों में वृद्धि होती है।

2.4.3– बेरोजगारी के प्रकार

भारत में बेरोजगारी को प्रायः शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रो के आधार पर विभाजित करने पर शहरी बेरोजगारी के अंतर्गत औद्योगिक बेरोजगारी और शिक्षित बेरोजगारी आती हैं जबकि ग्रामीण बेरोजगारी के अंतर्गत अदृश्य बेरोजगारी और मौसमी बेरोजगारी आती है।

औद्योगिक बेरोजगारी

औद्योगिक बेरोजगारी का आशय उन व्यक्तियों से है जो तकनीकी एवं गैर तकनीकी रूप से औद्योगिक कार्य करने की क्षमता तो रखते हैं परंतु उन्हें उनके कार्य क्षमता अनुरुप रोजगार प्राप्त नहीं होता है।

शिक्षित बेरोजगारी

शिक्षित बेरोजगारी से अभिप्राय उन पढ़े लिखे व्यक्तियों से है जो शिक्षण–प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात भी अपनी योग्यता तथा कार्य दक्षता अनुरूप रोजगार नहीं प्राप्त कर पाते हैं उन्हें शिक्षित बेरोजगार कहा जाता है।

संरचनात्मक बेरोजगारी

संरचनात्मक बेरोजगारी से तात्पर्य अवसंरचनात्मक कमी, औद्योगिक पिछड़ापन, पूंजी की कमी, तकनीकी पिछड़ापन इत्यादि से है जिससे कि किसी भी देश में उसके कार्यशील श्रम बल का अनुकूलतम उपयोग नहीं हो पाने के कारण वहां के लोगों को रोजगार उपलब्ध नहीं हो पता है।

प्रच्छन्न बेरोजगारी या छिपी हुई बेरोजगारी

जब किसी कार्य में आवश्यकता से अधिक श्रम बल कार्यरत हो उस श्रम बल को कार्य से हटा लेने पर उसके उत्पादन में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं आती है अर्थात उन श्रमिकों की सीमांत उत्पादकता शून्य होती है ऐसी बेरोजगारी की स्थिति को प्रच्छन्न बेरोजगारी कहते हैं अधिकांशतया यह कृषि क्षेत्र में देखने को मिलती हैद्य अल्प रोजगार– जब किसी श्रमिक को जितने समय काम मिलना चाहिए उससे कम समय उसको

काम मिलता है तो इस अवस्था को अल्प रोजगार की अवस्था कहते हैं इसे अर्थशास्त्रियों द्वारा दो भागों में दृश्य अल्प रोजगार तथा अदृश्य अल्प रोजगार में बांटा गया है दृश्य अल्प रोजगार जिसमें की किसी व्यक्ति को सामान्य घंटे से कम काम मिलता है अर्थात यदि किसी व्यक्ति को प्रतिदिन 8 घंटे की बजाय 3 घंटे ही काम मिले तो उसे दृश्य अल्प रोजगार कहते है तथा अदृश्य अल्प रोजगार के अंतर्गत किसी व्यक्ति को उसकी योग्यता एवं दक्षता अनुसार काम ना मिल पाने की स्थिति हैद्य जैसे की किसी इंजीनियरिंग पास व्यक्ति साफ–सफाई का काम करना पड़े।

घर्षणात्मक बेरोजगारी

घर्षणात्मक बेरोजगारी का तात्पर्य किसी उत्पादन प्रक्रिया में तकनीकी या प्रौद्योगिकी परिवर्तन के कारण कार्य करने वाले व्यक्ति को शिक्षण एवं प्रशिक्षण के अकुशलता के चलते उसे कुछ दिनों के लिए बेरोजगार रहना पड़ता है ऐसी स्थिति को घर्षणात्मक बेरोजगारी कहते हैं यह बेरोजगारी प्रमुख रूप से अस्थाई प्रवृत्ति की होती है श्रमिक आवश्यक तकनीकी प्रशिक्षण प्राप्त कर पुनः रोजगार प्राप्त कर सकता है फिर भी निरंतर विकास के कारण इस प्रकार की बेरोजगारी सदैव कुछ ना कुछ श्रमिकों के साथ लगी रहती है जो कि लगभग स्थाई प्रवृत्ति को ही दिखाती हैद्य जैसे की कोई व्यक्ति टाइपराइटर पर टाइपिंग करता है और उसे बाद में कंप्यूटर पर टाइपिंग करने के लिए दे दिया जाए इस दौरान उससे कुछ समय के लिए प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए बेरोजगार रहना पड़ सकता है।

मौसमी बेरोजगारी

यह जलवायु में परिवर्तन के कारण वस्तुओं की मांग और आपूर्ति में असंतुलन के फलस्वरुप श्रमिकों को बेरोजगार रहना पड़ता है जैसे की स्वेटर एवं कंबल बनाने वाले श्रमिकों को गर्मी के दिनों में बेरोजगार रहना पड़ता है या कृषि व्यवसाय से संबंधित श्रमिकों को फसल कटने के पश्चात एवं नई फसल बोने तक के दिनों में बेरोजगार रहना पड़ता है।

खुली बेरोजगारी

जिसका अभिप्राय ऐसी बेरोजगारी से है जिसमें श्रमिकों के पास काम करने की योग्यता क्षमता एवं इच्छा होने के पश्चात उन्हें कुछ समय तक कोई रोजगार प्राप्त नहीं होता है जैसे की अधिकांशत ग्रामीण क्षेत्रो से शहरी क्षेत्रो में श्रमिक पलायन करते हैं जो की कुछ समय के लिए वह बेरोजगार रहते है खुली बेरोजगारी की श्रेणी में आते है।

चक्रीय बेरोजगारी

यह बेरोजगारी अर्थव्यवस्था में चक्रीय उतार–चढ़ावों के कारण आर्थिक क्रियाकलापों में परिवर्तन अर्थात अर्थव्यवस्था में मंदी के परिणाम स्वरूप रोजगार अवसरों में कमी आती है उसे चक्रीय बेरोजगारी कहते हैं अधिकांशतया पूंजीवादी अथवा बाजार तंत्र पर आधारित विकसित देशों में देखी जाती है जिसकी प्रकृति अस्थाई होती है जो की आर्थिक क्रियाओ में सुधार के पश्चात समाप्त हो जाती है।

योजना आयोग द्वारा स्वीकृतबेरोजगारी के प्रकार

योजना आयोग द्वारा स्वीकृत बेरोजगारी अपनाई गई जिसका आकलन राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन करता है निम्नलिखित है

सामान्य स्थिति बेरोजगारी

यह बेरोजगारी के दैनिक आंकड़ों को प्रदर्शित करता है जिसमें व्यक्तियों की सामान्य गतिविधियों के बारे में जानकारी एकत्रित करने का प्रयास किया जाता है है कि सर्वेक्षण में शामिल व्यक्तियों में कितने लोगों को रोजगार प्राप्त हुआ है कितने लोगों को रोजगार प्राप्त नहीं हुआ है जिसमें 365 दिनों में से कोई व्यक्ति 183 दिन या इससे अधिक रोजगार प्राप्त करता है तो उसे रोजगार प्राप्त के रूप में माना जाएगा यदि कोई व्यक्ति 183 दिनों से कम रोजगार प्राप्त करता है तो वह बेरोजगारी की श्रेणी में आएगा।

साप्ताहिक स्थिति बेरोजगारी

इसमें राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन द्वारा किसी व्यक्ति के सप्ताह के सामान्य गतिविधियों को प्रदर्शित करता है जिसमें की कोई व्यक्ति किसी भी दिन एक घंटे भी कम प्राप्त करता है तो उसे रोजगार में मान लिया जाएगा तथा वह बेरोजगारी कि श्रेणी में नहीं आएगा।

दैनिक स्थिति बेरोजगारी

इसके अंतर्गत राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन द्वारा सप्ताह के 7 दिनों में से प्रतिदिन की गतिविधियों एवं कार्यों का अध्ययन किया जाता है अर्थात एक निश्चित समय दर है जो प्रति सप्ताह बेरोजगारों के श्रम दिनों का प्रति सप्ताह कुल श्रम दिनों से अनुपात है जिसमें यदि कोई भी व्यक्ति किसी दिन भी 1 घंटे से अधिक एवं 4 घंटे से कम कम प्राप्त करता है तो उसे आधे दिन कार्यरत माना जाएगा और यदि 4 घंटे से अधिक काम प्राप्त करता है तो वह पूरे दिन कार्यरत माना जाएगाद्य इसे बेरोजगारी की सर्वोत्तम माप माना जाता है क्योंकि इसमें खुली तथा आंशिक सभी प्रकार की बेरोजगारी शामिल हो जाती है।

2.4.4 भारत में बेरोजगारी की स्थिति

भारत में बेरोजगारी की समस्या आर्थिक नियोजन के समय से ही विद्यमान थी जिसके समाधान के लिए भारत की प्रथम चार पंचवर्षीय योजनाओं में रोजगार विकास के लक्ष्यो पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया और यह माना गया कि आर्थिक विकास के साथ रोजगार का सृजन भी होता रहेगा परन्तु ऐसा ना हो पाने के कारण वर्ष 1956 में भारत में बेरोजगारी 5 मिलियन से बढ़कर वर्ष 1973–74 में भारत में बेरोजगारी 10 मिलियन तक पहुंच गई जिससे निपटने के लिए पांचवी पंचवर्षीय योजना में रोजगारपरक संवृद्धि को संवृद्धि रणनीति के रूप में स्वीकार किया गया जिससे कि बेरोजगारी को दूर किया जा सके जिसके लिए 1973 में जगदीश भगवती की अध्यक्षता में भगवती कमेटी बनायी गई।

बेरोजगारी की समस्या का समाधान करने के लिए छठी पंचवर्षीय योजना में आई.आर.डी.पी, एन.आर.ई.पी, ट्राईसेम, आर.एल.ई.जी.पी. जैसे अनेक कार्यक्रम भारत सरकार द्वारा चलाए गए तथा छठी पंचवर्षीय योजना के पश्चात सभी योजनाओं में बेरोजगारी की समस्या के समाधान पर विशेष ध्यान दिया गया जिसके लिए 2004 में रोजगार प्राप्ती को कानूनी अधिकार का दर्जा देने के लिए महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण गारंटी एक्ट लाया गया।

भारत में हेड काउंट को ही बेरोजगारी के दर के रूप में स्वीकार किया जाता है पर बेरोजगारी की सही स्थिति स्पष्ट करने के लिए श्रम भागीदारी अनुपात तथा बेरोजगारी दर आवश्यक है।

श्रम भागीदारी दर – श्रम भागीदारी दर को अर्थव्यवस्था में विद्यमान कार्यशील जनसंख्या 16 वर्ष से 64 वर्ष के आयु वर्ग में जो वर्तमान में कार्यरत हैं या रोजगार की तलाश कर रहे हैं के रूप में परिभाषित करते हैं।

बेरोजगारी की दर – यदि हम बेरोजगार लोगों को श्रम बाजार में काम के लिए आए हुए लोगों के प्रतिशत के रूप में व्यक्त करें तो उसे हम बेरोजगारी की दर कहेंगे।

परंपरागत रूप में पीरियाडिकल लेबर फोर्स रिपोर्ट 2018 के अनुसार पहले बेरोजगारी दर 2 से 3 प्रतिशत रही है जिसे राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन भी मानता था जो रोजगार तथा बेरोजगारी से संबंधित सभी संकेत पर प्रकाश डालता है पी.एल.एफ.एस. का गठन अमिताभ कुंडू की संस्तुतियों पर किया गया जिसे 2017 में राष्ट्रीय सांख्यिकी ऑफिस द्वारा स्वीकार किया गया यह सर्वेक्षण ग्रामीण परिवारों के संबंध में वार्षिक रूप से तथा शहरी परिवारों के लिए त्रैमासिक रूप से आंकड़े एकत्रित करता है जिसका उद्देश्य रोजगार तथा बेरोजगार संबंधित प्रमुख संकेत को श्रम जनसंख्या अनुपात के द्वारा श्रम भागीदारी दर तथा बेरोजगारी दर का अनुमान लगाना है।

वर्ष 2018–19 के रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2017–18 में बेरोजगारी की दर 6.5 प्रतिशत थी जो की वर्ष 2018–19 में घटकर 5.8 प्रतिशत हो गई इसमें शहरी बेरोजगारी दर वर्ष 2018–19 में 7.7 प्रतिशत रही जो की वर्ष 2017–18 में 7.8 प्रतिशत रही थी द्य इस अवधि में ग्रामीण बेरोजगारी दर जो वर्ष 2017–18 में 5.3 प्रतिशत थी जो घटकर वर्ष 2018–19 में 5 प्रतिशत हो गई।

2.4.5 भारत में बेरोजगारी के कारण

भारत में रोजगार विहीन संवृद्धि

स्वतंत्रता पश्चात से भारत में आर्थिक संवृद्धि दर काफी कम रही जिसका प्रभाव रोजगार संवृद्धि दर पर भी रहा है दीपक नायर के अनुसार यह रोजगार विभिन्न संवृद्धि सहयोग मात्र नहीं थी यह उन आर्थिक नीतियों का परिणाम थी जिसमें पूरा ध्यान संवृद्धि पर था लेबर ब्यूरो के बेरोजगारी सर्वेक्षण के आंकड़ों के अध्ययन से विनोद अब्राहम ने निष्कर्ष निकला की 3 वर्षों की अवधि में वर्ष 2013–14 से वर्ष 2015–16 के बीच 37.4 लाख से लेकर 53 लाख रोजगार हानि हुई स्वतंत्रता के बाद शायद पहली बार हुआ कि रोजगार की मात्रा में गिरावट हुई है हालांकि ऐसे चरण अवश्य आए हैं जब रोजगार संवृद्धि की दर बहुत कम रही है 1993–94 से 1999–2000 के बीच लगभग एक प्रतिशत प्रतिवर्ष तथा वर्ष 2004–05 से वर्ष 2011–12 के बीच एक प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से भी कम रही थीद्य महेश व्यास के अनुसार वर्ष 2016–17 के आंकड़ो के अनुसार विमुद्रीकरण तथा वस्तु सेवा करके चलते रोजगार सृजन में शिथिलता रही थी वर्ष 2016 में रोजगार में लगे लोगों की संख्या 406.50 मिलियन थी जो 2017 में 405 मिलियन से भी कम रह गई जो कि संभवतः विमुद्रीकरण का परिणाम रहा होगा।

जनसंख्या में वृद्धि

स्वतंत्रता पश्चात् से ही भारत में मृत्यु दर में तेजी से कमी आई है जिससे कि देश में तीव्र जनसंख्या वृद्धि के परिणाम स्वरूप श्रम की पूर्ति में भी तेजी से वृद्धि हुई है लेकिन अर्थव्यवस्था का विकास उस तीव्रता से नहीं हुआ है जिससे की रोजगार की बढ़ती मांगों को पूरा कर पाना संभव हो सके तथा ग्रामीण जनसंख्या के तीव्र वृद्धि से कृषि में प्रच्छन्न बेरोजगारी बढ़ी है शहरी क्षेत्र में शिक्षित बेरोजगारों की संख्या भी तेजी से बढ़ी है साथ ही साथ शहरों में स्थाई रूप से निवास करने वाले लोगों के रोजगार के अवसरों में कमी हुई है तथा गांव से शहरों की ओर पलायन करने वाले ग्रामीणों को भी बेरोजगारी की समस्या का सामना करना पड़ रहा है।

अनुपयुक्त तकनीक का प्रयोग

भारत में श्रम प्रधान देश होते हुए भी भारतीय औद्योगिक क्षेत्रो द्वारा विकसित देशों की तर्ज पर पूंजी प्रधान तकनीक अपनाने के कारण बेरोजगारी की समस्या बढ़ी है क्योंकि पूंजीवादी देश के तर्ज पर स्वचालित ऑटोमेटिक मशीनों का प्रयोग भारत में बेरोजगारी में वृद्धि का कारण बना है।

दोष पूर्ण शिक्षा प्रणाली

भारत में शिक्षा प्रणाली का दोषपूर्ण होना भारत में बढ़ती बेरोजगारी के मुख्य कारणों में से एक है क्योंकि भारत में मुख्यतः परंपरागत शिक्षा पर जोर दिया जाता है जिसका की व्यवहारिक जीवन में उपयोग बहुत कम होता है तथा तकनीकी शिक्षा में जोर ना दिए जाने के कारण मानव श्रम का सम्पूर्ण विकास नहीं हो पा रहा हैद्य मनुष्य के लोगों को व्यापक स्तर पर रोजगार प्राप्त हो सकेद्य गुर्नार मिर्डल के अनुसार कला, कॉमर्स, विज्ञान ऐसी शिक्षा है जिसका उपयोग व्यवहारिक जीवन में नहीं है यह लोग न केवल अल्प शिक्षित है बल्कि सच पूछा जाए तो उनकी शिक्षा गलत प्रकार की है।

निर्धनता का दुश्चक्र
(VICIOUS CIRCLE OF POVERTY)

वर्तमान युग में निर्धनता एक प्रकार का अभिशाप है। यह जीवन का सबसे बड़ा न किया हुआ ऐसा अपराध है जिसकी सजा बेगुनाह इन्सान को भुगतनी पड़ती है। मानव जाति का सबसे बड़ा और क्या दुर्भाग्य हो सकता है कि ईश्वर छोट द्वारा बनाई हुई इस धरती पर एक तरफ सुख–सम्पन्नता, भोग–विलास व ऐशो–आराम अपनी पराकाष्ठा की सीमा पर है तो दूसरी ओर करोड़ों इन्सान भूख और गरीबी के दुःख से पीड़ित हैं। अकर्मणय लोग इसे तकदीर का नाम देते हैं और मजलूम असहाय इन्सान इसे अपनी बेबसी मानता है। और जीवन–पर्यन्त इसी गरीबी के दुःचक्र में फसा रहा है।

निर्धनता के दुश्चक्र से आशय (Meaning)

सवाल यहाँ पर यह है कि निर्धनता के दुश्चक्र से क्या अभिप्राय है? निर्धनता अपनी जननी स्वयं है। दूसरे शब्दों में, **निर्धनता का कारण और परिणाम, स्वयं निर्धनता ही है। निर्धनता का दुश्चक्र एक ऐसी वृत्ताकार प्रक्रिया है जिसका प्रारम्भ भी निर्धनता से होता है और अन्त भी निर्धनता के रूप में ही होता है।** निर्धनता एक ऐसे रोगी के समान है जो अपनी

शारीरिक शिथिलता के कारण रोगग्रस्त होता है और रोगग्रस्त होने के कारण शारीरिक रूप से शिथिल बना रहता है। **प्रो० विनस्लो** ने 1951 में जनेवा में होने वाले 'विश्व स्वास्थ्य संघ' के अधिवेशन में 'The cost of sickness and price of health' नामक विषय पर बोलते हुये इस शब्द का अर्थ इस प्रकार स्पष्ट किया था कि "निर्धनता एवं बीमारी एक दुश्चक्र में परस्पर क्रमबद्ध थे। पुरुष और स्त्रियाँ इसलिये बीमार थीं क्योंकि वे लोग गरीब थे; वे गरीब इसलिये हो गये क्योंकि वे बीमार थे। वे और अधिक इयलिये गरीब होते चले गये क्योंकि वे बीमार बने रहे और उनकी उत्तरोत्तर बीमारी का कारण उनकी गरीबीं थी।"

रागनर नर्कसे (Ragnar Nurkse) के विचार

रागनर नर्कसे सम्भवतया पहला अर्थशास्त्री था जिसने निर्धनता के दुश्चक्र को सही ढंग से स्पष्ट करने का प्रयास किया है। उन्होंने इस शब्द का प्रयोग अल्प–विकसित राष्ट्रों के सन्दर्भ में उसकी एक प्रमुख विशेषता के रूप में किया है। उनका यह प्रचलित कथन कि **'एक देश इसलिये निर्धन है क्योंकि वह निर्धन है'** वास्तव में निर्धनता के दुश्चक्र पर ही आधारित है। नर्कसे महोदय ने निर्धनता के दुश्चक्र से अभिप्राय इस प्रकार लगाया है–

"निर्धनता के दुश्चक्र का अर्थ, नक्षत्र–मण्डल के समान वृत्ताकार ढंग से घूमती हुई ऐसी शक्तियों से है जो एक–दूसरे पर इस प्रकार क्रिया–प्रतिक्रिया करती है कि एक निर्धन देश निर्धनता की अवस्था में ही बना रहता है।" उदाहरण के लिये एक निर्धन व्यक्ति को खाने के लिये पर्याप्त खाद्य नहीं मिल पाता, खाद्य की कमी के कारण वह निर्बल हो जाता है। शारीरिक रूप से निर्बल होने पर उसकी कार्य–क्षमता कम होने लगती है जिसका अर्थ यह है कि वह निर्धन है, जिसका फिर यह अर्थ होता है कि उसे पर्याप्त भोजन नहीं मिलता और यह क्रम इसी प्रकार आगे भी चलता रहता है। इस स्थिति को सम्पूर्ण देश के साथ सम्बद्ध करने पर, एक कथन के रूप में इस प्रकार कहा जायेगा कि, "एक देश इसलिये निर्धन है क्योंकि वह निर्धन है।"

निर्धनता के दुश्चक्र की विशेषताएँ–उपर्युक्त दोनों कथनों के आधार पर निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं–

1. निर्धनता का कारण व परिणाम स्वयं निर्धनता है।

2. निर्धनता अपने प्रारम्भिक बिन्दु से अन्तिम बिन्दु तक वृत्ताकार ढंग से क्रिया व प्रतिक्रिया करती हुई बढ़ती है।
3. इसका प्रभाव संचयी होता है अर्थात् एक स्तर पर पाई जाने वाली निर्धनता अगले स्तर पर और भी अधिक घातक होने लगती है।
4. यह एक सेसी लगातार प्रक्रिया है जो सम्बन्धित घटकों को सदैव नीचे की ओर ढकेलती है।
5. निर्धनता के दुश्चक्र की शुरूआत एक नकारात्मक घटक की उपस्थिति से होती है, अैर यह घटक अगले नकारात्मक घटक का कारण व परिणाम दोनों होता है।

प्रो० रागनर नर्कसे का मत है कि यह चक्रीय सम्बन्ध पिछड़े हुये देशों में पूंजी संचय की स्थिति को, कारण व परिणाम के रूप में स्पष्ट करता है। सिकी देश में पूंजी की पूर्ति बचत करने की शक्ति व इच्छा पर निर्भर करती हे, बल्कि पूंजी की माँग विनियोग की प्रेरणाओं पर निर्भर करती है। विश्व के अधिकांश निर्धनता–ग्रस्त क्षेत्रों में पूंजी–निर्माण की समस्या का यह मांग व पूर्ति पक्ष–रूपी चक्रीय सम्बन्ध, प्रायः देखने में आता है। दूसरे शब्दों में, नर्कसे ने यह बताने का प्रयास किया है कि पूंजी व पूंजी–निर्माण की कमी, मांग व पूर्ति, दोनों पक्षों के आधार पर होती है।

पूर्ति पक्ष (Supply Side)

पूर्ति पक्ष का अर्थ है–जब पूंजी–निर्माण के लिये वांछित पूंजी की मात्रा की पूर्ति किन्ही कारणों के फलस्वरूप कम हो पाती है। जैसे पिछड़े देशों में प्रति व्यक्ति वास्तविक आय कम होने पर बचत करने की शक्ति कम होती है। प्रति–व्यक्ति आय इसलिये कम होती है क्योंकि उत्पादकता कम होती है। उत्पादकता इसलिये कम होती हैं क्योंकि विनियोग कम होते हैं और विनियोग की कमी का कारण, बचत की मात्रा का कम होना है। बचत स्वयं, लोगों की बचत करने की शक्ति पर निर्भर करती है जोकि पहले से ही कम है। बचत–क्षमता इस लिये कम है क्योंकि प्रति–व्यक्ति आय कम है और इस प्रकार यह चक्र पूरा हो जाता है। जैसे कि नीचे चित्र–2 से स्पष्ट होता है।

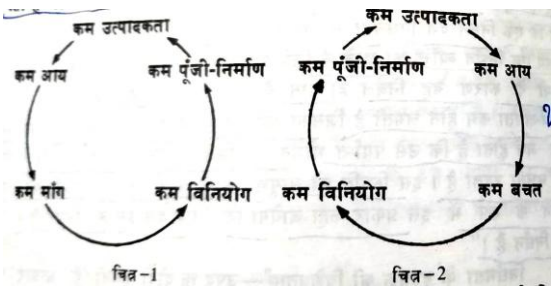

माँग पक्ष (Demand Side)

माँग पक्ष का अर्थ है–देश में पूँजी की मांग का ही कम होना। जैसे एक देश में विनियोग की प्रेरणायें इसलिये कम होती हैं क्योंकि बाजार क आकार सीमित होता है अर्थात् वस्तुओं की मांग कम होती है। मांग के कम होने का कारण, लोगों के पास क्रय–शक्ति का कम होना है। क्रय–शक्ति इयलिये कम होती है क्योंकि आय कम होती है। आय इसलिये कम होती है क्योंकि उत्पादकता कम होती है और उत्पादकता के कम होने का कारण, पूंजी का कम विनियोग है। पूंजी का विनियोग इसलिये कम हो पाता है क्योंकि विनियोग की प्रेरणाओं का अभाव होता है और इस प्रकार यह चक्र भी पूरा हो जाता है। जैसा कि ऊपर दिये चित्र–1 से स्पष्ट है।

नर्कसे का कहना है कि इस सम्बन्ध में ध्यान रखने योग्य बात यह है कि वास्तविक आय का निम्न–स्तर, वस्तुओं की मांग व पूर्ति के निम्न–स्तर का कारण व परिणाम दोनों है। वास्तविक आय के कम होने का प्रभाव, एक तरफ वस्तुओं की मांग पर पड़ता है तो दूसरी ओर लोगों द्वारा की जाने वाली बचतों पर पड़ता है। परन्तु अन्ततः यह दोनों स्त्रोत (पक्ष) एक ही बिन्दु, कम उत्पदकता अर्थात् निम्न वास्तविक आय पर आकर मिल जाते है। अतः स्पष्ट है कि निर्धनता अर्थात् आर्थिक पिछड़ेपन का मुख्य कारण पूंजी का अभाव है परन्तु निर्धनता का यह एक–मात्र कारण नहीं। पूंजी के अलावा प्राकृतिक साधनों का अभाव अथवा उनका अल्प–विदोहन और बाजार अपूर्णतायें भी निर्धनता के लिये पूरी तरह से उत्तरदायी ठहराई जाती है। **प्रो० नर्कसे** का कहना है कि **"हमको सदैव याद रखना चाहिए कि पूंजी ही सब कुछ नहीं है। उस चक्रीय सम्बन्ध को जो कि अल्प पूंजी निर्माण का कारण है, के अतिरिक्त अन्य भी कुछ ऐसे कारण हैं जो एक देश को निर्धन बनाये रखते हैं। उदाहरण के तौर पर खनिज पदार्थो का अभाव, तकनीकी ज्ञान की कमी, उत्प्रेरणाओं एवं उद्यमशीलता का अभाव इत्यादि।"**

प्रो० मायर एवं बाल्डबिन (Meier and Baldwin) का मत है कि निर्ध्रनता का दुश्चक्र मुख्य रूप से मानवीय और प्राकृतिक साधनों के अल्प–शोषण पर आधारित है। आर्थिक दृष्टि से लोग जितने अधिक पिछड़े हुए होंगे, प्राकृतिक साधनों का उतना ही कम विकास हो सकेगा। संक्षेप में, अल्प–विकसित प्राकृतिक साधन निर्धनता के कारण

व परिणाम दोनों ही हैं। (मायर एवं बाल्डविन का निर्धनता के दुश्चक्र सम्बन्धी मॉडल पिछले अध्याय में दिया जा चुका है)।

प्रो० के० एन० भट्टाचार्य के अनुसार "निर्धनता और आर्थिक पिछड़ापन दो पर्यायवाची शब्द है। एक देश इसलिये निर्धन होता है क्योंकि वह अल्प–विकसित है। वह अल्प–विकसित इयलिये है क्योंकि वह निर्धन है; और अल्प–विकसित इयलिये बना रहता है क्योंकि उसके पास विकास को गति प्रदान करने के लिये वांछित साधनों का अभाव होता है। निर्धनता एक अभिशाप है परन्तु इससे बड़ा अभिशाप यह है कि निर्धनता अपनी जननी स्वयं है।"

जॉन कैनेथ गैलब्रथ ने निर्धनता के स्वरूप, उसके दुश्चक्र व कारणों के सम्बन्ध में निम्न विचार रखे हैं– (1) लोग इसलिये गरीब है क्योंकि उन्हें गरीब रहना पसन्द है। (2) दरिद्र देश प्राकृतिक रूप से ही दरिद्र हैं। (3) कोई देश इसलिये गरीब है क्योंकि वह औपनिवेशिक उत्पीड़न का शिकार रहा है। (4) गरीबी वर्ग शोषण का परिणाम है। (5) गरीबी का कारण अपर्याप्त पूंजी है। (6) अत्यधिक जनसंख्या गरीबी का कारण है। (7) गरीबी का कारण निकम्मी आर्थिक नीति है। (9) गरीबी अज्ञानता के कारण भी होती है।

निर्धनता के दुश्चक्र की गुन्नार मिर्डाल द्वारा समीक्षा

प्रो० गुन्नार मिर्डाल ने निर्धनता के दुश्चक्र की संचयी प्रक्रिया व एक–तरफा नकारात्मक स्वरूप की आलोचना करते हुए कहा है कि यह आवश्यक नहीं कि निर्धनता का यह दुश्चक्र सदैव एक ही दिशा अर्थात् नीचे की ओर ही अग्रसर होता रहे। दूसरे शब्दों में, एक निर्धन देश उत्तरोत्तर निर्धन ही होता जायेगा यह मानना भयंकर भूल होगी। इसका कारण यह है कि प्रत्येक आर्थिक प्रक्रिया के उपरान्त एक स्थिति, विराम व साम्य की होती है जहाँ पर सभी आर्थिक घटक निश्चल बने रहते है और इस बिन्दु पर विभिन्न प्रकार की शक्तियां एक–दूसरे के साथ गठबन्धन बनाये रहती है। ऐसी हालत में सम्भव हो सकता है कि किसी 'घटक–विशेष' के प्रभावपूर्ण धक्के से अर्थ–व्यवस्था कोई नया मोड़ (घनात्मक) लेकर स्थिति काके पूर्णतया बदल दे। प्रो० मिर्डाल का मत है कि इस दुश्चक्र की यह मान्यता कि किसी चक्र की सम्पूर्ण

प्रक्रिया के तदन्तर अर्थ–व्यवस्था में किसी भी प्रकार का कोई सामाजिक, संस्थागत व राजनीतिक परिवर्तन नहीं होता, एक बहुत बड़ी भूल है। इस विचारधारा का एक अन्य दोष यह है कि इसमें **'समय–तत्व'** की अवेहलना की गई है।

अतः प्रो० मिर्डाल का कहना है कि "ऐसा लगता है कि प्रो० रागनर नर्कसे ने निर्धनता के दुश्चक्र की प्रक्रिया को किसी फिल्म की कहानी के घटना–क्रम पर आधारित करने का प्रयास किया है जिसमें प्रत्येक घटना किसी निश्चित क्रम व क्रम के पीछे निर्माता व निर्देशक की इच्छा व पूर्व–निश्चित मोड़ो की उपस्थित आवश्यम्भावी है। परन्तु एक अर्थ–व्यवस्था की स्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। कौन सा आर्थिक घटक कब और किस प्रकार मोड़ लेगा, उसे कौन से अन्य ज्ञात अथवा अज्ञात तत्व, किस स्तर पर और किस रूप में प्रभावित करेंगे, यह अनुमान तो लगाया जा सकता है परन्तु उसे एक स्व–चालित मशीन का रूप नहीं दिया जा सकता।"

यह दुश्चक्र किस प्रकार तोड़ा जाये?

अब प्रश्न यह उठता है कि निर्धनता के इस दुश्चक्र को किस प्रकार तोड़ा जाये? दूसरे शब्दों में, निर्धनता को दूर करने के लिये क्या उपाय किये जाये? **रागनर नर्कसे** का मतह ै कि निर्धन राष्ट्रों को, अल्प–विकसित साम्य की इस अवस्था को, एक न हल होने वाली भाग्य पहेली नहीं समझ लेना चाहिये, बल्कि जैसा कि विश्व के कई देशों में देखने को मिलता है, इस दुश्चक्र को तोड़ने के लिये पर्याप्त समाधान उपलब्ध किये जा सकते है। नर्कसे के अपने शब्दों में **"एक स्थिर अवस्था में शक्तियों का चक्रीय रूप में काम करना एक वास्तविकता अवश्य है किन्तु सौभाग्य से यह चक्र ऐसा नहीं है कि जिसे तोड़ा न जा सकता हो। अतः इस चक्र को हमें विषम कहने में संकोच करना चाहिये क्योंकि एक बार इस दुश्चक्र को तोड़ देने पर यह लाभ–पूर्ण भी बन सकता है।" हाँ !** इस सम्बन्ध में किये जाने वाले प्रयत्नों की रूप–रेखा इस प्रकार दी जा सकती हैं–

1. **'सन्तुलित विकास'** की नीति के आधार पर उपलब्ध पूंजी का विस्तृत उपयोग किया जायें अर्थात् ज्यादा से ज्यादा उद्योगों में पूंजी का विनियोग करना चाहिये। इसका

लाभ यह होता है कि विभिन्न उद्योग एक–दूसरे के लिये परस्पर मांग उत्पन्न करते हैं और उनके फलस्वरूप बाजार की अपूर्णताएँ समाप्त होने लगती है।

2. घरेलू क्षेत्र में **पूंजी निर्माण** को गति प्रदान करने हेतु निम्न प्रयत्न किये जाने चाहिये–(अ) वास्तविक बचत दर में वृद्धि करना, (ब) बचतों को गतिशील बनाना, तथा उनका सही निर्देशन करना।
3. **विकसित तकनीक** को कुछ क्षेत्रों में लागू करना व परम्परागत तकनीक में यथा–सम्पन्न सुधार करना।
4. **उत्पत्ति के साधनों** विशेषकर श्रम व प्राकृतिक साधनों का सर्वोपयुक्त ढंग से तथा पूर्ण उपयोग सम्भव करना।
5. उद्यमशीलता की कमी के कारण **सरकारी क्षेत्र** को बढ़ावा देना।
6. विकास–वित के लिए करारोपण, हीनार्थ प्रबन्धन, बैकिंग व्यवस्था का विकास, सार्वजनिक उद्योगों की स्थापना, विदेशी पूंजी और अपसंचित साधनों का उपयोग आदि **मौद्रिक उपायों** को लागू करना।
7. शिक्षा का प्रसार और **सामाजिक व संस्थागत ढाँचे** में परिवर्तन करना।

सारांश

आज देश की सबसे प्रमुख समस्या गरीबी है। जब भारत अंग्रेजों के शासन से मुक्त हुआ तो उसे विरासत में एक पंगु अर्थव्यवस्था मिली, जिसमें गरीबी की जड़े बहुत गहराई तक फैली थी, देश के सामने प्रमुख चुनौती गरीबी के जाल से निकल अर्थव्यवस्था को विकास के रास्ते पर चलाना था, गरीबी की माप के लिये दो प्रतिमानों सापेक्षिक प्रतिमान एवं निरपेक्ष प्रतिमान का प्रयोग किया जाता है। गरीबी की रेखा के निर्धारण के सम्बन्ध में एक वैकल्पिक परिभाषा स्वीकार की गयी जिसमें आधार सम्बन्धी जरूरतों को ध्यान में रखा गया है। इस अवधारणा के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र में 2100 कैलोरी प्रतिदिन के हिसाब से यदि पोषण नहीं प्राप्त हो रहा है तो उनको गरीबी रेखा से नीचे माना जाता है। रेगनर नर्क्स सम्वतः पहले अर्थशास्त्री थे जिन्होंने निर्धनता के दुःचक्र को सही ढंग से विश्लेषण करने का प्रयास किया। निर्धनता के दुःचक्र शब्दा का प्रयोग अल्पविकसित राष्ट्रो के सन्दर्भ में उसकी एक विशेषता के रूप में किया नर्क्स का कथन है कि "एक देश इसलिये निर्धन है। क्योंकि वह निर्धन है"।

वास्तव में निर्धनता के दुःचक्र पर ही आधारित है। जिसका कारण एवं परिणाम दोनों ही निर्धानता ही है। अब यह प्रश्न है कि इस निर्धनता के दुःचक्र को कैसे तोड़ा जाय रेगनर नर्क्स का मानना है कि यह चक्र ऐसा नही है जिसे तोड़ा जा सके, प्रयत्क्ष करके इस दुःचक्र को तोड़ा जा सकता है। जैसे–संतुलित विकास, पूंजी निर्माण, उत्पत्ति के साधानों का कुशलतम प्रयोग, शिक्षा का प्रकार इत्यादि।

शब्दावली

वी०पी०एल० एक– गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोग।

गरीबी का दुःचक्र– अल्पविकसित देशों में गरीबी के कारण व परिणाम के रूप में वृत्ताकार आकार में घटित होते रहना।

प्रतिव्यक्ति आय– राष्ट्रीय आय में कुल जनसंख्या का भाग देने प्रतिव्यक्ति आय प्राप्त होती है।

क्रयशक्ति– खरीदने की क्षमता को कहते है।

प्रश्न–बोध

- भारत में गरीबी का स्वरूप कैसा है।
- ग्रीबी की प्रकृति एवं कारणों की व्याख्या कीजिये।
- ग्रीबी के दुःचक्र को समझाइये।
- श्रेगना–नर्क्स के गरीबी के दुःचक्र की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

उपयोगी पुस्तकें

- वी०सी०सिन्हा– विकास संयोजन एवं नीतियां–साहिय भवन पब्लिकेशन।
- योगेश कुमार सिंह–विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन–राधा पब्लिकेश्न नई दिल्ली।
- एस०एन०गुप्त–आर्थिक विकास एवं नियोजन–लक्ष्मी नाराण पब्लिकेशन आगरा।
- एस०पी०सिंह–आर्थिक विकास एवं नियोजन–एस० चन्द्र पब्लिकेशन नई दिल्ली।
- एम०एल० सिंगन–विकास का अर्थशास्त्र–वृंद्रा पब्लिकेशन नई दिल्ली।
- मिश्रा और पुरी–भारतीय अर्थव्यवस्था– हिमालया पब्लिकेशन।

सामाजिक एवं तकनीकी द्वैतवाद
(Social and Technical Dualism)

1. प्रस्तावना

2. उद्देश्य

3. सामाजिक द्वैतवाद का सिद्धान्त

3.1 सामाजिक द्वैतवाद का आशय

3.2 द्वैतीय समाज की विशिष्टताएं द्वैतवाद की विशेषताएं

3.3 पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त की द्वैतीय समाज में अनुप्रयुक्तता

3.4 आलोचना

3.5 निष्कर्ष

12.4 तकनीकी द्वैतवाद

12.4.1 तकनीकी द्वैतवाद का आशय

12.4.3 तकनीकी द्वैतवाद की कमियां

12.6 सारांश

12.7 शब्दावली

12.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

12.11 बोध प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

द्वैतीय आर्थिक संरचना वर्तमान अल्पविकसित देशों की एक सामान्य विशेषता है जिसमें दो परस्पर विरोधी अर्थव्यवस्थाओं का सह–अस्तित्व पाया जाता है। अल्पविकसित देशों में एक ओर आधुनिक अर्थव्यवस्था तथा दूसरी ओर परम्परागत अथवा पिछड़ी अर्थव्यवस्था की विशेषताएं रहा होता है। इन दो परस्पर विरोधी अर्थव्यवस्थाओं के सह–अस्तित्व के कारण **'द्वैतवाद की समस्या'** उत्पन्न होती है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा **'द्वैतवाद की समस्या'** का अध्ययन करने के लिए अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया जिनमें **जे. एच. बूके** द्वारा प्रतिपादित ''सामाजिक द्वैतवाद का सिद्धान्त'' एवं हिग्गिन्स द्वारा प्रतिपादित **''तकनीकी द्वैतवाद का सिद्धान्त''** महत्वपूर्ण सीान रखता है।

12.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम यह समझ सकते हैं कि–

सामाजिक द्वैतवाद एवं तकनीकी द्वैतवाद क्या है? इस इकाई के अध्ययन के बाद शिक्षार्थी के विषय में जान सकेंगे।

द्वैतीय समाज की क्या विशेषताएं हैः समस सकेंगे–

बूके द्वारा प्रतिपादित सामाजिक द्वैतवाद के सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएं क्या है विश्लेषण कर सकेंगे।

सामाजिक द्वैतवाद एवं तकनीकी द्वैतवाद में क्या प्रमुख अन्तर है? समझ सकेंगे।

हिग्गिन्स द्वारा प्रतिपादित तकनीकी द्वैतवाद के सिद्धान्त के प्रमुख दोष क्या है?

12.3 सामाजिक द्वैतवाद का सिद्धान्त (Theory of Social Dualism)

हॉलैण्ड के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **प्रो0 जे. एच. बूके** ने सामाजिक द्वैतवाद सिद्धान्त का प्रतिवादन किया जो केवल अल्पविकसित देशों पर ही लागू होता है। उनका **''सामाजिक द्वैतवाद''** का सिद्धान्त अल्पविकसित देशों के आर्थिक तथा सामाजिक विकास का एक सामान्य सिद्धान्त है जा मुख्य रूप से उनके इण्डोनेशिया के अर्थव्यवस्था के अध्ययनों पर आधारित है।

12.3.1 सामाजिक द्वैतवाद का आशय

बूके के अनुसार आर्थिक दृष्टिकोण से किसी समाज की तीन विशेषता होती हैं

1. सामाजिक भावना,
2. संगठनात्मक रूप
3. निहित व्याप्त तकनीक

इनकी परस्पर आपसी निर्भरता तथा परस्पर संबंध को सामाजिक प्रणाली कहते हैं। वह समाज सजातीय होता है जिसमें केवल एक सामाजिक व्यवस्था पाई जाती हो। परन्तु किसी समाज में दो या अधिक व्यवस्थायें साथ विद्यमान हो सकती है। तब वह द्वैत या बहु–संख्यक समाज होता है। **बूके** ने **'द्वैत समाज' शब्द का प्रयोग ऐसे समाजों के लिए किया है, जो दो समसामयिक एवं पूर्णतः विकसित सामाजिक प्रणालियों का स्पष्ट विभाजन प्रकट करती है जो (प्रणालियां) सजातीय समाजों के स्वाभाविक ऐतिहासिक क्रम–विकास में संक्रमणकाली**

न रूपों द्वारा एक–दूसरी से अलग कर दी जाती हैं। उदाहरण के लिए, शुरू के पूँजीवाद द्वारा पूर्व–पूँजीवाद तथा उच्च पूँजीवाद।'' उन्नत आयातित पश्चिमी व्यवस्था तथा स्वदेशीय पूर्व–पूँजीवाद कृषि सम्बन्धी व्यवस्था का पाया जाना इस प्रकार के द्वैत समाज की विशेषता होती है।

प्रथम व्यवस्था अर्थात् उन्नत आयातित पश्चिमी व्यवस्था पश्चिमी प्रभाव के देखरेख में होती है, जो आधुनिक तकनीकों का प्रयोग करती है और जिसमें जवीन का स्तर ऊंचा होता हैं दूसरी स्वदेशी होती है जिसमें तकनीकी, आर्थिक तथा सामाजिक कल्याण के स्तर नीचे होते हैं। बूके ने इसे **'सामाजिक द्वैतवाद'** काह है और इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है : **''यह एक आयातित सामाजिक प्रणाली की दूसरी ढंग की स्वदेशीय सामाजिक प्रणाली से टकराव प्रायः आयतित सामाजिक प्रणाली उच्च पूँजीवाद होती हैं। पर यह समाजवाद या साम्यवाद भी हो सकती है या फिर दोनों का मिश्रण भी।''**

12.3.2 द्वैतवाद की विशेषताऐं

दो परस्पर विरोधी सामाजिक प्रणालियों की आर्थिक अन्तः क्रियाओं की विवेचना तथा स्पष्टीकरण के लिए **बूके** ने **'द्वैतीय समाज'** का आर्थिक सिद्धान्त दिया है जिसे उन्होनें **'द्वैतीय अर्थशास्त्र'** या **'पूर्वीय अर्थशास्त्र'** का नाम दिया है। बूके का सिद्धान्त अधिकतर इण्डोनेशियाई विश्लेषण पर आधारित है।

द्वैतीय अर्थव्यवस्था के पूर्वीय क्षेत्र की कुछ विशेषताएं जो उसे पश्चिमी समाज से अलग करती हैं। पूर्वीय समाज की आवश्यकताएं सीमित होती हैं। यदि लोगों की तात्कालिक आवश्यकताएं पूरी हो जाएं तो वे संतुट हो जाते हैं। **''जब नारियल की कीमत अधिक हो जाती है तो यह संभावना बनती है कि थोड़ी वस्तुएं विक्रय के लिए आएंगी जब मजदूरी बढ़ाई जाती है तो सम्पत्ति का प्रबन्धकर्ता यह जोखिम लेताा है कि पहले से थोड़ा कम काम होगा यदि किसी कृषक के परिवार की आवश्यकता के लिए तीन एकड़ काफी हैं, तो वह छः की जोत नहीं करेगा** ऐसा इसलिए होता है कि लोग आर्थिक की अपेक्षा सामाजिक आवश्यकताओं द्वारा अधिक प्रभावित होते हैं। वस्तुओं का मूल्यांकन प्रयोग–मूल्य की अपेक्षा प्रतिष्ठा–मूल्य के अनुसार होता है। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि पीछे की ओर ढालू प्रयत्न तथा जोखिम का पूर्ति वक्र पूर्वीय अर्थव्यवस्था की विशिष्टता है।

स्वदेशी उद्योग लगभग संगठनविहिन, पूँजी का अभाव, तकनीकी पिद्दापन और बाजार से अनभिज्ञ होता है। लोग निरंतर लाभ देने वाले उद्योगों की अपेक्षा सट्टा–क्रियाओं में अधिक रूचि रखते है वे जोखिम वाले निवेशों में विश्वास नहीं करते। उनमें उस प्रतिष्ठान तथा संगठनात्मक कुशलता का अभाव होता है, जोकि द्वैत समाज के पश्चिमी क्षेत्र की विशेषता है। ये भाग्यवादी होते हैं और आधुनिक उन्नत प्रौद्योगिकी का प्रयोग करनें में सशय रखते है। 'असंगठित, निष्क्रिय, शान्त, आकस्मिक' तथा अकुशल होता है। आप्रवासन तथा देश के भीतर एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में आना जाना राज्य हस्तक्षेप के माध्यम से होता हैं। ग्रामीण जीवन की लागत पर शहरी विकास होता है। पूर्व के समाज में विदेशी व्यापार का प्रमुख लक्ष्य निर्यात है जो पश्चिमी समाज के लक्ष्य से बिल्कुल भिन्न है, जहां वह आयात को संभव बनाने वाला साधन मात्र है।

12.3.3 पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त की द्वैतीय समाज में अनुप्रयुक्तता

पूर्व के समाज की महत्वपूर्ण विशिष्टताएं पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त को अल्पविकसित देशों के लिए पूर्णतया अव्यवहार्य बना देती हैं। **बूके** के अनुसार, पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त पूँजीवादी समाज के विश्लेषण के लिए है, जबकि पूर्वीय समाज पूर्व–पूँजीवादी है। पहला, असीमित आवश्यकताओं, मौद्रिक अर्थव्यवस्था तथा विभिन्न प्रकार के सहकारी संगठनों पर आधारित है। फिर, अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में साधनों की अगतिशीलता के कारण, साधनों के विभाजन अथवा आय के वितरण की विवेचना के लिए वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त को लागू करना तर्कपूर्ण नही है। इसलिए **प्रोफेसर बूके** ने चेतावनी दी है कि ''**अच्छा यही है कि हम पश्चिमी सिद्धान्त के कोमल, कमजोर, कांच–गृह के पौधों को उष्णदेशीय धरती में प्रतिरोपित करने का प्रयत्न न करें, जहां कि शीघ्र मृत्यु उनकी प्रतीक्षा कर रही है।**'' इस

प्रकार विश्व की समस्त अर्थव्यस्था पर एक ही नीति लागू करना संभव नहीं है क्योंकि जो एक समाज के लिए हितकर है, वह दूसरे सतस्त के लिए हानिकारक हो सकती है।

पूर्वीय अर्थव्यवस्थाओं की प्रकृति द्वैतीय होने के कारण पश्चिमी तरीके से उनकी पूर्व–पूँजीवादी कृषि के विकास का प्रयत्न निष्फल ही नहीं होगा बल्कि हानि भी ला सकता है। आधुनिक कृषि तकनीकों का प्रचलन करने के लिए लोगों की मानसिक प्रवृतियों में परिवर्तन आवश्यक है अन्यथा उनके परिणमस्वरूप होने वाली धन में वृद्धि, जनसंख्या में और वृद्धि लाएगी। फिर, यदि पश्चिमी प्रौद्योगिकी फेल हो जाए तो ऋणग्रस्तता बढ़ती जाएगी। इसलिए उनकी वर्तमान कृषि व्यवस्था के साथ छेड़–छाड़ नही करनी चाहिए क्योंकि उसमें सुधार कर सकना कठिन है।

जहाँ तक औद्योगिक क्षेत्र का प्रश्न है उसमें पूर्वीय उत्पादक अपने को प्रौद्योगिकीय, आर्थिक अथवा सामाजिक रूप से पश्चिमी तंत्र के अनुरूप नहीं ढाल सकता। यदि पूर्वीय उत्पादक पश्चिमी की नकल करेगा तो नुकसान उठाएगा। अपने तर्क की पुष्टि में बुके ने इण्डोनेशिया का उदाहरण दिया. जहां इण्डोनेशिया अर्थव्यवस्था का औद्योगीकरण करने के एिल प्रौद्योगिकी के अपनाने से आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को और भी दूर कर दिया है तथा उसके छोटे उद्योग को समाप्त कर दिया है।

बूके ने अल्पविकसित देशों में पॉच प्रकार की बेरोजगारी को इंगित किया हैः **''सामयिक (ऋतुकालिक), आकस्मिक नियमित श्रमिकों की बेरोजगारी, बाबू लोगों की बेरोजगारी तथा यूरेशियाईयों की बेरोजगारी।''** वह समझते है कि **''उन्हें दूर करना सरकार के क्षमता की बात नहीं क्योंकि इससे वित्तीय भार पड़ेगा तथा वह सरकार के साधनों से अधिक होगा।''**

अल्पविकसित देशों में सीमित आवश्यकताएं तथा सीमित क्रय–शक्ति पूरे आर्थिक विकास में बाधा पैदा करती हैं। खाद्य आपूर्ति अथवा उद्योग–वस्तुओं की वृद्धि मार्केट में पदार्थों की भरमार कर देगी जिसके पश्चात् कीमतों में कमी होगी और मंदी आएगी। इसका यह अभिप्राय यह नहीं है कि बूके पूरी तरह से औद्योगीकरण और कृषि–सुधारों के विरूद्ध हैं बल्कि वह तो औद्योगीकरण तथा छोटे पैमाने पर कृषि विकास की धीमी प्रक्रिया के पक्ष में है, जोकि पूर्वीय समाज के द्वैतीय ढांचे के अनुकूल ढाल ली गई हों विकास की प्रेरणा स्वयं लोगों के भीतर से जागृत हो ईमानदार जन प्रतिनिधियां आर्थिक विकास के लक्ष्य के लिए विश्वास, निष्कपटता और धैर्य से प्रत्यन करें।

12.3.4 आलोचना

बूके की विचारधारा कुछ हद तक अव्यवहारिक है **प्रोफेसर बैंजामिन हिग्गिन्स** का मानना है कि बूके का सिद्धान्त अधिकॉशतः इण्डोनेशियाई अध्ययन पर आधारित है जिसे सभी अल्पविकसित देशों पर लागू नहीं किया जा सकता है। उन्होंने निम्नलिखित आधार पर बूके के द्वैतीय विकास के सिद्धान्त की आलोचना की हैः

1. **आवश्यकतायें सीमित नहीं होतीं (Wants are not limited)–** स्वयं इण्डोनेशिया का अनु भव बूके के इस कथन का समर्थन नहीं
   करता कि अल्पविकसित देशों में लोगों की आवश्यकताएं सीमित होती हैं वहां सीमान्त उपभोग तथा आयात प्रवृतियां दोनों ही ऊंचा होती हे। लोगों की आवश्यकताएं सीमित नहीं है बल्कि घरेलू तथा आयातित विकासिता के वस्तुओं की मांग बहुत है। भारत में यदि अच्छी फसल हो जाए तो नये इलेक्ट्रानिक्स वस्तुओं जैसे, मोबाईल, घड़ियों आदि की माँग बढ़ जाती है।
2. **आकस्मिक श्रम असंगठित नहीं (Causal labour is not unorganized)–** बूके का पूर्वीय आकस्मिक श्रमिक को असंगठित, निष्क्रिय, शान्त तथा आकस्मिक बताना **''इण्डोनेशिया और भारत में तथा अन्यत्र संगठित श्रम की बढ़ती हुई शक्ति से मेल नहीं खाता।''** इस प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में आकस्मिक श्रम कृषि में भले ही संगठित न हो परन्तु चाय, कॉफी तथा रबड़ बागान में ट्रेड यूनियन आन्दोलन प्रबलतम होता है।

3. **पूर्वीय श्रम अगतिशील नहीं (Eastern labour is not immobile) –** बूके का यह विचार भी स्वीकार नहीं किया जा सकता हैं कि पूर्वीय अर्थव्यवस्थाओं में लोग अपने गॉव समुदाय को नहीं छोड़ना चाहते। वास्तव में अपने सिनेमा, दुकानों, होटलों, खेल प्रतियोगिताओं आदि के आकर्षणों से युक्त शहरी जीवन ने हमेशा ग्रामीण क्षेत्रों से स्थानान्तरण कराया है। बड़े–बड़े शहरों में भीड़–भीड़ बेरोजगारी और अनुपयुक्त आधारभूत सुख सुविधाएं मिलती है, वे इसी का परिणाम हैं। इसके अतिरिक्त आय प्रेरणा से भी श्रम एक स्थान से दूसरे में और यहां तक कि ऋतुवार श्रम फसल के दिनों में ग्रामीण क्षेत्रों में चले जाते हैं **प्रोफेसर हिग्गिन्स** लिखते हैं, **''मुझे इसका कोई प्रमाण दिखाई नहीं देता कि पूर्वीय श्रम आन्तरिक रूप में पश्चिमी श्रम की अपेक्षा अधिक अगतिशील है।''**
4. **पूर्वीय अर्थव्यवस्थाओं की ही विशेषता नहीं m(Not peculiar to Eastern-Economies)–** बूके ने अपने सामाजिक द्वैतवाद के सिद्धान्त को केवल पूर्वीय अर्थव्यवस्थाओं से सम्बद्ध किया है, परन्तु बूके स्वयं भी यह मानते हैं कि अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका की अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में भी सामाजिक द्वैतवाद विद्यमान है। यह केवल अल्पविकसित देशों की ही विशेषता नहीं है वरन इटली, केनेडा और यहां तक कि संयुक्त राज्य अमेरिका में भी यह विद्यमान है। बल्कि प्रत्येक अर्थव्यवस्था **''प्रौद्योगिकीय उन्नति की विभिन्न कोटियों के अनुसार पृथक–पृथक क्षेत्रों में विभक्त की जा सकती है।''**
5. **पश्चिमी समाजों पर भी लागू (Applicable to Western Societies also)–** पूर्वीय समाज की जिन खास विशेषताओं का बूके ने वर्णन किया है, उनमें से अनेक पश्चिमी समाजों पर भी लागू होती है। पश्चिमी अर्थव्यवस्थाओं में जब कभी दीर्घकालिक स्फीति आती या आने लगती है, तो लोग दीर्घकालीन निवेशों की अपेक्षा सट्टा–सम्बन्धी लाभों को वरीयता देते हैं। प्रोफेसर हिग्गिन्स के अनुसार, **''पश्चिमी अर्थशास्त्रियों ने तरलता 'अधिमान' तथा 'सुरक्षा अधिमान' से सम्बन्धित विश्लेषण के पूरे क्षेत्र का हाल ही में विकास किया है ताकि सारी दुनिया में निवेशकों के जोखिम या अतरलता उठाने की अनिच्छा और उनके पूँजी को सुरक्षित तथा तरल रूप में रखने के प्रबल अधिमान का हिसाब लगाया जा सके।''**
6. **प्रतिष्ठा–मूल्य (Prestige Value)–** बूके का यह कथन कि पूर्वीय अर्थव्यवस्था में लोग वस्तुओं को उनके प्रयोग–मूल्य की तुलना में प्रतिष्ठा–मूल्य के कारण खरीदते हैं, पश्चिमी अर्थव्यवस्थओं पर भी समान रूप से लागू होता है। यदि ऐसा न होता, तो वैब्लन अमेरिकी समाज के लिए **'प्रत्यक्ष उपभोग'** शब्द न रचता।
7. **पीछे की ओर ढालू प्रयत्न का पूर्ति वक्र (Backward sloping supply curve of effort)–** पीछे की ओर ढालू प्रयत्न का पूर्ति वक्र भी पूर्वीय अर्थव्यवस्थाओं की ही विलक्षणता नहीं है। आस्ट्रेलिया ने युद्धोत्तर काल में और संयुक्त राज्य अमेरिका ने वर्तमान शताब्दी के पांचवें दशक के वर्षों में इसे अनुभव किया था।
8. **सिद्धान्त नहीं वरन् विवरण (Not a Theory but Description)–** बूके अल्पविकसित देशों के लिए विशेष आर्थिक तथा सामाजिक सिद्धान्त देने में उसफल रहें हैं। उनका द्वैतीय सिद्धान्त पूर्वीय समाज का अध्ययन मात्र है जिसमें वह पूर्वीय समाज के उन विलक्षण तत्वों का प्रदर्शन करता है, जिनका पश्चिमी तरीके से विकास नहीं होना चाहिए। बूके का यह कथन है कि पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त पूर्वीय समाजों पर लागू नहीं होता। वह नव–क्लासिकी सिद्धान्त पर आधारित है जिसकी व्यवहार्यता पश्चिमी जगत में भी सीमित है।
9. **पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त के औजारों का पूर्वीय समाजों में प्रयोग (Tools of Western Economic Theory Used in Easter Societies)–** मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियों के मूल में सन्निहित पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त के कुछ सामान ओर भुगतान–शेष के असंतुलन को दूर करने वाले साधन थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ पूर्व के समाजों पर भी लागू होता हैं। **प्रोफेसर हिग्गिन्ज** का विश्वास है कि **''उपयुक्त संस्थानिक धारणाओं से परिभाषित मॉडल के भीतर आर्थिक तथा सामाजिक विश्लेषण के परिचित औजारों का व्यवहार करके''** अल्पविकसित देशों की समस्या का हल ढूंढा जा सकता है।

10. **बेरोजगारी की समस्या का हल नहीं सुझाता (Does not Provide Solution to the Problem of Development) –** बूके के द्वैतवाद में यह एक बहुत बड़ी कमी है कि यह बेराजगारी की समस्या का कोई समाधान नहीं बताता। बूके का द्वैतवाद आर्थिक की अपेक्षा सामाजिक–सांस्कृतिक पक्षों पर अधिक ध्यान केन्द्रित है। वह विभिन्न प्रकार की बेरोजगारी को, सरकार के सामर्थ्य की बात नहीं मानता और अल्प–रोजगार की बात ही नहीं करता, जो घनी आबादी वाली अर्थव्यवस्थाओं की प्रमुख विशेषता है।

12.3.5 निष्कर्ष

वास्तव में द्वैतीय अर्थव्यवस्थाओं की बडी समस्या यह है कि वर्तमान तथा अल्प–विकसित देश में श्रम–शक्ति को उचित रोजगार की सुविधाएं प्रदान की जाएं। इसी कारण प्रोफेसर हिग्गिन्स ने प्रौद्योगिकी द्वैतवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है जो **'' दो क्षेत्रों साधन–सम्पन्नताओं तथा उत्पादन फलनों में भेदों को 'प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद' का आधार मानता है जिसका परिणाम यह हुआ कि उत्पादक रोजगार के लिए अपर्याप्त संख्या में मार्ग पाए जाते हैं।''** यह बूके की अपेक्षा अधिक यथार्थवादी द्वैतीय सिद्धान्त है क्योंकि यह सिद्धान्त विकास के आदर्श पर द्वैतीय समाज के प्रभावों का विश्लेषण करता है।

12.4 तकनीकी द्वैतवाद

बूके के सामाजिक द्वैतवाद के विकल्प के रूप में **प्रोफेसर हिग्गिन्स** ने तकनीकी द्वैतवाद के सिद्धान्त प्रतिपादित किया है जो बूके की अपेक्षा अधिक यथार्थवादी माना जाता है।

12.4.1 तकनीकी द्वैतवाद का आशय

तकनीकी द्वैतवाद से अभिप्राय यह है कि एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत विकसित तथा पंरापरागत क्षेत्रों में विभिन्न उत्पादन फलनों का प्रयोग होता है। इस प्रकार के द्वैतवाद ने औद्योगिक क्षेत्र में संरचनात्मक या तकनीकी बेरोजगारी तथा ग्रामीण क्षेत्र में अल्प–रोजगार की समस्या को बढ़ाया है। हिग्गिन्स का तकनीकी द्वैतवाद का सिद्धान्त **ऐकॉस** द्वारा विवेचित साधन अनुपातों की समस्या को शामिल करता है और उन सीमित उत्पादकीय रोजगार सुविधाओं से संबंध रखता है, जो बाजार की अपूर्णताओं, विभिन्न सीमित साधन–सम्पन्नताओं तथा उत्पादन फलनों के कारण अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के दो क्षेत्रों में पाई जाती है।

वास्तव में, अल्पविकसित देशों की एक विशेषता साधन स्तर पर संरचनात्मक असंतुलन हैं। साधन स्तर पर असंतुलन या तो इस कारण उत्पन्न होता है कि एकल साधन वैकल्पिक प्रयोगों में विभिन्न प्रतिफल प्राप्त करता है या इसलिए कि साधनों के बीच कीमत संबंध साधन प्राप्यताओं से मेल नहीं खाते। **डॉ. ऐकॉस** के अनुसार, इसी असंतुलन के कारण अल्पविकसित देशों में दो प्रकार से बेरोजगारी या अल्प–बेरोजगारी होती है। प्रथम, कीमत में अपूर्णताओं या अकुशलता से। दूसरे, वर्तमान तकनीकी या मॉग की संरचना में बाधाओं से, जो अति जनंसख्या वाले पिछड़े हुए देशों में अतिरेक श्रम का कारण बनती है। अतः एक अल्पविकसित देश में संरचनात्मक बेरोजगारी का संबंध अतिरेक श्रम से होता है, जो साधनों के कुशक वितरण की कमी मॉग की संरचना और तकनीकी बाधाओं से उत्पन्न होता है।

बैंजामिन हिग्गिन्स ने अपने सिद्धान्त की विवेचना दो वस्तुओं, उत्पादन के दो साधनों और दो क्षेत्रों के आधार पर उनके साधन सम्पन्नता तथा उत्पादन–फलनों से किया है। इन दो क्षेत्रों में से एक औद्योगिक क्षेत्र बागानो, खानो, तेल–क्षेत्रों, बड़े उद्योगों में प्रवृत्त रहता है यह पूँजी–गहन तकनी पर होता है और तकनीकी गुणांक इसे विशिष्टता प्रदान करते हैं। दूसरे शब्दों में, साधनों की तकनीकी स्थानापन्नता नहीं होती और उन्हें स्थिर अनुपातों में रखा जाता है। दूसरा, ग्रामीण क्षेत्र खाद्य वस्तुओं के उत्पादन, ग्रामीण कुटीर एवं लघु उद्योगों में प्रवृत्त रहता है। इसके उत्पादन के

तकनीकी गुणांक परिवर्तनशील होती है ताकि यह तकनीकों के विस्तृत क्षेत्र और श्रम तथा पूँजी (जिसमें सुधारी हुई भूमि भी शामिल है) के वैकल्पिक संयोगों से एक ही वस्तु का उत्पादन कर सके।

दो क्षेत्रों में विभिन्न उत्पादन फलनों के दिए हुए होने पर प्रोफेसर हिग्गिन्स ने उस प्रक्रिया का विश्लेषण किया है जिसके परिणामस्वरूप तकनीकी द्वैतवाद ने द्वैतीय अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी और अदृश्य बेरोजगारी बढ़ाई है। दोनों क्षेत्रों में से, औद्योगिक क्षेत्र विदेशी पूँजी की सहायता से वृद्धि तथा विस्तार करता है। इस प्रकार, औद्योगिक क्षेत्र में औद्योगिक क्षेत्र में औद्योगिकरण के परिणामस्वरूप पूँजी–संचय की दर से जनसंख्या की वृद्धि दर बहुत अधिक हो जाती है क्योंकि यह क्षेत्र पूँजी–गहन तकनीकों और स्थिर तकनीकी गुणांकों का प्रयोग करता है, इसलिए यह उसी दर से रोजगार के अवसर उत्पन्न नहीं कर पाता जिससे जनसंख्या बढ़ती है। बल्कि यह भी हो सकता है कि औद्योगिकरण **"उस क्षेत्र में कुल रोजगार के अनुपात में सापेक्ष रूप से कमी ला दे।"** इस प्रकार, अतिरेक श्रम के पास इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं कि वह ग्रामीण क्षेत्र में रोगार ढूंढे।

विकास प्रक्रिया के आरम्भ होने से पहले, ग्रामीण क्षेत्र में उत्पादन के साधनों की न तो प्रचुरता होती थी और न ही दुर्लभता। शुरू में तो यह सम्भव है कि अधिक भूमि को खेती में प्रयोग करके अतिरिक्त श्रम शक्ति को रोजगार में लगा लिया जाए। इसके परिणामस्वरूप श्रम तथा पूँजी के अनुकूलतम संयोग बनते हैं क्योंकि उत्पादन बढ़ता है। उस क्षेत्र में श्रम का उपलब्ध पूँजी से अनुपात धीर–धीरे बढ़ता जाता है और क्योंकि तकनीक गुणांक उपलब्ध है, इसलिए इस क्षेत्र में तकनीकें उत्तरोत्तर परिवर्ती बनती जाती हैं। उदाहरणार्थ, कई एशियाई देशों में परिवर्ती शुष्क धान खेती के स्थान पर जलयुक्त धान की खेती स्थानापन्न कर दी गई है। अन्ततः बहुत अधिक श्रमगहन तकनीकों द्वारा समस्त उपलब्ध भूमि खेती योग्य हो जाती है और श्रम की सीमान्त उत्पादकता गिरकर शून्य या शून्य से भी कम हो जाती है। इस प्रष्कार जनसंख्या की निरंतर वृद्धि होने पर, अदृश्य बेरोजगारी दिखाई देने लगती है। इन परिस्थितियों के अन्तर्गत, कृषकों के लिए कोई प्रेरणा नहीं होती कि वे अधिक पूँजी लगाएं अथवा श्रम–बचत तकनीकें अपनाएं। इसके अतिरिक्त न तो प्रति व्यक्ति उत्पादन बढ़ाने की कोई तकनीक उपलब्ध है और न ही श्रम की ओर से अपने आप उत्पादन बढ़ाने का कोई प्रोत्साहन होता है। परिणाम यह होता है कि ग्रामीण क्षेत्र में उत्पादन की तकनीकें, श्रम–घण्टा उत्पादकता तथा सामाजार्थिक कल्याण एक निम्न स्तर पर रहते हैं।

दीर्घकाल में तकनीकी प्रगति अदृश्य बेरोजगारी को दूर करने में सहायक नहीं होती बल्कि उसे बढ़ाती है। प्रोफेसर हिगिन्स का मत है कि पिछली दो शताब्दियों में ग्रामीण क्षेत्र में बहुत थोड़ी या नही ंके बराबर प्रौद्योगिकीय प्रगति हुइ है, इससे अदृश्य बेरोजगारों की संख्या बढ़ी है। ट्रेड यूनियन क्रियाओं अथवा सरका की नीति के परिणामस्वरूप मजदूरी की कृत्रिम ऊँची दरों ने इस स्थिति को ओर भी अधिक गम्भीर बना दिया है। क्योंकि उत्पादकता की सापेक्षता में ऊँची औद्योगिक मजदूरी दरें उद्यमियों को इस बात के लिए प्रेरित करती हैं कि वे श्रम–बचज तकनीकें अपनाएं, जिसका परिणामस्वरूप यह होता है कि अतिरेक श्रम को खपा सकने की औद्योगिक क्षेत्र की क्षमता और भी कम हो जाती है। इसलिए ये साधन अल्पविकसित देशों में औद्योगिक द्वैतवाद की प्रवृत्ति बनाए रखते हैं।

12.4.3 तकनीकी द्वैतवाद की कमियां

तकनीकी द्वैतवाद सिद्धान्त में अनेक गुण होने के उपरान्त भी यह कुछ दोषों से परिपूर्ण है इसके प्रमुख दोष निम्नवत् हैं–

1. **औद्योगिक क्षेत्र में तकनीकी गुणांक स्थिर नहीं होते हैं–** बिना किसी तर्क के यह मानना सही नहीं है कि औद्योगिक क्षेत्र में तकनीकी गुणांक स्थिर पाए जाते हैं क्योंकि जहां ग्रामीण क्षेत्र में परिवर्तनशील तकनीकी गुणांकों से उत्पादन हुआ है, वहां यह संशय बना है कि औद्योगिकीय क्षेत्र में उत्पादन वास्तव में स्थिर गुणांकों से होता रहा है।

2. **श्रम बहुल वाली तकनीकों की अवहेलना– हिग्गिन्स** का यह कथन, हि औद्योगिक क्षेत्र में प्रयोग के लिए अत्यन्त पूँजीं गहन तकनीक आयात की जाती हैं, श्रम खपाने वाली अन्य तकनीकों के प्रयोग की पूर्णरूप से अवहेलना करता है। प्रत्येक आयातित तकनीकें श्रम की बचत करने वाली नहीं होती। उदाहरणार्थ, जापान का कृषि विकास पूँजी–गहन तकनीकों के कारण नहीं हुआ है बल्कि यह अच्छे बीजों, सुधरी हुई खेती के ढंगों, उर्वरकों के अधिक प्रयोग आदि के कारण हुआ है।
3. **संस्थानिक साधनों की उपेक्षा– हिग्गिन्स** ने ऐसे अनेक संस्थानिक और मनोवैज्ञानिक तत्वों की उपेक्षा की है जो साधन अनुपातों को भी प्रभावित करते हैं।
4. **साधन कीमतें साधन सम्पन्नताओं पर निर्भर नहीं करती–** यह सिद्धान्त इस ओर संकेत करता है कि किस कारण साधन सम्पन्नताओं एवं विभिन्न उत्पादन फलनों ने ग्रामीण क्षेत्र में अद ृश्य बेरोजगारी को जन्म दिया है। यह साधन कीमतों के ढंग से महत्वपूर्ण रुप से सम्बद्ध है। परन्तु साधन कीमतें मात्र साधन सम्पन्नताओं पर ही निर्भर नहीं होती है।
5. **अदृश्य बेरोजगारी की प्रकृति एवं आकार को स्पष्ट नहीं किया– हिग्गिन्स** ने ग्रामीण क्षेत्र में अदृश्य बेरोजगारी एवं औद्योगिक क्षेत्र में अतिरिक्त श्रम–पूर्ति की प्रकृति को साफ तौर पर स्पष्ट नहीं किया है और न ही उन्होंने तकनीकी द्वैतवाद से उत्पन्न होने वाली अदृश्य बेरोजगारी की वास्तविक सीमा की विवेचना की है।

12.6 सारांश

आर्थिक विकास के सिद्धान्तों में द्वैतीय अर्थव्यवस्थाओं के विश्लेषण को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। द्वैतीय अर्थव्यवस्थाओं की प्रमुख समस्या वर्तमान एवं भविष्य की अल्पविकसित देशों की श्रम शक्ति को उचित रोजगार की सुविधाएं प्रदान करने की है। दो परस्पर विरोधी प्रणालियों की आर्थिक अन्तः क्रियाओं की व्याख्या एवं विश्लेषण करने हेतु **प्रो. जे. एच. बूके** ने सामाजिक द्वैतवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो केवल अल्पविकसित देशों पर लागू होता है। बूके का सिद्धान्त अधितकर इण्डोनेशियाई अध्ययन पर आधारित है।

किसी समाज में दो या अधिक प्रणालियां एक–साथ विद्यमान हो सकती है। तब वह द्वैत या बहु–संख्यक समाज होता है। बूके ने **'द्वैत समाज'** शब्द का प्रयोग **'ऐसे समाजों'** के लिए किया है, जो दो समसामयिक एवं पूर्णतः विकसित सामाजिक प्रणालियों का स्पष्ट विभाजन प्रकट करती है; जो (प्रणालियां) सजातीय समाजों के स्वाभाविक, ऐतिहासिक क्रम–विकास में संग्रमणकालीन रूपों द्वारा एक–दूसरी से अलग कर दी जाती हैं। प्रथम प्रणाली उन्नत आयातित पश्चिमी प्रणाली पश्चिमी देशों के प्रभाव तथा देखरेख में होती है, जो उन्नत तकनीकों का प्रयोग करती हैं और जिसमें जीवन का औसत स्तर ऊंचा होता है। दूसरी स्वदेशीय पूर्व पूँजीवादी कृषि सम्बन्धी प्रणाली होती है जिसमें तकनीक आर्थिक तथ सामाजिक कल्याण के स्तर नीचे होते हैं। बूके ने इसे **'सामाजिक द्वैतवाद'** कहा है। द्वैतीय अर्थव्यवस्था के पूर्वीय क्षेत्र की कुछ विशेषताएं है जो उसे पश्चिमी समाज से अलग करती हैं।

बुके के **सामाजिक द्वैतवाद** के विकल्प के रूप में **बैन्जामिन हिगिन्स ने तकनीकी** अथवा **प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद** के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। तकनीकी द्वैतवाद से आशय यह है कि एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के विकसित तथा पंरापरागत क्षेत्रों में विभिन्न उत्पादन फलनों का प्रयोग होता है। इस प्रकार के द्वैतवाद ने औद्योगिक क्षेत्र में संरचनात्मक या तकनीकी बेरोजगारी तथा ग्रामीण क्षेत्र में अल्प–रोजगार की समस्या को बढ़ाया है। हिगिन्स का तकनीकी द्वैतवाद का यह सिद्धान्त **आर. एस. रेकॉस** द्वारा विश्लेषित अनुपातों की समस्या को शामिल करता है तथा उन सीमित उत्पादकीय रोजगार सुविधाओं से सम्बन्ध रखता है जो बाजार की अपूर्णताओं, विभिन्न साधन सम्पन्नताओं एवं उत्पादन फलनों के कारण अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के दो क्षेत्रों में पाई जाती है। प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद बूके के सामाजिक द्वैतवाद से श्रेष्ठ प्रतीत होता है। यह यथार्थ है क्योंकि यह इस बात पर विचार करता है कि द्वैतीय समाजों

के ग्रामीण क्षेत्र, में अदृश्य बेरोजगारी धीर–धीरे कैसे बढ़ती जाती है। तकनीकी द्वैतवाद सिद्धान्त में अनेक गुण होने के उपरान्त भी यह अनेक दोषों से भरा है

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि बूके के सामाजिक द्वैतवाद एवं हिगिन्स के तकनीकी द्वैतवाद सिद्धान्त का आर्थिक विकास के सिद्धान्तों के अध्ययन में अपना महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि दानों के अपने–अपने गुण एवं दोष हैं तकनीकी द्वैतवाद का विचार सामाजिक द्वैतवाद की तुलना में आधुनिक प्रतीत होता है। इसमें अदृश्य या छिपी बेरोजगारी की समस्या को समझाने का प्रयास किया गया है।

12.7 शब्दावली

- **द्वैत अर्थव्यवस्था–**दोहरी या द्वैत अर्थव्यवस्था वह है जिसमें दो क्षेत्र होते हैः प्रथम, कृषि क्षेत्र अथवा जीवन–निर्वाह क्षेत्र तथा द्वितीय, उद्योग क्षेत्र अथवा पूँजीवादी क्षेत्र। ऐसी अर्थव्यवस्था में जहॉ कुछ क्षेत्रों में पूँजी गहन तकनीक का प्रयोंग होता है वहीं साथ ही उन्हीं क्षेत्रों या अन्रू क्षेत्रों में परम्परागत व श्रम गहन तकनीक का भी प्रयोग हो रहा होता है।
- **पूँजीवादी क्षेत्र–** पूँजीवादी क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरूत्पादकीय पूँजी का प्रयोग करता है तथ पूँजीपति को उसके प्रयोग के लिए भुगतान करता है।
- **जीवन निर्वाह क्षेत्र–** यह अर्थव्यवस्था का वह महत्वपूर्ण भाग होता है जो पुनरूत्पादकीय पूँजी का प्रयोग नहीं करता है। जीवन निर्वाह क्षेत्र में पूँजीवादी क्षेत्र की अपेक्षा प्रति व्यक्ति उत्पादन कम होती है।
- **काली मुद्रा–** ऐसा धन जिसकी उत्पत्ति अवैधानिक गतिविधियों के कारण हुई हो। तस्करी, करों की चोरी, काला–बाजारी आदि हैं जिनको गैर कानूनी माना जाता है।
- **पूँजी निर्माण–** कुल आय में से पृथक किया गया वह धन जिसे उद्योगों, कृषि? सेवा आदि क्षेत्रों में उत्पादन वृद्धि करने हेतु लगाया जाता है।
- **श्रम की सीमांत उत्पादकता–** श्रम की एक अतिरिक्त इकाई का प्रयाग करने पर कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि।
- **बन्द अर्थव्यवस्था–** ऐसी अर्थव्यवस्था जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सम्मिलित नहीं होती है।

12.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची उपयोगी पुस्तकें एवं सहायक सामग्री

- झिंगन, एम.एल.ः ''विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन'', वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि., दिल्ली, 2003
- सिंह, योगेश कुमार एवं गोयल, आलोक कुमार : ''विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन'', राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2008
- सिन्हा, वी.सी. : आर्थिक संवृद्धि और विकास'', मयूर पेपर बैक्स, नौएडा, 2007
- Agrawaql, R.C. : "Economics of Development and Planning", Lakshmi Narayan Agarwal, Agra 2007
- Taneja. M. & Myer R.M.: "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co.,Delhi, 2010
- **Bocke , J.H. :** "Economics and Econmic Policy of Dual Societies" 1953, "Three Forms of Disintegration in Dual Societies" , Indonesia, April, 1954 and "Western May, 1954.
- **Higins Benjamin** : "the Dualistic Theory of Underdeveloped Areas", Economic Devoelopment and Cultural Change, January, 1956.

- **Higgins Benjamn** : "Economic Development, Principles, Practice and Policies"
- **Kindleberger C.P. : "Economic Development"**
- **Misra, S.K. & Puri, V.K.** : "Eonomic Development and Planning"

12.8 बोध प्रश्न

1. प्रो. बूके द्वारा प्रतिपादित सामाजिक द्वैतवाद के सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. तकनीकी द्वैतवाद क्या है? यह सामाजिक द्वैतवाद से किस प्रकार भिन्न है? व्याख्या कीजिए।
3. समाजिक द्वैतवाद क्या है? इसकी प्रमुख विशेषताओं की व्याख्या कीजिए तथा इसका आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
4. तकनीकी द्वैतवाद सिद्धांत की व्याख्या कीजिए। यह सिद्धांत सामाजिक द्वैतवाद के सिद्धांत से क्यों श्रेष्ठ माना जाता है?

आर्थर लुइस (लेविस) का असीमित श्रम शक्ति क सिद्धांत

प्रो0 डब्ल्यू आर्थर लुइस (W. Arthur Lewis) को अल्पविकसति देशों के लिए ''विकास–माडल'' प्रस्तुत करने वाले अर्थशास्त्रियों में प्रथम स्थान प्राप्त है। लुइस ने अल्पविकसति देशों में व्याप्त व्यापक बेरोजगारी तथा अकुशल श्रम के बाहुल्य का उपयोग करके अपना विकास–माडल प्रस्तुत किया है। इस दिशा में रैगनर नर्क्स, रिचर्ड नेल्सन, हार्वे लाइबेंस्टीन, रोजेन्स्टीन रोडान, रेनिस तथा फाई आदि अर्थशास्त्रियों के विचार भी काफी महत्वपूर्ण है।

प्रो0 लुइस का श्रम की असीमित–पूर्ति का सिद्धान्त (अथवा माडल) प्रतिष्ठित माडल (Classical Model) का संशोधित रूप है। लुइस के अनुसार श्रम की असीमित–पूर्ति के द्वारा भी अल्पविकसित देशों का आर्थिक विकास किया जा सकता है। प्रतिष्ठित माडल की तरह प्रो0 लुइस भी यह मानते हैं अल्पविकसति देशों में श्रम की असीमित–पूर्ति जीवन–निर्वाह के बारम्बार मजदूरी पर उपलब्ध होती है। क्योंकि आर्थिक विकास के लिए पूँजी–संचय (Capital Accoumulation) जरूरी होता है, अतः हमारा प्रयास यह होना चाहिए कि श्रम को कृषि क्षेत्र (अथवा निर्वाह क्षेत्र Subsistence Sector) से हटाकर उद्योग क्षेत्र (अथवा पूँजीवादी क्षे त्र (Capital Sector) में लगाया जाये जिससे पूंजी निर्माण संचय को बढ़ावा मिलने से आर्थिक विकास हो सके।

प्रो0 लुइस के अनुसार अल्पविकसति देशों में विकास के प्रतिष्ठित (क्लासिकल) माडल के अनुरूप विकास की दशायें विद्यमान (मौजूद) होती हैं। अतः अल्पविकसति अर्थव्यवस्था के विकास के लिए (1) न तो उपभेग को कम करने की जरूरत है जैसा कि नव–प्रतिष्ठित (Neo-Classical) अर्थशास्त्रियों के विकास–माडलों में किया गया है, और (2) न ही उपभोग को बढ़ाने (प्रभावी माँग Effective Demand) को बढ़ाने की जरूरत है, जैसा कि कीन्स–माडल (Keynes-Model) में किया गया है। स्पष्ट है कि लुइस अपने विकास–माडल में बलात बचतों (Forced Saving) के स्थान पर 'बलात पुनः विवरण' (Forced Re-distribution) के विकल्प को स्वीकार करते हैं।

लुइस का यह सिद्धान्त अथवा माडल उनके लेख 'श्रम की असीमित–पूर्ति के साथ आर्थिक विकास (1954 में प्रकाशित) पर आधारित है।' इस सिद्धान्त अथवा माडल की प्रमुख कड़ियां निम्नलिखित हैं–

1. दोहरी (द्वैत) अर्थव्यवस्था (Dual Economy)

लुइस अपने माडल की व्याख्या एक 'दोहरी–अर्थव्यवस्था' (द्वैत अर्थव्यवस्था Dual Economy) की मान्यता को आधार बनाकर आरंभ करते हैं। इस दोहरी अर्थव्यवस्था में दो क्षेत्र (Secotrs) हैं– (1) कृषि क्षेत्र अथवा जीवन–निर्वाह क्षेत्र अथवा पोषण–क्षेत्र तथा (2) उद्योग–क्षेत्र अथवा पूँजीवादी क्षेत्र अथवा आधुनिक विनिमय क्षेत्र। इनमें पूँजीवादी क्षेत्र उसे कहेंगे जिसमें 'पुनरूत्पादनशील पूँजी' (Reproductible Capital) का प्रयोग किया जाता है। पूँजी के प्रयोग का नियंत्रण पूँजीपति करता है। यह श्रम की सेवाओं को किराये पर लेता है। लुइस के अनुसार पूँजीवादी क्षेत्र के अन्तर्गत 'प्लान्टेशन तथा खनन' भी आ जाते हैं। यहाँ पूँजीपति, श्रमिकों को अपने लाभ के लिए किराये पर लेता है।

जीवन–निर्वाह क्षेत्र (अथवा पोषण क्षेत्र अथवा कृषि क्षेत्र) वह क्षेत्र है जिसमें 'पुनरूत्पादनशील–पूँजी' का प्रयोग नहीं किया जाता है। इसे घरेलू परम्परागत क्षेत्र (Indigenous Traditional Sector) अथवा स्वरोजगार क्षेत्र (Self Employment Sector) भी कहा जा सकता है। जीवन–निर्वाह क्षेत्र में 'प्रति व्यक्ति उत्पादन' (GNP Percapita) और/अथवा प्रतिव्यक्ति आय (Per Capita Income) पूँजीवादी क्षेत्र से काफी कम होती है।

2. असीमित श्रम पूर्ति (Unlimited Supply of Labour)

लुइस विकास–माडल इस मान्यता पर आधारित है कि जीवन निर्वाह के क्षत्र में 'श्रम की असीमित पूर्ति' है। इस असीमित श्रम (अथवा श्रमाधिक्य Surplus Labour) को जीवन निर्वाह के बराबर मजदूरी पर किसी दूसरी जगह रोजगार में लिया जा सकता है। यहाँ श्रमिकों की असीमित–पूर्ति का अर्थ है जीवन निर्वाह (अथवा कृषि)। इस क्षेत्र में

श्रमिकों की सीमांत उत्पादकता जीवन–निर्वाह–मजदूरी से काफी नीचे है, अतः कृषि क्षेत्र में श्रमिकों को निकालने से श्रम के औसत उत्पादन में कमी नहीं आयेगी।

लुइस की असीमित श्रम पूर्ति की आवश्यकता को निम्न रेख चित्र–17.1 से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है– रेखा–चित्र–17.1 में आधार अक्ष पर श्रम की मात्रा तथा लम्ब अक्ष पर श्रम का सीमांत उत्पादन मापा गया है। चित्र के उत्पादन को श्रम का फलन ([O=F(L) माना गया है अर्थात 'भूमि' और 'पूँजी' को स्थिर मानते हुए श्रम की मात्रा जैसे–जैसे बढ़ाई जाती है, OL श्रम के बाद उसको सीमान्त उत्पादन में गिरावट शुरू हो जाती है और जब इसकी मात्रा OL_1 हाहेती है तो श्रम को मजदूरी जीवन–निर्वाह स्तर के बराबर हो जाती है, L_1L_2 तक श्रम की सीमान्त उत्पादकता शून्य और L_2 के बाद ऋणात्मक हो जाती है। अतः OL_1 के बाद जितने भी श्रमिक कृषि क्षेत्र में लगेगें, वे सभी अतिरिक्त (Surplus) श्रमिक होंगे।

प्रो0 लुइस के अनुसार कृषि क्षेत्र के अतिरिक्त श्रमिकों (रेखा चित्र–1 में OL_1 के बाद श्रमिकों) की सेवाओं को उद्योगपति जीवन–निर्वाह–मजदूरी के बराबर अथवा इससे कुछ अधिक देकर किराये पर प्राप्त कर सकता है। उद्योगपति (अथवा पूँजीपति) दी हुई मजदूरी पर जितने श्रमिक चाहे उतने क्रय कर सकता है। इस तहर, औद्योगिक क्षेत्र के लिए श्रम की पूर्ति की लोच पूर्णतया लोचदार (Perfectly Elastic) होगी।

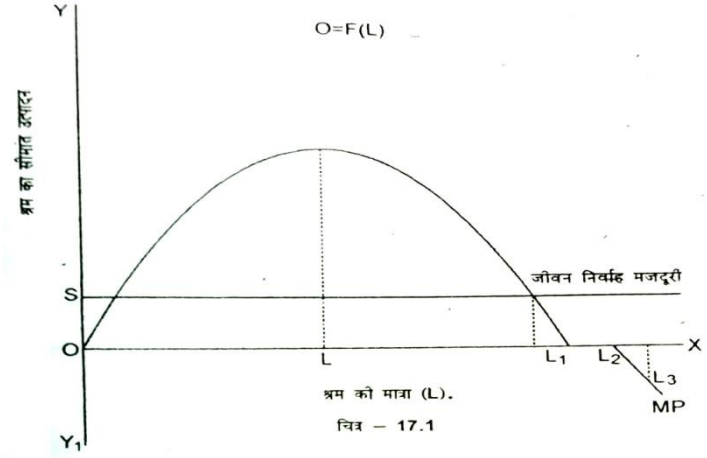

चित्र – 17.1

3. केन्द्रीय समस्या (Central Problem)

अल्पविकसित देशों में पूँजी तथा प्राकृतिक साधनों की तुलना में जनसंख्या का आधिक्य पाया जाता है। इससे श्रम की अतिरिक्त पूर्ति बनी रहती है। श्रमिकों की अधिक पूर्ति से उनकी सीमान्त उत्पादकता नगण्य अथवा शून्य अथवा ऋणात्मक होती है। इन्हें कार्य से हटा लेने पर भी कार्य पर कोई फर्क (अन्तर) नहीं पड़ता। अल्पविकसित देशों में इसे अदृश्य (अथवा प्रछन्न अथवा छिपी) बेरोजगारी के रूप में देखा जा सकता है। यह छिपी (अदृश्य) बेरोजगारी कृषि क्षेत्र में आवश्यकता से अधिक मात्रा में लगे श्रमिकों, कृषि पर बढ़ती निर्भरता, छोटी–छोटी दूकानों तथा अनेक निठल्लों के रूप में प्राप्त है जो जीवन–निर्वाह से भी कम मजदूरी और मौद्रिक–उपलब्धि पर काम करने को तैयार रहते हैं। भारत जैसे अल्पविकसित व विकासशील देश की यह केन्द्रीय समस्या है।

4. समस्या का समाधान (Solution to the Problem)

भारत जैसे अल्पविकसित देशों की प्रमुख समस्या इस फालतू (अथवा अतिरिक्त) श्रम–शक्ति का उचित ढंग से उपयोग करने की है। लुइस के मतानुसार आवश्यकता इस बात की है कि कृषि क्षेत्र (अथवा जीवन–निर्वाह क्षेत्र) से फालतू श्रमिकों को हटाकर उन्हें पूँजीवादी क्षेत्र में लगाया जाय और नये उद्योगों की स्थापना की जाये अथवा वर्तमान उद्योगों का विस्तार किया जाये ताकि आर्थिक विकास की गति तीव्र हो सके। इस प्रकार निर्वाह–क्षेत्र से बाहर इस फालतू श्रम–शक्ति के लिए रोजगार की व्यवस्था करना उत्पादन व आय में वृद्धि का सफल उपाय है। उत्पादन व आय बढ़ाने से आर्थिक संवृद्धि (Economic Growth) भी बढ़ेगा जिससे लोगों का जीवन–स्तर (Standard of Living) ऊँचा होगा। लोगों की सोच बदलने से आर्थिक विकास का स्तर भी ऊँचा हो सकेगा।

लुइस के अनुसार पूँजीवादी क्षेत्र के लिए कुशल श्रम की जरूरत पड़ती है। इसके लिए थोड़ी कठिनाई (अड़चन) आ सकती है। किन्तु इस आंशिक कठिनाई (Quasi Bottleneck) का समाधान प्रशिक्षण आदि द्वारा किया जा सकता है।

लुइस ने श्रम के पुनर्वितरण के लिए अपने माडल में निम्न शर्तों को प्रस्तुत किया है–

1. श्रम शक्ति का हस्तांतरण (अथवा पुनर्वितरण) प्रचलित मजदूरी दर पर किया जाय।
2. प्रचलित मजदूरी–दर, जीवन–निर्वाह–दर से कम न हो।
3. श्रमिकों को समान कार्य के लिए समान मजदूरी दी जाये।
4. पूंजीवादी क्षेत्र में विनियोग (उत्पादन कार्य हेतु पूंजी–निवेश) अधिक किये जायें, भले ही यह जनसंख्या–वृद्धि के अनुपात में न हो।
5. श्रमिकों का प्रशिक्षण–लागत कम और एक समान होना चाहिए।

5. लुइस की विकास–प्रक्रिया (Lewis Development-Process)

प्रो0 लुइस के अनुसार अल्पविकसित देशों की विकास–प्रक्रिया में पूँजी निर्माण ''पूँजीवादी–अतिरेक'' पर निर्भर करता है। इस अतिरेक को नई परिसंपत्तियों (New Assets) अथवा पूँजीगत मशीनों में विनियोग करने पर पूँजी का निर्माण होता है जिससे अधिक लोगों को रोजगार पर लगाया जा सकता है। इस क्षेत्र में जैसे–जैसे रोजगार बढ़ता ह।, वैसे–वैसे पूँजीवादी अतिरेक भी बढ़ता जाता है। पूँजीवादी अतिरेक बढ़ने से पूँजी निर्माण में वृद्धि होती है जिससे आर्थिक विकास का चक्र आरमी हो जाता है। विकास की यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक कि सभी फालतू श्रम को रोजगार नहीं मिल जाता अर्थात पूंजी–श्रम–अनुपात (Capital-Labour Ratio) नहीं बढ़ जाता तथा श्रम की पूर्ति बेलोच नहीं हो जाती।

(1) पूँजीवादी अतिरेक का अर्थ (Meaning of Capitalist Surplus)– पूँजीवादी क्षेत्र में श्रम की सीमान्त उत्पादकता मजदूरी की तुलना में अधिक होती है जिससे इस क्षेत्र में अतिरेक (Surplus) पैदा होता है। यह पूँजीवादी अतिरेक पूँजीवादी–मजदूरी और जीवन–निर्वाह योग्य मजदूरी के अन्तर के रूप में प्राप्त होती है। प्रो0 लुइस के अनुसार व्यवहार में निर्वाह–मजदूरी (जीवन–निर्वाह योग्य मजदूरी) से पूँजीवादी मजदूरी 50 प्रतिशत तक अधिक होती है। इसके निम्न कारण गिनाये जा सकते हैं–

(i) निर्वाह क्षेत्र (पोषण क्षेत्र) के उत्पादन में वृद्धि होने से क्षेत्र की वास्तविक आय बढ़ जाती है जिससे प्रेरित होकर श्रमिक पूँजीवादी क्षेत्र में काम करने के लिए अधिक मजदूरी की माँग करने लगते हैं।

(ii) श्रमिक संघों (Labour Unions) का गठन भी श्रमिकों को अधिक मजदूरी प्राप्त कराने में सहायक बनता है।

(iii) पूँजीवादी क्षेत्र में रहन–सहन अथवा जीवन–स्तर की लागत अधिक होती है जिससे सेवायोजकों (अथवा उद्योगपतियों) को अधिक मजदूरी देना उनकी मजबूरी होती है।

(iv) सेवायोजक (विशेष कर सरकार जिन उद्योगों को प्रोत्साहित करती है) मानवीय दृष्टिकोण से प्रेरित होकर भी मजदूरी दर को बढ़ा देता है।

(v) अन्तः उद्योग–क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा की भावना से भी पूँजीवादी–श्रमिकों की मजदूरी बढ़ जाती है।

सारांश यह है कि पूँजीवादी अतिरेक (Capitalist Surplus) पूँजीवादी क्षेत्र की ऊँची सीमान्त उत्पादकता का परिणाम होती है। प्रो0 लुइस के अनुसार आर्थिक विकास का मूल तत्व पूँजीवादी अतिरेक का उत्पन्न होना और उसका पुनर्निवेश (अथवा पुनः विनियोग Reinvestment) किया जाना है। इससे पूँजी निर्माण व आर्थिक विकास की प्रक्रियायें 'सतत एवं संचयी' (Continuous and Cumulative) हो जाती है।

(2) विकास–प्रक्रिया की चित्र द्वारा व्याख्या (Explanation through diagram of Lewis Development Process)

प्रो0 लुइस की विकास–प्रक्रिया (अथवा लेविस–माडल की कार्य प्रणाली) को रेखाचित्र–17.2 की सहायता से समझाया जा सकता है। चित्र में OX अक्षर पर श्रम की मात्रा तथा YO अक्ष पर श्रम की मजदूरी व सीमान्त उत्पादन

को दर्शाया गया है। SS रेखा जीवन निर्वाह अथवा पोषण मजदूरी (Subsistence Earnings) तथा WW पूँजीवादी मजदूरी (Capitalist Earnings) को दर्शाते हैं। वक्र L_1Z_1, L_2Z_2, L_3Z_3…..पूँजीवादी क्षेत्र में श्रम की सीमान्त उत्पादकता को दर्शाते हैं। अब यहाँ OM_1 श्रम के द्वारा सम्पूर्ण उत्पादन $OL_1\ P_1\ M_1$ होगा। OM_1 श्रमिकों को दी जाने वाली सम्पूर्ण मजदूरी OWP_1M होगी। क्योंकि पूँजीवादी मजदूरी निर्वाह (पोषण) मजदूरी से ज्यादा होती है और पूँजीवादी मजदूरी श्रमिकों के सीमांत उत्पादन से कम होती है। अतः पूँजीवादी अतिरेक $W\ L_1P_1$ होगा। इस पूँजीवादी अतिरेक का पुनः विनियोग करने पर $L_1\ Z_1$ वक्र खिसक कर $L_2\ Z_2$ की स्थिति को प्राप्त करेगा। अब OM_2 श्रमिकों से पूँजीवादी अतिरेक बढ़कर $W\ L_2\ P_2$ हो जायेगा। यह मात्रा पहले से अधिक है जो $OM_2 - OM_1 = M_1M_2$ अतिरिक्त श्रमिकों के बढ़ जाने से प्राप्त होती है। इस दशा में रोजगार बढ़कर OM_2 हो जाता है। पुनः विनियोग की यह प्रक्रिया इसी प्रकार चलती रहेगी जब तक कि निर्वाह क्षेत्र के समस्त अतिरिक्त श्रम को पूँजीवादी क्षेत्र में रोजगार पर नहीं लगा लिया जाता।

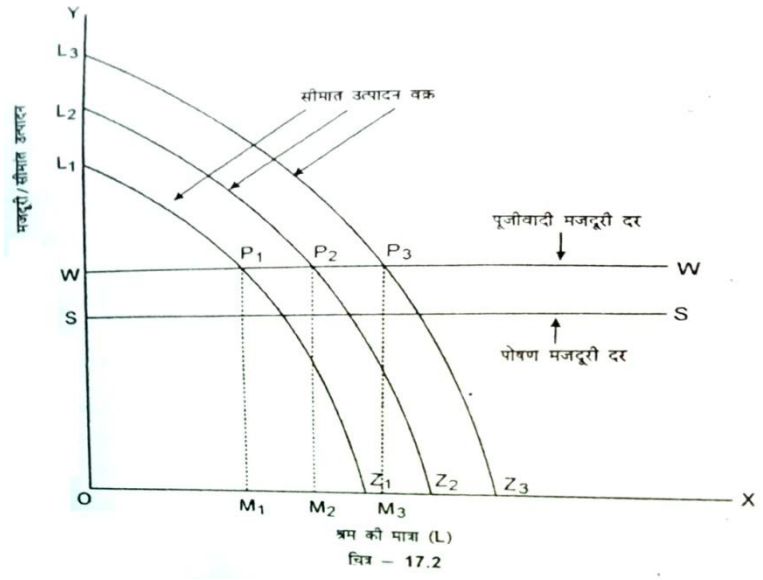

चित्र – 17.2

(3) अर्जित लाभ एवं पूंजी निर्माण (Earned Profit and Capital Formation)

प्रो0 लुइस ने अपने विकास–माडल में पूँजीपतियों द्वारा अर्जित लाभ में से ही पूँजी निर्माण की सम्भावना को स्पष्ट किया है। लुइस के अनुसार पूँजीपतियों द्वारा अर्जित लाभ (Earned Profit) से पूँजी निर्माण किया जायेगा और पूँजी–निर्माण आर्थिक विकास को बढ़ावा देगा। इस तरह अल्पविकसित देशों में श्रम की असीमित पूर्ति विकास की बाधा न होकर पूँजी निर्माण में सहायक सिद्ध होती है। प्रो0 लुइस के अनुसार, 'आर्थिक विकास के सिद्धान्त में केन्द्रीय समस्या उस प्रक्रिया को समझने की है जिसके द्वारा अपनी राष्ट्रीय आय का 4 प्रतिशत या 5 प्रतिशत बचत तथा विनियोग करने वाला एक समाज किस प्रकार अपने आपको 12 प्रतिशत से 15 प्रतिशत अथवा इससे भी अधिक ऐच्छिक बचत करने वाले समाज में बदल सकता है।'

(4) राज्य तथा निजी पूंजीपतियों की भूमिका (role of State and Private Capitalists)

प्रो0 लुइस के अनुसार राज्य पूँजीपति (अर्थात सार्वजनिक उपक्रम एवं सरकार) और देशीय निजी पूँजीपतियों (Indigenous Private Capitalists) को बढ़ावा दिया जाना चाहिए क्योंकि पूँजी–निर्माण का कार्य केवल इनके द्वारा अर्जित लाभों में से ही हो सकता है। यद्यपि इनमें राज्य पूँजीपति के निर्माण की क्षमता अधिक होती है क्योंकि वह समाज से अतिरिक्त कराधान और /अथवा अतिरिक्त सार्वजनिक ऋण के द्वारा अधिक राजस्व (Revenue) जुटा पाने में सफल रहता है। लुइस के अनुसार जब पूँजी के उत्पादक संबंधी उपयोग के अवसर तेजी से बढ़ते हैं तो पूँजी अतिरेक, पूँजीनिर्माण व आर्थिक विकास भी क्रमशः तेजी से बढ़ते हैं।

प्रो0 लुइस के अनुसार अल्पविकसित देशों में पूंजी अतिरेक की मात्रा कम होती है क्योंकि

(i) अर्थव्यवस्था की बचतें कम होती है क्योंकि पूँजीवादी लाभ का राष्ट्रीय आय में अनुपात कम होता है। उदाहरण के लिए, वेतन व मजदूरी प्राप्त करने वाला वर्ग मुश्किल से राष्ट्रीय आय का 3 प्रतिशत या 4 प्रतिशत भाग ही बचा पाते हैं।

(ii) अर्थव्यवस्था की बचतें कम होती हैं क्योंकि भूमिपति, बड़े व्यापारी, राजघराने आदि उत्पादन–निवेश करने के बजाय अनावश्यक उपभोग में अधिक रूचि रखते हैं।

(iii) अल्प विकसित देश में 'उत्पादन–निवेश' के कम होने में निकासी (Withdrawls) बहुत महत्वपूर्ण है। व्यवहार में यह काली मुद्रा (Black Money), समानांतर अर्थव्यवस्था (Parallel Economy), आर्थिक भ्रष्टाचार (Economic Curruption) आदि नामों से पुकारा जाता है। अर्थशास्त्री इसे पूँजी–रिसाव (Capital Lcakage) कहता है। यह पूंजी उत्पादन कार्य में न लगकर विलासिता व शान–ओ–शौकत जैसे उपभोग–कार्य में लगी रहती है।

अतः अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के लिए यह जरूरी है कि (i) जो अधिक बचत कर सकते हैं उनके द्वारा अर्थव्यवस्था में 'बचत क्षमता' को बढ़ावा जाये, तथा (ii) सम्पूर्ण बचत को उत्पादन–कार्य में विनियोग किया जाये। बचत का कोई भी अंश पूँजी–रिसाव' के रूप में उपभोग में न लगने दिया जाय।

⑸ बैंक साख की भूमिका (Role of Bank Credit)

प्रो0 लुइस के अनुसार असीमित श्रम–पूर्ति वाली अर्थव्यवस्था में पूंजी का निर्माण अर्जित लाभों के अलावा बैंक साख के सृजन से भी होता है। बैंक साख का प्रभाव अर्जित लाभ की ही भाँति होता है। यह रोजगार तथा उत्पादन को बढ़ायेगा। किन्तु बैंक साख से प्राप्त पूंजी निर्माण अल्पकाल में 'स्फीतिक' (Inflationary) होता है। पूँजीवादी क्षेत्र में लगाये गये अतिरिक्त श्रम को मजदूरी का भुगतान साख मुद्रा में से करने पर उन श्रमिकों की क्रय शक्ति (अर्थात आय) तो बढ़ जाती है जबकि उपभोग वस्तुओं का उत्पादन लगभग स्थिर रहता है। लेकिन यह स्थिति थोड़े समय के लिए ही होती है क्योंकि जैसे–जैसे पूँजीगत उद्योग उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाते जाते हैं वैसे ही वैसे कीमतें बढ़ने लगती है। प्रो0 लुइस के अपने शब्दों में, 'पूँजी निर्माण के उद्देश्य के फलस्वरूप स्फीति की दशा आम स्फीति से बिल्कुल भिन्न है। यह स्वयं नष्ट हो जाने वाली (Selfliquidating) होती है। कीमतों में वृद्धि पर नियंत्रण जल्दी या देर से उत्पादन में वृद्धि होने के कारण कर लिया जाता है और अन्त में कीमतें पहले से भी नीची हो सकती है।'[2] इसके अतिरिक्त जब ऐच्छिक बचतें विनियोग के स्फीतिक–स्तर के बराबर हा जाती है तो भी यह स्फीतिक दशा समाप्त हो जाती है। इसका कारण यह है कि पूंजी–निर्माण का कार्य निरन्तर चलता रहता है। इससे रोजगार, उत्पादन व लाभ की मात्रा भी निरंतर बढ़ती रहती है। फलस्वरूप ऐच्छिक बचते एक समय में आकर इतनी अधिक हो जाती हैं कि बिना बैंक–ऋण (अथवा बैंक–साख) के ही नये विनियोगों की वित्त–व्यवस्था की जा सकती है।

⑹ विकास–प्रक्रिया का अन्त (End of the Process)

लुइस–माडल की विकास–प्रक्रिया (Development Process) सदैव चलने वाली नहीं होती क्योंकि जब तक स्थिर वास्तविक मजदूरी पर श्रम की असीमित मात्रा में पूर्ति होती है और पूंजीवादी अतिरेक प्राप्त होता रहता है तभी तक आर्थिक विकास की यह प्रक्रिया चलती है। यह प्रक्रिया उस समय रूक जायेगी जब निर्वाह क्षेत्र अथवा पोषण क्षेत्र से अतिरिक्त श्रम–पूर्ति शेष ही न रहे। जब अतिरिक्त श्रम–पूर्ति शून्य हो जाती है तो पूँजीवादी क्षेत्र में रोजगार में लेने के लिए श्रम ही उपलब्ध न रहेगा। श्रम की पूर्ति पूर्णतया बेलोचदार हो जायेगी। इस स्थिति में पोषण क्षेत्र (निर्वाह क्षेत्र) एवं पूंजीवादी क्षेत्र (उद्योग क्षेत्र) में प्रतियोगिता आरंभ होगी जिससे निर्वाह क्षेत्र (अथवा कृषि क्षेत्र) का व्यापारीकरण हो जायेगा।

प्रो0 लुइस के अनुसार आर्थिक विकास की यह प्रक्रिया निरंतर नहीं चल सकती और किसी एक बिन्दु पर आकर इसे रूकना ही पड़ता है। इसके निम्न कारण हो सकते हैं–

(i) जब पूँजीवादी क्षेत्र के तीव्र विकास से निर्वाह–क्षेत्र में श्रम की अतिरिक्त मात्रा शून्य हो जाये।

(ii) निर्वाह–क्षेत्र में श्रम की औसत उत्पादकता इतनी बढ़ जाये कि पूँजीवादी क्षेत्र में भी मजदूरी बढ़ानी पड़े।

(iii) जब पूँजीवादी क्षेत्र की व्यापारिक स्थितियाँ प्रतिकूल हो जायें अर्थात कच्चे माल, खाद्यान्न आदि की कीमतों में वृद्धि होने से मजदूरों को ऊँची मजदूरी का भुगतान करना पड़ जाये।

(iv) जब निर्वाह–क्षेत्र में उत्पादन की नई तकनीक लागू करने पर कृषि क्षेत्र का उत्पादन इतना बढ़ जाये जिससे पूंजीवादी क्षेत्र में श्रम जाना ही न चाहे।

(v) पूंजीवादी क्षेत्र में काम करने वाले श्रमिक यदि पूंजीवादी विलासिता पूर्ण जीवन का अनुकरण करने लगे तो वे अपनी मजदूरी–वृद्धि के लिए प्रयास करेंगें और यदि वे सफल हो गये तो पूंजीवादी क्षेत्र में लाभ की मात्रा कम हो जायेगी।

उपर्युक्त सभी कारण विकास प्रक्रिया में अवरोध उत्पन्न करते है। इनके प्रभावी रहने से विकास प्रक्रिया रूक सकती है।

लुइस–माडल की आलोचना (A Critique)

प्रो0 लुइस का विकास माडल अल्पविकसित देशों की असीमित श्रम–पूर्ति व अल्प पूंजी की समस्या का निराकरण प्रस्तुत करता है। यह माडल प्रतिष्ठित माडल का संशोधन करता है और यह सुझाव रखता है–(1) विकास के लिए उपभोग को कम करने की आवश्यकता नहीं है जैसा कि नव–प्रतिष्ठित माडलों में किया गया है, तथा (2) विकास के लिए उपभोग को बढ़ाने की भी आवश्यकता नहीं है जैसा कि कीन्स के माडल में किया गया है। प्रो0 लुइस विकास–प्रक्रिया के लिए बलात बचतों (Forced Savings) की जगह 'बलात पुनर्वितरण' (Forced Redistribution) के विकल्प को स्वीकार करता है। उसके माडल में मुद्रा स्फीति स्वंय समाप्त होने वाली एक अल्पकालिक क्रिया है जो उत्पादन–प्रेरित और घाटे की वित्त व्यवस्था जनित है। अन्त में यह भी कहा जा सकता है कि लुइस–माडल में लाभ वित्त व्यवस्था और साख वित्त–व्यवस्था दोनों ही विकास के प्रेरक हैं।

प्रो0 लुइस–माडल की उक्त विशेषतायें उसे अल्पविकसित देश के विकास के सर्वोत्तम माडल के रूप में प्रस्तुत करती है। किन्तु कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ माडल को प्रभावहीन बना देती हैं। माडल की कुछ कमियाँ निम्नलिखित हैं–

1. **सभी अल्पविकसित देश असीमित श्रम–पूर्ति वाले नहीं होते**–अल्प जनसंख्या वाले दक्षिण अमेरिका तथा अफ्रीकी देशों में असीमित श्रम–पूर्ति की दशा नहीं पाई जाती। अतः लुइस माडल सभी अल्पविकसित देशों में लागू नहीं हो पाता।
2. **श्रम की गतिशीलता की कठिनाई**–प्रो0 मायर (Meier) के अनुसार श्रम का एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में हस्तांतरण इतना सरल नहीं है, जितना लुइस–माडल में मान लिया गया है। अल्पविकसित देशों में भौगोलिक, सामाजिक व सांस्कृतिक कारणों से श्रम की गतिशीलता काफी सीमित बनी रहती है।
3. **श्रमिकों को समरूप घटक मानना अवास्तविक**–प्रो0 मिन्ट के अनुसार दो क्षेत्रों में दो प्रकार के श्रमिकों को समरूप घटक मानना अवास्तविक है। ग्रामीण परम्परागत समाज से कृषि श्रमिक के पूंजीवाद अथवा औद्योगिक शहरी क्षेत्र का घटक बनने के लिए रहन–सहन, दृष्टिकोण तथा कार्य प्रणाली में जटिल परिवर्तन आवश्यक है।[1]
4. **स्थिर मजदूरी की मान्यता अवास्तविक**–प्रो0 लुइस के माडल में निर्वाह–क्षेत्र की मजदूरी में स्थिरता श्रम प्रवासन के लिए आवश्यक शर्तें हैं। किन्तु यह गलत है क्योंकि आर्थिक विकास होने पर मजदूरी की दर में भी वृद्धि अवश्यम्भावी है। डा0 मिनोचा (A.C. Minocha)[2] ने भी मजदूरी को परिवर्तनशील माना है।
5. **विषमताओं को बढ़ावा**–प्रो0 कुजनेट्स (Kuznets) के अनुसार लुइस माडल स्वीकार करने पर अल्पविकसित देशों में आय का वितरण और भी आसान हो जायेगा। इस संदर्भ में मायर एवं बाल्डविन का यह मानना है कि आय की असमानता उत्पादक–निवेश (Productive Investment) में प्रत्याशा से कहीं कम वृद्धि कर पाता है।
6. **बचत कर्ताओं की गलत व्याख्या**–लुइस की यह धारण कि बचत केवल अधिक आय वाले पूंजीवादी क्षेत्र के लोग ही करते हैं, गलत है। कम आय वाले भी बचत करते हैं। भारत में योजना आयोग के एक अध्ययन[3] के अनुसार अर्थव्यवस्था में सम्पूर्ण बचत का 53 प्रतिशत भाग घरेलू बचत से प्राप्त होता है। अतः कम आय वाले लोग भी बचत करते हैं।

7. **लुइस का विरोधाभाव**—शुल्ट्ज का मत है कि अल्पविकसित देशों में श्रम की सीमान्त उत्पादकता शून्य नहीं हो सकती क्योंकि ऐसा होने पर उनकी मजदूरी भी शून्य होगी जबकि प्रो0 लुइस इसे स्वीकार नहीं करते। यह अपने में एक विरोधाभास है।
8. **माडल व्यवहार में लागू करने योग्य नहीं**—ऐसा विचार प्रो0 ए0एम0 खुसरों का है। उनके अनुसार लुइस ने छिपी बेरोजगारी के रूप में सम्भाग्य बचतों का शोषण करके औद्योगीकरण की जो नीति तैयार की है वह पूरी तरह से व्यवहार में लागू करने योग्य नहीं है। इस प्रक्रिया में अनेक ऐसे छिद्र हैं जो सदैव रिसते रहेंगे, जैसे—कृषकों व व्यापारियों द्वारा स्टाक जमा करने की प्रवृत्ति का पाया जाना, पूर्ति का मूल्य—बेलोच होना आदि।

खण्ड–2
इकाई–6

हैरिस टोडरो का प्रवसन सिद्धांत

हैरिस–टोडारो (एचटी) (1970) मॉडल का योगदान कम विकसित अर्थव्यवस्थाओं में शहरी बेरोजगारी का एक शक्तिशाली वर्णन है। लेखक का प्रस्ताव है कि ग्रामीण–शहरी यात्रा तब तक जारी रहेगी जब तक कि वास्तविक ग्रामीण शहरी क्षेत्र के बराबर न हो जाए। शहरी शहरी वेतन वास्तविक वेतन को गुणांक होने की संभावना से गुणा किया जाता है। इस प्रकार की बेरोजगारी इस मॉडल में संतुलन के प्रकार है। इस मॉडल की परिकल्पना और भविष्यवाणियां अर्थमितीय आकलन के अधीन हैं और कई दरवाजे (मजूमदार, 1987, विलियंसन, 1988) द्वारा इसकी पुष्टि की गई है। एचटी की प्रमुख परिकल्पना यह है कि प्रवासी मुख्य रूप से आर्थिक प्रोत्साहन, आय के हित और उद्देश्य पर नौकरी पाने की संभावना पर प्रतिक्रिया देते हैं, जो यात्रा निर्णय पर प्रभाव डालते हैं। यह निबंध टोडारो विरोधाभास पर एक आधारभूत के साथ एचटी मॉडल के आकलन के साथ शुरू होगा, और बेरोजगारी और ग्रामीण–शहरी पर्यटन प्रवृत्ति पर इस दावे के निहितार्थ का निष्कर्ष निकाला जाएगा।

वैयक्तिक व्यक्तिगत यात्रा के लिए स्वयं का चयन करेंय वे अपने भविष्य की आय को शुद्ध यात्रा लागत में छूट देते हैं। जबकि शहर में श्रम की मांग की लचीली रूप से मोटाई है, पर्यटन के साथ श्रम की आपूर्ति अंतर्जाट रूप से मोटी है। स्थिर स्थिति में, पर्यटन प्रवाह यह सुनिश्चित करता है कि शहरी श्रम बल श्रम मांग के समान दर से बढ़े। टोडारो रिपब्लिकन शहरी गठबंधन और यात्रा प्रवाह के बीच संबंध को देखा जाता है। शहरी सहभागिता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से निर्मित शचित्रांकन यात्राश के कारण शहरी प्रतिभाओं का जन्म हो

सकता है। इसकी शुरुआत केन्या 1964 से हो सकती है, जब सरकार और निजी क्षेत्र में रोजगार में 15ः की वृद्धि करना चाहते थे, लेकिन इसके बजाय ग्रामीण क्षेत्रों से कम–कुशल, हिमाचल प्रदेश को आकर्षित करके समग्र बेरोजगारी में वृद्धि हुई। आंतरिक यात्रा उद्योग के विविध पूल, सूचना के प्रसार और कृषि उद्यमों से विनिर्माण और सेवा की ओर वृद्धि की मात्रा देता है। डिफाइन, चीन के श्रम बाजार सुधारों ने टूरिन कम्यूनिटी में असेंबली लीज की मात्रा दी है। डी ब्रौ एट अल (2002) और झांग एंड सॉन्ग (2003) की एक शानदार स्टडी से पता चलता है कि लेबर मर्चेंडाइज ने टूरिज्म को ऑफ–फॉर्म एक्शन में मुख्य भूमिका निभाई है। ग्रामीण क्षेत्रों में युवा आबादी, ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं का वर्चस्व तेजी से बढ़ रहा है। इसके अलावा, एंडरसन (2002) ने अध्ययन किया कि बोलीविया में आंतरिक यात्रा ने अपनी गरीबी कम करने में योगदान दिया है। प्रभावशाली प्रभावकारी अनुसंधान स्वास्थ्य, शिक्षा और आवास के मामले में ग्रामीण–शहरी यात्रा की लागत को कम करने की मात्रा बताई गई है। इस अध्ययन यात्रा में पैटर्न्स की टॉपलेस की अनदेखी करते हुए एचटी मॉडल और टोडारो पैराडॉक्स के आलोचक हैं। शहरी वेतन को कम कठोर बनाने वाली उद्योग उद्योग में श्रम के टुकड़ों को चरण स्तर पर लाती हैं। एचटी ने जोर देकर कहा कि पर्यटन प्रतिबंध के साथ शहरी वेतन उद्योग को अधिक समग्र कल्याण की ओर ले जाएगा। इसके विपरीत, भगवती और वेतन (1974) में कहा गया है कि वेतन में न्यूनतम योगदान दिया जा सकता है, जिससे बेरोजगारी और पलायन कम हो सकता है। बसु (1980) ने आगे पाया कि समान स्तर से ऊपर किसी भी पैमाने पर सामाजिक स्तर को जन्म दिया गया। जबकि चीन के मामले में एचटी मॉडल विफल रहता है, अनपेक्षित क्षेत्र की चर्चा और आलोचना की जा सकती है।

अस्वीकृत क्षेत्र में ऐसे व्यक्ति शामिल हैं जो स्व–रोजगार हैं और कम सरकारी कर्मचारी और नियंत्रण के कारण वेतनभोगी नहीं हैं। मेंग (2001) के एक लंबे अध्ययन से पता चलता है कि अधिकांश चीनी प्रवासी श्रमिक व्यावसायिक क्षेत्र से संबंधित हैं। इसके अलावा, रेलवे में लंबे समय तक वे प्रवासी बने रहने की संभावना अधिक है कि वे स्व–रोजगार की ओर बढ़ेंगे। ऐसे निष्कर्ष बांग्लादेश के साथ भी जुड़े हुए हैं, जहां रामजी क्षेत्र में रोमानिया के बीच समुद्री यात्रा होती है। ग्रामीण परिवार में अक्सर शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा, आय और कल्याण के मामले सामने आते हैं। बड़े महानगरीय शहरों के विकास से कुछ हद तक वहां के गांवों के उत्पादों में भी वृद्धि हुई है। एचटी मॉडल के निहितार्थों ने ग्रामीण–शहरी यात्रा पर प्रतिबंध लगाने के लिए कई समुदायों को अनुमति दी है। इससे कम भाग्यशाली लोगों के लिए बेहतर स्टॉक की तलाश में शहर की ओर पलायन करने के अवसर सीमित हो जाते हैं जिनमें वे पीछे चले जाते हैं। टूरन का मामला दोतारफा है। बांग्लादेश में कई ग्रामीण परिवारों को शहर में स्थानांतरित करने की अनुमति दी गई है। उद्योग को साझेदारी, श्रम के बड़े पूल से लाभ होता है।

खण्ड –3

इकाई –1

भारत में नियोजन की रणनीति, उद्देश्य सफलताएँ एवं असफलताएँ

इकाई की रूप रेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 आर्थिक नियोजन का अर्थ

1.3 आर्थिक नियोजन के उद्देश्य

1.4 आर्थिक नियोजन के प्रकार

1.5 भारतीय नियोजन प्रक्रिया की विशेषताएं

1.6 भारतीय नियोजन की सफलताएं

1.7 भारत में नियोजन की असफलताएं

1.8 बोध प्रश्न

1.9 कुछ उपयोगी पुस्तके

1.0 उद्देश्य–

1–प्रस्तुत इकाई में आर्थिक नियोजन के अर्थ की जानकारी प्राप्त करेंगे।

2–प्रस्तुत इकाई में आर्थिक नियोजन के उद्देश्यों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

3–प्रस्तुत इकाई में आर्थिक नियोजन के प्रकारों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

4–प्रस्तुत इकाई में भारतीय नियोजन प्रक्रिया की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करेंगे।

5–प्रस्तुत इकाई में भारतीय नियोजन की सफलताओं की जानकारी प्राप्त करेंगे।

6–प्रस्तुत इकाई में भारतीय नियोजन की असफलताओं की जानकारी प्राप्त करेंगे।

1.1 प्रस्तावना–

भारत में लगभग 200 वर्षों में अंग्रेजी शासन के द्वारा भारतीय उद्योगों को सुनियोजित ढंग से कमजोर करने एवं भारतीय संसाधनों का उपयोग कर विदेशी वस्तुओं से भारतीय बाजारों पर अपना पूर्ण स्वामित्व स्थापित कर लिया तथा भारतीय अर्थव्यवस्था को ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था से इस प्रकार जोड़ दिया था कि भारतीय अर्थव्यवस्था पूर्णतया निर्भर हो गई थी देश के औपनिवेशिक शोषण और अल्पविकास की वजह से यहां पर जो आर्थिक समस्याएं पैदा हुई उनमें बेरोजगारी गरीबी सबसे महत्वपूर्ण थी जब भारत को 1947 में स्वतंत्रता प्राप्त हुई तो भारतीय अर्थव्यवस्था ना केवल अगतिशील थी बल्कि अनेक सारी समस्याएं थी जिनका समाधान अत्यंत आवश्यक था अतः स्वतंत्रता पश्चात भारत के नीति निर्माता द्वारा भारत में 1951में आर्थिक आयोजन प्रक्रिया प्रारंभ की गई जिसके सूत्रधार पंडित जवाहरलाल नेहरू को माना जाता है।

भारत 1951 के आर्थिक आयोजन प्रारंभ होने के समय भारत तीन प्रकार के दृष्टिकोण से दूसरे देशों पर निर्भर करता था पहला कृषि प्रधान देश होते हुए भी खाद्यान्नों पर आत्मनिर्भरता नहीं थी जिससे कि खाद्यान्नों का आयात करना होता था दूसरा भारत में आधारभूत उद्योगो का विकास अल्प मात्रा अर्थात ना के बराबर होने के कारण दूसरे देशों से बड़ी मात्रा में परिवहन उपकरण, बिजली संयंत्र, मशीनरी और औजार, भारी इंजीनियरिंग वस्तुएं और अन्य पूंजीगत पदार्थ आयात करने पडते थे एवं तीसरा भारत में बचत का स्तर अत्यंत कम होने के कारण निवेश के लिए विदेशी पूंजी की सहायता लेनी पडती थी जिसका परिणाम यह होता था की विकसित देशों द्वारा अपने खाद्यान्न, मशीन तथा पूंजीगत उपकरण को बेचते समय मजबूत सौदेबाजी शक्तियों का प्रयोग करते थे तथा भारत पर राजनीतिक दबाव बनाते थे जिसको देखते हुए भारतीय नीति निर्माताओं ने यह महसूस किया कि यदि देश को अपने संवृद्धि प्रक्रिया को

दूसरे देशों के प्रभाव से मुक्त करना है तो उसे न केवल खाद्यान्न और मशीनों तथा दूसरे प्रकार के उपकरणों में भी आत्मनिर्भर बनना होगा एवं विदेशी सहायता पर निर्भरता को काम करना होगा यही मुख्य वजह थी जिसके कारण भारतीय नीति निर्माता ने आर्थिक आयोजन प्रक्रिया को अपनाया था।

1.2 आर्थिक नियोजन का अर्थ–

आर्थिक नियोजन एक सुसंगठित सुनियोजित आर्थिक प्रयास है जिसमें राज्य द्वारा एक निश्चित अवधि में सुनिश्चित आर्थिक एवं सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्राकृतिक, आर्थिक तथा मानवीय संसाधनों का विवेकपूर्ण ढंग से समन्वय एवं नियंत्रण किया जाता है।

भारत में स्वतंत्रता पश्चात आर्थिक नियोजन मिश्रित अर्थव्यवस्था प्रणाली के रूप में चुना गया जिसको सफल बनाने के उद्देश्य 15 मार्च 1950 को योजना आयोग का गठन हुआ जिसने बीते वर्षो में देश के विकास में समाजवादी समाज की स्थापना एवं संपोषणीय विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया जिसे 1 जनवरी 2015 को नीति आयोग में परिवर्तित किया गया आर्थिक नियोजन भारत में भारतीय संविधान में समवर्ती सूची का विषय है।

1.3 आर्थिक नियोजन के उद्देश्य

1.आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करना।

2.सामाजिक न्याय स्थापित करना।

3.पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त करना।

4.गरीबी निवारण एवं रोजगार अवसरों का सृजन करना।

5.उपभोग वस्तु में आत्मनिर्भरता की प्राप्त करना ।

6.निवेश एवं पूँजी निर्माण को बढ़ावा देना।

7.आय वितरण एवं क्षेत्रीय विषमता कमी लाना आदि है ।

8. धन तथा आय का समान वितरण सामाजिक न्याय व्यवस्था कायम करना ।

1.4 आर्थिक नियोजन के प्रकार –

1. आदेशात्मक नियोजन –

राज्य के नियंत्रण के आधार पर आदेशात्मक नियोजन एक केंद्रीकृत व्यवस्था है जिसमें राज्य एवं सरकारी संस्थाओं का व्यापक रूप से प्रत्यक्ष हस्तक्षेप होता है जिसमें एक केंद्रीय स्तर पर शीर्ष संस्था होती है जो योजनाओं के निर्माण एवं उसके क्रियान्वयन को सुनिश्चित करती है जो केंद्रीकृत प्रक्रिया के द्वारा होते हैं इसे केंद्रीकृत भी कहा जाता है आदेशात्मक नियोजन एक अनिवार्यता की प्रक्रिया होती है जिसमें प्रशासनिक मशीनरी में शक्ति निहित होती है वहां विभिन्न आर्थिक इकाइयों को विनियोग तथा उत्पादन संबंधी निर्णय लिया जाता है तथा भारत में इसे पहली से चौथी पंचवर्षीय योजना में लागू किया गया।

2.निर्देशात्मक नियोजन

एक विकेंद्रीकृत व्यवस्था है जिसमें राज्य एवं सरकारी संस्थाओं का सांकेतिक या परोक्ष रूप से नियंत्रण होता है जिसमें केवल नीति निर्माण का कार्य सरकार के द्वारा किया जाता है एवं उसके क्रियान्वयन का कार्य निजी क्षेत्रों द्वारा किया जाता है निर्देशात्मक नियोजन के अंतर्गत केंद्रीय संस्था द्वारा लक्ष्य का निर्धारण किया जाता है जिसका प्रयोग निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र के विनियोग तथा उत्पादन संबंधित योजनाओं को समन्वित करने के लिए किया जाता है निर्णय लेने की प्रक्रिया विकेंद्रित प्रक्रिया होती है अर्थात इसमें बाजार व्यवस्था बनी रहती है एवं निर्णय की प्रक्रिया संबंधित अनिश्चितता कम हो जाती हैं इस प्रकार के नियोजन की प्रक्रिया सहभागिता के आधार पर होती हैं इसमें किसी प्रकार का उत्पीड़न नहीं होता है इसका प्रारंभ फ्रांस से हुआ था तथा भारत में इसे आठवीं पंचवर्षीय योजना में निर्देशात्मक नियोजन के रूप में स्वीकार किया तथा इससे 1991 के आर्थिक सुधारों में भी लागू किया गया।

3.संरचनात्मक नियोजन –

संरचनात्मक नियोजन आर्थिक विकास एवं लक्ष्य प्राप्ति के लिए संसाधनों के वर्तमान स्वामित्व एवं सामाजिक ढांचे उत्पादन की विधि एवं संस्थागत व्यवस्था में आवश्यकता अनुसार परिवर्तन को महत्व प्रदान करता है जैसे– भूमि सुधार, बैंकों का राष्ट्रीयकरण आदि इसका

उद्देश्य ऐसी सामाजिक आर्थिक व्यवस्था को सुनिश्चित करना है जो आर्थिक विकास की प्रक्रिया को गति प्रदान करें यह तुलनात्मक रूप से दीर्घकालीन नियोजन है जिसे सामान्यतया विकासशील एवं समाजवादी देश अनुसरण करते हैं।

4.प्रक्रियात्मक नियोजन–

इसमें आर्थिक विकास लक्ष्य की प्राप्ति के लिए संसाधन के स्वामित्व एवं उत्पादन विधि संस्थागत व्यवस्था आदि में परिवर्तन लाने के स्थान पर उसके अनुकूलतम दोहन की रणनीति अपनाई जाती है जैसे– हरित क्रांति के द्वारा कृषि उत्पादन में वृद्धि लाना आदि प्रक्रियात्मक नियोजन समय विशेष पर प्रचलित सामाजिक आर्थिक स्वरूप को बनाए रखने तथा उसकी मजबूती प्रदान करने अर्थात अथवा वर्तमान राज्य के ढांचे में मरम्मत को अपना लक्ष्य मानता है जिसका प्रयोग अधिकांश विकसित देशों द्वारा किया जाता है।

5.केंद्रीकृत नियोजन–

इस नियोजन में सामान्यतया योजनाओं को बनाने एवं उनके क्रियान्वयन एवं निरीक्षण करने आदि का उत्तरदायित्व केंद्रीय संस्थाओं द्वारा किया जाता है टॉप टू बॉटम दृष्टिकोण पर आधारित होता है।

6.विकेंद्रीकृत नियोजन–

विकेंद्रीकृत नियोजन का कार्य सामान्यतया केंद्रीय संस्थाओं राज्य संस्थाओं एवं स्थानीय संस्थाओं के साथ–साथ निजी क्षेत्र एवं आम व्यक्तियों आदि के द्वारा योजनाओं के निर्माण एवं क्रियान्वयन एवं निरीक्षण आदि में निर्णय लिया जाता है जिससे ग्राम पंचायतों की भागीदारी में वृद्धि होती है इसे जनता सरकार द्वारा 1977 से 1979 में विकेंद्रीकृत योजना मॉडल के रूप में प्रयोग किया गया यह बॉटम टू टॉप दृष्टिकोण पर आधारित है जो की लोकतांत्रिक प्रक्रिया को मजबूत बनाने में सहयोग करता है।

7.राष्ट्रीय नियोजन–

जब किसी शीर्ष राष्ट्रीय संस्था द्वारा संपूर्ण राष्ट्र को ध्यान में रखकर योजनाओं एवं नीतियों का निर्माण एवं क्रियान्वयन किया जाता है जिसमें संपूर्ण अर्थव्यवस्था को एक समष्टि मानकर नियोजन किया जाता है जैसे ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में 8 प्रतिशत आर्थिक समृद्धि का लक्ष्य रखा गया जिसमें रोजगार, ऊर्जा, सामाजिक अधोसंरचना का विकास एवं कृषि तथा सर्वाधिकऊर्जा पर व्यय किया गया।

8.क्षेत्रीय नियोजन–

जब किसी अर्थव्यवस्था में शीर्ष संस्था द्वारा किसी क्षेत्र विशेष को ध्यान में रखकर योजना एवं नीतियों का निर्माण एवं क्रियान्वयन किया जाता है सामान्यतया यह राष्ट्रीय नियोजन का ही भाग होता है जिसे आंशिक नियोजन भी कहते हैं जैसे भारत में पूर्वोत्तर राज्य के विकास के लिए नीतियों एवं परियोजनाओं का निर्धारण करना।

1.5 भारतीय नियोजन प्रक्रिया की विशेषताएं–

भारतीय आर्थिक नियोजन का स्वरूप मुख्यतया निर्देशात्मक है इसीलिए इसे प्रेरणा द्वारा नियोजन भी कहा जाता है।

इसका स्वरूप विकेंद्रीकृत है जिसमें व्यापक स्तर पर योजनाएं बनाई गई थी।

भारतीय अर्थव्यवस्था को निजी तथा सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों के सह अस्तित्व द्वारा मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया गया ।

भारतीय अर्थव्यवस्था में समाजवादी तथा पूंजीवादी दोनों प्रकार के तत्वों का समन्वय है।

भारत में प्रारंभिक पंचवर्षीय योजनाओं में ढांचागत और आधारभूत सुधार करने के लिए भारी उद्योगों की स्थापना पर बल दिया गया।

12वीं पंचवर्षीय योजना में तीव्र धारणीय एवं अधिक समावेशित विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया गया।

भारतीय आर्थिक नियोजन के द्वारा धन तथा आय का समान वितरण तथा सामाजिक न्याय को प्राप्त करने का प्रयास किया गया ।

भारतीय नियोजन के द्वारा मानव शक्ति का प्रयोग अर्थात पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त करने का प्रयास किया गया।

1.6 भारतीय नियोजन की सफलताएं –

राष्ट्रीय आय में वृद्धि –

भारत में स्वतंत्रता से लेकर वर्तमान तक सुव्यवस्थित आर्थिक नियोजन के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय में लगातार वृद्धि हुई है पहली पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय में वृद्धि का लक्ष्य 2.1 प्रतिशत रखा गया था जबकि 4.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष की उपलब्धि प्राप्त हुई थी दूसरी योजना में राष्ट्रीय आय में वृद्धि का लक्ष्य 4.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष रखा गया जबकि उपलब्धि 4.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष रहे तीसरी योजना असफल योजनाओं में से रही जिसमें राष्ट्रीय आय में वृद्धि का लक्ष्य 6 प्रतिशत प्रतिवर्ष रखा गया था जबकि उपलब्धि मात्र 3.3 प्रतिशत प्रतिवर्ष की ही प्राप्त हो सके चौथी योजना में राष्ट्रीय आय में वृद्धि का लक्ष्य 5.7 प्रतिशत प्रतिवर्ष कर रखा गया जबकि उपलब्धि मात्र 3 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही पांचवी पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय में वृद्धि लक्ष्य 5.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष रखा गया जिसे बाद में 4.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष परिवर्तित कर दिया गया था जबकि राष्ट्रीय आय में 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष वृद्धि प्राप्त हुई छठी पंचवर्षीय योजना में 5.3 प्रतिशत प्रतिवर्ष की राष्ट्रीय आय में वृद्धि प्राप्त हुई सातवीं पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय में 5.8 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि दर प्राप्त हुई आठवीं पंचवर्षीय योजना में 6.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की राष्ट्रीय आय

में वृद्धि दर प्राप्त हुई जबकि लक्ष्य 5.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष रखा गया था नौवी पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय में 5.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वार्षिक दर से वृद्धि प्राप्त हुई दसवीं पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय में 7.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि प्राप्त हुई ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय में औसतन 7.5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त हुई जबकि लक्ष्य 9 प्रतिशत प्रतिवर्ष रखा गया था बारहवीं पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय राष्ट्रीय आय में 8 प्रतिशत प्रतिवर्ष की प्राप्ति हुई।

औद्योगिक क्षेत्र में वृद्धि–

भारत में जहां तक औद्योगिक उत्पादन वृद्धि पहली तीन पंचवर्षीय योजनाओं प्रथम पंचवर्षीय योजना में 5.7 प्रतिशत प्रतिवर्ष से बढ़कर दूसरी पंचवर्षीय योजना में 7.2 प्रतिशत तथा तीसरी पंचवर्षीय योजना में 9 प्रतिशत प्रतिवर्ष में काफी उत्साहवर्धक रही है परंतु उसके पश्चात भारत में औद्योगिक मंदी काल प्रारंभ हो गया और औद्योगिक उत्पादन वृद्धि दर में गिरावट होने लगी जो कि वर्ष 1966 से वर्ष 1976 के बीच औद्योगिक उत्पादन ने वृद्धि दर गिरकर 4.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष रह गई तथा एक बार फिर से वर्ष 1980 से लेकर वर्ष 1990 के बीच में औद्योगिक वृद्धि दर में तेजी आई और औद्योगिक उत्पादन 7.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष वृद्धि दर प्राप्त हुई तथा वर्ष 1993 से वर्ष 1997 तक 8.6 प्रतिशत कि प्रतिवर्ष की वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त हुई तथा वर्ष 1997 से वर्ष 2002 तक औद्योगिक उत्पादन वृद्धि दर कम होकर मात्र 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष रह गई दसवीं पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक वृद्धि दर 8.2 प्रतिशत प्रतिवर्ष हो गई तथा

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक उत्पादन में 6.9 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि दर प्राप्त हुई एवं बारहवीं पंचवर्षीय योजना में 4.2 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि दर हुई।

भारत में आत्मनिर्भरता–

स्वतंत्रता पश्चात भारत में आत्मनिर्भरता पर विशेष बल दिया गया तथा आर्थिक आयोजन से भारत ने दो महत्वपूर्ण उपलब्धियां प्राप्त पहला भारत खाद्यान्नों की दृष्टि से आत्मनिर्भर हो गया तथा दूसरा भारत में भारी इंजीनियरिंग, मशीनी औजारों, लोहा इस्पात तथा पूंजीगत उद्योगों के भारी विकास से मशीन संयंत्र और पूंजीगत उपकरणों में भारत लगभग आत्मनिर्भर हो गया अतः वर्तमान समय में भारत के निर्यात में इंजीनियरिंग वस्तुओं में प्रथम स्थान है अर्थात भारत पूंजी आधार पर काफी मजबूत है वर्तमान में बड़े से बड़े उद्योगों की स्थापना अपने मशीनी और तकनीकी ज्ञान के आधार पर आसानी से कर सकता है यह आर्थिक आयोजन की एक बड़ी उपलब्धियो में शामिल है।

आधुनिकीकरण–

भारतीय नीति निर्माताओ ने हमेशा ही विज्ञान और प्रौद्योगिकी के महत्व को देश के विकास के लिए आवश्यक समझा क्योंकि स्वतंत्रता के समय भारत में तकनीकी ज्ञान की काफी कमी थी जिसके चलते भारतीय अर्थव्यवस्था की आयातित टेक्नोलॉजी पर निर्भरता अत्यधिक थी जिसको ध्यान में रखते हुए नीति निर्माताओ ने शोध और विकास पर जोर दिया।

जिसके फलस्वरुप मुख्यतः छठी पंचवर्षीय योजना में पहली बार आधुनिकरण उद्देश्य को स्पष्ट रूप से उल्लेखित किया गया छठी योजना में आधुनिकीकरण को विस्तृत अर्थों में स्पष्ट करते हुए यह कहा गया कि यह आर्थिक क्रिया के रूप में अनेक ढांचागत और संस्थागत परिवर्तनों की ओर संकेत करता है अर्थात आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में उत्पादन का ढांचा परिवर्तित होगा तथा उत्पादक क्रियाओं में विविधता आएगी तकनीक में वृद्धि होगी संस्थागत परिवर्तन होगें जिससे कि सामंतवादी उपनिवेशवादी अर्थव्यवस्था आधुनिक और स्वतंत्र अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो जाएगी यदि आधुनिकीकरण की इस अवधारणा को मान लिया जाए तो यह

निश्चित ही स्वीकार करना होगा कि योजना काल में भारत आधुनिकीकरण की दिशा में निरंतर प्रगति प्राप्त की है।

सामाजिक संरचना शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं का विकास -

भारत में आर्थिक नियोजन से स्वास्थ्य और सुविधाओं में अत्यधिक सुधार हुआ तथा भारतीयों की जीवन प्रत्याशा में वृद्धि हुई मातृ मृत्यु दर एवं शिशु मृत्यु दर में निरंतर कमी हुई साथ ही साथ शिक्षण संस्थानों, विश्वविद्यालयों में शोध एवं अनुसंधान की संख्या एवं गुणवत्ता में भी सुधार हुआ जिसका प्रभाव राष्ट्रीय आय में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है अर्थात वर्तमान में भारत को सर्वाधिक आय सेवा क्षेत्र से प्राप्त होती है जोकि आयोजन की उपलब्धियों को स्पष्ट करता है।

1.7 भारत में नियोजन की असफलताएं–

भुखमरी –

भारत में पिछले कुछ दशकों में तीव्र प्रगति हुई है जैसे देश के सकल घरेलू उत्पाद में साढे चार गुना वृद्धि हुई प्रति व्यक्ति उपभोग में भी तीन गुना वृद्धि हुई है तथा खाद्यान्न उत्पादन में करीब दोगुना वृद्धि हुई है लेकिन शानदार औद्योगिक और आर्थिक प्रगति के बावजूद भारत भुखमरी एवं अल्पपोषण की समस्या से आज भी जूझ रहा है। संयुक्त राष्ट्र खाद्य और कृषि संगठन की रिपोर्ट द स्टेट ऑफ फूड सिक्योरिटी एंड न्यूट्रिशन इन द वर्ल्ड 2020 के अनुमानों के अनुसार भारत की जनसंख्या की आवश्यकताओ के पूरा करने के लिए पर्याप्त उत्पादन के बावजूद 18.92 करोड़ अर्थात कुल आबादी का 14 प्रतिशत लोग आज भी अल्प पोषण अर्थात भुखमरी की समस्या से जूझ रहे है।

आमतौर पर भुखमरी शब्द का अर्थ भोजन में ऊर्जा की आवश्यकता पूरी करने के लिए पर्याप्त कैलोरी के अभाव से लगाया जाता है जबकि अल्प पोषण का संबंध कैलोरी की कमी से भी परे की स्थिति से है और यह ऊर्जा प्रोटीन और आवश्यक विटामिनों की खनिजों में से किसी एक या अनेक अथवा सभी की कमी का द्योतक है। भारत को भुखमरी एवं अल्प पोषण मिटाने

के लिए अभी लंबा रास्ता तय करना होगा देश को आर्थिक सुधार के लगभग 25 वर्ष पूर्ण हो चुके हैं तथा इस दौरान देश की अर्थव्यवस्था में कई संरचनात्मक परिवर्तन हुए हैं लेकिन इसके पश्चात भी भारत में अभी भी भुखमरी अर्थात अल्प पोषण की समस्या विद्यमान है वैश्विक भुखमरी सूचकांक रिपोर्ट 2022 के अनुसार 121 देश में भारत का 29.1 स्कोर के साथ 107 वे स्थान है जो की भारत में भुखमरी की दयनीय स्थिति को प्रदर्शित करता है।

बेरोजगारी में वृद्धि -

भारत में बेरोजगारी की समस्या आर्थिक नियोजन के समय से ही विद्यमान थी जिसके समाधान के लिए भारत की प्रथम चार पंचवर्षीय योजनाओं में रोजगार विकास के लक्ष्यो पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया और यह माना गया कि आर्थिक विकास के साथ रोजगार का सृजन भी होता रहेगा परन्तु ऐसा ना हो पाने के कारण वर्ष 1956 में भारत में बेरोजगारी 5 मिलियन से बढ़कर वर्ष 1973–74 में भारत में बेरोजगारी 10 मिलियन तक पहुंच गई जिससे निपटने के लिए पांचवी पंचवर्षीय योजना में रोजगारपरक संवृद्धि को संवृद्धि रणनीति के रूप में स्वीकार किया गया जिससे कि बेरोजगारी को दूर किया जा सके जिसके लिए 1973 में जगदीश भगवती की अध्यक्षता में भगवती कमेटी बनायी गई ।

बेरोजगारी की समस्या का समाधान करने के लिए छठी पंचवर्षीय योजना में आई.आर.डी.पी, एन. आर.ई.पी, ट्राईसेम, आर.एल.ई.जी.पी. जैसे अनेक कार्यक्रम भारत सरकार द्वारा चलाए गए तथा छठी पंचवर्षीय योजना के पश्चात सभी योजनाओं में बेरोजगारी की समस्या के समाधान पर विशेष ध्यान दिया गया जिसके लिए 2004 में रोजगार प्राप्ती को कानूनी अधिकार का दर्जा देने के लिए महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण गारंटी एक्ट लाया गया।

परंपरागत रूप में पीरियाडिकल लेबर फोर्स रिपोर्ट 2018 के अनुसार पहले बेरोजगारी दर 2 से 3 प्रतिशत रही है जिसे राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन भी मानता था जो रोजगार तथा बेरोजगारी से संबंधित सभी संकेत पर प्रकाश डालता है पी.एल.एफ.एस. का गठन अमिताभ कुंडू की संस्तुतियों पर किया गया जिसे 2017 में राष्ट्रीय सांख्यिकी ऑफिस द्वारा स्वीकार किया गया यह सर्वेक्षण ग्रामीण परिवारों के संबंध में वार्षिक रूप से तथा शहरी परिवारों के लिए त्रैमासिक

रूप से आंकड़े एकत्रित करता है जिसका उद्देश्य रोजगार तथा बेरोजगार संबंधित प्रमुख संकेत को श्रम जनसंख्या अनुपात के द्वारा श्रम भागीदारी दर तथा बेरोजगारी दर का अनुमान लगाना है। वर्ष 2018–19 के रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2017–18 में बेरोजगारी की दर 6.5 प्रतिशत थी जो की वर्ष 2018–19 में घटकर 5.8 प्रतिशत हो गई इसमें शहरी बेरोजगारी दर वर्ष 2018–19 में 7.7 प्रतिशत रही जो की वर्ष 2017–18 में 7.8 प्रतिशत रही थी । इस अवधि में ग्रामीण बेरोजगारी दर जो वर्ष 2017–18 में 5.3 प्रतिशत थी जो घटकर वर्ष 2018–19 में 5 प्रतिशत हो गई।

1.8 बोध प्रश्न–

1–आर्थिक नियोजन से आप क्या समझते हैं?

2–आर्थिक नियोजन के प्रकार की व्याख्या कीजिए।

3–आर्थिक नियोजन के उद्देश्य लिखिए।

4–आर्थिक नियोजन की विशेषताएं लिखिए।

5–भारतीय नियोजन की सफलताओं पर प्रकाश डालिए ।

6–भारत में नियोजन की असफलताओं की व्याख्या कीजिए।

1.9 कुछ उपयोगी पुस्तके–

भारतीय अर्थव्यवस्था, ए. एन. अग्रवाल

भारतीय अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण नाथूराम

आर्थिक विकास के सिद्धांत एवं भारत में आर्थिक नियोजन, प्रो.जी.एल.गुप्ता

भारतीय अर्थव्यवस्था, डॉक्टर ममोरिया एवं जैन

भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.के. राय

भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास और योजनाओं की चुनौतियां, ए. एन. अग्रवाल

रुद्र दत्त एवं सुंदरम भारतीय अर्थव्यवस्था ,एस. चन्द एंड कम्पनी नई दिल्ली

पी.आर. ब्रह्मानंद और वी.आर. पंचमुखी रूभारतीय अर्थव्यवस्था का विकास, हिमालय पब्लिशिंग हाउस मुंबई

MAEC-107

खण्ड–03

इकाई–02

वर्तमान व्यवस्था में नियोजन की प्रासंगिकता तथा नियोजन के दौरान औद्योगिक कांति

अंग्रेजों के आगमन से पहले भारतीय अर्थव्यवस्था औद्योगिक रूप से पश्चिम यूरोपीय अर्थव्यवस्थाओं से अधिक विकसित थी सोने की चिड़िया कही जाती थी। अंग्रेजों ने भारत के उद्योगों को तहस–नहस कर दिया और इस देश को लूटा। इसका परिणाम यह हुआ कि आजादी के समय भारत को कमजोर औद्योगिक आधार, जर्जर आधारिक संरचना तथा गतिहीन अर्थव्यवस्था विरासत में मिली। सरकार ने दिसम्बर 1947 में एक उद्योग सम्मेलन बुलाया ताकि तत्कालीन औद्योगिक क्षमता का भरपूर उपयोग किया जा सके तथा लोगों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए औद्योगिक विकास किया जा सके। इस सम्मेलन के बेहतर सम्बन्ध बनाने के दृष्टिकोण से एक त्रिदलीय समझौता किया गया जिसमें प्रबन्धकों और मजदूरों के बीच तीन वर्ष के लिए शांति का प्रस्ताव रखा गया। इसके अतिरिक्त औद्योगिक विकास में सहयोग प्रदान करने के उद्देश्य से सरकार ने 1948–49 के बजट में उद्योगों को कुछ कर राहत दी और संविधान सभा द्वारा लिया औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना का निर्णय लिया गया। सरकार ने औद्योगिक विकास के सम्बन्ध में 1948 में संसद में औद्योगिक नीति सम्बन्धी प्रस्ताव पास किया। 1949 में सरकार मैंने विदेशी पूंजी के सम्बन्ध में अपनी नीति स्पष्ट कर यह आश्वासन दिया कि उसके साथ किसी प्रकार का पक्षपात्र नहीं किया जायेगा। भारत सरकार की इन सब कोशिशों को परिणाम स्वरूप एवं औद्योगिक विकास पर अच्छा प्रभाव पड़ा और औद्योगिक उत्पादन के सूचकांक में 1951 में, 1946 की अपेक्षा, 17.4 प्रतिशत वृद्धि हुई (आधार वर्ष 1946 = 100)।

योजनाकाल में औद्योगिक विकास

(INDUSTRIAL EXPANSION UNDER THE PLANS)

पहली पंचवर्षीय योजना– पहली पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ होने के

समय भारत का औद्योगिक आधार बहुत सीमित था। औद्योगिक विकास का आधार उपभोक्ता वस्तु उद्योगों तक सीमित था और इनमें महत्त्वपूर्ण उद्योग थे– सूती वस्त्र, चीनी, नमक, साबुन, चमड़े का सामान तथा कागज उद्योग । कोयला, सीमेंट, इस्पात, ऊर्जा शक्ति, अलौह धातुएं, रसायन इत्यादि मध्यवर्ती उद्योग भी थे परन्तु उनका उत्पादन कम था क्योंकि उनकी उत्पादन क्षमता (सीमेंट को छोड़कर) काफी कम थी। जहाँ तक पूँजीगत वस्तु श्उद्योग का सवाल है, केवल शुरुआत घर की गई थी। इससे स्पष्ट होता है कि **पहली पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ होने के समय भारत की औद्योगिक संरचना एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था का औद्योगिक ढांचा थी।**

जहां तक औद्योगिक विकास का सम्बन्ध है, पहली योजना कोई विशेष महत्त्वपूर्ण योजना नहीं थी। **इस योजना में कुल व्यय 1,960 करोड़ रुपये वा जिसमें से केवल 55 करोड़ रुपये औद्योगिक क्षेत्र के लिए रखे गए (जो कुल व्यय का मात्र 2.8 प्रतिशत बैठता है)।** महत्त्वपूर्ण बात यह है कि पहली योजना में कई उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित किए गए और कई उद्योगों ने उत्पादन प्रारम्भ किया। इस संवर्ग में महत्वपूर्ण इकाइयां थीं हिन्दुस्तान शिपयार्ड, हिन्दुस्तान मशीन टूल्स, सिन्दरी फर्टिलाइजर फैक्ट्री (अमोनियम सल्फेट), हिन्दुस्तान ऐंटीबायोटिक्स, हिन्दुस्तान इंसैक्टिसाइड्स, इंटिग्रल कोच फैक्ट्री, यू. पी. गवर्नमेंट सीमेंट फैक्ट्री तथा नेपा मिल्स बड़े विनिर्माण क्षेत्र में उत्पादन वृद्धि का लक्ष्य 7 प्रतिशत प्रति वर्ष रखा गया जबकि उपलब्धि 6 प्रतिशत प्रति वर्ष थी।

दूसरी पंचवर्षीय योजना– दूसरी योजना के अन्तर्गत औद्योगीकरण को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। महलानोबिस मॉडल पर आधारित था इस योजना में सरकार ने बड़े पैमाने पर मूल व पूँजीगत वस्तु उद्योगों की स्थापना का लक्ष्य रखा। भविष्य में औद्योगिक विकास के लिए मजबूत आधार तैयार करने के लिए योजना में औद्योगीकरण का मुख्य लक्ष्य था। यदि

औद्योगीकरण तेज होना है तो देश का लक्ष्य यह होना चाहिए कि मूल उद्योगों को विकसित किया जाए तथा उन उद्योगों का विकास किया जाए जो भविष्य की आवश्यकताओं के लिए महत्वपूर्ण मशीनों को बनाने वाली मशीनों का उत्पादन कर सके। इसका आशय यह है कि लोहा व इस्पात, अलौह धातुओं, कोयला, सीमेंट, भारी रसायन तथा महत्त्वपूर्ण अन्य उद्योगों का बड़ा व्यापार पर विस्तार किया जाना चाहिए। यही कारण है कि उन उद्योगों को औद्योगिक क्षेत्र के कार्यक्रमों में सर्वोच्च वरीयता दी गई।

दूसरी योजना में कुल व्यय 4,672 करोड़ रुपये था। इसमें से 938 करोड़ रुपये (अर्थात् 20.1 प्रतिशत) उद्योगों पर खर्च किए गये। इससे यह स्पष्ट होती है कि पहली योजना की तुलना में दूसरी योजना में औद्योगीकरण के बहुत बड़े कार्यक्रम शुरू किए गए। विनिर्माण क्षेत्र के लिए उत्पादन वृद्धि का लक्ष्य 10.5 प्रतिशत प्रति वर्ष रखा गया जबकि उपलब्धि 7.25 प्रतिशत प्रति वर्ष थी। जहाँ तक औद्योगिक विस्तार के कार्यक्रमों का सम्बन्ध है, सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि सार्वजनिक क्षेत्र में तीन बड़े इस्पात कारखानों की स्थापना थी (यह स्थापना भिलाई, राउरकेला और दुर्गापुर में की गई। भारत के औद्योगिक ढांचे की कमियों को पूरा करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र ने लोहा व इस्पात, लिग्नाईट, उर्वरकों, रेलवे इंजन व डिब्बे, मशीन टूल्स, भारी रसायन, जहाज निर्माण, ऐंटिबायोटिक्स इत्यादि का उत्पादन शुरू कर दिया। दूसरी उठाया गया योजना में पिछड़े क्षेत्रों के औद्योगिक विकास के लिए भी कदम उठाया गया। वास्तव में तीनों इस्पात कारखाने पिछड़े क्षेत्रों (भिलाई, राउरकेला और दुर्गापुर) में स्थापित किए गए। इनमें निवेश का बड़ा आकार इस बात से सिद्ध होता है कि इनमें निवेश की मात्रा पहली योजना में कुल औद्योगिक निवेश की ढाई गुना थी।

तीसरी पंचवर्षीय योजना– जहाँ दूसरी पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक विकास का आधार बनाने का लक्ष्य रखा गया वहाँ तीसरी पंचवर्षीय योजना में इस आधार को और मजबूत बनाने और इसको आगे बढ़ाने का लक्ष्य रखा गया। मूलभूत व पूंजीगत उद्योगों के विकास पर और जोर दिया गया ताकि आने वाली योजनाओं में औद्योगिक विकास निर्वाध गति से बढ़ता रहे। तीसरी योजना में कुल व्यय 8,577 करोड़ रुपये था जिसमें औद्योगिक क्षेत्र का हिस्सा 1,726 करोड़ रुपये (20.1 प्रतिशत) था। इस योजना में उन औद्योगिक परियोजनाओं को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई जो दूसरी योजनाकाल में अधूरी रह गई थीं अथवा जिन्हें विदेशी

विनिमय संकट के कारण कुछ समय के लिए रोकना पड़ा था। भारी इंजीनियरिंग तथा मशीनरी, लोहा व इस्पात, फैरो एलॉय टूल्स, उर्वरक तथा पैट्रोलियम और उनसे सम्बन्धित वस्तुओं का उत्पादन करने वाले उद्योगों की उत्पादन क्षमता में विस्तार को प्राथमिकता की दृष्टि से दूसरा स्थान प्रदान किया गया। आधारभूत कच्चे पदार्थों जैसे अल्युमीनियम, खनिज तथा रासायनिक तत्वों के उत्पादन को प्राथमिकता क्रम में तीसरी वरीयता दी गयी। विभिन्न उपयोग की वस्तुओं का देश में आवश्यक वस्तुओं की कमी न होने पाए इसलिए वस्त्र, चीनी, कागज, वनस्पति तेल, भवन निर्माण के लिए आवश्यक पदार्थों और औषधियों आदि से सम्बन्धित उद्योगों के उत्पादन में वृद्धि की ओर भी ध्यान दिया गया।

तीसरी योजना में कुल औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि लक्ष्य की तुलना में 30 प्रतिशत कम थी। परन्तु कई उद्योगों जैसे– अल्युमीनियम, ऑटोमोबाइल्स, बिजली के ट्रांसफार्मर्स, मशीन टूल्स, डीजल इंजन, वस्त्र उद्योग के लिए आवश्यक मशीनरी, बालबियरिंग्स, रोलर बियरिंग्स इत्यादि में 15 प्रतिशत प्रति वर्ष से भी अधिक संवृद्धि दरें प्राप्त करने में सफलता मिली।

चौथी पंचवर्षीय योजना– चौथी पंचवर्षीय योजना को 1969 में लागू किया गया। इस योजना में कुल निवेश 15,779 करोड़ रुपये था जिसमें से औद्योगिक क्षेत्र का हिस्सा 2,846 करोड़ रुपये (18.2 प्रतिशत था। चौथी योजना में औद्योगिक उत्पादन में मात्र 3.9 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि हुई जबकि लक्ष्य 8–10 प्रतिशत प्रति वर्ष था। इस धीमे विकास के लिए कई कारण जिम्मेदार थे जिनमें मुख्य निम्नलिखित हैं–(1) आधारभूत कच्चे माल की कमी (2) मजदूरों में बढ़ती हुई कीमतों के कारण असन्तोषय (3) परिवहन सम्बन्धी कठिनाइयां जिनके कारण भारी वस्तुएं जैसे कोयला, सीमेंट, इस्पात, कच्चा लोहा इत्यादि लाने ले जाने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ाय (4) कोयला तथा बिजली की कमी जिसके कारण कई महत्त्वपूर्ण उद्योगों जैसे इस्पात, सूती वस्त्र सीमेंट, उर्वरक, रसायन, अल्युमीनियम इत्यादि में उत्पादन में कमी आई।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना– पांचवीं योजना में औद्योगिक विकास हेतु इस प्रकार से योजना तैयार किए गए थे जिससे आत्मनिर्भरता तथा संवृद्धि के साथ सामाजिक न्याय के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। खनिज तेलों, कोयला और मशीन निर्माण उद्योगों में विस्तार को उच्च प्राथमिकता दी गई। पांचवीं योजना में कुल व्यय 39,426 करोड़ रुपये था जिसमें

औद्योगिक क्षेत्र का हिस्सा 8,989 करोड़ रुपये (22.8 प्रतिशत) था। औद्योगिक संवृद्धि का लक्ष्य 7 प्रतिशत प्रति वर्ष रखा गया था जबकि उपलब्धि 5.9 प्रतिशत प्रति वर्ष रही।

छठी पंचवर्षीय योजना– छठी योजना में कुल 1,09,292 करोड़ रुपए. में की घोषणा की। औद्योगिक नियन्त्रणों में काफी ढील दी का व्यय किया गया जिसमें औद्योगिक क्षेत्र का हिस्सा 15,002 करोड़ रुपए (13.7 प्रतिशत) था। छठी योजना की अवधि में सरकार ने औद्योगिक नीति में बड़े पैमाने पर परिवर्तनों की घोषणा की। औद्योगिक नियन्त्रणों को काफी सरल किया गया। आयात नीति को पहले की तुलना में बहुत उदार कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप, औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि होने लगी। परन्तु इसके कारण कुछ विकृतियां भी पैदा हो गई क्योंकि उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं के उत्पादन में तथा रसायन, पैट्रो–रसायन व सहायक उद्योगों के उत्पादन में तेज वृद्धि हुई। ये उत्पादन–क्षेत्र काफी ज्यदा मात्रा में आयातित माल का उपयोग करते हैं (इससे आयात व्यय में वृद्धि हुई)। इसके विपरीत, अन्य उत्पादन क्षेत्रों में विकास कम दर हुआ है। उदाहरण के लिए जहाँ मोटरसाइकिलों व स्कूटरों, कारों, उपभोक्ता–इलैक्ट्रानिक वस्तुओं, संचार उपकरणों आदि में उत्पादन, लक्ष्यों से अधिक रहा वहाँ कुछ मूलभूत उद्योगों के उत्पादन जैसे–वस्त्र,जूट,निर्माण,चीनी, व्यावसायिक वाहनों, रेल के मालडिब्बों इत्यादि में उत्पादन, लक्ष्यों की तुलना में कम हुआ।

सतवीं पंचवर्षीय योजना–सातवीं योजना में संवृद्धि के साथ विकास तथा उत्पादकता में सुधार को विशेष महत्व दिया गया। सातवीं योजना में सार्वजनिक क्षेत्र के औद्योगिक कार्यक्रमों के लिए 19,663 करोड़ रुपए का परिव्यय रखा गया है, इसमें लघु और कुटीर उद्योगों जबकि वास्तविक व्यय 25,971 करोड़ रुपए था (जो कि सातवीं योजना में कुल व्यय 2,18,730 करोड़ रुपए का 11.9 प्रतिशत था)। औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि का लक्ष्य 8.5 प्रतिशत प्रति वर्ष रखा गया जबकि सातवीं योजना में वास्तविक संवृद्धि दर 8.5 प्रतिशत प्रति वर्ष रही। इस प्रकार, औद्योगिक क्षेत्र में संवृद्धि लक्ष्य के अनुरूप रही।

आठवीं पंचयवर्षीय योजना–आठवीं योजना में औद्योगिक क्षेत्र पर परिव्यय 40,588 करोड़ रुपए परिव्यय का मात्र 9.3 प्रतिशत था। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में परिव्यय में कम करने का मुख्य कारण यह था कि अब 1991 में अपनाई गयी नई औद्योगिक नीति का उदारीकृत रूप विपक्ष में निजी क्षेत्र पर अधिक जोर दिया जा रहा है। सार्वजनिक क्षेत्र अब अधिकाधिक

रूप से मूलभूत तथा कोर उद्योगों तक ही केन्द्रित कर दिया जाएगा। आठवीं योजना में, उद्योगों पर वास्तविक व्यय 40,623 करोड़ रुपए रहा जो कुल वास्तविक व्यय 4,85,457 करोड़ रुपए का मात्र 8.4 प्रतिशत था।

औद्योगिक नीति के उदारीकरण क अनुरूप, आठवीं योजना में मात्रात्मक लक्ष्यों पर कम जोर दिया गया। विभिन्न क्षेत्रों में वांछित संवृद्धि प्राप्त करने के लिए इस योजना में औद्योगिक, व्यापार तथा राजकोषीय नीतियों में आवश्यक फेर बदल तथा करों व शुल्कों में परिवर्तनों का सहारा लिया गया। औद्योगिक क्षेत्र के लिए आठवीं योजना में 7.3 प्रतिशत प्रति वर्ष संवृद्धि का लक्ष्य रखा गया जबकि उपलब्धि 7.4 प्रतिशत प्रति वर्ष रही। इस प्रकार लक्ष्य को प्राप्त कर लिया गया।

नौवीं पंचवर्षीय योजना—नौवीं पंचवर्षीय योजना में उद्योग और खनन के लिए 65,148 करोड़ रुपए का परिव्यय रखा गया। यह कुल योजना परिव्यय 8,59,200 करोड़ रुपए या 7.6 प्रतिशत था। परन्तु नौवीं योजना में उद्योग और खनन पर वास्तविक व्यय केवल 40,408 करोड़ रुपए हुआ जो योजना में किए गए कुल व्यय का मात्र 5.0 प्रतिशत है। नौवीं योजना में औद्योगिक संवृद्धि का लक्ष्य 8.2 प्रतिशत प्रति वर्ष रखा गया जबकि उपलब्धि मात्र 5.0 प्रतिशत प्रति वर्ष रही।

दसवीं पंचवर्षीय योजना—दसवीं पंचवर्षीय योजना में उद्योग और खनन के लिए 58,939 करोड़ रुपए का परिव्यय रखा गया जो कुल योजना परिव्यय 15,25,639 करोड़ रुपए का मात्र 3.9 प्रतिशत था। उद्योग पर परिव्यय इतना कम रखने का कारण यह था कि सरकार सार्वजनिक क्षेत्र में हाथ खींच रही है तथा नए उदारीकरण व निजीकरण के वातावरण में निजी क्षेत्र के विकास के लिए रास्ता दे रही है। इस परिप्रेक्ष्य में दसवीं योजना के दस्तावेज का यह कवन महत्त्वपूर्ण हैरू "देश की औद्योगिक विकास युक्ति में इस प्रकार परिवर्तन किए जा रहे हैं जिससे निजी क्षेत्र उत्पादन, रोजगार तथा आय—सृजन के क्षेत्र में अपनी 'संपूर्ण उद्यम क्षमता' को पूरी तरह प्राप्त कर सके। जब तक आर्थिक वातावरण निजी क्षेत्र की उत्पादन में हिस्सेदारी को बढ़ाने के लिए पूरी तरह सहयोग नहीं करता तब तक औद्योगिक विकास व संवृद्धि संभव नहीं है।"2 योजना में औद्योगिक क्षेत्र के लिए 10 प्रतिशत प्रति वर्ष औद्योगिक संवृद्धि का लक्ष्य रखा गया जबकि उपलब्धि 8.2 प्रतिशत प्रति वर्ष रही।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना– ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007–12) में कुल परिव्यय 36,44,718 करोड़ रुपए रखा गया (2006–07 कीमतों पर)। इसमें औद्यागिक क्षेत्र (लघु व कुटीर उद्योग भी शामिल हैं) का हिस्सा 1,53,600 करोड़ रुपए था जो कुल योजना परिव्यय का 4.2 प्रतिशत था। इस योजना में औद्योगिक क्षेत्र पर वास्तविक व्यय 1,83,653 करोड़ रुपए था (चालू कीमतों पर) जो कुल योजना व्यय का 5.1 प्रतिशत था। इस योजना में औद्योगिक संवृद्धि दर 6.9 प्रतिशत प्रति वर्ष रही जबकि लक्ष्य 10 प्रतिशत प्रति वर्ष था। ग्यारहवीं योजना में औद्योगिक क्षेत्र को और उदार बनाने के लिए निम्नलिखित कदम उठाने की बात की गई (1) उर्वरक तथा चीनी जैसे उद्योगों को विनियंत्रित करना। (2) लघु क्षेत्र के लिए आरक्षित मदों की सूची में कटौती करना ताकि इस क्षेत्र के उद्योग प्रतिस्पर्धात्मक आकार प्राप्त कर सकें। (3) खनन नीति पर पूरी तरह से पुनर्विचार करना ताकि इस अति–पूंजी गहन क्षेत्र में और पूंजी को आकर्षित किया जा सकें। (4) श्रम कानूनों को और लचीला बनाना क्योंकि योजना आयोग का यह विचार है कि इससे संगठित –विनिर्माण उद्योग में रोजगार अवसरों में वृद्धि की जा सकेगीय तथा (5) पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रयास करना।

बारहवीं पंचवर्षीय योजना– बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012–17) में औद्योगिक क्षेत्र के लिए परिव्यय 3,77,302 करोड़ रुपए रखा गया (चालू कीमतों पर जो कुल योजना परिव्यय 76,68,807 करोड़ रुपए का 4.9 प्रतिशत था। औद्योगिक क्षेत्र में संवृद्धि का लक्ष्य 10 प्रतिशत प्रति वर्ष रखा गया जबकि उपलब्धि (2011–12 की नई श्रृंखला के आधार पर) मात्र 3.7 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही।

एम०ए०ई०सी०107
खण्ड–03
ईकाई–03

भारत में नियोजन के दौरान कृषि का विकास

भारत में पहली पंचवर्षीय योजना 1951 में शुरू की गई थी और तब से, भारत ने बारह पंचवर्षीय योजनाएँ देखी हैं। हालाँकि वर्तमान सरकार ने पंचवर्षीय योजना प्रणाली को बंद कर दिया था और एक नई व्यवस्था लागू की थी। आओ देश में अब तक सभी पंचवर्षीय परिभाषाओं पर एक नजर डालें।

2015 में नरेंद्र मोदी के नेतृत्व वाली सरकार द्वारा पंचवर्षीय अधिसूचना को समाप्त कर दिया गया था। इसलिए, 12वीं पंचवर्षीय योजना को भारत की अंतिम पंचवर्षीय योजना माना जाता है। दशक पुरानी पंचवर्षीय नीति को तीन–वर्षीय कार्य योजना से बदल दिया गया , जो सात–वर्षीय रणनीति पत्र और 15–वर्षीय कार्य योजना का हिस्सा होगा। नीति आयोग ने मोदी में नरेंद्र मोदी योजना आयोग की जगह ले ली है और 1 अप्रैल, 2017 से तीन साल की मंजूरी की शुरुआत हुई है।

1. प्रथम पंचवर्षीय योजना–इसे जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में 1951 से 1956 की अवधि के लिए शुरू किया गया था । यह कुछ संशोधनों के साथ हैरोड–डोमर मॉडल पर आधारित था। इसका मुख्य फोकस देश के कृषि विकास पर था। यह योजना सफल रही और 3.6ः (अपने लक्ष्य 2.1ः से अधिक) की वृद्धि दर हासिल की। इस योजना के अंत में देश में पांच नामों की स्थापना की गई।

2. द्वितीय पंचवर्षीय योजना–इसे जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में 1956 से 1961 की अवधि में बनाया गया था। यह वर्ष 1953 में पीसी महालनो बिज मॉडल पर आधारित था। इसका मुख्य फोकस देश के औद्योगिक विकास पर था। यह योजना अपने लक्ष्य विकास दर से 4.5ः पीछे है और 4.27ः की विकास दर हासिल की है। हालाँकि, इस योजना की कई विशेषज्ञों ने आलोचना की और परिणामस्वरूप, भारत को वर्ष 1957 में भुगतान संकट का सामना करना पड़ा।

तृतीय पंचवर्षीय योजना–इसे नेहरू के नेतृत्व में 1961 से 1966 की अवधि में बनाया गया था। योजना आयोग के उपाध्यक्ष गाडगिल के नाम पर इस योजना को श्गाडगिल योजनाश भी कहा जाता है । इस योजना का मुख्य लक्ष्य अर्थव्यवस्था को स्वतंत्र बनाना था। कृषि और गेहूं उत्पादन में सुधार पर जोर दिया गया। इस योजना के कार्यान्वयन के दौरान, भारत दो में चर्चा हुईरू (1) 1962 का भारत–चीन युद्ध और (2) 1965 का भारत–पाकिस्तान युद्ध। इन युद्धों ने हमारी इंडस्ट्री में गरीबों को उजागर किया और ध्यान केन्द्रित किया। रक्षा उद्योग, भारतीय सेना, और मूल्य का स्थिरीकरण (भारत ने पदनाम निर्धारण)। युद्ध और मछली के कारण योजना रही। लक्ष्य वृद्धि 5.6ः थी जबकि प्राप्त वृद्धि 2.4ः थी। पिछली योजना की विफलता का कारण, सरकार ने 1966 से 1969 तक की योजना को अवकाश के रूप में नामित किया और तीन वार्षिक मंथली की घोषणा की।

योजना की रूपरेखा के पीछे मुख्य कारण भारत–पाकिस्तान युद्ध और चीन–भारत युद्ध था, जिसके कारण तीसरी पंचवर्षीय योजना विफल हो गई। इस योजना के दौरान, वार्षिक योजनाओं का निर्माण किया गया और कृषि, सहयोगी क्षेत्रों और उद्योग क्षेत्रों को समान रूप से शामिल किया गया। वी. देश में एकजुटता बढ़ाने के लिए सरकार ने रुपये के अवमूल्यन की घोषणा की।

चौथी पंचवर्षीय योजना–इंदिरा गांधी के नेतृत्व में इसकी अवधि 1969 से 1974 तक थी । इस योजना के दो मुख्य उद्देश्य थे अर्थात् स्थिरता के साथ विकास और आत्मनिर्भरता की प्रगतिशील उपलब्धि। इस दौरान 14 प्रमुख भारतीय बैंकों का राष्ट्रीयकरण हुआ और हरित क्रांति की शुरुआत हुई। 1971 का भारत–पाकिस्तान युद्ध और बांग्लादेश मुक्ति युद्ध हुआ। परिवार कार्यक्रम कार्यक्रम का कार्यान्वयन योजना के प्रमुख लक्ष्य में से एक था वी. यह योजना विफल रही और 5.7ः के लक्ष्य के साथ केवल 3.3ः का विकास दर हासिल कर सका।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना–इसकी अवधि 1974 से 1978 थी। यह योजना गरीबी हटाओ, रोजगार, न्याय, कृषि उत्पादन और रक्षा पर केंद्रित थी। 1975 में विद्युत आपूर्ति अधिनियम में संशोधन किया गया, 1975 में एक बीएक्स सूत्री कार्यक्रम शुरू किया गया, न्यूनतम आवश्यक

कार्यक्रम (एमएनपी) और भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्रणाली की शुरुआत हुई। कुल मिलाकर यह योजना सफल रही और लक्ष्य 4.4: के साथ 4.8: की वृद्धि हासिल हुई। वी. इस योजना को 1978 में नवनिर्वाचित मोराजी डेजी सरकार ने समाप्त कर दिया। पांचवीं पंचवर्षीय योजना की समाप्ति के बाद, रोलिंग योजना 1978 से 1990 तक लागू हुई। 1980 में कांग्रेस ने एक नई छठी पंचवर्षीय योजना शुरू की। रोलिंग योजना के तहत तीन योजनाएं शुरू की गईंरू (1) वर्तमान वर्ष के लिए बजट अनुमान (2) यह योजना निश्चित वर्षों के लिए थी – 3,4 या 5 (3) लंबी अवधि के लिए सिद्धांत योजना – 10, 15 या 20 साल.

इस योजना के कई फायदे हैं क्योंकि लक्ष्यों में सुधार किया जा सकता था, विशेष आदि देशों की अर्थव्यवस्था में बदलाव किया जा सकता था। इसका मतलब यह है कि यदि लक्ष्य को हर साल संशोधित किया जा सकता है, तो लक्ष्य हासिल करना मुश्किल होगा और इसके परिणामस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था में निवेश होगा।

छठी पंचवर्षीय योजना–इंदिरा गांधी के नेतृत्व में इसकी अवधि 1980 से 1985 तक थी । इस योजना का मूल उद्देश्य गरीबी रेखा से नीचे आर्थिक उदारता प्राप्त करना था। यह निवेश योजना, बुनियादी ढांचे में बदलाव और विकास मॉडल की प्रवृत्ति पर आधारित था। इसका विकास लक्ष्य 5.2: था लेकिन इसने 5.7: की वृद्धि हासिल की।

सातवीं पंचवर्षीय योजना–राजीव गांधी के नेतृत्व में इसकी अवधि 1985 से 1990 तक थी। इस योजना के उद्देश्यों में आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था की स्थापना, उत्पादक रोजगार के अवसर और प्रौद्योगिकी का उन्नयन शामिल है। योजना का उद्देश्य खाद्यान्न उत्पादन में तेजी लाना, रोजगार के अवसर बढ़ाना और श्भोजन, कार्य और उत्पादकताश पर ध्यान केंद्रित करते हुए उत्पादकता बढ़ाना है। पहली बार निजी क्षेत्र को सार्वजनिक क्षेत्र से अधिक प्राथमिकता मिली । इसका विकास लक्ष्य 5.0: था लेकिन इसने 6.01: हासिल किया।

केंद्र में अस्थिर राजनीतिक स्थिति के कारण आठवीं पंचवर्षीय योजना लागू नहीं हो सकी। वर्ष 1990–91 एवं 1991–92 के लिए दो वार्षिक कार्यक्रम बनाये गये।

आठवीं पंचवर्षीय योजना– इसकी अवधि पीवी नरसिम्हा राव के नेतृत्व में 1992 से 1997 तक थी। इस योजना में मानव संसाधन अर्थात रोजगार, शिक्षा और सार्वजनिक स्वास्थ्य के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। इस योजना के दौरान नरसिम्हा राव सरकार. भारत की नई आर्थिक नीति का शुभारंभ किया । आठवीं योजना अवधि के दौरान कुछ मुख्य आर्थिक परिणाम थे तीव्र आर्थिक विकास (अब तक की उच्चतम वार्षिक विकास दर – 6.8:), कृषि और संबद्ध क्षेत्र और विनिर्माण क्षेत्र की उच्च वृद्धि, निर्यात और आयात में वृद्धि, व्यापार और वर्तमान में सुधार खाता घाटा. उच्च विकास दर हासिल की गई, भले ही कुल निवेश में सार्वजनिक क्षेत्र की हिस्सेदारी काफी कम होकर लगभग 34: हो गई हो। यह योजना सफल रही और लक्ष्य 5. 6: के मुकाबले 6.8: की वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त की।

नौवीं पंचवर्षीय योजना–अटल बिहारी वाजपेई के नेतृत्व में इसकी अवधि 1997 से 2002 तक थी। इस योजना का मुख्य फोकस सामाजिक न्याय और समानता के साथ विकास था । इसे भारत की आजादी के 50वें वर्ष में लॉन्च किया गया था। यह योजना 6.5: के विकास लक्ष्य को प्राप्त करने में विफल रही और 5.6: की विकास दर हासिल की।

दसवीं पंचवर्षीय योजना–अटल बिहारी वाजपेई और मनमोहन सिंह के नेतृत्व में इसकी अवधि 2002 से 2007 तक थी। इस योजना का लक्ष्य अगले 10 वर्षों में भारत की प्रति व्यक्ति आय को दोगुना करना था। इसका लक्ष्य 2012 तक गरीबी अनुपात को 15: तक कम करना था। इसका विकास लक्ष्य 8.0: था लेकिन इसे केवल 7.6: ही हासिल हुआ।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना–इसकी अवधि मनमोहन सिंह के नेतृत्व में 2007 से 2012 तक थी । इसे सी. रंगराजन ने तैयार किया था। इसका मुख्य विषय ष्तेज और अधिक समावेशी विकासष था। इसने 9: विकास दर के लक्ष्य के मुकाबले 8: की विकास दर हासिल की।

बारहवीं पंचवर्षीय योजना–इसकी अवधि मनमोहन सिंह के नेतृत्व में 2012 से 2017 तक है । इसका मुख्य विषय ष तेज, अधिक समावेशी और सतत विकास है। इसका विकास दर लक्ष्य 8 प्रतिशत था। लंबे समय से यह धारणा चली आ रही है कि भारत एक विविधतापूर्ण और विशाल देश है, एक आकार–सभी के लिए उपयुक्त दृष्टिकोण के कारण केंद्रीकृत योजना एक

बिंदु से आगे काम नहीं कर सकती है। इसलिए, राज्य सरकार ने योजना आयोग को भंग कर दिया है, उसकी जगह नीति आयोग ने ले ली है। इस प्रकार, कोई त्रैमासिक पंचवर्षीय योजना नहीं थी, तथापि, पंचवर्षीय रक्षा योजना बनाई गई थी। नीति आयोग के हितधारकों की कोई वित्तीय भूमिका नहीं है। वे सरकार के लिए केवल नीति निर्देशित रेखाचित्र हैं। तीन वर्षीय कार्य योजना सरकार केवल एक व्यापक रोडमैप प्रदान करती है और किसी भी योजना या इसके लिए कोई मान्यता प्राप्त नहीं है क्योंकि पास में कोई वित्तीय शक्तियाँ नहीं हैं। इसे सेंट्रल म्युनिसिपल की मंजूरी की आवश्यकता नहीं है, इसलिए इसके समर्थकों को सरकार के लिए मंजूरी की आवश्यकता नहीं है।

खण्ड–3

इकाई–04

भारत में पूर्व योजनाओं का पुनरावलोकन वर्तान संदर्भ में

भारत में आयोजन की तरफ पहला कदम 1950 में उठाया गया जब सरकार ने योजना आयोग का गठन किया। आयोजन की प्रक्रिया अप्रैल 1951 में शुरू की गई जब पहली योजना लागू की गई। इसकी अवधि 1951 से 1956 तक थी। दूसरी योजना की अवधि 1956 से 1961 तक और तीसरी योजना की 1961 से 1966 तक थी। इसके बाद तीन वर्ष तक आयोजन की प्रक्रिया स्थगित रखी गई। हालांकि इन वर्षों में तीन एक–वर्षीय योजनाएं अवश्य लागू की गईं, लेकिन कोई दीर्घावधि आयोजन का ढांचा नहीं था। चौथी योजना की अवधि 1969 से 1974 तक और पांचवीं योजना की अवधि 1974 से 1979 तक थी। 1979–80 के वर्ष में फिर कोई दीघांवधि योजना नहीं थी हालांकि इस वर्ष भी एकवर्षीय योजना लागू की गई थी। छठी योजना की अवधि 1980 से 1985 तक और सातवीं योजना की अवधि 1985 से 1990 तक थी। आठवीं योजना राजनीतिक कारणों से दो वर्षों के लिए स्थगित हो गई और इसलिए 1990–91 और 1991–92 के वर्षों में केवल एक वर्षीय योजनाएं ही रहीं। आठवीं योजना की अवधि 1992 से 1997 तक थी। नीवीं पंचवर्षीय योजना अप्रैल 1997 में शुरू हुई और इसकी अवधि 31 मार्च 2002 तक थी। दसवीं योजना की अवधि 2002–07 थी। ग्यारहवीं योजना की अवधि 2007–12 थी। बारहवीं योजना की अवधि 1 अप्रैल 2012 से 31 मार्च 2017 थी। योजनाओं को अब समाप्त कर दिया गया है। इस प्रकार, बारहवीं योजना अंतिम योजना थी।

योजनाओं के लक्ष्य और उपलब्धियाँ

(TARGETS AND ACHIEVEMENTS OF PLANS)

1. **राष्ट्रीय आय** (National Income) पहली पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि का लक्ष्य क्रमशः 2.1 प्रतिशत तथा 0.9 प्रतिशत प्रति वर्ष रखा गया था। इसके विपरीत उपलब्धि क्रमशः 4.6 प्रतिशत प्रति वर्ष तथा 2.7 प्रतिशत प्रति वर्ष थी। दूसरी योजना में राष्ट्रीय आय में वृद्धि का लक्ष्य 4.5 प्रतिशत प्रति वर्ष रखा गया जबकि उपलब्धि 4.1 प्रतिशत प्रति वर्ष रही। प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि का लक्ष्य 3.3 प्रतिशत प्रति वर्ष था जबकि उपलब्धि 2.1 प्रतिशत प्रति वर्ष थी। तीसरी योजना बुरी तरह असफल रही। इसमें राष्ट्रीय आय

में वृद्धि का लक्ष्य 6.0 प्रतिशत प्रति वर्ष था जबकि उपलब्धि मात्र 3.3 प्रतिशत प्रति वर्ष थी। इस प्रकार प्रति व्यक्ति आय में केवल 1.0 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हुई। चौथी योजना में राष्ट्रीय आय में मात्र 3.0 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि हुई जबकि लक्ष्य 5.7 प्रतिशत प्रति वर्ष था। पांचवीं पंचवर्षीय योजना में निष्पत्ति (performance) अपेक्षाकृत संतोषजनक थी क्योंकि राष्ट्रीय उत्पादन में 5.0 प्रतिशत प्रति वर्ष वृद्धि हुई जबकि लक्ष्य 5.5 प्रतिशत प्रति वर्ष था (जिसे बाद में 4.4 प्रतिशत प्रति वर्ष कर दिया गया था)। 1979–80 में निवल राष्ट्रीय उत्पाद में 5.9 प्रतिशत की गिरावट हुई। इसे ध्यान में रखकर जब हम छठी पंचवर्षीय योजना की अवधि में राष्ट्रीय आय में 5.3 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि पर गौर करते हैं तो वह प्रभावशाली नहीं लगती। सातवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि में राष्ट्रीय आय में 5.8 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हुई थी। यह प्रगति अपने आप में उत्साहवर्धक लगती है। लेकिन अगले दो वर्षों में अर्थात् 1990–91 और 1991–92 में आर्थिक संवृद्धि की इस तेजी को बनाए रख पाना संभव नहीं हुआ। 1990–91 में राष्ट्रीय आय में 4.9 प्रतिशत वृद्धि हुई। 1991–92 में राष्ट्रीय आय में केवल 0.8 प्रतिशत वृद्धि हुई। आठवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि में राष्ट्रीय आय में 6.5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हुई जबकि लक्ष्य 5.6 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि था। नौवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान राष्ट्रीय आय 5.4 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ी थी। लेकिन दसवीं पंचवर्षीय योजना का निष्पादन उत्साहवर्द्धक रहा और इस योजना में राष्ट्रीय आय में 7.6 प्रतिशत वार्षिक तथा प्रति व्यक्ति आय में 5.9 प्रतिशत वार्षिक की वृद्धि हुई। ग्यारहवीं योजना (2007–12) में राष्ट्रीय आय में औसतन 7.5 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि हुई जबकि लक्ष्य 9.0 प्रतिशत प्रति वर्ष वृद्धि का था। बारहवीं योजना (2012–17) में राष्ट्रीय आय में अनुमानतः 6.7 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि हुई। केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन ने 30 जनवरी • 2015 को राष्ट्रीय आय संबंधी नई श्रृंखला जारी की जिसका आधार वर्ष 2011–12 है। इस नई श्रृंखला के अनुसार सकल घरेलू उत्पाद में (स्थिर कीमतों पर) 2017–18 में 7.2 प्रतिशत तथा 2018–19 में 6.1 प्रतिशत तथा 2019–20 में 4.0 प्रतिशत की वृद्धि हुई, परन्तु 2020–21 में कोविड़ 19 के चलते, सरल घरेलू उत्पाद में 6.6 प्रतिशत की भारी गिरावट हुई। वस्तुतः हाल की अवधि के कुछ वर्षों में भारत में संवृद्धि दर, विश्व में बड़ी अर्थव्यवस्थाओं की संवृद्धि दर में सबसे अधिक रही है।

2. बड़ा औद्योगिक क्षेत्र (Large-scale manufacturing sector)– जहाँ तक औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि का प्रश्न है, पहली तीनों योजनाओं में यह काफी उत्साहवर्द्धक थी । वस्तुतः औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि की दर पहली योजना में 5.7 प्रतिशत प्रति वर्ष से बढ़कर दूसरी योजना में 7. 2 प्रतिशत तथा तीसरी योजना में 9.0 प्रतिशत प्रति वर्ष हो गई। परन्तु इसके बाद औद्योगिक मन्दी का काल शुरू हो गया और औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि की दर गिर गई। 1966 से 1976 के बीच के ग्यारह वर्षों में औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि की दर गिरकर 4.1 प्रतिशत प्रति वर्ष रह गई। यदि 1976 को छोड़ दिया जाए (जिसमें वृद्धि 10.6 प्रतिशत थी) तो यह दर और कम होकर मात्र 3.7 प्रतिशत प्रति वर्ष रह जाती है (औद्योगिक उत्पादन के पुराने सूचकांक अनुसार जब आधार 1970–71 = 100 था)। इसके अलावा, शेट्टी के अनुसार निवल घरेलू उत्पाद में द्वितीयक क्षेत्र का हिस्सा जो (1960–61 की कीमतों पर) लगातार बढ़ते–बढ़ते 1966–67 में 23.4 प्रतिशत तक पहुंच गया था, उसके बाद बढ़ नहीं पाया और 1975–76 में भी 22.8 प्रतिशत था। पंजीकृत औद्योगिक क्षेत्र (registered manufacturing sector) का हिस्सा जो 1950–51 में 6.3 प्रतिशत से बढ़ते–बढ़ते 1965–66 में 10.4 प्रतिशत तक पहुंच गया था, फिर आगे नहीं बढ़ पाया और 1975–76 में भी 10.4 प्रतिशत ही था जबकि तृतीयक क्षेत्र का हिस्सा लगातर बढ़ता गया। अतः अर्थव्यवस्था के सामने 1965–66 से ढांचागत प्रतिगमन की स्थिति उत्पन्न हो गई। 1975–76 के बाद भी स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ क्योंकि इसके बाद के चार वर्षों की अवधि (1976–77 से 1980–81 तक) में केवल 3.3 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हुई (पुराने औद्योगिक उत्पादन सूचकांक आधार वर्ष 1970–71 = 100 के आधार पर)। लेकिन 1980–81 से 1990–91 के बीच एक दशक की अवधि में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया में फिर से तेजी आई और औद्योगिक उत्पादन में 7.6 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हुई। 1990–91 में औद्योगिक उत्पादन में 9.0 प्रतिशत की उत्साहजनक वृद्धि हुई परन्तु 1991–92 में औद्योगिक उत्पादन में नाममात्र 0.8 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इसके अगले वर्ष में लगभग गतिहीनता की स्थिति दी। 1993–94 से जीद्योगिक पुनरुयान शुरू हुआ और 1993–94 से 1996–97 की चार वर्षीय अवधि में औद्योगिक उत्पादन में 8.6 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि दर्ज की गई। परन्तु नीवीं योजना (1997–98 से 2001–02) में औद्योगिक संवृद्धि को झटका लगा तथा औद्योगिक उत्पादन को संवृद्धि दर कम होकर मात्र 5.0 प्रतिशत प्रति वर्ष रह गई। दसवीं योजना में

स्थिति में सुधार हुआ और औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि दर बढ़कर 8.2 प्रतिशत प्रति वर्ष हो गई। यद्यपि यह लक्षित 10.0 प्रतिशत प्रति वर्ष की संवृद्धि दर से कम थी तथापि यह पूरी योजना अवधि में सर्वाधिक थी (तीसरी योजना को छोड़कर) ग्यारहवीं योजना में औद्योगिक उत्पादन में औसतन 6.9 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि हुई। बारहवीं योजना में औद्योगिक क्षेत्र का निष्पादन असंतोषजनक था वास्तव में पुरानी श्रेणी (2004–05 = 100) के अनुसार, इस योजना में औद्योगिक उत्पादन संवृद्धि की औसत दर मात्र 1.4 प्रतिशत प्रति वर्ष थी जबकि नई श्रेणी (2011–12 = 100) के अनुसार यह 3.7 प्रतिशत प्रति वर्ष थी। इस योजना के अंतिम वर्ष 2016–17 में औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि दर पुरानी श्रेणी के अनुसार मात्र 0.7 प्रतिशत तथा नई श्रेणी के अनुसार 4.6 प्रतिशत थी। 2017–18 में औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि दर 4.4 प्रतिशत तथा 2018–19 में 3.8 प्रतिशत थी। 2019–20 में औद्योगिक संवृद्धिदर ऋणात्मक (–0.8 प्रतिशत थी। 2020–21 में तो औद्योगिक उत्पादन में तेज गिरावट हुई और औद्योगिक संवृद्धि दर – 8.4 प्रतिशत रही (अर्थात् औद्योगिक उत्पादन में 8.4 प्रतिशत की गिरावट हुई) ।

3. कृषि क्षेत्र (Agricultural sector)–जहाँ तक कृषि क्षेत्र का सम्बन्ध है. पहली योजना में निष्पत्ति सन्तोषजनक थी। खाद्यान्नों का उत्पादन जो 1950 में 5.40 करोड़ टन था, 1955–56 में 6.48 करोड़ टन हो गया जबकि लक्ष्य 6.16 करोड़ टन का था। तिलहनों के लिए उपलब्धि भी लक्ष्य से अधिक थी जबकि रुई में उपलब्धि लक्ष्य से जरा कम थी। परन्तु पटसन और गन्ने के क्षेत्र में उपलब्धि लक्ष्य से काफी कम थी। दूसरी योजना में खाद्यान्न उत्पादन का लक्ष्य 7 करोड़ 50 लाख टन रखा गया था जबकि उपलब्धि 7 करोड़ 60 लाख टन थी। तिलहनों और गन्ने का उत्पादन लक्ष्य से अधिक या जबकि पटसन का लक्ष्य से कम तीसरी योजना में खाद्यान्न उत्पादन का लक्ष्य 10 करोड़ टन रखा गया परन्तु इस योजना का अन्तिम वर्ष, 1965–66, सूखे का वर्ष था जिससे उपलब्धि मात्र 7 करोड़ 20 लाख टन रह गई। इससे पहले वाले वर्ष (1964–65) में उत्पादन 8 करोड़ 90 लाख टन था। तीसरी योजना की कृषि क्षेत्र में निष्पत्ति काफी निराशाजनक कही जा सकती है क्योंकि अधिकतर फसलों का उत्पादन लक्ष्य से कम था। चौथी योजना में खाद्यान्नों के लक्ष्य 12 करोड़ 90 लाख टन की तुलना में 1973–74 में उत्पादन मात्र 10 करोड़ 47 लाख टन था। अधिकतर वाणिज्यिक फसलों जैसे पटसन, गन्ना, रुई, तिलहन इत्यादि का उत्पादन लक्ष्यों की तुलना में कम था। पूरे कृषि

उत्पादन को एक साथ देखें तो चौथी योजना में कृषि उत्पादन में वृद्धि का लक्ष्य 5 प्रतिशत प्रति वर्ष था जबकि उपलब्धि मात्र 2.8 प्रतिशत थी। पाँचवीं योजना में 1978–79 के लिए खाद्यान्न उत्पादन का लक्ष्य 14 करोड़ टन रखा गया जबकि उपलब्धि 13 करोड़ 19 लाख टन रही। गन्ना उत्पादन का लक्ष्य 17 करोड़ टन रखा गया जबकि उपलब्धि 15 करोड़ 17 लाख टन रही। रुई का उत्पादन 79.6 लाख गांठे था जबकि लक्ष्य 80 लाख गांठों का था। छठी पंचवर्षीय योजना में अच्छी फसल होने के कारण 1983–84 में खाद्यान्नों का उत्पादन 15 करोड़ 24 लाख टन गया। परन्तु 1984–85 में यह गिरकर 14 करोड़ 62 लाख टन हो गया (लक्ष्य 14 करोड़ 90 लाख टन से 15 करोड़ 40 लाख टन के बीच था)। रुई, पटसन तथा गन्ने का उत्पादन लक्ष्य से कम रहा। तिलहनों का उत्पादन लक्ष्य प्राप्त कर लिया गया। सातवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि में कृषि की निष्पत्ति एक बार फिर संतोषजनक नहीं थी। इस योजना में खाद्यान्नों का उत्पादन लक्ष्य 17 करोड़ 80 लाख टन था जबकि योजना के अंतिम वर्ष अर्थात 1989–90 में केवल 17 करोड़ 10 लाख टन उत्पादन हुआ। सातवीं योजना के अंतर्गत तिलहन और जूट के भी उत्पादन सम्बन्धी लक्ष्य प्राप्त नहीं किए जा सके लेकिन योजना के अन्तिम वर्ष में रुई और गन्ने का उत्पादन सातवीं योजना के लक्ष्य से अधिक था। आठवीं पंचवर्षीय योजना में खाद्यान्नों के उत्पादन का लक्ष्य 21 करोड़ टन रखा गया परन्तु योजना के अन्तिम वर्ष 1996–97 में खाद्यान्नों का वास्तविक उत्पादन 19 करोड़ 90 लाख टन ही हो पाया। तिलहन, गन्ने, रूई और पटसन के उत्पादन में थोड़ी वृद्धि ही हो पाई। नौवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष 2001–02 में खाद्यान्नों का उत्पादन 21 करोड़ 20 लाख टन था। तिलहन, रूई तथा पटसन के उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं हुई। गन्ने का उत्पादन 1996–97 के उत्पादन की तुलना में थोड़ा–सा ही अधिक था।

नई कृषि नीति 2000 में कृषि नीति के लिए निर्धारित 4 प्रतिशत प्रति वर्ष की संवृद्धि के लक्ष्य के अनुरूप दसवीं योजना में कृषि क्षेत्र के लिए 4 प्रतिशत प्रति वर्ष का संवृद्धि लक्ष्य रखा गया। योजना के अन्तिम वर्ष 2006–07 में खाद्यान्नों की अनुमानित मांग 23 करोड़ 60 लाख टन थी जबकि आपूर्ति केवल 21 करोड़ 73 लाख टन रही। ग्यारहवीं योजना के प्रथम वर्ष 2007–08 में खाद्यान्नों का उत्पादन 23 करोड़ 8 लाख टन था जो इस योजना के अंतिम वर्ष 2011–12 में 25 करोड़ 93 लाख टन तक पहुँच गया। ग्यारहवीं योजना में कृषि क्षेत्र में

औसतन 4.1 प्रतिशत प्रति वर्ष की संवृद्धि दर प्राप्त हुई जो 4.0 प्रतिशत प्रति वर्ष की लक्षित दर में अधिक थी। बारहवीं योजना के प्रथम वर्ष 2012–13 में खाद्यान्नों का उत्पादन 25 करोड़ 71 लाख टन था जो 2013–14 में 26 करोड़ 50 लाख टन के स्तर तक बढ़ गया। 2014–15 में खाद्यान्नों का उत्पादन 25 करोड़ 20 लाख टन तथा 2015–16 में 25 करोड़ 16 लाख टन था। 2020–21 में खाद्यान्यों का रेकार्ड 30 करोड़ 86 लाख टन उत्पादन हुआ जो अब तक का सर्वाधिक उत्पादन है।

4. भुगतान संतुलन (Balance of payments)– आयोजन के पहले चार दशकों में भुगतान संतुलन के क्षेत्र में पंचवर्षीय योजनाओं की निष्पत्ति निराशाजनक थी। पहली पंचवर्षीय योजना के प्रथम वर्ष से लेकर सातवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष (1989–90) तक लगातार व्यापार शेष (balance of trade) भारत के प्रतिकूल था (केवल दो वर्षो 1972–73 तथा 1976–77 को छोड़कर जब व्यापार शेष में क्रमशः 103 करोड़ तथा 69 करोड़ रुपये का अधिशेष था)। योजनावधि के अधिकांश वर्षों में अदृश्य मदों से आय धनात्मक थी परन्तु यह व्यापार शेष के भारी घाटों को पूरा करने में बिल्कुल असमर्थ थी। परिणाम यह हुआ कि भुगतान संतुलन भी भारत के प्रतिकूल रहा और इसके घाटों को पूरा करने के लिए विदेशी सहायता का सहारा लेना पड़ा। समस्या की गम्भीरता का अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि भुगतान संतुलन में घाटा (चालू खाते में) जो पहली योजना में केवल 42.3 करोड़ रुपये था. दूसरी योजना में बढ़कर 1,647 करोड़ रुपये, तीसरी योजना में 1972 करोड़ रुपये तथा तीन वार्षिक योजनाओं में 2,015 करोड़ रुपये हो गया। चौथी योजना में 1973–74 के लिए निर्यात से आय का लक्ष्य 1,900 करोड़ रुपये रखा जबकि 1968–69 में निर्यात से आय 1,360 करोड़ रुपये थी। इस प्रकार निर्यात आय में वृद्धि का लक्ष्य 7 प्रतिशत प्रति वर्ष था। इस योजना के अन्तिम दो वर्षों में निर्यात आय में तेज वृद्धि हुई जिससे पूरे योजना काल के लिए निर्यात आय में वृद्धि की दर 13.6 प्रतिशत प्रति वर्ष हो गई। परन्तु इस अच्छी निष्पत्ति से भी समस्या की गम्भीरता कम नहीं हुई क्योंकि तेल निर्यातक देशों ने तेल की कीमतों में वृद्धि कर दी जिससे तेल पर आयात व्यय बहुत ज्यादा बढ़ गया। इसका परिणाम यह हुआ कि चौथी योजना में व्यापार शेष में 1,564 करोड़ रुपये तथा भुगतान संतुलन में 2,221 करोड़ रुपये का घाटा हुआ।। पांचवीं पंचवर्षीय योजना में चालू खाते में 1,403.7 करोड़ रुपये का अधिशेष था परन्तु पूँजी खाते में

काफी घाटा होने के कारण भुगतान संतुलन की स्थिति असन्तोषजनक थी। छठी पंचवर्षीय योजना में आयोजकों को व्यापार शेष में 17,773 करोड़ रुपये का घाटा होने की आशा थी जबकि अदृश्य मदों से 8,710 करोड़ रुपये का लाभ अनुमानित था। इस प्रकार भुगतान संतुलन में अनुमानित घाटा 9,063 करोड़ रुपये था। इस अनुमान के विपरीत छठी– योजना में (चालू खाते में) वास्तविक घाटा 11,885 करोड़ रुपये हुआ जो अनुमानित घाटे से 25.6 प्रतिशत अधिक था। सातवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान भुगतान संतुलन की स्थिति पर अभूतपूर्व दबाव था। इस योजना की अवधि में व्यापार शेष में 54,205 करोड़ रुपये का घाटा था जबकि अदृश्य मदों से निवल आय केवल 13,158 करोड़ रुपये हुई। फलतः भुगतान संतुलन के चालू खाते में 41,012 करोड़ रुपये का घाटा रहा। 1990–91 में पैट्रोलियम की कीमतों में भारी वृद्धि और खाड़ी देशों में युद्ध के कारण अदृश्य मदों के अंतर्गत निवल आय में भारी कमी से भुगतान संतुलन के चालू खाते में घाटा 17,369 करोड़ रुपये का रहा। इस गंभीर स्थिति का सामना आयात में भारी कटौती द्वारा किया गया और इस तरह 1991–92 में चालू खाते में घाटा 2,237 करोड़ रुपये के लगभग रहा। आठवीं पंचवर्षीय योजना की पूरी अवधि में चालू खाते पर कुल 55,000 करोड़ रुपए का घाटा अनुमानित था परन्तु वास्तविक घाटा 62,900 करोड़ रुपए रहा। परन्तु कुल मिलाकर स्थिति संतोषजनक थी क्योंकि पूंजी खाते पर काफी अन्तप्रवाह प्राप्त हुए।

नौवीं पंचवर्षीय योजना में विदेशी क्षेत्र का प्रदर्शन काफी अच्छा रहा। पूरी योजना के दौरान चालू खाते पर 1,59,800 करोड़ रुपए के घाटे का अनुमान था जबकि वास्तविक घाटा केवल 53,175 करोड़ रुपए रहा। योजना के अन्तिम वर्ष 2001–02 में चालू खाते पर 16,426 करोड़ रुपए का अधिशेष था। अगले दो वर्षों में भी चालू खाते पर अधिशेष प्राप्त हुआ (कुल प्राप्त अधिशेष 94,643 करोड़ रुपए था)। स्वतन्त्रता के बाद यह पहला मौका या जब लगातार तीन वर्ष तक चालू खाते पर अधिशेष प्राप्त हुआ था। दसवीं योजना के शेष तीन वर्षों (2004–05 से 2006–07) में फिर चालू खाते पर घाटा हुआ और यह घाटा 1,00,294 करोड़ रुपए था। इस प्रकार दसवी पंचवर्षीय योजना की पूरी अवधि में केवल 5,671 करोड़ रुपए का घाटा हुआ। इस बात को देखते हुए कि इस योजना में पूंजी खाते पर काफी अधिशेष प्राप्त हुआ था, भुगतान संतुलन की स्थिति संतोषजनक थी। 2007–08 में चालू खाते पर घाटा

63,479 करोड़ रुपए था जो 2008–09 में बढ़कर कर 1,27,600 करोड़ रुपए तक जा पहुँचा पूँजी खाते पर अधिशेष में भी गिरावट हुई। 2007–08 में पूँजी खाते पर अधिशेष 4.33,167 करोड़ रुपए था जो 2008–09 में कम होकर मात्र 30,500 करोड़ रुपए रह गया। इस प्रकार वर्ष 2008–09 में भुगतान सन्तुलन की स्थिति काफी खराब रही। इसका मुख्य कारण इस वर्ष होने वाली विश्वव्यापी मंदी थी। 2009–10 में चालू खाते में 1,79,700 करोड़ रुपए का घाटा हुआ। परन्तु विकसित देशों की तुलना में भारतीय अर्थव्यवस्था के बेहतर आर्थिक निष्पादन के कारण, बड़ी मात्रा में विदेशी निवेशकों ने भारत में निवेश किया। वस्तुतः इस वर्ष पूंजी खाते पर अधिशेष 2,43,900 करोड़ रुपए रहा जिसके परिणामस्वरूप विदेशी मुद्रा कोष में 13.44 बिलियन डालर की वृद्धि हुई। 2010–11 में भी पूँजी अन्तप्रवाह बड़ी मात्रा में प्राप्त हुए जिसके कारण विदेशी मुद्रा भंडारों में 13.05 बिलियन डालर की वृद्धि हुई। परन्तु 2011–12 में स्थिति काफी बिगड़ गई। इस वर्ष चालू खाते पर 3,76,000 करोड़ रुपए (78,155 मिलियन डालर के बराबर) घाटा हुआ। इसका मुख्य कारण व्यापार घाटे में अत्यधिक वृद्धि थी जो मुख्यतया पेट्रोलियम तेल, सोना व चांदी, तथा मशीनरी पर भारी आयात व्यय का परिणाम था। पूँजी अन्तर्प्रवाहों में भी वृद्धि हुई परन्तु यह वृद्धि चालू खाते में घाटे में वृद्धि की अपेक्षा कम थी। इसके परिणामस्वरूप विदेशी मुद्रा भंडारों में गिरावट हुई। इस वर्ष विदेशी मुद्रा भंडारों में 12. 83 ब्रिलियन डालर की गिरावट हुई। 2012–13 में चालू खाते में घाटा बड़ कर 88.16 बिलियन डालर हो गया परन्तु भारी पूँजी अन्तप्रवाहों के चलते इस वर्ष विदेशी मुद्रा भंडार में 3.83 बिलियन डालर की वृद्धि हुई। 2013–14 में स्थिति में काफी सुधार हुआ और चालू खाते में घाटा 32.3 बिलियन डालर रह गया (जबकि 2012–13 में यह 88.16 बिलियन डालर के उच्च स्तर पर था)। 2014–15 में चालू खाते पर घाटा 26.8 बिलियन डालर था (जो सकल घरेलू उत्पाद का 1.3 प्रतिशत था। परन्तु पूँजी खाते पर 88.3 बिलियन डालर के अन्तर्गवाहों के कारण विदेशी विनिमय भंडार में 61.4 बिलियन डालर की वृद्धि हुई। 2015–16 में अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण प्रतिकूल होने के कारण पूँजी अन्तर्प्रवाह 88.3 बिलियन डालर से कम होकर 40 बिलियन डालर रह गए। क्योंकि इस वर्ष चालू खाते में घाटा 22.1 विलियन डालर था इसलिए विदेशी मुद्रा भंडार में 17.9 बिलियन डालर की वृद्धि हुई। वर्ष 2016–17 में चालू खाते में घाटा 15.3 बिलियन डालर था (जो सकल घरेलू उत्पाद का मात्र 0.7 प्रतिशत था

जबकि पूँजी खाते पर अन्तर्प्रवाह 36.8 बिलियन डालर थे। इस प्रकार, इस वर्ष विदेशी मुद्रा भंडार में 21.5 बिलियन डालर की वृद्धि हुई। वर्ष 2017–18 में चालू खाते में घाटा बढ कर 48.7 बिलियन डालर हो गया परन्तु चालू पूँजी खाते में 92.3 बिलियन डालर के अधिशेष के कारण विदेशी मुद्रा में 43.6 बिलियन डालर की वृद्धि हुई। 2018–19 में चालू खाते में घाटा (57.3 बिलियन डालर था जबकि पूँजी खाते में घाटा 53.9 बिलियन डालर रहा। इस प्रकार विदेशी मुद्रा भंडार में 3.4 बिलियन डालर की गिरावट हुई 2019–20 में स्थिति फिर बदली। इस वर्ष चालू खाते में घाटा 24.6 बिलियन डालर था जबकि पूँजी खाते पर में अधिशेष 84.1 बिलियन डालर रहा। इस प्रकार 2019–20 में विदेशी मुद्रा भंडार में 59.5 बिलियन डालर की भारी वृद्धि हुई। वर्ष 2020–21 में चालू खाते में 23,912 मिलियन डालर का अधिशेष प्राप्त हुआ जबकि पूँजी खाते में 63,374 मिलियन डालर का अधिशेष रहा। इस प्रकार इस वर्ष विदेशी मुद्रा भंडार में 87,286 मिलियन डालर की भारी वृद्धि हुई।

5. बचत और निवेश की दरें– सकल घरेलू बचत और सकल घरेलू निवेश के आंकड़ों से स्पष्ट है कि आयोजन काल के पहले दो दशकों में सकल घरेलू बचत और सकल घरेलू निवेश दरों में नियमित रूप से वृद्धि हुई थी। 1950–51 में जहाँ निवेश दर सकल घरेलू उत्पाद की 9.3 प्रतिशत थी, वहाँ बचत दर 9.5 प्रतिशत थी घरेलू पूँजी निर्माण की दर अर्थात निवेश दर 1960–61 में 14.3 प्रतिशत और 1970–71 में 15.1 प्रतिशत हो गई थी। इसकी तुलना में बचत दर 1960–61 में 11.6 प्रतिशत और 1970–71 में 14.3 प्रतिशत थी। स्पष्ट है कि निवेश और बचत दरों में अन्तर विदेशी पूँजी से पूरा किया गया। चौथी और पांचवीं पंचवर्षीय योजनाओं में निवेश और बचत दरों में काफी कमी हुई। उदाहरण के लिए, चौथी योजना के अंतिम वर्ष में घरेलू पूँजी निर्माण की दर 17.3 प्रतिशत थी जबकि घरेलू बचत दर 16.8 प्रतिशत थी। इस तरह दोनों में केवल 0.5 प्रतिशत का अंतर था। पांचवीं योजना की निष्पत्ति और भी अच्छी थी क्योंकि इस योजना के तीन वर्षों में तो बचत वर घरेलू पूँजी निर्माण की दर से अधिक थी। 1980–81 में घरेलू पूँजी निर्माण की दर जहाँ 19.2 प्रतिशत थी वहाँ घरेलू बचत दर 17.8 प्रतिशत थी। छठी पंचवर्षीय योजना के दौरान बचत और निवेश दरों में कमी हुई। 1984–85 में जहां घरेलू बचत दर 17.8 प्रतिशत थी वहाँ घरेलू निवेश दर 19.1 प्रतिशत थी। इस तरह दोनों में 1.3 प्रतिशत का अंतर था जिसे विदेशी पूँजी के आयात

से पूरा किया गया। सातवीं योजना में बचत और निवेश दर दोनों में वृद्धि हुई। इस योजना के अन्तिम वर्ष 1989–90 में बचत दर 21.3 प्रतिशत तथा निवेश दर 23.7 प्रतिशत थी। आर्थिक सुधारों की अवधि में इन दोनों दरों में तेज वृद्धि हुई है। आठवीं योजना के अन्तिम वर्ष 1996–97 में बचत दर 22.4 प्रतिशत तथा निवेश दर 23.7 प्रतिशत थी। नौवीं योजना के अन्तिम वर्ष 2001–02 में बचत दर 24.8 प्रतिशत तथा निवेश दर 24.2 प्रतिशत थी। दसवीं योजना के अन्तिम वर्ष 2006–07 में सकल घरेलू बचत दर 34.6 प्रतिशत तथा सकल घरेलू पूँजी निर्माण दर 35.7 प्रतिशत थी। ग्यारहवीं योजना के प्रथम वर्ष 2007–08 में सकल घरेलू बचत दर 36.5 प्रतिशत तथा निवेश दर 38.1 प्रतिशत थी (जो योजना अवधि में प्राप्त सर्वाधिक दरें हैं)। वर्ष 2019–20 में सकल घरेलू बचत दर 31.4 प्रतिशत तथा निवेश दर 32.2 प्रतिशत थी (यह अनुमान 2011–12 को आधार वर्ष मानकर तैयार की गई नई श्रृंखला पर आधारित हैं)।

खण्ड–3
इकाई–5

भारत में क्षेत्रीय नियोजन का पुनरावलोकन वर्तमान संदर्भ में

प्रस्तावना

क्षेत्रीय नियोजन से तात्पर्य आर्थिक और सामाजिक प्रगति में क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने के उद्देश्य से अविकसित क्षेत्रों के विकास को बढ़ावा देने के उद्देश्य से योजनाओं या कार्यक्रमों को तैयार करने और क्रियान्वित करने की प्रक्रिया से है। क्षेत्रीय नियोजन का तात्पर्य भौगोलिक रूप से प्रतिबंधित क्षेत्र के भीतर आर्थिक, सामाजिक और भौतिक संसाधनों के व्यापक समन्वय और प्रशासन से है। क्षेत्रीय नियोजन एक व्यक्तिगत शहरी या ग्रामीण की तुलना में व्यापक भौगोलिक दायरे के भीतर भूमि-उपयोग गतिविधियों और बुनियादी संरचना के विकास के रणनीतिक संगठन और समन्वय से है। क्षेत्रीय नियोजन शहरी नियोजन से निकटता से जुड़ी हुई है क्योंकि इसमें बड़े भौगोलिक पैमाने पर भूमि उपयोग प्रथाओं का प्रबंधन शामिल है। भारत में क्षेत्रीय नियोजन के उद्भव को स्वतंत्रता के बाद के युग के दौरान बढ़ते शहरीकरण और अपर्याप्त बुनियादी ढांचे से उत्पन्न मुद्दों को संबोधित करने की आवश्यकता के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। पहली क्षेत्रीय योजना 1951 में मुंबई महानगर क्षेत्र के लिए स्थापित की गई थी, उसके बाद कोलकाता,

चेन्नई और दिल्ली जैसे अतिरिक्त क्षेत्रों के लिए योजनाएँ बनाई गईं। 1960 और 1970 के दशक के दौरान, राज्य-स्तरीय क्षेत्रीय योजना का उल्लेखनीय उद्भव हुआ, क्योंकि कई सरकारों ने अपनी स्वयं की क्षेत्रीय योजनाएँ तैयार करने का कार्य किया। 1980 और 1990 के दशक के दौरान, राष्ट्रीय स्तर पर क्षेत्रीय नियोजन के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई। यह प्रगति 1988 में राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य योजना के निर्माण और उसके बाद 1990 में राष्ट्रीय शहरी विकास रणनीति की स्थापना में स्पष्ट थी। भारत में ग्रामीण और शहरी दोनों बस्तियों की विशेषताएं परिवर्तन के दौर से गुजर रही हैं, जिसके लिए प्रासंगिक शासी निकायों और संगठनों से प्रतिक्रिया की आवश्यकता है। दुनिया भर में कई सरकारों द्वारा क्षेत्रीय नियोजन पद्धति के उपयोग ने विभिन्न क्षेत्रों में सामाजिक, भौतिक और आर्थिक विकास में असमानताओं को कम करने में योगदान दिया है। भारत अपने रास्ते पर चल पड़ा और पहले चरण में अच्छे नतीजे हासिल किये। हालाँकि, जैसे-जैसे समय बढ़ता है, यह प्रथा अधिक विवादास्पद हो जाती है। "भारत में क्षेत्रीय नियोजन" पर राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन ओआरएफ और जीआईजेड द्वारा संयुक्त रूप से किया जा रहा है। इस सम्मेलन का उद्देश्य क्षेत्रीय योजनाओं की प्रभावशीलता, भूमि उपयोग योजना और प्रबंधन, हालिया पहलों के परिणामों और उनके सफल कार्यान्वयन में बाधा डालने वाली चुनौतियों के बारे में ज्ञान बढ़ाना है।

क्षेत्रीय नियोजन किसी दिए गए क्षेत्र के शहरों के बीच संसाधनों के लिए तनाव और प्रतिद्वंद्विता को कम करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। छोटे शहरों या उपग्रह कस्बों के विकास से बड़े शहरी केंद्रों पर तनाव कम हो सकता है, जिससे दक्षता में वृद्धि होगी। क्षेत्रीय योजनाओं में आर्थिक, पर्यावरणीय और भौगोलिक उद्देश्यों का व्यापक मूल्यांकन शामिल है, साथ ही राष्ट्रीय महत्व के मुद्दों को संबोधित करने का प्रयास भी शामिल है। एकीकृत आलोचनात्मक विश्लेषण का उपयोग, वांछित विकास प्राप्त करने में एक महत्वपूर्ण कारक है। शहर नियोजन के विपरीत, जिसमें मुख्य रूप से भूमि उपयोग योजनाओं का विकास शामिल है, क्षेत्रीय नियोजन एक विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र के लिए नीतियां बनाने पर विशेष बल देता है। नीतियों का गठन और उद्देश्य स्थापित किए जाते हैं, जो विभिन्न क्षेत्रों, स्थानों एवं क्षेत्रों में विविधता प्रदर्शित करते हैं। क्षेत्रीय योजनाओं का कार्यान्वयन तब अनिवार्य हो जाता है जब शहरी क्षेत्र विभिन्न स्थानों की प्रगति पर प्रभाव डालने लगते हैं, जिसके परिणामस्वरूप संभावित रूप से अकुशल संसाधन आवंटन और उचित योजना के अभाव में बर्बादी होती है। नीतियों का किसी क्षेत्र के समग्र विकास पर महत्वपूर्ण और स्थायी प्रभाव पड़ता है और संभावित रूप से किसी विशिष्ट शहर के लिए स्थापित भूमि उपयोग योजना या रणनीति के साथ टकराव हो सकता है। आमतौर पर, क्षेत्र के भीतर काम

करने वाले विभिन्न विभागों, विशेष रूप से विकास प्राधिकरणों और क्षेत्रीय प्रणालियों के संबंध में समन्वय की सुविधा के लिए एक नया शासी निकाय स्थापित किया जाता है।

भारत में क्षेत्रीय नियोजन के मुद्दे

भारत में क्षेत्रीय नियोजन को लागू करने में कुछ प्रमुख मुद्दे हैं:

- **सीमित कार्यान्वयन:** कई क्षेत्रीय योजनाओं की तैयारी के बावजूद, इन योजनाओं का कार्यान्वयन सीमित है, जिसके कारण अपर्याप्त बुनियादी ढांचा और अनियंत्रित शहरीकरण हुआ है।
- **सामुदायिक भागीदारी का अभाव:** क्षेत्रीय योजना के लिए ऊपर से नीचे का दृष्टिकोण अक्सर सामुदायिक भागीदारी की कमी से ग्रस्त होता है, जिससे विकास हस्तक्षेपों के स्वामित्व और स्थिरता की कमी होती है।
- **अपर्याप्त वित्तपोषण:** क्षेत्रीय योजना के लिए महत्वपूर्ण वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता होती है, और अपर्याप्त वित्तपोषण से कार्यक्रम का अधूरा या अप्रभावी कार्यान्वयन हो सकता है।
- **सीमित समन्वय:** क्षेत्रीय योजना के लिए सरकार के विभिन्न स्तरों और निजी क्षेत्र के बीच समन्वय की आवश्यकता होती है, और अक्सर इन संस्थाओं के बीच सीमित समन्वय होता है।

भारत में क्षेत्रीय नियोजन का उद्देश्य

क्षेत्रीय नियोजन किसी क्षेत्र के शहरों के बीच संसाधनों के लिए संघर्ष और प्रतिस्पर्धा को कम करने में भी मदद करती है। छोटे शहरों या उपग्रह कस्बों को विकसित करने से उच्च स्तर के शहरों से तनाव दूर करने में मदद मिलती है जिससे दक्षता बढ़ती है। क्षेत्रीय नियोजन बोर्ड/प्राधिकरण विभिन्न स्थानों और गतिविधियों के लिए नकदी का आवंटन भी कर सकता है। सरकार की भागीदारी, जैसे किसी विशिष्ट क्षेत्र के भीतर एक नवीन योजना या नीति का कार्यान्वयन, में विकास की संभावनाओं को बढ़ाने और क्षेत्रीय शासी निकाय द्वारा स्थापित नीति पहलों का समर्थन करने की क्षमता है। असमानताओं में कमी अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष लाभों में योगदान करती है, जैसे कि मजबूर प्रवासन को कम करना, यात्रा की दूरी में कमी, आस-पास के क्षेत्रों में बेहतर नौकरी की संभावनाओं का प्रावधान, और आवश्यक सेवाओं को उनके बेतरतीब उद्भव के बजाय योजनाबद्ध तरीके से स्थापित करना है।

क्षेत्रीय नियोजन न केवल लोगों के सामने आने वाले सामाजिक-आर्थिक मुद्दों को बढ़ाती है, बल्कि सामाजिक-आर्थिक ढांचे की स्थापना के लिए उत्प्रेरक के रूप में भी काम करती है।

नियोजन, संक्षेप में, सार्वजनिक प्रयासों में एक उपयुक्त प्रक्षेप पथ, संरचना, प्रगति और सद्भाव स्थापित करने के साथ-साथ लोगों के बीच सामाजिक-आर्थिक कल्याण को बढ़ावा देने के लिए सामूहिक बुद्धि और दूरदर्शिता के समामेलन से उत्पन्न होती है। क्षेत्रीय नियोजन का उद्देश्य सामाजिक कल्याण और जीवन स्तर को बढ़ाने के लिए लोगों और प्राकृतिक संसाधनों दोनों के उपयोग को अनुकूलित करना है, साथ ही विभिन्न भौगोलिक पैमानों पर मौजूदा सामाजिक आर्थिक असमानताओं को कम करना है। क्षेत्रीय नियोजन में एक देश के लिए सुसंगत रणनीतियों का निर्माण शामिल है जो कई क्षेत्रों में विभाजित है। इसमें एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र के भीतर संभावित आंदोलनों, जनसंख्या गतिशीलता और संसाधनों के वितरण का व्यापक विश्लेषण शामिल है। नियोजन के उद्देश्यों में कई पहलू शामिल हो सकते हैं जैसे आर्थिक विकास, राष्ट्रीय सुरक्षा, सांस्कृतिक संरक्षण, सामाजिक-आर्थिक विकास और शक्ति की खोज, इत्यादि। हमारे देश में, योजना जानबूझकर निर्णय लेने की प्रक्रियाओं पर आधारित होती है जो अक्सर विकासात्मक कारकों के व्यापक आकलन पर राजनीतिक चिंताओं को प्राथमिकता देती है। नियोजन में स्वाभाविक रूप से विभिन्न प्रकार की प्रतिभाएँ और कौशल शामिल होते हैं, जिनमें से कुछ ही किसी एक व्यक्ति की विशेषज्ञता के भीतर हो सकते हैं। एक योजनाकार से भूगोल, राजनीति, भूविज्ञान, समाजशास्त्र, इतिहास और अर्थशास्त्र जैसे कई विषयों की बुनियादी समझ रखने की अपेक्षा की जाती है। समान

सामाजिक-आर्थिक विकास प्राप्त करने के लिए, यह आवश्यक है कि किसी दिए गए क्षेत्र के निवासियों को उपयुक्त और पर्याप्त सामाजिक-आर्थिक सुविधाओं और सेवाओं तक त्वरित और अप्रतिबंधित पहुंच प्राप्त हो। वर्तमान तकनीकों का गहन मूल्यांकन करके इस उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है। बस्तियों के स्थानिक वितरण और जनसंख्या आकार को प्रभावी ढंग से संबोधित करने के लिए संसाधनों के आवंटन, साथ ही सामाजिक-आर्थिक और बुनियादी सुविधाओं के प्रावधान पर सावधानीपूर्वक विचार करना महत्वपूर्ण है। आशावादी उम्मीद है कि विस्तारित अवधि में इस विशेष रणनीति के कार्यान्वयन से क्षेत्र के भीतर समान सामाजिक-आर्थिक प्रगति प्राप्त होगी।

भारत में क्षेत्रीय नियोजन की आवश्यकता

भारत में क्षेत्रीय नियोजन के अन्तर्गत सामाजिक-आर्थिक न्याय और संतुलित क्षेत्रीय विकास के मुद्दे ने भारत जैसे उभरते देशों में महत्वपूर्ण ध्यान आकर्षित किया है, जैसा कि अनुसंधान के वर्तमान निकाय द्वारा दिखाया गया है। भारतीय योजना के इतिहास में क्षेत्रीय असमानताओं का कायम रहना प्रशासकों और योजनाकारों के लिए समान रूप से एक महत्वपूर्ण चुनौती रही है। इस विशिष्ट मुद्दे ने वर्तमान दौर में महत्वपूर्ण विद्वानों का ध्यान और अनुभवजन्य अन्वेषण आकर्षित किया है। बाद की पंचवर्षीय योजनाओं ने इस विषय की जटिलता के बारे में जागरूकता दिखाई है, जैसा कि कार्यक्रम सामग्री में शामिल कई बयानों

से देखा जा सकता है। देखी गई गतिविधियों और परिणामी प्रभावों के आधार पर, ऐसा लगता है कि "संतुलित" क्षेत्रीय विकास की अवधारणा को क्रियान्वित करने के लिए "संतुलन" या समानता को आगे बढ़ाने के लिए सीमित और अस्पष्ट प्रयास किए गए हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि सामाजिक-आर्थिक सुविधाओं के भौगोलिक वितरण में देखी गई असमानता की व्यापक व्याख्या को परिभाषित करने और परीक्षण करने में बहुत कम प्रगति हुई है। इसके अतिरिक्त, सामाजिक-आर्थिक विकास के विभिन्न चरणों में लागू की गई विभिन्न नीतियों की प्रभावशीलता का पूरी तरह से मूल्यांकन नहीं किया गया है। योजना में सफलता की कमी के लिए योगदान देने वाले कारकों में से एक व्यक्तियों की आकांक्षाओं और अपने जीवन में ठोस परिवर्तनों में निवेश करने की उनकी इच्छा के बीच विसंगति है। निर्णय लेने का तंत्र तर्कहीन माना जाता है। प्रचलित निर्णय लेने की रूपरेखा में अक्सर राज्य व केंद्र दोनों स्तरों पर कई प्रणालियों का विकास शामिल होता है, जिसका उद्देश्य ग्रामीण समुदायों की आर्थिक और सामाजिक जरूरतों को संबोधित करना है। किसी क्षेत्र या उसके किसी घटक के विकास को आकार देने में समाज के सामाजिक-आर्थिक ढांचे की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सामाजिक-आर्थिक सुविधाओं की संगठनात्मक संरचना को संशोधित करने की क्षमता योजनाकारों या निर्णय निर्माताओं के संज्ञानात्मक व्यवहार पर निर्भर है। नतीजतन, यह स्पष्ट है कि ग्रह के सामाजिक-आर्थिक ढांचे का पुनर्गठन व्यक्तिगत स्तर पर व्यावहारिक रणनीतियों के कार्यान्वयन से प्राप्त किया जा सकता है, जिसका उद्देश्य क्षेत्र के समग्र विकास

को बढ़ावा देना है। इसलिए, लोगों के सामने आने वाली सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों का समाधान करने और उन्हें सुधारने के लिए क्षेत्रीय योजना का कार्यान्वयन समकालीन समाज में एक अनिवार्यता बन गया है।

इस विशेष समायोजन में, क्षेत्रीय नियोजन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस बात पर आम सहमति है कि आर्थिक नियोजन के लिए एक राष्ट्रीय दृष्टिकोण आवश्यक है। हालाँकि, यह स्वीकार करना महत्वपूर्ण है कि क्षेत्रीय विचारों को ध्यान में रखे बिना, विकास और योजना के लिए केवल राष्ट्रीय दृष्टिकोण पर निर्भर रहना, सभी घटक क्षेत्रों की आर्थिक विकास आवश्यकताओं को पर्याप्त रूप से संबोधित नहीं करेगा। इसलिए, यह स्वीकार करना अनिवार्य है कि योजना के लिए क्षेत्रीय या क्षेत्रीय दृष्टिकोण को अपनाना अर्थव्यवस्था की समग्र वृद्धि के लिए एक आवश्यक शर्त है। हालाँकि, अफसोस की बात यह है कि योजना एवं विकास के इस विशिष्ट पहलू की उपेक्षा की गई है। आर्थिक विकास के सैद्धांतिक ढांचे और व्यावहारिक कार्यान्वयन दोनों में क्षेत्र और स्थान के कारक को लंबे समय से नजरअंदाज किया गया है। योजना व विकास पर सार्वजनिक नीति ने उन क्षेत्रों और उप-क्षेत्रों की पहचान करने पर महत्वपूर्ण जोर दिया है जो सीमित संसाधनों के निवेश की गारंटी देते हैं। हाल की अनुभूतियों से पता चला है कि क्षेत्रीय विचारों के साथ-साथ क्षेत्रीय चिंताएँ भी सीमित संसाधनों के आवंटन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। हाल के दिनों में, क्षेत्रीय

योजना महत्वपूर्ण सार्वजनिक चिंता का विषय बनकर उभरी है। विकासशील देश क्षेत्रीय योजना के प्रति वास्तविक झुकाव प्रदर्शित कर रहे हैं, जैसा कि उनकी आर्थिक रणनीतियों से देखा जा सकता है जो राष्ट्रीय आर्थिक प्रगति के ढांचे के भीतर अविकसित क्षेत्रों के सामने आने वाली चुनौतियों को संबोधित करने को प्राथमिकता देते हैं।

भारत में अंतरराज्यीय क्षेत्रीय योजना का महत्व

भारत में हाल के दिनों में महत्वपूर्ण शहरी विस्तार देखा गया है, जिसकी विकास दर 32% से अधिक है। हाल के वर्षों में, पेरी शहरों में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ है, जिसकी विशेषता जनसंख्या में उल्लेखनीय वृद्धि और उसके बाद कुछ शहरी क्षेत्रों में आर्थिक विस्तार है। शहरीकरण की घटना का शहरों पर कई तंत्रों के माध्यम से महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है, जिसमें समूहीकरण, सट्टा विकास, परिधीय क्षेत्रों का विस्तार और उपग्रह शहरों की स्थापना शामिल है। जब किसी शहरी केंद्र के विस्तार के परिणामस्वरूप परिधीय क्षेत्र का विस्तार होता है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि शहर में संबंधित भौतिक और आर्थिक चुनौतियों को प्रभावी ढंग से संभालने की क्षमता का अभाव हो सकता है। नगर पालिका की सीमाओं के भीतर, सैटेलाइट टाउनशिप या यहां तक कि बड़े समूहों के विकास की संभावना मौजूद है। इसके बाद, बाद की अवधि में, उपग्रह शहर शहर की भौगोलिक परिधि के साथ मिल जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप संपूर्ण शहरी विकास का एकीकरण होता है और एक व्यापक

शहरी बस्ती का निर्माण होता है। किसी महानगर के समान अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत दूरस्थ सुविधाओं और उपग्रह शहरों का प्रबंधन करना शहरी स्थानीय निकायों (यूएलबी) के लिए महत्वपूर्ण चुनौतियां खड़ी करता है। विकास में संतुलन की कमी और असमानता शहरी स्थानीय निकायों (यूएलबी) के लिए एक प्रशासनिक चुनौती उत्पन्न करती है, इसलिए इन शहरीकृत क्षेत्रों की जरूरतों को पूरा करने के लिए एक शहर विकास विशेषज्ञ की उपस्थिति की आवश्यकता होती है। संक्षेप में, कई निकटवर्ती शहरीकृत क्षेत्रों की प्रभावी ढंग से निगरानी करने में नगर निगम या प्राधिकरण की वर्तमान अक्षमता के कारण एक सहयोगी क्षेत्रीय प्रशासनिक इकाई की स्थापना की आवश्यकता होती है। इन परिवर्तनों के कार्यान्वयन से राजनीतिक सीमाओं को पार करने और कई राज्यों के विभिन्न शहरों के साथ ओवरलैप होने की उम्मीद है, जिससे यह मुद्दा और जटिल हो जाएगा। राज्य अधिकतर अपने राजनीतिक, आर्थिक और भौगोलिक संरचना में भिन्नता प्रदर्शित करते हैं। इसलिए, दोनों राज्य दूसरे राज्य के शहरी विकास के प्रति वास्तविक देखभाल की कमी दर्शाते हैं, और इस उदासीनता का बने रहना वास्तव में उचित है। इसके विपरीत, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि शहरी विकास विशेषज्ञों से संबंधित प्रत्येक राज्य का अपना अलग कानून है, जो एक राज्य के कानूनों को दूसरे के लिए अप्रासंगिक बना देता है। ऐसे मामलों में जब अलग-अलग राज्यों के दो पड़ोसी शहर निकटता में स्थित होते हैं, खासकर सीमावर्ती क्षेत्रों में,

शहरी विकास रणनीतियों की आवश्यकता होती है जो एक एकीकृत प्राधिकरण के तहत इन क्षेत्रों के एकीकरण की सुविधा के लिए समावेशी दृष्टिकोण का उपयोग करते हैं। दोनों देशों को असंतुलित विकास और प्राकृतिक संसाधनों के अप्रतिबंधित दोहन से रोकने के लिए शासन संरचना के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता अनिवार्य है। प्रत्येक राज्य के पास शहरी विकास विशेषज्ञों से संबंधित नियमों का अपना सेट है, जो एक राज्य के कानून को दूसरे राज्य के लिए अप्रासंगिक बना देता है। जब अलग-अलग राज्यों के दो पड़ोसी शहर निकटता स्थापित करते हैं, खासकर सीमावर्ती क्षेत्रों में, तो शहरी विकास के लिए एक समावेशी रणनीति अपनाने की प्रवृत्ति होती है जिसका उद्देश्य इन क्षेत्रों को एक एकीकृत प्राधिकरण के अंदर एकीकृत करना है। दोनों देशों को असंतुलित विकास और प्राकृतिक संसाधनों के अप्रतिबंधित दोहन से रोकने के लिए शासन संरचना के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता अनिवार्य है। शहरी विकास विशेषज्ञों से संबंधित प्रत्येक राज्य का अपना अलग कानून है, जो एक राज्य के कानूनों को दूसरे राज्य के लिए अप्रासंगिक बना देता है। ऐसे मामलों में जब अलग-अलग राज्यों के दो पड़ोसी शहर निकटता स्थापित करते हैं, खासकर सीमावर्ती क्षेत्रों में, शहरी विकास पहल के लिए एक एकीकृत प्राधिकरण के तहत इन क्षेत्रों को मजबूत करने के उद्देश्य से एक समावेशी रणनीति अपनाने की प्रवृत्ति होती है। दोनों देशों को असमान विकास और प्राकृतिक संसाधनों के अप्रतिबंधित दोहन से बचाने के लिए शासन संरचना के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता अनिवार्य है। इन क्षेत्रों को साझा अधिकार क्षेत्र के तहत

शामिल करने के लिए एक समावेशी दृष्टिकोण अपनाकर शहरी शासन ढांचे पर पुनर्विचार करने की तत्काल आवश्यकता है। ऐसा करने में विफलता के परिणामस्वरूप दोनों राज्यों को असंतुलित विकास और प्राकृतिक संसाधनों तक सीमित पहुंच का सामना करना पड़ेगा। इन क्षेत्रों को साझा अधिकार क्षेत्र के तहत शामिल करने के लिए एक समावेशी दृष्टिकोण अपनाकर शहरी शासन ढांचे पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। ऐसा करने में विफलता के परिणामस्वरूप असमान विकास होगा और दोनों राज्यों के लिए प्राकृतिक संसाधनों तक सीमित पहुंच होगी।

ग्राफ- शहरी-और-क्षेत्रीय-योजना-समीक्षा

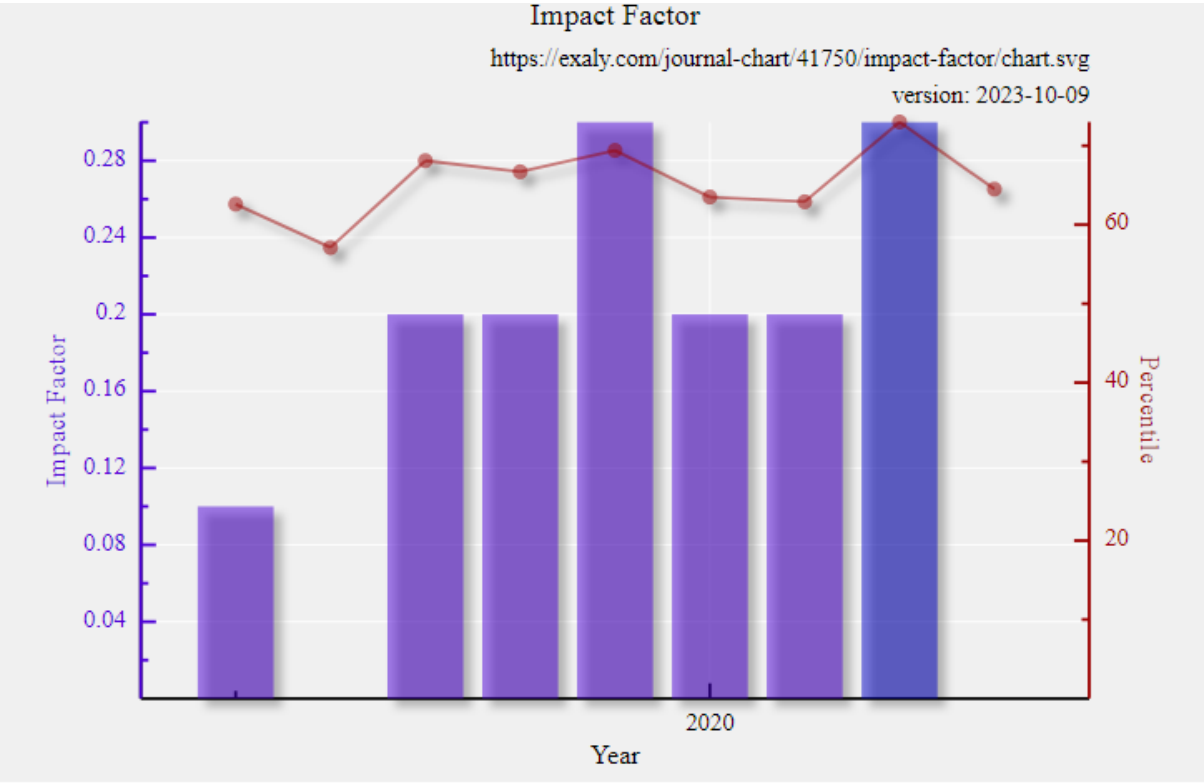

https://exaly.com/journal/41750/urban-and-regional-planning-review/

प्रस्तुत ग्राफ के माध्यम से शहरी और क्षेत्रीय योजना समीक्षा के प्रभाव कारक और उसके संबंधित प्रतिशत में परिवर्तन दिखाता है। प्रभावी कारक सबसे सामान्य वैज्ञानिक सूचकांक है, जिसे पिछले दो वर्षों में पत्रों के उद्धरणों की संख्या को उन वर्षों में प्रकाशित पत्रों की संख्या से विभाजित करके परिभाषित किया जाता है।

क्षेत्रीय विकास परस्पर जुड़ी विकास प्रक्रियाओं की एक जटिल प्रणाली का परिणाम है जो गैर-सरकारी और सरकारी हस्तक्षेपों के साथ-साथ स्थानीय, राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तरों पर लिए गए व्यक्तिगत और सामूहिक निर्णयों से प्रभावित या नियंत्रित होता है। ये हस्तक्षेप, मुद्दा सामग्री के चयन के साथ, एक विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र के भीतर लागू किए जाते हैं, इसलिए मुख्य रूप से एक निश्चित जनसांख्यिकीय को प्रभावित करते हैं। क्षेत्रीय विकास सिद्धांतों के प्रति वर्तमान दृष्टिकोण अक्सर विकास की योजना और कार्यान्वयन की पदानुक्रमित संरचना के भीतर क्षेत्र को द्वितीयक स्थान प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त, कई सिद्धांत आम तौर पर इस परिप्रेक्ष्य का समर्थन करते हैं। राष्ट्रीय योजनाओं को लागू करने के लिए राष्ट्रीय रणनीति को छोटी क्षेत्रीय इकाइयों में विभाजित करने या स्थानीय प्रगति को अधिक प्रबंधनीय क्षेत्रों में समेकित करने के लिए एक उपकरण के रूप में कार्य करने के बजाय, व्यापक क्षेत्रीय योजना विकास के अवसरों की पहचान करने के साथ-साथ प्रगति को बढ़ावा देने और प्रबंधित करने में अधिक प्रभावशाली भूमिका निभाएगी। भविष्य में राष्ट्रीय

उद्देश्यों के अनुरूप। परिणामस्वरूप, क्षेत्रीय नियोजन संगठनों में विकास के लिए अधिक जिम्मेदारियाँ लेने की ओर बदलाव आ रहा है, जिससे केंद्रीय योजना और प्रशासन के महत्व में आनुपातिक कमी आ रही है। इसके साथ ही, शहरी क्षेत्रों के डिजाइन और विकास में सामाजिक मानदंड अपना उचित स्थान ग्रहण करेंगे।

भारत सरकार द्वारा उपयोग की जाने वाली ई-आधुनिकीकरण तकनीक क्षेत्रीय असंतुलन को प्रभावी ढंग से कम नहीं कर सकी, जिससे राज्य के भीतर समृद्ध और आर्थिक रूप से वंचित दोनों क्षेत्रों का सह-अस्तित्व बना रहा। इसलिए, क्षेत्रीय और स्थानिक दृष्टिकोण के बीच सामंजस्यपूर्ण संतुलन बनाए रखते हुए, क्षेत्रीय विकास के भविष्य के कार्यक्रम और नीतियों को प्रभावी ढंग से संबोधित करने के लिए औद्योगीकरण और शहरीकरण के स्थानिक बुनियादी ढांचे का पुनर्गठन करना आवश्यक है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत समकालीन परिवेश में, भारत में क्षेत्रीय नियोजन का मूल्यांकन आवश्यक है। क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने के लिए क्षेत्रीय नियोजन जैसे नियोजन हस्तक्षेपों का उपयोग किया जाता है। अध्ययन के निष्कर्षों से संकेत मिलता है कि महाराष्ट्र क्षेत्रीय नगर और देश नियोजन अधिनियम प्रभावी ढंग से कई पहलुओं को संबोधित करता है और एक सराहनीय योजना प्रणाली के रूप में कार्य करता है। हालाँकि, विशेषकर इसके

कार्यान्वयन तंत्र के संबंध में कुछ कमियाँ हैं। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की उन्नति क्षेत्रीय योजना के प्रक्षेप पथ को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है। यह देश के विभिन्न क्षेत्रों के बीच संसाधनों के इष्टतम उपयोग की सुविधा प्रदान करता है, जो कार्यात्मक रूप से एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं, जिससे उनके समग्र विकास में योगदान मिलता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मैक्कलम, डायना और बब्ब, कर्टनी और कर्टिस, कैरी। (2019)। शहरी और क्षेत्रीय योजना में अनुसंधान करना: व्यावहारिक तरीकों में पाठ। 10.4324/9781315818894.
2. पंकज कुमार और सैदुर रहमान (2016)। "भारत में पूर्व और उत्तर क्षेत्रीय विकास परिदृश्य" समकालीन भारत पर शहरी और क्षेत्रीय अध्ययन जर्नल 3(1): पीपी 1-10।
3. चौधरी, बिक्रमादित्य कुमार (2014)। भारत में क्षेत्रीय विकास और योजना। भूगोल और आप. 14. पी.पी. 34-38.
4. सिल्वा, एलिज़ाबेटे और हीली, पात्सी और हैरिस, नील और वैन डेन ब्रोएक, पीटर (2014)। स्थानिक और क्षेत्रीय योजना में 'अनुसंधान करने' का शिल्प।
5. किंग, रॉबिन और राठी, सुजया और एच.एस., सुधीरा। (2012)। भारत में क्षेत्रीय योजना के लिए एक दृष्टिकोण। इंट. सिस्टम ऑफ सिस्टम्स इंजीनियरिंग के जे. 3. पृ. 117-128. 10.1504/आईजेएसएसई.2012.048449।
6. केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय (2010)। सीएसओ वार्षिक रिपोर्ट। सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय। भारत सरकार।

7. मानव विकास सूचकांक रिपोर्ट (2012): एप्लाइड मैनपावर रिसर्च संस्थान। योजना आयोग. भारतीय सरकार, नई दिल्ली। (इ)

8. सबन्ना, टी. (2012)। भारत में अंतर-क्षेत्रीय असमानताएँ। वैश्विक अनुसंधान प्रकाशन, नई दिल्ली

9. गैबैक्स, एक्स. और आयोनाइड्स, वाई.एम. (2003)। 'शहर के आकार के वितरण का विकास', हेंडरसन, जे.वी. और फ्रेंकोइस, जे. (संस्करण) में: शहरी और क्षेत्रीय अर्थशास्त्र की हैंडबुक, वॉल्यूम। IV: शहर और भूगोल, नॉर्थ-हॉलैंड प्रकाशन कंपनी, एम्स्टर्डम, नीदरलैंड।

10. निकहत शेख, डॉ. एस.जी. सोनार, भारतीय संदर्भ में क्षेत्रीय योजना तैयारी प्रक्रिया का युक्तिकरण, IJARIIE-ISSN(O)-2395-4396, खंड-7 अंक-5 2021

एम०ए०ई०सी०–107

खण्ड–03

इकाई–06

भारत में पंचायती राज्य व्यवस्था

पंचायती राज व्यवस्था– स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की भावना को साकार करने के लिए पंचायती राज व्यवस्था को अपनाया गया लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं माना जाना चाहिए कि पंचायती राज की परिकल्पना केवल स्वतंत्र भारत की ही उपज है। भारत के प्राचीन इतिहास के अवलोकन से पता चलता है कि वैदिक काल में भी पंचायतों का अस्तित्व था। उस जमाने में राजा पंचायतों के माध्यम से राज करता था। ग्राम के प्रमुख को उस समय ग्रामिणी कहा जाता था तथा ग्रामिणी ही पंचायत का प्रमुख कार्यकर्ता होता था। बौद्धकाल में भी ग्राम परिषदे होने का उल्लेख मिलता है। बौद्धकालीन साहित्य से पता चलता है कि ग्राम परिषदो का प्रमुख कार्य ग्राम भूमि की व्यवस्थ करना व शांति सुरक्षा में सहयोग प्रदान करना था। स्मृति ग्रंथों में भी पंचायतों का उल्लेख मिलता है। इस तरह यह स्पष्ट है कि वैदिक व बौद्धकाल से पंचायतें ग्रामीण जनहित के कार्यो में संलग्न थी। रामायण एवं महाभारत काल में इनका काफी विस्तार व विकास हो चुका था। पंचायतें गॉव स्तर से लेकर, राज्य स्तर तक हुआ करती थी।

फिर भी यह अवश्य है कि वर्तमान पंचायत राज की कल्पना स्वाधीनता संघर्ष के वीरान संजोई गई थी। महात्मा गांधी के स्वराज्य की अवधारणा में पंचायती राज व्यवस्था की परिकल्पना निहित थी।

जब भारत स्वतंत्रता पश्चात् संविधान का निर्माण किया तो राज्य के निर्देशक तत्वों में पंचायती राज की धारणा को बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। संविधान के अनुच्छेद 40 में लिखा गया–"राज्य ग्राम पंचायतों की स्थापना के लिए आवश्यक कदम उठाएगा और उन्हें ऐसी शक्तियाँ एवं अधिकार प्रदान करेगा जो उन्हे स्वात्रंत शासन की इकाई के रूप में सक्षम बनाने के लिए आवश्यक हो।"

पंचायती राज व्यवस्था अपनाए जाने के सिद्धांत–पंचायती भारत में पंचायती राज निम्नलिखित सिद्धांतों पर आधारित है–

1. भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। सत्ता को दिल्ली की लोक सभा अथवा राज्यों के विधान मण्डलों तक ही यदि सीमित रखा जाए तो देश पनप नहीं सकता अतः यह आवश्यक है कि सत्ता का विकेन्द्रीकरण कर गाँव से जिला और स्थानीय स्वशासित संस्थाओं का त्रिस्तरीय देश बनाया जाए। यह एक ऐसी व्यवस्था है जिससे देश का हर गाँव और हर परिवार दिल्ली की लोकसभा से जुड़ जाएगा।
2. पंचायती राज की संस्थाएँ सामुदायिक विकास की एजेंसी बने, सहकारिता को प्रोत्साहन दे, स्वयं की कोई नीति न बनाकर सरकारी नीति को अमल में लाएँ।
3. सरकार अपने कुछ कामों का दायित्व ऐसी संस्थाओं को सौंप दें जो अपने क्षेत्र की उन्नति के लिए स्व–प्रेरणा से काम लें। इसके लिए उन्हें समुचित अधिकार प्रदान किए जाएं।
4. संस्थाओं को काम करने के लिए साधन और नियंत्रण के इतने अधिकार दिए जाएँ कि वे सौंपे गए कार्यों को भली भांति समुचित रूप से कर सकें।
5. इस प्रकार की व्यवस्था बनाई जाए कि भविष्य में अधिकार सौंपने में सुविधा हो।

पंचायत राज की संकल्पना

भारत में पंचायतों का इतिहास बहुत पुराना है। प्राचीन काल ने आपसी झगड़ों का फैसला पंचायत ही करती थी, परंतु अंग्रेजी राज के जमाने में पंचायते धीरे–धीरे समाप्त हो गई और सब काम प्रांतीय सरकार करने लगी। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद राज्य सरकारों ने पंचायों की स्थापना की और विशेष ध्यान दिया और इसकी शुरूआत का श्रेय भी पं० जवाहरलाल नेहरू को है। नेहरू जी का लोकतांत्रिक तरीको

बलवन्तराय मेहता समिति का प्रतिवेदन सामुदाय विकास कार्यक्रम पर काफी खर्च हो चुकने और इसकी सफलता के लम्बे–चौड़े दावे के बाद इसकी जाँच के लिए एक अध्ययन दल के 1957 मे नियुक्त किया गया। इस अध्यक्ष के अध्यक्ष श्री बलवंतराय मेहता थे। इस दल

ने सरकार को बताया कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम की बुनीयादी त्रुटी यह है कि जनता का इसमें सहयोग नहीं मिला। 'मेहता' अध्ययन दल ने 1957 के अंत में अपनी रिपोर्ट में यह सिफारिश की कि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को सफल बनाने हेतु पंचायती राज संस्थाओं की तुरंत शुरूआत की जानी चाहिए। यह अध्ययन दल ने इसे 'लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण' का नाम दिया। दल की प्रमुख–सिफारिशे–निम्नलिखित थी।

1. स्थानीय स्वशासन की गाँव से लेकर जिला स्तर तक विस्तरीय़ व्यवस्था होनी चाहिए– ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खण्ड स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद्।

2. स्थानीय प्रशासन की इन संस्थाओं को प्रशासन की वास्तविक शक्तियाँ तथा उत्तर दायित्व प्रदान करना चाहिए।

3. इन संस्थाओं को पर्याप्त संसाधन हस्तान्तरित करने चाहिए जिससे ये अपना उत्तरदायित्व पूरा कर सकें।

4. आयोजना के द्वारा बनाए गए आर्थिक एवं सामाजिक विकास के कार्यक्रमों को इन संस्थाओं के माध्यम से चलाया जाना चाहिए।

5. इस नई व्यवस्था को लागू करके देखना चाहिए तथा भविष्य मे अधिक कार्य शक्ति एवं उत्तस्थायित्वों को सौंपने का कार्य करना चाहिए।

पंचायती राज पर अमल और कठिनाइयाँ एवं समस्याएँ पंचायती राज की उक्त योजना का उद्घाटन सबसे पहले 2 अक्टूबर, 1959 को प्रधानमंत्री पं० नेहरू द्वारा राजस्थान के नागौर जिले में किया गया। इसके तुरंत बाद इसे आन्ध्र प्रदेश तथा क्रमशः अन्य राज्यों में अपनाया गया। 1963 तक भारतीय संघ के सभी राज्यों में 'पंचायत राज' की स्थापना की गई। लगभग एक दशक तक पंचायत राज की यह व्यवस्था उचित रूप से

चली, लेकिन उसे बाद स्थिति संतोषजनक नहीं रही। भारतीय संघ के अधिकांश राज्यों में, इस व्यवस्था में अनेक समस्याओं ने घर कर लिया। कुछ राज्यों में, तो व्यवहार में एक दशक से भी अधिक समय तक, पंचायत राज संस्थाओं के चुनाव नहीं हुए।

अशोक मेहता समिति की सिफारिशें जनता पार्टी ने 12 सितम्बर 1977 को पंचायती राज संस्थाओं की कार्य प्रणाली का अध्ययन करने एवं प्रचलित ढांचे में आवश्यक परिवर्तन सुझाने हेतु एक उच्चस्तरीय समिति नियुक्त की। श्री अशोक मेहता इस समिति के अध्यक्ष थे। समिति ने 1978 में अपनी रिपोर्ट केन्द्र सराकार को सौंप दी, जिससे प्रमुख रूप से निम्नलिखित सिफारिशें की गई–

1. जिला परिषद को मजबूत बनाया जाए तथा ग्राम पंचायत की जगह मण्डल पंचाय की स्थापना की जाए अर्थात् पंचायती राज संस्थाओं के संगठन` दो स्तर– जिला परिषद तथा मण्डल पंचायत।
2. राज में विकेन्द्रीकरण का प्रथम स्तर जिला हो तथा जिला परिषद को समस्त विकास कार्यो का केन्द्र बिन्दु बनाया गया।
3. जिला स्तर के नीचे मण्डल का गठन किया जाए, जिसमें करीब 15,000–20,000 जनसंख्या एवं 10–15 गांव शामिल हो।
4. ग्राम पंचायत तथा पंचायत समिति को समाप्त कर देना चाहिए।
5. मण्डल पंचायत तथा जिला परिषद का कार्यकाल 4 वर्ष हो।
6. पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव में राजनीतिक दलों को भाग लेना चाहिए।
7. पंचायती राज संस्थाएँ समिति प्रणाली के आधार पर अपने कार्यो का सम्पादन करें।

डॉ. पी. वी. के. राव समिति एक समिति 1985 में डॉ. पी. बी. राव की अध्यक्षता मे एक समिति ग्रामीण विकास और गरीबी उन्मूलन के लिए उपयुक्त प्रशासनिक व्यवस्था सिफारिश करने हेतु गठित की गई। इस समिति ने राज्य स्तर पर राज्य विकास परिषद, जिला स्तर पर जिला परिषद, मण्डल स्तर पर मण्डल पंचायत तथा ग्राम स्तर पर ग्राम सभा के गठन की सिफारिश की, लेकिन समिति की सिफारिश को अमान्य कर दिया गया।

डॉ० एल०एम० सिुघवी समिति 1987 में पंचायती राज संस्थाओं के कार्यो की समीक्षा करने तथा उनमें सुधार करने के संबंध में सिफारिश करने के लिए सिंघवी समिति का गठन किया गया। इस समिति ने गांवों के पुनर्गठन और पंचायतों को पर्याप्त वित्तीय साधन सुलभ कराने की सिफारिश की।

1988 में पंचायती राज संस्थाओं पर विचार करने के लिए पी०के० थुंगन समिति का गठन किया गय। इस समिति ने अपने प्रतिवेदन में कहा कि पंचायती राज संस्थाओं को संविधान में स्थान दिया जाना चाहिए। इस समिति की सिफारिश के आधार पर 1989 में राजीव गांधी सरकार द्वारा 84 वां संविधान संशोधन विधेयक लोकसभा में विचारर्थ प्रस्तुत किया गया, लेकिन इस विधेयक को राज्यसभा में आवश्यक बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। दसवीं लोकसभा चुनाव के बाद स्थापित केन्द्रिय सरकार द्वारा पुनः इस दिशा में प्रयत्न किए गए तथा 1993 में पंचायत राज या ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय स्व–शासन के संबंध में 43वां संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया गया।

एम.ए. ई.सी.107

खण्ड –4

ईकाई –1

जनसँख्या एवं आर्थिक विकास में सम्बन्ध

ईकाई की रूप रेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 आर्थिक विकास का अर्थ

1.4 विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गयी आर्थिक विकास की परिभाषा

1.5 जनसँख्या एवं आर्थिक विकास में सम्बन्ध

1.6 विभिन्न अर्थशास्त्रियों के जनसँख्या एवं आर्थिक विकास के पक्ष में तर्क

1.7 विभिन्न अर्थशास्त्रियों के जनसँख्या एवं आर्थिक विकास के विपक्ष में तर्क

1.9 सारांश

1.10 बोध प्रश्न

1.11 उपयोगी पुस्तके

1.0 उद्देश्य–

1–प्रस्तुत इकाई में हम आर्थिक विकास के अर्थ के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगें।

2–प्रस्तुत इकाई में हम विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गई आर्थिक विकास की परिभाषाओं का अध्धयन करेंगें।

3–प्रस्तुत इकाई में जनसंख्या एवं आर्थिक विकास में संबंध की जानकारी प्राप्त करेंगे।

4–प्रस्तुत इकाई में विभिन्न अर्थशास्त्रियों के जनसंख्या एवं आर्थिक विकास के पक्ष में दिए गए तर्को का अध्ययन करेंगे।

5–प्रस्तुत इकाई में विभिन्न अर्थशास्त्रियों के जनसंख्या आर्थिक विकास के विपक्ष में दिए गए तर्कों का अध्ययन करेंगे।

1.1 प्रस्तावना–

किसी देश की जनसंख्या उसकी आर्थिक विकास की प्रक्रिया की साध्य है तथा उसे क्रियान्वित करने का साधन भी अर्थव्यवस्था में रहने वाले मनुष्य के कल्याण में वृद्धि आर्थिक विकास का साध्य है समस्त आर्थिक क्रियाएं उसी की संतुष्टि और कल्याण के वृद्धि के लिए ही आर्थिक विकास का साध्य है समस्त आर्थिक क्रियाएं उसी की संतुष्ट या कल्याण के लिए ही की जाती है पर इसके साथ ही वह माध्यम है जिसके द्वारा आर्थिक विकास की क्रिया संपादित होती है मनुष्य ही एक ओर उपभोक्ता तो दूसरी ओर उत्पादक, साहसी तथा उत्पादन का साधन श्रम भी है इस प्रकार आर्थिक विकास की संपूर्ण क्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

1.2 आर्थिक विकास का अर्थ –

अर्थशास्त्र की वह शाखा है जो उन प्रक्रियाओं की व्याख्या करता है जिससे एक विकासशील देश कृषि तथा औद्योगिक दोनों ही क्षेत्र में अपने उत्पादन क्षमता बढ़ा सके और आर्थिक समृद्धि प्राप्त कर सके। आर्थिक विकास की धारणा मुख्य रूप से द्वितीय विश्व युद्ध के बाद आई जब एशिया अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका में अत्यंत पिछड़े व गरीब देश अल्प विकास गरीबी कुपोषण तथा स्वास्थ्य निरक्षरता शोषण आदि समस्याओं से ग्रसित थे परंतु इससे पहले एडम स्मिथ रिकार्डो मिल माल्थस मार्क्स आदि अर्थशास्त्रियों ने पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास कि समस्याओं पर विचार कर चुके थे द्वितीय विश्व युद्ध के बाद बहुत अधिक मात्रा में विदेशी पूंजी ऋण तथा सहायता इन देशों के विकास के लिए प्रवाहित हुई ताकि इन देशों में व्याप्त समस्याओं को दूर किया जा सके इस प्रकार इन गरीब देश की अपनी गरीबी से घृणा आर्थिक व राजनीतिक स्वतंत्रता तथा विकसित देशों के आय व उपभोग के स्तर को प्राप्त करने की लालसा ने यहां के अर्थशास्त्रियों को समस्याओं के समाधान अध्ययन व शोध के लिए प्रेरित किया।

1.3 विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गयी आर्थिक विकास की परिभाषा–

किंडल बर्गर के अनुसार आर्थिक विकास का अर्थ है कि अधिक उत्पादन तथा तकनीकी संस्थानिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन जिनके द्वारा यह उत्पादित और वितरित होता है।

महबूब उल हक के अनुसार आर्थिक विकास की प्रमुख समस्या गरीबी के सबसे भयानक स्थिति पर सीधा प्रहार करना है गरीबी, भुखमरी बीमारी,तथा अशिक्षा ,बेरोजगारी एवं असमानताओं जैसी समस्याओं के उन्मूलन को विकास के मुख्य तत्वों में शामिल किया जाना।

हैरिस के अनुसार आर्थिक विकास की परिभाषा लोगों के मौलिक कल्याण में सुधार के रूप में की गई उनका कहना है कि जब जनसाधारण को अशिक्षा, बीमारी एवं छोटी उम्र में मृत्यु के साथ–साथ गरीबी से छुटकारा मिलता है कृषि लोगों का मुख्य व्यवसाय ना होकर औद्योगिकरण हो जाता है कार्यकारी जनसंख्या का अनुपात बढ़ता है और आर्थिक तथा दूसरे किस्म के निर्णय में लोगों की भागीदारी बढ़ती है तो अर्थव्यवस्था का स्वरूप बदलता है तब यह प्रक्रिया आर्थिक विकास कहलाती है।

सिमर्स के अनुसार सिमर्स मानते हैं कि कुछ प्रश्न जैसे कि क्या गरीबों का स्तर कम हो रहा है क्या बेरोजगारी का स्तर कम हो रहा है क्या अर्थव्यवस्था में असमानताएं कम हो रही का उत्तर सकारात्मक है तो वह आर्थिक विकास को प्रदर्शित करता है।

1.4 जनसँख्या एवं आर्थिक विकास में सम्बन्ध–

किसी देश के आर्थिक विकास की प्रक्रिया में जनसंख्या के दो पहलू होते हैं एक पूर्ति पक्ष दूसरा मांग पर पक्ष श्रमिक उत्पादन का साधन भी है साथ ही उपभोक्ता भी वह उत्पादन के अन्य साधनों के सहयोग से राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि करता है पर इस संयोग से वह उत्पादन केंद्र साधनों से भी भिन्न है क्योंकि चाहे वह उत्पादन क्रिया में प्रयुक्त हो अथवा नहीं उसके उपभोग में समान्यतः कमी नहीं आएगी इससे यह स्पष्ट है की जनसंख्या का पूर्ति पक्ष उत्पादन के साधनों के रूप में श्रम का योगदान और जनसंख्या का मांग पक्ष उपभोग की आवश्यकता की संतुष्टि उसके आवश्यकताओं के आर्थिक विकास के रूप में जनसंख्या का योगदान इन दोनों पहलुओं पर निर्भर करेगा।

अब जैसे–जैसे जनसंख्या में वृद्धि होती जाएगी श्रम की पूर्ति बढ़ेगी साथ ही साथ उपभोग भी पर यदि किसी देश की पूंजी अथवा प्राकृतिक संसाधनों अथवा भूमि की मात्रा स्थिर हो तो दी हुई जनसंख्या की वृद्धि पर आर्थिक विकास की दर इस बात पर निर्भर करेगी की चालू उत्पादन की मात्रा चालू उपभोग की मात्रा से कितने अधिक है क्योंकि उत्पादन उपभोग के ऊपर उत्पादन का आधिक्य ही अर्थव्यवस्था में पूंजी निर्माण की दर निर्धारित करता है इस प्रकार इस प्रश्न पर विचार करने के पहले जनसंख्या वृद्धि किसी देश की आर्थिक विकास में सहायक होगी या नहीं यह विचार करना आवश्यक होगा की जनसंख्या वृद्धि के कारण उत्पादन में कितनी वृद्धि होगी तथा जनसंख्या वृद्धि के कारण अर्थव्यवस्था के कुल उपभोग में कितनी वृद्धि होगी।

1.5 विभिन्न अर्थशास्त्रियों के जनसँख्या एवं आर्थिक विकास के पक्ष में तर्क–

सर्वप्रथम एडम स्मिथ ने वेल्थ आफ नेशन नामक पुस्तक लिखी जिसमें आर्थिक वृद्धि एवं जनसंख्या के परिणाम पर अर्थशास्त्रियों का ध्यान आकर्षित किया एडम स्मिथ ने लिखा था कि प्रत्येक राष्ट्र का वार्षिक श्रम ऐसी निधि है जो मूल रूप से इसके लिए जीवन की सब आवश्यकताओं और सुविधाओं की पूर्ति करता है केवल माल्थस और रिकार्डो द्वारा अर्थव्यवस्था पर जनसंख्या वृद्धि के प्रभाव के बारे में जो नकारात्मकता उत्पन्न की गयी उनकी आशंकाएं निराधार सिद्ध हुई क्योंकि पश्चिमी यूरोप में जनसंख्या वृद्धि से ही औद्योगिकरण में तीव्र वृद्धि हुई थी।

जनसंख्या वृद्धि ऐसी अर्थव्यवस्थाओं के विकास में सहायक हुई क्योंकि वह धनी और पूंजी प्रचुर हैं और वहाँ श्रम की दुर्लभता है ऐसे देश में औद्योगिक क्षेत्र के प्रति श्रम का पूर्ति वक्र लोचदार है जिसके कारण जनसंख्या वृद्धि की ऊंची दर होने पर भी उत्पादकता में तेजी से वृद्धि हुई है वस्तु स्थिति यह थी कि 19वीं शताब्दी में आर्थिक विकास की दर जनसंख्या में वृद्धि दर से अधिक थी इसके फलस्वरुप जनसंख्या की समस्या जनाधिक्य की न होकर श्रम की दुर्लभता की हो गई उस समय हेन्सन ने यह प्रतिपादित किया की आर्थिक विकास के सहायक तत्वों को में जनसंख्या वृद्धि आवश्यक है।

कीन्स द्वारा वर्ष 1931 में विश्व मंदी की अवस्था की समस्या का कारण प्रभावोंत्पादक मांग की कमी को बताया और इसके समाधान के रूप में जनसंख्या वृद्धि को प्रभावोंत्पादक मांग में वृद्धि को बताया और यह बताया की उन्नत देशों में जहां आय का स्तर बहुत ऊंचा है वहां पर जनसंख्या आर्थिक विकास के रास्ते को अवरोध उत्पन्न नहीं करेगी इस प्रकार यह कहना अनुचित न होगा कि माल्थस तथा रिकॉर्डो के बाद विकसित देशों में जनसंख्या की समस्या की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ।

अल्प विकसित देशों के विकास के संदर्भ में जहां एक ओर पूंजी की अत्यंत कमी है तथा दूसरी ओर जनसंख्या समान्यतः अधिक तथा जीवन स्तर बहुत नीचा है जनसंख्या की इस समस्या की ओर लोगों का ध्यान पुनः आकर्षित हुआ है पर इस संबंध में अर्थशास्त्रियों का मत दो वर्गों में बंटा है पहले ऐसे अर्थशास्त्री जो पूर्ति पक्ष पर विशेष बल देते हैं तथा जनसंख्या को आर्थिक विकास में सहायक मानते हैं तथा दूसरी ओर अर्थशास्त्रियों का दूसरा वर्ग है जो यह मानता है की जनसंख्या की अधिक वृद्धि न केवल जनसंख्या के रहन–सहन के स्तर में कमी लाती है बल्कि इसके कारण पूंजी निर्माण की दर में कमी आती है इसके फलस्वरुप आर्थिक विकास अवरुद्ध हो जाता है अर्थशास्त्रियों का यह वर्ग जो जनसंख्या को आर्थिक विकास में सहायक मानता है उसमें जोंस्यु कास्त्रो, कोलिंग क्लार्क, आर्थर लेविस आदि आते हैं।

जोस्यु कास्त्रों का मत है कि समस्या जनाधिक्य की नहीं है बल्कि उत्पादन तथा उसके दोषपूर्ण वितरण की है उन्होंने कहा कि दुनिया के जीवन का रास्ता माल्थस तथा उसके नए अनुयायियों के नुस्खे में नहीं है जिसमें अतिरिक्त व्यक्तियों को समाप्त कर दिया जाता है ना ही संतति निग्रह में है बल्कि धरती पर प्रत्येक के उत्पादक बनने के प्रयास को समाप्त कर दिया जाता है बल्कि इसमें है की दुनिया के अत्यधिक मनुष्यों की उपस्थिति से भूख व कष्ट पैदा नहीं होता बल्कि कम उत्पादन अधिक खाने वाले लोगों के होने से होता है।

1.6 विभिन्न अर्थशास्त्रियों के जनसँख्या एवं आर्थिक विकास के विपक्ष में तर्क–

प्रोफेसर आर्थर लेविस ने अपने श्रम की असीमित पूर्ति के माध्यम से आर्थिक विकास सिद्धांत में यह तर्क दिया कि यदि जीवन निर्वाह तंत्र में जनसंख्या की वृद्धि हो फलस्वरूप श्रम की पूर्ति में वृद्धि हो तो इसे पूंजीवादी क्षेत्र में लगाकर तीव्र आर्थिक विकास आसानी से किया जा सकता है क्योंकि अत्यंत ही सस्ती मजदूरी पर श्रम उपलब्ध होंगे इस दिशा में कोलीन क्लार्क एक कदम और आगे हैं उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक पापुलेशन ग्रोथ एंड लैंड यूज में यह प्रतिपादित किया की जनसंख्या आर्थिक विकास में सहायक है जनसंख्या की वृद्धि लोगों को परंपरागत तथा प्राचीन कृषि विधियो को छोड़कर नवीन आधुनिक विधियो को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करती है उन्होंने अत्यंत प्रभावशाली भाषा में कहा भी है कि किसी भी राजनीतिक नेता को चाहे तो कितना भी शक्तिशाली क्यों ना हो किसी भी अर्थशास्त्री को चाहे वह कितना भी विद्वान क्यों ना हो बच्चों के जन्म में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है इतना ही नहीं बल्कि यह अधिकार इसके विपरीत उनके माता–पिता को है कि वह प्रधानमंत्री व अर्थशास्त्रियों से मांग करें कि वह विश्व का इस प्रकार संगठन करें कि उन्हें एवं उनके बच्चों को पर्याप्त भोजन मिल सके।

प्रोफेसर क्लार्क ने विभिन्न अवधियों में विभिन्न देशों के बीच जनसंख्या वृद्धि तथा आर्थिक विकास के बीच सह संबंध निकाला तथा यह निष्कर्ष निकला कि उन अवधियों में जिनमें जनसंख्या वृद्धि अधिक हो रही है आर्थिक विकास की दर भी अधिक रही है इतना ही नहीं उन्होंने यह भी प्रदर्शित किया कि वह देश जहां जनसंख्या की दर दो प्रतिशत वार्षिक दर से कम है वहां प्रति व्यक्ति वार्षिक उत्पादन वृद्धि दर 1.4 प्रतिशत वार्षिक दर से कम है तथा ऐसे देश में जहां जनसंख्या की दर 2 प्रतिशत से तीन प्रतिशत वार्षिक है वहां प्रति व्यक्ति वार्षिक उत्पादन की औसत विकास दर 2.3 प्रतिशत वार्षिक है कोलीन क्लार्क के इस मत से स्पष्ट है कि भारत में जनसंख्या की वृद्धि दर 2.5 प्रतिशत वार्षिक दर से कम है जनसंख्या के संबंध में कोई चिंता नहीं है यद्यपि अंत में उन्होंने यह कहा कि यह तभी होगा जब विकसित देशों में अल्प विकसित देशों से आयात पर किसी प्रकार का प्रतिबंध न हो।

प्रोफेसर हर्षमैन भी सहमति प्रकट करते हैं की जनसंख्या का दबाव आर्थिक विकास में सहायक होगा उनके अनुसार जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण रहन–सहन के स्तर में गिरावट को रोकने के लिए लोग आर्थिक विकास के लिए अपने योग्यता में वृद्धि करेंगे।

हिक्स ने कुछ ऐसे विशिष्ट कार्यों की चर्चा की जिनमें बहुत अधिक श्रम की आवश्यकता पड़ती है जैसे रेलवे, सड़कों, पुलों, आदि के निर्माण का कार्य जनसंख्या की कमी के कारण या तो इन कार्यों को पूरा नहीं किया जा सकेगा अथवा बहुत ही अधिक समय अथवा लागत लगेगी

ऐसे अल्प विकसित देशों में जहां कृषि यंत्रीकरण ना हुआ हो जहां अत्यधिक जनसंख्या कृषि आधारित हो जहां राष्ट्रीय आय में कृषि का योगदान सबसे अधिक हो तथा जहां कृषि में सघन कृषि प्रधानता मिली हो वहां कृषि के विकास के लिए अधिक जनसंख्या लाभप्रद होगा ।

प्रोफेसर मिर्डल ने इस ओर संकेत करते हुए कहा कि विकासोंन्मुख पूंजीवादी प्रणाली में बढ़ती हुई जनसंख्या का विकास की प्रथम अनिवार्यता है कि घटती हुई जनसंख्या के विनियोजन का जोखिम बढ़ता है पर अर्थशास्त्रियों का यह दृष्टिकोण एकांगी है तथा यह लोग मानकर चलते हैं की जनसंख्या की वृद्धि श्रम की पूर्ति में वृद्धि लायेगी तथा उत्पादन की पूर्ति पूर्णतया लोचदार होगी फलस्वरुप श्रम की वृद्धि उत्पादन में वृद्धि लायेगी पर यह मान्यताएं अल्प विकसित देशों में लागू नहीं होती हैं।

जोस्यु कास्त्रो का यह तर्क है की प्रमुख समस्या वर्तमान में उत्पादन को ठीक ढंग से वितरित करने की है अल्प विकसित देशों में आय वितरण एक प्रमुख समस्या है इसके कारण इतना ही निश्चित है की संपूर्ण जनसंख्या का एक नगण्य भाग तो बहुत ही विलासिता पूर्ण ढंग से रहता है और बहुत बड़ा भाग जीवन यापन स्तर पर रहता है जिसके कारण श्रम की उत्पादकता का कम होना स्वाभाविक है परंतु इन देशों में समस्या मात्र केवल वर्तमान उत्पादन सम्भावना को ठीक ढंग से वितरित करने की नहीं बल्कि इसे स्वयं बढ़ाने की समस्या है केवल वर्तमान उत्पादन संभावना वक्र को बनाये रखने कि नहीं अथवा उसी पर चलने की नही बल्कि इसके विवर्तन की है इतना ही नहीं इन देशों में समस्या मांगजन्य नहीं है बल्कि पूर्तिजन्य है यदि प्रभावोंत्पादक मांग में वृद्धि के आधार पर जनसंख्या की वृद्धि दर को उचित ठहराया गया तो न केवल पूर्ति के अभाव में मूल्य में वृद्धि होगी बल्कि उपभोग की वृद्धि के कारण पूंजी विनियोग में की दर में कमी हो जाएगी।

अधिक तीव्र आर्थिक विकास के लिए तो अधिक पूंजी निर्माण की आवश्यकता पड़ेगी ही साथ ही जनसंख्या वृद्धि की अवस्था में उपभोग के वर्तमान स्तर अथवा जनसंख्या की वृद्धि दर अलग–अलग हो तो जनसंख्या की अधिक वृद्धि वाले देश में वर्तमान स्तर को बनाए रखने के लिए अधिक पूंजी या विनियोग की आवश्यकता होगी क्योंकि अधिक वृद्धि दर वाले देश के श्रमिकों को आश्रितों के रूप में पैदा होने वाले अपेक्षाकृत अधिक बच्चों का निर्वाह करना होगा।

प्रति व्यक्ति आय के वर्तमान स्तर को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय आय उसी दर से बढे जिस दर से जनसंख्या बढें अर्थात जनसंख्या की वृद्धि दर अपेक्षाकृत अधिक है वहां प्रति व्यक्ति आय के वर्तमान स्तर को बनाए रखने के लिए अधिक पूंजी की आवश्यकता होगी प्रोफेसर नकर्स ने कहा यदि किसी देश में जनसंख्या की वृद्धि दर नहीं हो रही है तो वह अपनी अतिरिक्त पूंजी अथवा उसके कुछ भाग को अतिरिक्त श्रमिकों को अच्छे उपकरण, शिक्षा, प्रशिक्षण आदि उपलब्ध कराने के लिए कर सकता है ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय आय ही नहीं बल्कि प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि होगी पर यदि जनसंख्या की वृद्धि से इतनी अधिक हो की समस्त अतिरिक्त पूंजी अतिरिक्त श्रमिकों को वर्तमान उपकरणों को ही उपलब्ध कराने में लग जाए तो उन्हें अच्छे उपकरण, प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था नहीं होगी तथा राष्ट्रीय आय घटेगा प्रति व्यक्ति आय नहीं बढ़ेगी।

जनसंख्या का आयु के अनुसार संरचना का भी सबसे अधिक प्रभाव विकास के ऊपर पड़ता है क्योंकि इसके द्वारा श्रम शक्ति का अनुमान मालूम होगा तथा वृद्धि दर कम हो फलस्वरुप आयु संरचना बढ़ जाएगा यह भी संदिग्ध है क्योंकि जनसंख्या की वृद्धि दर में कमी के कारण ऐसे वृद्धो की संख्या बढ़ेगी जो की आश्रित है कार्य नहीं कर सकते केवल उपभोग कर रहे हैं

बचत अनुपात वस्तुतः दोनों ही पक्ष अर्थात वृद्धो तथा बच्चों तथा अवकाश प्राप्त वृद्धो के सीमांत उपभोग की प्रवृत्ति के अंत र्के ऊपर निर्भर करेगा यद्यपि यह बात सही है कि दोनों ही वर्ग बचत नहीं करते हैं

ए.पी.थिर्लवल के अनुसार जनसंख्या की वृद्धि आर्थिक संवृद्धि तथा रहन–सहन के स्तर के संबंध में अवरोध या उत्प्रेरक तत्व के रूप में कार्य करेगा यह वास्तव में इसका प्रश्न है कि डेल्टा पीध्पी तथा डेल्टा ओध्पी जिसमें व= उत्पाद, च= जनसंख्या के बीच संबंध कैसा रहेगा यदि इन दोनों के बीच संबंध ऋणात्मक है तो जनसंख्या की वृद्धि रहन–सहन के स्तर में वृद्धि में रुकावट बनेगी तथा उत्पादन में वृद्धि भी अवरोधित होगी पर यदि यह धनात्मक हो तो जनसंख्या की वृद्धि प्रति व्यक्ति उत्पादन तथा उत्पादन की वृद्धि में सहायक होगी।

1.8 सारांश–

किसी राष्ट्र में निवास करने वाली जनसंख्या ही उसे राष्ट्र की वास्तविक संपत्ति है एवं इसके लिए आर्थिक विकास पूरक का कार्य करता है जिसका मूल उद्देश्य एक ऐसा वातावरण तैयार करना जिससे लोग लंबे समय तक स्वस्थ एवं सृजनात्मक जीवन का आनंद उठा सके तथा इसके साथ राजनीतिक स्वतंत्रता और मानव अधिकार इस प्रकार हो कि वह खुशहाली का उच्च स्तर प्राप्त कर सके एवं मानव का विकास हो सके क्योंकि समाज में लोगों की इच्छाए अधिक

है परंतु आय सीमित है इसके अलावा एक देश अपने समाज के लोगों तथा वहां की राजनीतिक व्यवस्था को ज्यादा महत्व देता है जिससे कि मानव इच्छाएं ज्ञान स्वास्थ्य पर्यावरण राजनीतिक स्वतंत्रता और खुशनुमा जीवन इत्यादि सुलभता से प्राप्त कर सके।

1.9 बोध प्रश्न–

1–आर्थिक विकास से आप क्या समझते हैं?

2–आर्थिक विकास की विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गई परिभाषाओं का उल्लेख कीजिए।

3–जनसंख्या एवं आर्थिक विकास में संबंध का उल्लेख कीजिए ।

4–जनसंख्या एवं आर्थिक विकास के पक्ष में अर्थशास्त्रियों के बीच का विचारों का उल्लेख कीजिए।

5–जनसंख्या व आर्थिक विकास के विपक्ष में अर्थशास्त्रियों द्वारा दिए गए तर्कों का उल्लेख कीजिए।

1.10 उपयोगी पुस्तके–

आर्थिक विकास एवं नियोजनः एस.के. मिश्रा एवं बी.के. पुरी, हिमालय पब्लिशिंग हाउस

विकास और नियोजन का अर्थशास्त्रः एम.एल. झींगन

विकास और नियोजन का अर्थशास्त्रः एम. तनेजा, एम्.आर मायर

आर्थिक विकास एवं नियोजनः साहित्य भवन पब्लिकेशन

शहरी नियोजन सिद्धांत और व्यवहारः एम. प्रताप राव

क्षेत्रीय नियोजन और विकासः आर.सी. चंदन

विकास और नियोजन का अर्थशास्त्रः लक्ष्मी नारायण अग्रवाल

क्षेत्रीय विकास और नियोजनः जानकी जीवन

विकास और नियोजन की आधुनिक शिक्षाः जे.सी. अग्रवाल

विकास एवं नियोजन का भारतीय अनुभवः सुखमय चक्रवर्ती

ग्रामीण विकास नियोजनः आर.एन. अग्रवाल

खण्ड–4

ईकाई –2

प्रमुख जनसँख्या सिद्धान्त–माल्थस,अनुकूलतम तथा जनसँख्या संक्रमण का सिद्धान्त

इकाई की रूप रेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 माल्थस का जनसँख्या सिद्धांत–

2.3 माल्थस के जनसँख्या सिद्धांत का आलोचनात्मक मुल्यांकन

2.4 अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धांत की परिभाषा

2.5 अनुकूलतम जनसँख्या सिद्धान्त की व्याख्या

2.6 अनुकूलतम जनसंख्या के संदर्भ में डाल्टन एवं रॉबिंसन के विचार

2.7 अनुकूलतम जनसँख्या सिद्धान्त की विशेषताएँ

2.8 अनुकूलतम जनसँख्या सिद्धान्त की आलोचना

2.9 जननांकीय संक्रमण सिद्धांत

2.10 जननांकीय संक्रमण सिद्धांत का आलोचनात्मक मुल्यांकन

2.11 सारांश

2.12 बोध प्रश्न

2.13 कुछ उपयोगी पुस्तके

2.0 उद्देश्य–

1– प्रस्तुत इकाई में माल्थस के जनसंख्या सिद्धांत की जानकारी प्राप्त करेंगे।

2– प्रस्तुत इकाई में माल्थस के जनसंख्या सिद्धांत की आलोचनाओं की जानकारी प्राप्त करेंगे।

3– प्रस्तुत इकाई में माल्थस के जनसंख्या सिद्धांत के मूल्यांकन के बारे में जानेंगे।

4– प्रस्तुत इकाई में अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की परिभाषा की जानकारी प्राप्त करेंगे।

5– प्रस्तुत इकाई में अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की व्याख्या की जानकारी प्राप्त करेंगे।

6– प्रस्तुत इकाई में अनुकूलतम जनसंख्या के संदर्भ में डाल्टन एवं रॉबिंसन के विचारों की जानकारी प्राप्त करेंगे ।

7– प्रस्तुत इकाई में अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करेंगे।

8– प्रस्तुत इकाई में अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की आलोचना की जानकारी प्राप्त करेंगे।

9– प्रस्तुत इकाई में जननांकीय संक्रमण सिद्धांत की जानकारी प्राप्त करेंगे।

10–प्रस्तुत इकाई में जननांकीय संक्रमण सिद्धांतों की आलोचनाओं की जानकारी प्राप्त करेंगे।

11– प्रस्तुत इकाई में जननांकीय संक्रमण सिद्धांत के मूल्यांकन के बारे में जानेंगे।

2.1 प्रस्तावना–

माल्थस का जनसँख्या सिद्धान्त मानता था की प्रत्येक जीवित प्राणी में यह निश्चित प्रवृत्ति होती है कि इनकी जनसँख्या वृद्धि उनके पोषण के लिए उपलब्ध साधनों से अधिक होती है इसके पश्चात 19वीं शताब्दी के अंत में सिजिवक ने अनुकूलतम जनसंख्या के विचार की नींव रखी उन्होंने बताया कि "एक अनुपात में यदि सब साधनों को लगा दिया जाए तो एक ऐसा बिंदु आता है जब उत्पादन अधिकतम होता है" यद्यपि उन्होंने अनुकूलतम शब्द का प्रयोग नहीं किया लेकिन उनका संकेत इसी से था इस कथन का सहारा लेकर एडमिन काउगिल ने सन 1924 ईस्वी में प्रकाशित अपनी पुस्तक वेल्थ में सर्वप्रथम अनुकूलतम शब्द का प्रयोग कर अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की स्थापना की जिसे आगे चलकर रॉबिंस, डाल्टन तथा कार सांडर्स ने इस सिद्धांत को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

जननांकीय संक्रमण सिद्धांत जनसंख्या के विकास का आधुनिक सिद्धांत है जिसे विश्व के अधिकांश अर्थशास्त्रियों व जनसंख्या शास्त्रियों का समर्थन मिला है यह सिद्धांत यूरोप के अनेक देशों के आंकड़ों पर आधारित है यह सरल तर्कसंगत है तथा सभी विद्वानों में सर्वाधिक वैज्ञानिक प्रतीक होता है वर्तमान जनसंख्या शास्त्रियों का मत है कि प्रत्येक समाज को जनसंख्या को अनेक अवस्थाओं से गुजरना होता है प्रत्येक अवस्था की अपनी विशेषताएं होती हैं विश्व का कोई देश प्रथम अवस्था में है तो कोई द्वितीय कोई तृतीय इस प्रकार भिन्न–भिन्न अवस्थाओं में है।

2.2 माल्थस का जनसँख्या सिद्धांत–

माल्थस ने जनसंख्या के संबंध में अपने विचारों को अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Essay on principle of population its effect the future improvement of the society में प्रस्तुत किया और यह बताया कि यदि जनसंख्या में वृद्धि होती है तो इससे खाद्यान्नों पर दबाव बढ़ेगा यदि खाद्यान्न इससे उत्पन्न आवश्यकता की पूर्ति करने में असमर्थ रहते हैं तो नैसर्गिक अवरोध उत्पन्न होंगे जिसके लिए माल्थस ने निम्नलिखित मान्यताएं प्रस्तुत की थी।

1– भोजन या खाद्यान्न मानव अस्तित्व के लिए आवश्यक है।

2– मानव में विपरीत लिंग में तीव्र उत्कंठा व आकर्षण होता है और यह अपने वर्तमान स्थिति में बना रहता है।

3– कृषि में उत्पादन हास् नियम क्रियाशील होता है।

इन मान्यताओं के आधार पर उन्होंने कहा की जनसंख्या की शक्ति मानव अस्तित्व के लिए पृथ्वी की उत्पादन शक्ति से निश्चित रूप से अधिक रहती है और यदि जनसंख्या में वृद्धि को निवारक अवरोधो द्वारा नहीं रोका गया तो यह कष्ट अथवा परेशानी उत्पन्न करेगा।

माल्थस का मानना था कि मानव में प्राथमिक रूप से संभोग तीव्र इच्छा होती जिससे जनसंख्या गुणात्मक रूप से बढ़ती है यदि इसमें किसी प्रकार की कोई बाधा उत्पन्न ना की गई तो यह प्रत्येक 25 वर्ष में दोगुने स्तर पर पहुंच जाएगी अर्थात इसका गुणात्मक क्रम 1,2,4,8, 16,32, 64, 128, 256,..... इत्यादि के रूप में बढ़ता है जबकि खाद्यान्न आपूर्ति गणितीय रूप से बढ़ती है क्योंकि इसमें उत्पादन हास नियम लागू होता है एवं भूमि की पूर्ति स्थिर है अतः खाद्यान्न आपूर्ति में वृद्धि समान अवधि में अंकगणतीय क्रम 1,2,3,4,5,6,7,8.... इत्यादि रूप में वृद्धि होती है।

उपरोक्त चित्र में खाद्यान्न आपूर्ति को क्षैतिज अक्ष पर जबकि जनसंख्या आपूर्ति को ऊर्ध्वाधर अक्ष पर मापा गया है एम वक्र माल्थस जनसंख्या वक्र कहलाता है जो जनसंख्या वृद्धि और खाद्यान्न आपूर्ति के मध्य संबंध को दर्शाता है यह ऊपर उठता हुआ है अर्थात जैसे–जैसे जनसंख्या में वृद्धि होगी वैसे–वैसे प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता में कमी होती जाएगी इसे यदि माल्थस के शब्दों में व्यक्त किया जाए तो उनका मानना था की "प्रकृति की मेज सीमित अतिथियों के लिए सजी है तथा जो बिना निमंत्रण के आएगा वह निश्चित रूप से भूखा रहेगा"।

माल्थस ने इस अधिक जनसंख्या वृद्धि के नियंत्रण के दो उपाय बताया।

1– निवारक अवरोध

2– नैसर्गिक अवरोध

निवारक अवरोध से तात्पर्य जन्म दर नियंत्रण से था जैसे ब्रह्मचर्य का पालन करना, देर से शादी करना, संयम रखना, दूरदर्शिता आदि क्योंकि माल्थस एक पादरी थे और जनसंख्या नियंत्रण के कृत्रिम उपायों पर इनका विश्वास नहीं था यदि लोग निवारक अवरोध द्वारा जनसंख्या नियंत्रण में असफल हो जाते तो नैसर्गिक अवरोध क्रियान्वित होता है जो कष्ट युद्ध बाढ़, अकाल, महामारी आदि के रूप में उत्पन्न होगा जो जनसंख्या में कमी करके खाद्यान्न आपूर्ति से संतुलन स्थापित करेगा ।

माल्थस मानते हैं कि मनुष्य अपने दुख का स्वयं कारण है क्योंकि मनुष्य निवारक अवरोध अपनाने में असफल रहता है इसी दृष्टिकोण के कारण उन्हें निराशावादी कहकर आलोचित किया जाता है।

2.3.1 माल्थस के जनसँख्या सिद्धान्त की आलोचना–

माल्थस का जनसंख्या सिद्धांत 19वीं शताब्दी और 20वीं शताब्दी में काफी आलोचित हुआ जो निम्नलिखित है।

1– माल्थस मानते थे कि खाद्यान्न अंकगणितीय रूप से बढ़ता है जबकि जनसंख्या गुणात्मक रूप से बढ़ती है जो की 25 वर्षों में अनुभव अध्ययन द्वारा सिद्ध नहीं हुआ है।

2– माल्थस का अति संकुचित दृष्टिकोण था माल्थस केवल इंग्लैंड के स्थानीय दशाओं से प्रभावित हुए जो ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका, अर्जेंटीना जैसे देशो में नए क्षेत्रों के खुलने को नहीं देख सके जहां नई भूमि पर व्यापक रूप से खेती हुई जिससे खाद्यान्न उत्पादन में व्यापक रूप से वृद्धि हुई जिसके परिणाम स्वरुप यूरोपियन महादीप के इंग्लैंड जैसे देश भारी मात्रा में लाभान्वित हुए अर्थात उन्हें खाद्यान्न सस्ते उपलब्ध हुए यह यातायात के साधनों के तीव्र सुधारो का परिणाम था जिसको माल्थस ने पूर्ण रूप से अनदेखा कर दिया था।

3– माल्थस का यह मानना था कि खाद्यान्न अंकगणितीय रूप में बढ़ता है इस मान्यता पर आधारित है कि एक स्थैतिक आर्थिक नियम है जो एक निश्चित समय बिंदु पर अर्थात उत्पादन हास नियम लागू होता है।

4– माल्थस वैज्ञानिक ज्ञान में वृद्धि और नए कृषि आविष्कारों को जो की एक समय अवधि में ही हो सकते हैं यह उसको नहीं समझ सके जिससे खाद्यान्न अंक गणितीय रूप से भी तीव्र रूप में बढ़ा।

5– माल्थस न केवल विकसित देश बल्कि विकासशील देशों में आए परिवर्तनो जैसे की भारत में वर्ष 1966 की हरित क्रांति से गलत सिद्ध हुए थे।

6– माल्थस ने अपने सिद्धांत में जनसंख्या वृद्धि के परिणाम स्वरुप होने वाली श्रम शक्ति में वृद्धि को नजरअंदाज किया ।

7– माल्थस ने जनसंख्या व खाद्यान्न पूर्ति में संबंध स्थापित किया परंतु सही सम्बन्ध किसी देश की जनसंख्या व उसके पास कुल संपत्ति से है।

8– माल्थस ने केवल खाद्यान्न को जीवन के लिए महत्वपूर्ण माना परंतु जीवित रहने के लिए खाद्यान्न ही काफी नहीं है लोग अंडे मांस मछली आदि पर भी निर्भर रहते हैं।

9–विकास में सर्वप्रथम स्वास्थ्य सुविधाओं पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है अतः दूसरी अवस्था में मृत्यु दर गिरती है तथा जन्म दर सापेक्षिक रूप से स्थिर रहती अतः इस समय जनसंख्या बढ़ाने के लिए उत्तरदाई मृत्यु दर भी है जबकि माल्थस जनसंख्या बढ़ाने के लिए केवल जन्म दर को उत्तरदाई मानते थे।

10–प्राकृतिक आपदा केवल उन्ही देशो में नहीं आती जिनमें जनसंख्या अधिक होती है बल्कि उन देशों में भी आती है जिसमें जनसंख्या कम होती है।

11–माल्थस संभोग की इच्छा और बच्चों की इच्छाओं में अंतर नहीं कर पाए उनका मानना था कि सभी में संभोग इच्छाएं समान रूप से होती है जबकि यह व्यक्तियों में भिन्न–भिन्न होती हैं यह उम्र, स्वास्थ्य व मानसिकता पर भी निर्भर करती हैं

12–माल्थस नैसर्गिक नियंत्रण को अव्यवहारिक माना है जबकि व्यक्तियों द्वारा व्यवहारिक रूप से गर्भ निरोधकों का प्रयोग किया जाता है कुछ देशों में जनसंख्या अत्यंत कम अर्थात श्रम शक्ति का अभाव है जो की अपनी जनसंख्या वृद्धि के लिए प्रयासरत अर्थात सभी प्रकार की जनसंख्या वृद्धि खराब नहीं होती है।

2.3.2 माल्थस के जनसँख्या सिद्धान्त का मुल्यांकन–

यद्यपि माल्थस के सिद्धांत में विभिन्न प्रकार की कमियां है परंतु काफी हद तक इसमें सत्यता भी है माल्थस का सिद्धांत पश्चिमी यूरोप और इंग्लैंड में सही नहीं दिखता परंतु उनके सिद्धांत के मूलभूत बातें इन देशों में लोगों ने अपनाई अर्थात पश्चिमी यूरोप और इंग्लैंड में अति जनसंख्या की स्थिति इसलिए नहीं उत्पन्न हुई क्योंकि माल्थस द्वारा इन देशों को अधिक सतर्क कर दिया गया माल्थस के जनसंख्या सिद्धांत के व्यावहारिकता को संपूर्ण पृथ्वी के दो तिहाई भागों जो अल्पविकसित देशों द्वारा आच्छादित में देखा जा सकता है इन अल्पविकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि खाद्यान्न आपूर्ति की अपेक्षा तेजी से बढ़ रही है इन देशों में भूख द्वारा मृत्यु की खबरों तथा अन्य प्रकार के प्राकृतिक आपदाएं जैसे बाढ़, युद्ध, सुखा, भूकंप आदि से लाखों व्यक्तियों की मृत्यु होती है।

माल्थस के अनुसार "गरीबी का कारण गरीब स्वयं है" यह बहुत सत्य है क्योंकि इन देशों में गरीब तबका जनसंख्या वृद्धि का बहुत बड़ा कारण है इस प्रकार माल्थस सिद्धांत पूर्णतया अल्प विकसित देशों में लागू होता है जहां तक भारत की बात है माल्थस का सिद्धांत यहाँ भी लागू होता है यदि्प भारत खाद्य संकट से बाहर आ गया है भारत में जन्म दर ऊंची तथा मृत्यु दर नीची है जिससे जनसंख्या वृद्धि और इस अति जनसंख्या का निवारण नैसर्गिक अवरोधों द्वारा होता है भारत में अधिक जनसंख्या वृद्धि स्थिर बनाएं रखने का प्रयास किया है भारत द्वारा

जनसंख्या को नियंत्रित करने के लिए परिवार नियोजन तथा परिवार कल्याण कार्यक्रम अपनाये गये है जिसका मुख्य उद्देश्य गरीबी निवारण व बेरोजगारी दूर करना है।

2.4 अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धांत–

अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धांत प्रोफेसर सिजविक का विचार था की जनसंख्या की समस्या केवल संख्या या आकार की समस्या नहीं है बल्कि यह कुशलता तथा न्याय पूर्ण वितरण की समस्या है इस नवीन दृष्टिकोण के आधार पर अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया यह सिद्धांत किसी देश के राष्ट्रीय आय तथा जनसंख्या को संबोधित कर पता लगाने का प्रयास करता है कि अधिकतम आयु या उत्पादन की दृष्टि से जनसंख्या का आकार अनुकूलतम है अथवा नहीं यह सिद्धांत जनसंख्या में वृद्धि की दर या कारणों पर प्रकाश नहीं डालता बल्कि है यह बताने का प्रयास करता है की उत्पत्ति के साधनों तथा जनसंख्या का अनुपात अनुकूलतम या सर्वोत्तम है अथवा नहीं इस प्रकार माल्थस का सिद्धांत एक सामान्य सिद्धांत है जो हर देश पर समान रूप से लागू होता है जबकि अनुकूलतम सिद्धांत एक विशिष्ट सिद्धांत है जो किसी भी देश की आर्थिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उसकी जनसंख्या संबंधी समस्या का अध्ययन करता है इस प्रकार माल्थस के जनसंख्या सिद्धांत के अपेक्षा अनुकूलतम सिद्धांत अधिक यथार्थ परक है सर्वप्रथम एडवर्ड वेस्ट ने वर्ष 1815 में अपने ेंल वद जीम ंचचसपबंजपवद वि बंचपजंस जव संदक नामक लेख में यह विचार व्यक्त किया की जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ श्रम में विशिष्टता आ जाती है जिससे उत्पादन में वृद्धि होती है इस विचार को इस सिद्धांत का मात्र संकेत ही समझना चाहिए।

मान्यताएं–

यह सिद्धांत निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है।

1– एक निश्चित एवं दिए हुए समय के लिए अर्थव्यवस्था में पूंजी, तकनीक तथा प्राकृतिक साधनों में कोई परिवर्तन नहीं होता अर्थात जनसंख्या में वृद्धि होने पर प्रारंभ में उत्पत्ति वृद्धि नियम क्रियाशील होता है लेकिन एक सीमा के बाद उत्पत्ति हास नियम क्रियाशील होने लगता है ।

2– जनसंख्या में वृद्धि के साथ–साथ कार्यशील जनसंख्या भी उसी अनुपात में बढ़ती है लोगों की आदत तथा पसंद नहीं बदलती है श्रम के कार्य करने के घंटे समान रहते हैं अर्थात उनमें किसी प्रकार को कोई बदलाव नहीं होता है।

2.5 अनुकूलतम जनसंख्या की परिभाषा–

अनुकूलतम जनसंख्या का तात्पर्य उस जनसंख्या से है जो किसी देश में एक निश्चित समय पर दिए गए साधनों का अधिकतम उपभोग तथा उत्पादन के लिए आवश्यक है जब देश की जनसंख्या का आकार आदर्श रहता है तो प्रति व्यक्ति आय अधिकतम होती है इस प्रकार एक विशेष समय परिस्थितियों में वही जनसंख्या सर्वोत्तम होती है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की आय अधिकतम होती है ।

1– डाल्टन के अनुसार "अनुकूलतम जनसंख्या वह होती है जो प्रति व्यक्ति अधिकतम आय प्रदान करती है"।

2– प्रोफेसर बोल्डिंग के अनुसार "वह जनसंख्या जिस पर जीवन स्तर अधिकतम होता है अनुकूलतम जनसंख्या कहलाती है"।

3– प्रोफेसर रॉबिंसन के अनुसार "अनुकूलतम जनसंख्या वह है जिसमें अधिकतम उत्पादन संभव होता है"।

4– कार सांडर्स के अनुसार "अनुकूलतम जनसंख्या वह है जो अधिकतम आर्थिक कल्याण उत्पन्न करती है"।

5– हिक्स अनुसार "अनुकूलतम जनसंख्या, जनसंख्या का वह स्तर है जिस पर प्रति व्यक्ति उत्पादन अधिकतम होता है।

6–सिजविक के अनुसार "अनुकूलतम जनसंख्या का वह स्तर है जहां पर औसत सुख अधिकतम हो"।

7–एरिक रोल के अनुसार "अनुकूलतम जनसंख्या किसी देश की वह जनसंख्या है जो अन्य साधनों की दी हुई मात्रा के सहयोग से अधिकतम उत्पादन कर सके"।

2.6 अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की व्याख्या–

अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धांत पैमाने के प्रतिफल पर आधारित है इसमे जनसंख्या में वृद्धि तथा कार्यकारी जनसंख्या मध्य फलात्मक संबंध होता है किसी देश की प्राकृतिक साधनों का समुचित ढंग से विदोहन करने के लिए यह आवश्यक होता है कि जन शक्ति का अन्य उत्पादन के साधनों से संबंध निश्चित अनुपात में बना रहे यदि किसी देश की जनसंख्या कम है तो कार्यशील जनसंख्या भी कम होगी।

अतः देश के अन्य उत्पादन के साधनों का प्रयोग समुचित रूप से ना हो सकेगा जिससे प्रति व्यक्ति औसत उत्पादन और प्रति व्यक्ति आय कम होगी जब जनसंख्या बढ़ती है और इसके फलस्वरुप कार्यशील जनसंख्या बढ़ती है तो इससे श्रम विभाजन बढ़ता है तथा देश के साधनों का अच्छी तरह से प्रयोग हो पता है और प्रति व्यक्ति आय बढ़ने लगती है अन्य शब्दों में प्रारंभ में जनसंख्या वृद्धि के साथ श्रम की सीमांत उत्पादकता और औसत उत्पादकता बढ़ेगी अर्थात उत्पादन वृद्धि नियम लागू होता है इसके बाद एक बिंदु प्राप्त होने के पश्चात जिस पर जनसंख्या का उत्पत्ति के अन्य साधनों के साथ इष्टतम संबंध हो जाएगा।

यहां प्रति व्यक्ति औसत उत्पादन अर्थात प्रति व्यक्ति आय अधिकतम होगी यह अनुकूलतम जनसंख्या का बिंदु होगा यह स्थिर प्रतिफल नियम की व्यवस्था है यदि जनसंख्या इसके बाद भी बढ़ती है तो अनुकूलतम सहयोग भंग हो जाता है फलस्वरुप जनसंख्या की प्रत्येक वृद्धि के साथ श्रम का सीमांत उत्पादन तथा औसत उत्पादन घटता जाएगा अर्थात प्रतिफल हास नियम क्रियाशील होता जिसमें की प्रति व्यक्ति आय भी घटने लगेगी इस प्रकार से निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि अनुकूलतम जनसंख्या का स्तर या बिंदु वह है जहां प्रति व्यक्ति औसत आय अधिकतम हो यदि जनसंख्या का आकर इस स्तर से कम है तो इस नई जनसंख्या कहा जाएगा और जनसंख्या का आकर इस बिंदु से अधिक होने पर इसे अति जनसंख्या की स्थिति कहीं जाएगी।

जनसंख्या का अनुकूलतम आकर तथा न्यूनता या जनाधिक्य मापने के लिए प्रसिद्ध अर्थशास्त्र डाल्टन ने एक सूत्र का प्रतिपादन किया

$$M=A-O/O$$

M = समायोजन अभाव की मात्रा

A = वास्तविक जनसंख्या

O = अनुकूलतम जनसंख्या

समायोजन अभाव से अभिप्राय है कि वास्तविक जनसंख्या अनुकूलतम जनसंख्या से कितनी कम या अधिक है यदि ड धनात्मक है तो जनाधिक्य को बताता है ड ऋणात्मक है तो

जनसंख्या में कमी अथवा जन अभाव को प्रदर्शित करता है यदि ड का मान शून्य के बराबर है तो वास्तविक एवं अनुकूलतम जनसंख्या बराबर होगी।

2.6 अनुकूलतम जनसंख्या के संदर्भ में डाल्टन एवं रॉबिंसन के विचार–

डाल्टन ने अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत को प्रति व्यक्ति आय से संबद्ध किया उनके अनुसार अनुकूलतम जनसंख्या वह है जो प्रति व्यक्ति अधिकतम आय प्रदान करती है इन शब्दों से स्पष्ट होता है कि उन्होंने जनसंख्या का अध्ययन प्रति व्यक्ति अधिकतम आय के दृष्टिकोण से किया और अपने अध्ययन में व्यक्ति तथा आय दोनों को महत्व दिया डाल्टन के अनुसार अधिकतम औसत आय तभी प्राप्त होगी जब उत्पादन के साधनों का समायोजन अनुकूलतम अनुपात में हो इस अनुकूलतम अनुपात में किसी दशा में विचलन औसत आय में कमी ला देगा इसमें डाल्टन के सिद्धांत में कल्याण के लिए अप्रत्यक्ष रूप में बात की गई क्योंकि यह आय वितरण से संबंधित इन्ही उपभोग की बात की है।

रॉबिंसन ने अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत के प्रतिपादन में डाल्टन से भिन्न दृष्टिकोण अपनाया है उनके अनुसार जनसंख्या वह है जिसमें अधिकतम उत्पादन संभव होता है इस तरह रॉबिंसन ने प्रति व्यक्ति आय के स्थान पर अपने विश्लेषण में अधिकतम कुल उत्पादन को विशेष महत्व दिया रॉबिंसन के अनुसार अनुकूलतम जनसंख्या तभी होगी जब प्रत्येक व्यक्ति को जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त आय प्राप्त होती है रॉबिंसन का विचार है कि जब तक देश प्रत्येक व्यक्ति लाभदायक रोजगार में नहीं लगा हुआ है अर्थात जब तक कोई व्यक्ति समाज को इतना उत्पादन करने में सहायता देता है जितना कि समाज को व्यक्ति के उपभोग पर व्यय करना पड़ता है तब तक देश में जनसंख्या वृद्धि का कोई भय नहीं है।

2.7 अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की विशेषताएं–

अनुकूलतम जनसंख्या का बिंदु गतिशील होता है जिन साधनों को दिया हुआ मान लिया गया है उसमें किसी में भी परिवर्तन होने पर अनुकूलतम बिंदु पूर्णतया परिवर्तित हो जाता है उदाहरण के रूप में देश में वैज्ञानिक प्रगति, तकनीकी विकास, प्राकृतिक साधनों की खोज, उत्पादन की नई नीतियों के अनुसंधान, से प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि होगी और अनुकूलतम बिंदु ऊपर को खिसक जाएगा अनुकूलतम जनसंख्या के बिंदु की गतिशील प्रकृति होती है अर्थात उत्पादन की तकनीक और वैज्ञानिक विकास की एक दी हुई स्थिति यदि औसत उत्पाद वक्र अथवा प्रति व्यक्ति आय है जिस पर अनुकूलतम जनसंख्या स्तर यदि ड है उत्पादन की विधियो में सुधार तथा अनुसंधान के फलस्वरुप उत्पादन में वृद्धि होती है और प्रति व्यक्ति आय ड से बढ़कर ड1

हो जाती है जबकि यदि पुनः उत्पादन विधियो में सुधार या अनुसंधान होता है तो अनुकूलतम जनसंख्या स्तर व्ड2 हो जाता है और प्रति व्यक्ति आय बढ़कर ड2 हो जाता है जब भी उत्पादन की विधियों में सुधार या अनुसंधान होता है तो पहले वाली अनुकूलतम जनसंख्या अब अल्प जनसंख्या हो जाती है अनुकूलतम जनसंख्या परिणात्मक ही नहीं गुणात्मक विचार भी है कुछ अर्थशास्त्रियों जिनमें प्रोफेसर बोंल्डिंग प्रोफेसर पेनरोज की प्रमुख धारणा है कि अनुकूलतम जनसंख्या एक परिणात्मक विचार ही नहीं बल्कि गुणात्मक विचार भी है यही कारण है की बोल्डिंग प्रति व्यक्ति आय के स्थान पर जीवन स्तर शब्द का प्रयोग करते हैं संभवत जब उत्पादन तथा आय बढ़ती है तो लोगों के आर्थिक कल्याण में भी वृद्धि होगी जिससे उनका जीवन स्तर भी ऊंचा होने लगता है परंतु शिक्षा, स्वास्थ्य आदि गुणात्मक बातों को सम्मिलित करने से किसी समय पर एक देश के लिए सही रूप से अनुकूलतम जनसंख्या को ज्ञात करना अत्यंत कठिन हो जाता है।

2.8 अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की आलोचना–

अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत के आलोचको मानना है कि यह सिद्धांत अनुचित है जो की कार्य एवं परिणाम के संबंधों में समुचित प्रकाश नहीं डालता है यह इस संदर्भ में है की जनसंख्या किस प्रकार और क्यों बढ़ती है अथवा इसके बढ़ने का क्या नियम है इस सिद्धांत के निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि कारण एवं परिणाम में संबंध हो यह सिद्धांत व्यवस्था जनसंख्या विवेचन में अनुकूलतम के प्रत्यय का प्रयोग मात्र है।

यह सिद्धांत आय के वितरण पक्ष पर ध्यान नहीं देता है इस सिद्धांत पर भी आलोचना की जाती है कि राष्ट्रीय आय के वितरण पक्ष की अपेक्षा करता है केवल उत्पादन पक्ष का ही ध्यान देता है प्रति व्यक्ति अधिकतम औसत आय का तब तक कोई महत्व नहीं है जब तक राष्ट्रीय आय का सामान वितरण नहीं होता यदि कुल राष्ट्रीय आय कुछ गिने हुए धनी व्यक्तियों के हाथों में केंद्रित हो जाए तो आर्थिक कल्याण में वृद्धि नहीं हो सकती है।

अनुकूलतम जनसंख्या ज्ञात करना कठिन है–

अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की इस बात पर भी आलोचना की जाती है कि निश्चित अवधि में अनुकूलतम जनसंख्या ज्ञात करना कठिन है किसी देश में अनुकूलतम जनसंख्या स्तर के बारे में कोई प्रमाण नहीं मिलता है यदि उसकी माप इसलिए संभव नहीं है क्योंकि अनुकूलतम जनसंख्या से तात्पर्य है देश के लिए परिणात्मक तथा गुणात्मक आदर्श जनसंख्या में जनसंख्या का न केवल शारीरिक गठन, ज्ञान बल्कि उसकी श्रेष्ठतम आयु संरचना भी सम्मिलित रहती है

यह विचार परिवर्तित होते रहते हैं और वातावरण से संबंध है इस प्रकार जनसंख्या के अनुकूलतम स्तर की अवधारणा स्पष्ट रहती है।

स्थैतिक दृष्टिकोण–

इस सिद्धांत की मान्यताओं पर स्थिति होने का भी आरोप लगाया जाता है क्योंकि यह सिद्धांत यह मानकर चलता है कि किसी समय विशेष पर अनुकूलतम जनसंख्या मालूम करने के लिए प्राकृतिक साधन तकनीकी ज्ञान इत्यादि को स्थिर समझ लिया जाए परंतु वास्तविक संसार स्थिर नहीं है इस सिद्धांत का कोई व्यवहारिक उपयोग नहीं है अर्थात यह सिद्धांत आर्थिक नीति निर्धारण में सहायक नहीं है प्रति व्यक्ति आय की माप में कठिनाई होती है इन संबंध के आंकड़े प्रायः गलत भ्रमोत्पादक तथा अविश्वसनीय होते हैं जो अनुकूलतम जनसंख्या की धारणा के प्रति संदेह उत्पन्न करते है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत का जननांकीय के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है इस सिद्धांत के प्रतिपादन से लोगों के उपर से माल्थस का भूत कम हो गया इस सिद्धांत ने यह स्पष्ट किया जनसंख्या की प्रत्येक वृद्धि हानिकारक नहीं होती यदि जनसंख्या वृद्धि से प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है तो उसका बढ़ाना लाभदायक है यदि जनसंख्या वृद्धि से प्रति व्यक्ति आय में कमी होती तो उसका बढ़ाना हानिकारक है अतः इस सिद्धांत को ध्यान में रखकर जनसंख्या वृद्धि को प्रोत्साहित अथवा हतोत्साहित किया जा सकता है।

2.9 जननांकीय संक्रमण सिद्धांत–

जननांकीय संक्रमण सिद्धांत जनसंख्या के विकास का आधुनिक सिद्धांत है जिसे विश्व के अधिकांश अर्थशास्त्रियों व जनसंख्या शास्त्रियों का समर्थन मिला है यह सिद्धांत यूरोप के अनेक देशों के आंकड़ों पर आधारित है यह सरल तर्कसंगत है तथा सभी विद्वानों में सर्वाधिक वैज्ञानिक प्रतीक होता है वर्तमान जनसंख्या शास्त्रियों का मत है कि प्रत्येक समाज को जनसंख्या को अनेक अवस्थाओं से गुजरना होता है प्रत्येक अवस्था की अपनी विशेषताएं होती हैं विश्व का कोई देश प्रथम अवस्था में है तो कोई द्वितीय कोई तृतीय इस प्रकार भिन्न–भिन्न अवस्थाओं में है जिसे विभिन्न विचारों द्वारा भिन्न–भिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है यही कारण है जननांकीय संक्रमण सिद्धांत को सी.पी.ब्लैकर ने पांच अवस्थाओं में विभाजित किया है जबकि थॉमसन, नोटेस्टीन एवं बोग ने केवल तीन अवस्था में विभाजित किया है जबकि काउगीर ने पांच अवस्थाएं बताई हैं एवं कार्ल सांडर्स ने 4 अवस्थाओं में विभाजित किया है।

सी.पी.ब्लैकर के अनुसार –

प्रथम अवस्था उच्च स्थिर अवस्था–

जिसमें जन्म दर भी अधिक होता है व मृत्यु दर भी अधिक होने से जनसंख्या वृद्धि बहुत कम होती है वर्ष 1930 से पूर्व भारत व चीन में यह स्थिति विद्यमान थी।

द्वितीय अवस्था तीव्र वृद्धि –

जिसमें जन्म दर तो न घाटी हो किंतु मृत्यु दर में तीव्र दर से कमी हो जाने से शुद्ध जनसँख्या वृद्धि की दर बहुत अधिक हो।

तृतीय अवस्था शनै–शनै वृद्धि काल–

इस अवस्था में मृत्यु दर के घटने के बाद जन्म दर घटने लगती है परंतु जन्म दर उतनी नहीं घटती जितनी मृत्यु दर घट जाती है।

चतुर्थ अवस्था नीची स्थिरता की अवस्था–

इस अवस्था में मृत्यु दर अपनी न्यूनतम स्थिति में होती है किंतु जन्म दर भी घटे ऐसी स्थिति में आ जाती है कि पुनरुत्पादन आयु वर्ग की स्त्रियां केवल अपनी संख्या के बराबर ही लड़कियों को जन्म देती हैं अतः जनसंख्या प्रतिस्थापित हो जाती है।

पांचवी अवस्था घटती जनसंख्या–

जब जन्म दर घटते–घटते मृत्यु दर से भी कम हो जाए तो शुद्ध जनसँख्या वृद्धि दर ऋणात्मक हो जाती है

थॉमसन नोटेस्टिन और बोग ने इन पांच अवस्थाओं के स्थान पर तीन अवस्थाओं का विचार व्यक्त किया

प्रथम परिवर्तन से पूर्व की अवस्था–

यह अवस्था ब्लैकर की पहली अवस्था से मिलती–जुलती है इस अवस्था में ना तो जन्म दर ना हीं मृत्यु दर पर नियंत्रण रहता है अतः तीव्र जनसंख्या वृद्धि की संभावनाएं रहती हैं

दूसरी अवस्था–

इस अवस्था में जन्म दर और मृत्यु दर दोनों तीव्र दर से घटती हैं जन्म दर पहले तो धीरे–धीरे घटती है फिर तेजी से घटने लगती है देश धीरे–धीरे तीसरी दशा में पहुंच जाता है

बोग ने इसको तीन अन्य उप भागों पहले मध्य और बाद की अवस्था में बांटा जो की ब्लैकर की दूसरी, तीसरी, चौथी अवस्थाओं से मेल खाती हैं परिवर्तन के बाद की अवस्था ब्लैकर की अंतिम अवस्था के समान है जिसमें जन्म दर और मृत्यु दर दोनों ही नीची रहती है गर्भनिरोधक का ज्ञान सभी को होता है एवं उनका उपयोग जनसंख्या के संतुलन को स्थापित करने में किया जाता है जनसंख्या वृद्धि की दर या तो शून्य होती है या उसके आसपास रहती है।

डोनाल्ड ऑनलाइन काउगिल का मत–

काउगिल के अनुसार उपयुक्त वर्गीकरण में एक अवस्था और होनी चाहिए जिसमें जन्म दर नीची या स्थिर रखते हुए मृत्यु दर से ऊंची ही रहती है जिसके कारण जनसंख्या में महत्वपूर्ण वृद्धि होती है या जिसमें जन्म दरे एवं मृत्यु दर क्रम से समय–समय पर अधिक होती है और कभी जनसंख्या को स्थिर और कभी उसमें वृद्धि करता है इस अवस्था का अनुमान उसने भविष्य में जनसंख्या विकास के तरीकों से लगाया यह अवस्था अब तक की जनसंख्या अवस्था से भिन्न है ।

काउगिल ने जनसंख्या अवस्था को पांच भागों में विभाजित किया

प्राथमिक चक्र–

इस अवस्था में जनसंख्या माल्थस के अनुसार चलती है या जन्म दर ऊंची रहती है और मृत्यु दर घटती बढ़ती रहती है इस घटने– बढ़ने के कारण प्राकृतिक प्रकोप होते हैं जो कृषि को प्रभावित करते है जब कभी प्राकृतिक कारणों से कृषि की स्थिति अच्छी रहती है या महामारियों या अन्य प्राकृतिक प्रकोपों नहीं होते हैं तो मृत्यु दर घट जाती है लेकिन कृषि में भी अच्छी बुरी उपज के चक्र चलते रहते हैं इसलिए कृषि उपज कम होने या महामारियों के कारण पुनः मृत्यु दर बढ़ जाती है जिससे जनसंख्या कम होने लगती है भारत में वर्ष 1910 तक यही चक्र चला चीन में भी जनसंख्या इसी अवस्था से गुजरी यूरोप के थॉमसन का मत है कि पूर्व औद्योगिक कल में मृत्यु दर जन्म दर से थोड़ी कम रहती है मृत्यु दर से हमेशा अल्पकालीन परिवर्तन होते रहते हैं और पूर्व औद्योगिक वर्षों में जनसंख्या दीर्घकाल तक स्थिर बनी रहती है।

आधुनिक चक्र–

इस अवस्था में जन्म और मृत्यु दर दोनों गिरती है परंतु जन्म दर से मृत्यु दर अधिक तीव्रता से गिरती है फलतः जनसंख्या बढ़ने लगती है जब दोनों दरे समान रूप से गिरती है तब जनसंख्या स्थिर हो जाती है इस अवस्था को संक्रमण काल कहा जाता है।

भावी चक्र–

इस अवस्था में मृत्यु दर कम हो जाते हैं तथा जन्म दरों में ही उच्चावचन हुआ करते हैं जिसके परिणाम स्वरुप बच्चों की बाढ़ सी आ जाती है तथा जन्म दर कम होने से स्थिति पुनः सामान्य हो जाती है काउगिल का कहना है कि भविष्य में यह चक्र हमेशा चलता रहेगा।

संभावित चक्र–

संभावित चक्र की अवस्था दूसरी अवस्था से बिल्कुल विपरीत है इसमें मृत्यु दर में जन्म दर के अपेक्षा अधिक वृद्धि होती है वैसे वृद्धि दोनों अवस्थाओं में होती है लेकिन रॉबर्टदेयंश ने स्पष्ट किया की जननांकीय शास्त्र के इतिहास में यह अवस्था कभी नहीं आई।

दीर्घकालीन जनसंख्या चक्र–

काउगिल के अनुसार जनसंख्या वक्र के रूप में बढ़ती है जन्म वृद्धि साधारणतया मृत्यु दर के कम होने पर अथवा जन्म दर में वृद्धि होने की स्थिति में होती है और इसके विपरीत जनसंख्या में कमी आती है संक्षेप में जनसंख्या चक्र की परिभाषा काउगिल ने ही दी जनसंख्या वृद्धि का चक्र प्राकृतिक जनसंख्या वृद्धि से या तो जन्म दर में वृद्धि से होता है या फिर मृत्यु दर में कमी से आता है और जन्म दर पुनः घट जाती है या मृत्यु दर बढ़ जाती है तो यह चक्र समाप्त हो जाता है।

कार्ल सैक्स का विचार है कि यह चार अवस्थाओं में विभाजित होता है ।

पहली अवस्था–

यह आर्थिक रूप से पिछड़े हुए देश में पाई जाती है इसमें जन्म एवं मृत्यु दर दोनों ही ऊच्च शिखर पर पाई जाती है इसलिए जनसंख्या में वृद्धि नहीं होती ।

दूसरी अवस्था–

यह प्रायः विकासशील देश में पाई जाती है जहां की सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं चिकित्सा की सुविधा उपलब्ध होने के कारण मृत्यु दर गिरती है मृत्यु दर गिरने के कारण एवं जन्म दर पूर्वत रहने के कारण जनसंख्या में वृद्धि बहुत तेजी से होती है।

तीसरी अवस्था–

उन राष्ट्रों में पाई जाती है जहां विकास पर्याप्त भाग में हो चुका है इस अवस्था में जन्म दर गिरती है मृत्यु दर स्थिर हो जाती है जिससे जनसंख्या इस देश में भी बढ़ती है यह विकास की अगली अवस्था है।

चौथी अवस्था–

साधारणतया विकसित राष्ट्रों में पाई जाती है इस अवस्था में जन्म दर व मृत्यु दर एक सी होती है परंतु प्रथम दोनों अवस्थाओं में नीची रहती हैं जिससे जनसंख्या स्थिति रहती है।

कार्ल सैक्स के अनुसार जनसंख्या की दूसरी और तीसरी अवस्थाएं जनसंख्या विस्फोट की है क्योंकि जनसंख्या में वृद्धि इसी काल में होती है पहले और चौथी अवस्था में जनसंख्या समान रहती

2.10.1 जननांकीय संक्रमण सिद्धांत की आलोचना

यह सिद्धांत जनसंख्या परिवर्तन की विभिन्न अवस्थाओं में लगने वाले समय के बारे में कोई प्रकाश नहीं डालता यह सिद्धांत आर्थिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं तथा जननांकीय संक्रमण के बीच किसी संबंध की चर्चा नहीं करता जबकि नोटेसटिन का विचार है कि आर्थिक विकास की अवस्थाएं और जननांकीय संक्रमण साथ–साथ चलते हैं आर्थिक विकास एवं जननांकीय संक्रमण दोनों एक दूसरे से प्रभावित होते हैं आर्थिक विकास के फल स्वरुप जनसंख्या संक्रमण नहीं होता बल्कि जनसंख्या संक्रमण से भी आर्थिक विकास होता है प्रथम अवस्था में जन्म दर ऊंचे स्तर की स्थिति में रहती है परंतु मृत्यु दर में उतार चढाव होते रहते हैं अतः इस अवस्था में जनसंख्या परिवर्तनशील होती है इस सिद्धांत की पुष्टि आंकड़ों के आधार पर नहीं की जा सकती अतः यह सांख्यिकी विश्लेषण के लिए उपयुक्त नहीं है।

2.10.2 जननांकीय संक्रमण सिद्धांत का मूल्यांकन–

जनसंख्या के संक्रमण सिद्धांत की विवेचना एवं विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि यह सिद्धांत जनसंख्या वृद्धि का एक सर्वमान्य व्यावहारिक यथार्थवादी एवं वैज्ञानिक सिद्धांत है यह सिद्धांत उन सब साधनों संस्थागत आर्थिक सामाजिक एवं जैविकीय पर विचार करता है जो जनसंख्या वृद्धि दर को प्रभावित करते है यह सिद्धांत माल्थसवादी सिद्धांत से श्रेष्ठ है क्योंकि यह खाद्य आपूर्ति पर जोर नहीं देता ना ही निराशावादी दृष्टिकोण ही अपनाता है यह अनुकूलतम सिद्धांत से भी श्रेष्ठ है जो जनसंख्या वृद्धि के लिए एकमात्र प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि पर बल देता है तथा जनसंख्या को प्रभावित करने वाले अन्य कारकों की अपेक्षा करता है जैविकीय सिद्धांत भी एकांगी है।

जननांकीय सिद्धांत में जननांकीय संक्रमण सिद्धांत इसलिए सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि यह यूरोप के विकसित देशों की जनसंख्या वृद्धि की वास्तविक प्रवृत्तियों पर आधारित है यह सिद्धांत विकसित देशों के साथ–साथ विकासशील देशों पर सामान्य रूप से लागू होता है अफ्रीका महाद्वीप के कुछ बहुत पिछड़े देश अभी भी प्रथम अवस्था में है तथा विश्व के अन्य सभी विकासशील देश दूसरी अवस्था में है यूरोप के लगभग सभी देश प्रथम दो अवस्थाओं से गुजर कर तीसरी अवस्था एवं चौथी अवस्था पर पहुंच चुके हैं इस तरह यह सिद्धांत व्यावहारिक रूप से पूरी दुनिया में

लागू होता है इस सिद्धांत के आधार पर अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक जननांकीय मॉडलों का विकास किया है जिससे विकासशील देश अंतिम अवस्था में पहुंचे कर आत्मनिर्भर हो गए हैं इसी तरह एक का मॉडल कार्ल होवर मॉडल भारत के लिए बनाया गया जो दूसरे विकासशील देशों पर भी लागू किया जा रहा है।

2.11 सारांश–

जनसंख्या सिद्धांतो का विकासशील देशों पर सार्थकता के प्रभाव पर कुछ विद्वानों ने प्रश्न चिन्ह लगाए हैं और यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि जिन सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों से विकसित देश गुजर चुके हैं वह आज के विकासशील देशों की परिस्थितियों से भिन्न है उनका कहना है कि विकसित देशों में मृत्यु दर में कमी धीरे–धीरे या दीर्घकालिक समय में आई जबकि आधुनिक विकासशील देशों में मृत्यु दर में कमी शीघ्रता से आई विकसित देशों में मृत्यु में कमी विकास के कारण आई जबकि विकासशील देशों में मृत्यु दर की कमी विकास से कोई संबंध नहीं है विकसित देशों में मृत्यु दर में कमी आने के साथ–साथ ही जन्म दर में कमी आई परंतु विकासशील देशों में मृत्यु दर में कमी आने के बहुत वर्षों बाद भी जन्म दर में कोई विशेष कमी नहीं आ पाई

विकासशील देशों में जनसंख्या का जितना अधिक घनत्व है उतना विकसित देशों में नहीं है विकसित देश अपने प्रारंभिक चरण में उतने अमीर नहीं थे जितने कि विकासशील देश है 18वीं शताब्दी के अंतरराष्ट्रीय प्रवास के जितने अवसर विद्यमान थे उतने 20वीं शताब्दी में आज कोई देश अपनी जनसंख्या के समाधान हेतु दूसरे देश की भूमि का सहारा नहीं लेता इसी तरह यह कहा जा सकता है कि यह अनिवार्य नहीं है कि ऐसा प्रत्येक विकासशील देश जननांकीय संक्रमण की उन्ही अवस्थाओं से गुजरेगा जिससे विकसित देश गुजर चुके हैं

2.12 बोध प्रश्न–

1– माल्थस की जनसंख्या सिद्धांत से आप क्या समझते हैं ?

2– माल्थस के जनसंख्या सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

3– माल्थस के जनसंख्या सिद्धांतों का मूल्यांकन कीजिए।

4– अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत से आप क्या समझते हैं?

5– अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की परिभाषा दीजिए ।

6– अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की व्याख्या कीजिए ।

7– अनुकूलतम जनसंख्या के संदर्भ में डाल्टन एवं रॉबिंसन के विचारों का उल्लेख कीजिए।

8– अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए ?

9– अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए?

10– जननांकीय संक्रमण सिद्धांत से आप क्या समझते हैं ?

11– जननांकीय संक्रमण सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

12– जननांकीय संक्रमण सिद्धांत का मूल्यांकन कीजिए।

2.13 कुछ उपयोगी पुस्तके–

आर्थिक विकास एवं नियोजनः एस.के. मिश्रा एवं बी.के. पुरी, हिमालय पब्लिशिंग हाउस

विकास और नियोजन का अर्थशास्त्रः एम.एल. झींगन

विकास और नियोजन का अर्थशास्त्रः एम. तनेजा, एम्.आर मायर

आर्थिक विकास एवं नियोजनः साहित्य भवन पब्लिकेशन

शहरी नियोजन सिद्धांत और व्यवहारः एम. प्रताप राव

क्षेत्रीय नियोजन और विकासः आर.सी. चंदन

विकास और नियोजन का अर्थशास्त्रः लक्ष्मी नारायण अग्रवाल

क्षेत्रीय विकास और नियोजनः जानकी जीवन

विकास और नियोजन की आधुनिक शिक्षाः जे.सी. अग्रवाल

विकास एवं नियोजन का भारतीय अनुभवः सुखमय चक्रवर्ती

ग्रामीण विकास नियोजनः आर.एन. अग्रवाल

एम.ए.ई,सी. 107

खण्ड–4

ईकाई– 3

भारत में जनसँख्या का ग्रामीण क्षेत्रो से नगरो की ओर पलायन के कारण एवं उपाय

इकाई की रूप रेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 पलायन का अर्थ

3.3 पलायन के प्रकार

3.4 ग्रामीण पलायन के कारण

3.5 भारत में ग्रामीण जनसंख्या के पलायन की स्थिति

3.6 ग्रामीण पलायन सम्बन्धी अनुमान

3.7 भारत में पलायन नियंत्रण सम्बन्धित प्रयास

3.8 ग्रामीण पलायन नियंत्रण के सुझाव

3.9 सारांश

3.10 बोध प्रश्न

3.11 उपयोगी पुस्तके

3.0 उद्देश्य –

1–प्रस्तुत इकाई में हम पलायन के अर्थ के बारे में जानेंगे।

2–प्रस्तुत इकाई में हम पलायन के प्रकारो के बारे में अध्ययन करेंगे।

3–प्रस्तुत इकाई में हम ग्रामीण पलायन के प्रमुख कारणों का अध्ययन करेंगे।

4–प्रस्तुत इकाई में हम भारत में ग्रामीण जनसंख्या के पलायन की स्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

5–प्रस्तुत इकाई में हम भारत में ग्रामीण पलायन संबंधी अनुमान का अध्ययन करेंगे।

6–प्रस्तुत इकाई में हम भारत में पलायन नियंत्रण संबंधित प्रयासों का अध्ययन करेंगे।

7–प्रस्तुत इकाई में हम ग्रामीण जनसंख्या नियंत्रण के सुझावों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

3.1 प्रस्तावना –

भारत में ग्रामीण क्षेत्रो से जनसँख्या का नगरो की ओर पलायन का मुख्य कारण रोजगार का अभाव है क्योंकि कृषि ग्रामीण क्षेत्र के सभी लोगों को रोजगार प्रदान नहीं कर पाती है जिससे क्षेत्रीय विकास की असमानताए लोगों को ग्रामीण क्षेत्रो से शहरी क्षेत्रों में स्थानांतरित होने के लिए विवश करती है भारत में जनसंख्या का ग्रामीण क्षेत्र से नगरीय क्षेत्रों में पलायन एक जटिल आधारभूत सामाजिक प्रक्रिया है जिसकी स्पष्ट रूप से व्याख्या करना कठिन है यह एक बहूआयामी में घटना है जिसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव आर्थिक विकास, सामाजिक विकास, जनशक्ति नियोजन आदि पर पड़ता है जिसके कारण उद्देश्यों में भिन्नता पाई जाती है।

3.2 पलायन का अर्थ–

पलायन से अभिप्राय एक स्थान से दूसरे स्थान तक लोगों की आवाजाही से है यह एक छोटी या लंबी दूरी के लिए अल्पकालिक या स्थाई एवं स्वैच्छिक या मजबूरी बस अंतर्देशीय या अंतरराष्ट्रीय प्रवास से है अर्थात रोजगार एवं अन्य मुलभूत आवश्यकताओं का अभाव जैसे शैक्षणिक सुविधाओं की कमी के कारण भी लोग शहरी क्षेत्र की ओर पलायन करते हैं राजनीतिक कारणों और अंतरजातीय संघर्ष के कारण भी लोग अपने घरों से दूर चले जाते हैं गरीबी और रोजगार के अवसरों की कमी लोगों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए प्रेरित करती है बेहतर स्वास्थ्य और वित्तीय सेवाओं का लाभ उठाने के लिए लोग बेहतर चिकित्सा सुविधाओं की तलाश में अल्पअवधि के आधार पर भी पलायन करते हैं भोजन की कमी जलवायु परिवर्तन धार्मिक उत्पीड़न गृह युद्ध जैसे कारक भी लोगों की आंतरिक पलायन की ओर अग्रसर करते हैं।

3.3 पलायन के प्रकार –

पलायन का तात्पर्य एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रवास करना है जिसकी विभिन्न प्रवृत्तियां हैं जैसे एक गांव से दूसरे गांव की ओर पलायन, एक शहर से दूसरे शहर की ओर पलायन, गांव से शहर की ओर पलायन को मुख्य रूप से निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

मौसमी पलायन–

भारत में अधिकांश ग्रामीण जनसंख्या का नगरों की ओर पलायन मौसमी प्रकृति का है जो मौसमों के अनुसार परिवर्तित होता है अर्थात ग्रामीण श्रमिको द्वारा कृषि फसलों के खाली समय में शहरों की ओर पलायन करते है और फसली मौसमो में पुनः ग्रामीण क्षेत्रो में वापस आ जाते है।

दीर्घकालिक पलायन–

ग्रामीण जनसँख्या का कुछ भाग नगरो की ओर पलायन दीर्घकालिक प्रकृति का होता है जो मूलभूत सुविधाओ के अभाव में जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार, बिजली, पानी, सड़क आदि की तलाश के लिए नगरों की ओर पलायन करते है एवं मूलभत आवश्यकताओ की प्राप्ति के पश्चात यह नगरो में स्थायी तौर पर निवासित हो जाते है और धीरे–धीरे एक समय पश्चात यह स्थायी नगरवासी हो जाते है।

अल्पकालिक पलायन–

भारत में ग्रामीण जनसँख्या का कुछ भाग का पलायन अल्पकालिक प्रकृति का होता है जिसमे नगरो की ओर पलायन रोजगार,शिक्षा, स्वास्थ्य आदि की तलाश में श्रमिकों का पलायन अस्थाई या आकस्मिक प्रकृति का होता है यद्यपि हमारे अधिकांश श्रमिक ग्रामीण क्षेत्र से आते हैं किंतु कृषि में ही उनका विनियोग नहीं होता तथा वह अपने परिवारों को गांव में छोड़कर नगरों में काम करने के लिए आते हैं किंतु पारिवारिक मोह के कारण उनका ग्रामीण क्षेत्र से गहरा संबंध होता है एवं ग्रामीण परंपराओं में उनकी अटूट श्रद्धा होती है जिसके चलते वह धार्मिक व सामाजिक उत्सव तथा पारिवारिक किसी जटिल समस्या का समाधान करने हेतु या बीमारी के समय अथवा स्नेह संबंधियों से मिलने के लिए हो पुनः ग्रामीण क्षेत्रों में लौट आते हैं।

प्रतिदिन पलायन–

ग्रामीण क्षेत्र से नगरों की ओर प्रतिदिन होने वाले पलायन कुछ औद्योगिक क्षेत्र के श्रमिकों में रोजगार प्राप्ति के लिए प्रतिदिन पलायन की प्रवृत्ति देखी जाती है यह अधिकांशत नगरों से जुड़े ग्रामीण क्षेत्र से संबंधित होते हैं जैसा कि नागपुर, कोलकाता, मुंबई, दिल्ली, पुणे, बेंगलुरु, हरियाणा, राजस्थान अन्य शहरों में देखा जा सकता है कि नगरों की सीमाओं से लगे हुए ग्रामीण

क्षेत्र से श्रमिकों द्वारा प्रतिदिन घंटो यात्रा करके कारखाने एवं उद्योगों में काम करते हैं और पुनः काम से अवकाश के बाद अपने घरों की ओर लौट जाते है।

3.4 भारत में ग्रामीण जनसंख्या के पलायन की स्थिति–

भारत में ग्रामीण जनसँख्या का पलायन कोई नया मुद्दा नहीं है इसका उल्लेख महात्मा गांधी ने किया था उन्होंने कहा था कि ऐसे व्यक्तियों द्वारा जो अपने मूल निवास स्थान पर आत्मसम्मान पूर्ण ढंग से रहने में असमर्थ हो तथा दुखी हो और जो अन्याय के विरोध में ना तो सत्याग्रह करने का नैतिक बल रखते हो और ना हिंसात्मक विरोध की शक्ति रखते हो उन्हें अपने निवास स्थान से पलायन करना चाहिए तथा मुंशी प्रेमचंद ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास गोदान में लगभग 85 वर्ष पूर्व गांव छोड़कर शहर जाने की समस्या को उठाया था जो कि आज भी प्रासंगिक है।

इसके विभिन्न कारण है जैसे की गांव में कृषि योग्य भूमि में लगातार कमी होती जा रही है जिसके चलते ग्रामीण जनसंख्या को जीवन निर्वाह की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है और रोजगार की तलाश में नगरों की ओर पलायन करना पड़ रहा है ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी सुविधाओं का अभाव पलायन का एक बड़ा कारण है जैसे कि गांव में रोजगार शिक्षा के साथ–साथ बिजली, आवास, सड़क संरचना, स्वच्छता जैसी बुनियादी सुविधाएं आज भी उपलब्ध नहीं है इन बुनियादी सुविधाओं का शहरों और गांव के मध्य भेदभावपूर्ण वितरण मुख्य कारण है तथा शहरों में अच्छे परिवहन, साधन, शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाएं, रोजगार उद्योग तथा अन्य प्रकार की सेवाएं ग्रामीण जनसंख्या को आकर्षित करते हैं।

भारत में लगभग 70 फीसदी आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में बसती है पिछले कुछ वर्षों में भारत में नगरीकरण तेजी से बढ़ रहा है जिसमें ग्रामीण जनसंख्या का रोजगार एवं जीवनयापन के बेहतर अवसरों की तलाश में ग्रामीण क्षेत्र से नगरी क्षेत्रो की ओर पलायन करने के लिए विवश है क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या के जीवन यापन का एक मात्र सहारा कृषि क्षेत्र है जिसके हालत बहुत अच्छे नहीं है जबकि ग्रामीण क्षेत्र का भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है लेकिन वर्ष 2011 की कृषि जनगणना के अनुसार आज 61 प्रतिशत से अधिक ग्रामीण जनसंख्या कृषि कार्यों पर निर्भर है जो औद्योगिक क्षेत्र में कार्यरत 4.5 प्रतिशत आबादी की तुलना में कहीं अधिक है वर्ष 1951 में भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान 51 प्रतिशत था जो कि वर्तमान में भारतीय अर्थव्यवस्था में घटकर 17 प्रतिशत हो गया है फिलहाल कृषि क्षेत्र ग्रामीण को रोजगार एवं जीवन यापन करने में सहायक तो है लेकिन इसकी उत्पादकता बहुत कम है जिससे की खेतीहर श्रमिकों को नगरों की ओर पलायन करना आवश्यक हो गया है क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी के दर काफी अधिक है जिससे कि ग्रामीण गरीबी के जाल में फंसकर

अपने जीवन निर्वाह के लिए एवं अपने आवश्यक कार्यों के लिए कर्ज में डूबते जा रहे हैं जिसके कारण भारत में विभिन्न ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों के द्वारा आत्महत्याये की जा रही है।

ग्रामीण क्षेत्र से नगरीय क्षेत्र की ओर पलायन की स्थिति जनगणना के आंकड़ों के अनुसार भारत में वर्ष 1971 और 1981 के बीच 9.3 मिलियन लोगों का पलायन हुआ तथा 1981 में कुल 10.6 मिलियन पलायन हुआ और फिर वर्ष 1991 और 2001 के मध्य 14.02 मिलियन प्रवासी पलायन हुए जो की सभी नगरों में कुल मिलाकर 18.6 प्रतिशत तथा 18.7 प्रतिशत और 20.8 प्रतिशत की आबादी थी अर्थात वर्ष 1971 और वर्ष 2001 के मध्य 3 दशकों में शुद्ध ग्रामीण शहरी पलायन ने शहरी जनसंख्या में 19.36 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

भारत वर्ष 2011 के जनगणना अनुसार भारत में कुल अनुमानित जनसंख्या एक अरब इक्कीस करोड़ आकलित की गई जिसमें से ग्रामीण जनसंख्या 69.84 प्रतिशत और नगरीय जनसंख्या 31.16 प्रतिशत थे जो की स्वतंत्रता पश्चात भारत में वर्ष 1951 ग्रामीण जनसंख्या 83 प्रतिशत एवं नगरीय जनसंख्या 17 प्रतिशत थी अर्थात 50 वर्षों के पश्चात आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि भारत में ग्रामीण जनसंख्या का नगरों की ओर पलायन तेजी से बढा है।

3.5 भारत में ग्रामीण पलायन सम्बन्धी अनुमान–

भारत में ग्रामीण जनसंख्या का वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार पलायन के रूप का विस्तृत रूप से सर्वेक्षण किया गया है इसमें वर्ष 2001 में जनगणना के अनुसार कुल पलायन की संख्या 307.01 मिलियन थी जिसमें 90.4 मिलियन पुरुष एवं 216.7 मिलियन महिलाएं थी अंतर जिला और अंतरदेशीय जिला पलायनों की संख्या 76.8 मिलियन और 181.7 मिलियन थी अन्य राज्यों से आने वाले पलायनों की संख्या 42.3 मिलियन थी क्षेत्राअनुसार अगर इसका अध्ययन किया जाए तो महाराष्ट्र में सबसे अधिक पलायन की संख्या थी कुल 7.5 मिलियन पलायन है इसके बाद दिल्ली और पश्चिम बंगाल है जहां पर यह 5.6 मिलियन संख्या है एवं 5.5 मिलियन थी जनगणना से यह भी पता चलता है कि वर्ष 1991 से वर्ष 2001 के बीच पलायन की संख्या करीब 32.9 प्रतिशत की वृद्धि हुई जिसमें प्रवास के प्रमुख कारणों में रोजगार की तलाश है जो की एक राज्य से अन्य राज्यों या ग्रामीण क्षेत्र से शहरों की ओर पलायन करना पड़ता है इसमें सर्वाधिक पलायन उत्तर प्रदेश बिहार जैसे राज्यों में काफी तेजी से बढा है इन राज्यों में 37 प्रतिशत पलायन हुआ है और यदि इनमें मध्य प्रदेश और राजस्थान को शामिल किया जाए तो यह संख्या 50 प्रतिशत से अधिक होती जा रही है जिससे यह स्पष्ट होता है कि भारत में ग्रामीण जनसंख्या के पलायन में लगातार वृद्धि हुई है।

भारत की जनगणना वर्ष 2001 के अध्ययनों के रिपोर्ट से यह ज्ञात होता है कि भारत में महिला एवं पुरुष दोनों अपने मूल स्थान से पलायन करते हैं उनके पलायन के कारणों एवं स्थान दोनों में अंतर है महिलाएं ज्यादातर अपने राज्य में शादी जैसे प्रमुख कारण से पलायन करती

है और जबकि पुरुष अन्य राज्यों की तरफ मुख्य रूप से रोजगार की तलाश में पलायन करते हैं जिसमें रोजगार की तलाश में 14. 7 प्रतिशत, व्यवसाय की तलाश में 1.02 प्रतिशत, शिक्षा की तलाश में 3 प्रतिशत, शादी के बाद 43.8 प्रतिशत, जन्म के बाद 6.7 प्रतिशत पलायन करते है, परिवार के साथ पलायन 21 प्रतिशत, अन्य कारणों से 9.7 प्रतिशत, हालांकि महिलाओं के पलायन के प्रमुख कारण शादी है।

3.6 ग्रामीण पलायन के प्रमुख कारण–

जनसंख्या की मुख्य विशेषता विकास की प्रत्येक अवस्था में गतिशीलता रही है सामाजिक आर्थिक औद्योगिक एवं तकनीकी विकास में संदेह ग्रामीण क्षेत्र की जनसंख्या को नगरों की ओर पलायन करने के लिए मजबूर किया है इसके बहुउद्देशिय परिणाम है

बेहतर रोजगार के अवसर –

नगरों में प्रायः ग्रामीण क्षेत्र की अपेक्षा बेहतर रोजगार के अवसर उपलब्ध होते हैं आजादी के पश्चात भारत में आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के उद्देश्य से विभिन्न उद्योगों की स्थापना नगरों में की गई जिसके चलते ग्रामीणों द्वारा बेहतर रोजगार की तलाश एवं आजीविका के साधन के लिए नगरों में पलायन करना मजबूरी हो गई है शिक्षा और साक्षरता का अभाव ग्रामीण क्षेत्र से पलायन का एक बहुत बड़ा कारण है

शिक्षा का अभाव–

ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी शैक्षिक संस्थानों की कमी है यदि ग्रामीण क्षेत्रों में शैक्षिक संस्थानों की उपलब्धता है भी तो वहां पर बच्चों के लिए पर्याप्त संसाधन उपलब्ध नहीं है या तो वहां उन्हें पर्याप्त शिक्षा नहीं प्रदान की जाती जिसके चलते ग्रामीण क्षेत्रों में परिवारों द्वारा अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा प्रदान करने के लिए नगरों की ओर भेजना पड़ता है हालांकि सरकारी और निजी तौर पर ग्रामीण शिक्षा को बढ़ाने के सरकारों द्वारा विभिन्न प्रयास किए गए हैं लेकिन जब रोजगार एवं उच्च स्तरीय शिक्षा की बात आती है तो ग्रामीण परिवेश में बच्चों यह सारी सुविधाएं उपलब्ध नहीं हो पाती जिसके कारण वह शहरी बच्चों की अपेक्षा पीछे रह जाते हैं

मूलभूत सुविधाओं का अभाव–

भारत में आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश मुलभूत सुविधा बिजली, पानी, आवास, सड़क, परिवहन, शिक्षा, रोजगार जैसी सुविधाओं का अभाव है जिसके चलते ग्रामीण जनसंख्या को नगरों की तरफ पलायन करना आवश्यक होता जा रहा है

रूढ़िवादिता एवं परंपरागत व्यवस्था–

भारत में ग्रामीण जनसंख्या के पलायन में ग्रामीण क्षेत्र की रूढ़िवादिता एवं परंपरागत जाति व्यवस्था के कारण विभिन्न प्रकार के अन्याय पूर्ण क्रूर आदेशों एवं अवरोधों के चलते ग्रामीण क्षेत्र के कमजोर वर्ग के व्यक्तियों द्वारा दबे रहने की बजाय ग्रामीण क्षेत्र से पलायन करना अधिक पसंद किया जाता है जैसा कि पिछले दिनों उत्तर भारत के कुछ राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश हरियाणा आदि में खाप पंचायत के अन्याय पूर्ण आदेशों से स्पष्ट हो जाता है।

3.7 ग्रामीण जनसंख्या के नियंत्रण के सुझाव–

समानता एवं न्याय की स्थापना–

ग्रामीण समाज में समानता और न्याय की स्थापना ग्रामीण जनसंख्या के पलायन नियंत्रण के लिए ग्रामीण क्षेत्र मैं अपेक्षित व्यक्तियों को उनकी पात्रता अनुसार सरकार द्वारा चलाई जा रही विभिन्न योजनाओं जैसे स्वयं सहायता समूह, रोजगार, प्रशिक्षण, राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना, वृद्धावस्था पेंशन योजना, विधवा पेंशन योजना, छात्रवृति योजना जैसी विभिन्न योजनाओं का लाभ पात्रता अनुसार उपलब्ध कराकर सामाजिक न्याय एवं समानता स्थापित करना अति आवश्यक है जिससे कि ग्रामीण क्षेत्र के अपेक्षित लोगों को भी आर्थिक सामाजिक राजनीतिक लाभ मिल सके एवं वह विकास की मुख्य धारा में जुड़ सके।

रोजगार अवसरों को उपलब्ध कराना–

ग्रामीण क्षेत्रों में यदि पलायन को नियंत्रित करना है तो उन्हें विभिन्न प्रकार की लाभों की अपेक्षा उन्हें रोजगार उपलब्ध कराना सर्वाधिक आवश्यक है क्योंकि रोजगार प्राप्त होने के बाद किसी भी व्यक्ति द्वारा स्वयं एवं स्वयं के परिवार के लिए रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य, सारी व्यवस्थाएं आसानी से की जा सकती है इसके लिए सरकार द्वारा उद्योगो को ग्रामीण क्षेत्र के आस–पास अपने उत्पादन केन्द्रों की स्थापना करने की आवश्यकता है साथ ही साथ ग्रामीण क्षेत्रों में लघु कुटीर उद्योगों को संरक्षित एवं उन्हें प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है इसे स्पष्ट रूप से उत्तर प्रदेश में एक जिला एक उत्पाद नामक कार्यक्रम से समझा जा सकता है।

मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध कराना–

ग्रामीण क्षेत्रों में नगरों जैसी मूलभूत सुविधाएं अति आवश्यक हैं जैसे कि परिवहन सुविधा, सड़क, चिकित्सा व्यवस्था, शिक्षण संस्थान, विद्युत आपूर्ति, जल आपूर्ति, रोजगार सुरक्षा एवं न्याय व्यवस्था आदि को उपलब्ध करा कर एवं इसका सही क्रियान्वयन सुनिश्चित करना चाहिए जैसे

की वर्ष 2010 में शिक्षा का अधिकार कानून से ग्रामीण क्षेत्रों में बच्चों के नामांकन संख्या में वृद्धि हुई है।

भ्रष्टाचार मुक्त प्रशासन बनाना–

ग्रामीण पलायन को नियंत्रित करने के लिए सरकार द्वारा भ्रष्टाचार मुक्त प्रशासन की व्यवस्था करनी चाहिए जिससे कि ग्रामीण क्षेत्र के हर व्यक्ति को सरकारी योजनाओं एवं कार्यक्रमों का लाभ उनकी पात्रता के आधार पर मिले एवं उनसे किसी प्रकार का कोई आर्थिक या सामाजिक शोषण न किया जा सके मजदूर तथा अन्य बेरोजगार युवकों को स्वरोजगार हेतु वित्तीय सहायता एवं प्रशिक्षण प्रदान किया जाएं लघु एवं कुटीर उद्योगों एवं खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों को सुलभता से पर्याप्त साख सुविधाए एवं संरक्षण प्राप्त हो सके।

3.8 भारत में पलायन नियंत्रण सम्बन्धित प्रयास–

सरकार द्वारा पलायन करने वाले श्रमिकों के लिए कुछ कल्याणकारी उपाय किए गए हैं जिसमें की राज्य प्रवासी कामगार अधिनियम 1979 पारित किया गया था जिसके तहत उन संस्थाओं के पंजीकरण को अनिवार्य बना दिया गया जो प्रवासी श्रमिकों को काम पर रखते हैं उन्हें प्रवासी श्रमिकों को काम पर रखने के लिए लाइसेंस लेना आवश्यक है एवं प्रवासी श्रमिकों की पहचान के लिए कानूनी तौर पर उनका विवरण उपलब्ध कराना आवश्यक है एवं जिससे कि उनको मजदूरी भुगतान में किसी प्रकार की कोई समस्या ना हो एवं नियम कानून को एक समान लागू करना जिससे कि संगठित क्षेत्र की तरह ही पलायन करने वाले श्रमिकों को भी मजदूरी एवं अन्य लाभ प्राप्त हो सके।

इस कानून के द्वारा कार्य स्थलों पर बुनियादी सुविधाओं जैसे आवास, सुरक्षा, दुर्घटना के दौरान चिकित्सा सहायता आदि की व्यवस्था करना सुनिश्चित किया जा सके वर्ष 1996 में प्रवासी श्रमिकों के लिए सुरक्षा एवं कल्याण सुनिश्चित करने के लिए एक विशेष कानून निर्मित किया गया इस कानून के द्वारा श्रमिक कल्याण कोष एवं कल्याण बोर्ड की स्थापना की गई जिसके दो प्रमुख आयाम कार्यस्थल पर नागरिक सुविधाओं उपलब्ध कराना तथा सुरक्षा सुनिश्चित करके जिम्मेदारियों को कल्याण बोर्ड और नियोक्ता के बीच विभाजित किया गया जिसमें कार्य स्थल पर 50 से अधिक महिला श्रमिकों के लिए स्वच्छ पेयजल, आवास स्वच्छ शौचालय और प्राथमिक चिकित्सा सुविधा प्रदान करना कल्याण बोर्ड का उद्देश्य 60 वर्ष की आयु वालों को सुरक्षा लाभ दुर्घटना लाभ सामूहिक बीमा मातृत्व लाभ बच्चों की शिक्षा और चिकित्सा के लिए विभिन्न सहायता उपलब्धता सुनिश्चित करना था।

आपातकाल छुट्टियों के दौरान उचित प्रकार से उनके श्रम का भुगतान किया जा सके राज्य द्वारा पारित कानून को लागू करने की विभिन्न चुनौतियां सामने आई जिसमें श्रमिक

अधिनियम 1979 का उद्देश्य नियुक्ति की ड्यूटी को परिभाषित करना प्रवासी श्रमिकों के कल्याण के लागू नीतियों को लागू करने में काफी समस्याएं उत्पन्न हो रही थी खासकर कानून का निर्माण करने उन्हें लागू करने में फिर भी कुछ राज्य जैसे दिल्ली छत्तीसगढ़ तमिलनाडु में काफी अधिक पंजीकरण हुआ और वहां पर श्रमिकों के कल्याण पर नियोक्ता संस्थाओं द्वारा खर्च भी किया गया था ।

3.9 सारांश–

भारत में ग्रामीण जनसंख्या का ग्रामीण क्षेत्र से नगरों की ओर पलायन विगत कुछ वर्षों में तेजी से बढा है जिसके पीछे प्रमुख कारणों में जीवन निर्वाह एवं रोजगार की तलाश हैं जिसके लिए ग्रामीण श्रमिकों को मजबूरन नगरों की ओर पलायन करना पड़ता है वहां भी उनकी हालातो में किसी प्रकार का कोई उचित सुधार नहीं हो पता है वह एक तरह से ग्रामीण बस्तियों से निकलकर नगरी झुग्गी झोपड़ियां में निवास करते हैं एवं विभिन्न प्रकार के जोखिमों का सामना करते हैं जिसके लिए सरकार की तरफ से तमाम प्रयास किए गए हैं लेकिन इन प्रयासों से कोई विशेष सफलता नहीं प्राप्त हुई है

3.10 बोध प्रश्न–

1–पलायन से आप क्या समझते हैं?

2–पलायन के प्रकारों का उल्लेख कीजिए।

3–दीर्घकालीन पलायन से आप क्या समझते हैं?

4–दीर्घकालीन पलायन एवं अल्पकालिक पलायन में अंतर स्पष्ट कीजिए।

5–भारत में ग्रामीण जनसंख्या के पलायन की स्थिति की समीक्षा कीजिए।

6–भारत में ग्रामीण पलायन संबंधित अनुमानों की व्याख्या कीजिए।

7–भारत में ग्रामीण पलायन के प्रमुख कारणों का उल्लेख कीजिए।

8–भारत में ग्रामीण जनसंख्या के पलायन नियंत्रण हेतु किए गए प्रयासों का उल्लेख कीजिए।

9–भारत में ग्रामीण पलायन के नियंत्रण हेतु सुझाव दीजिए।

3.11 कुछ उपयोगी पुस्तके –

आर्थिक विकास एवं नियोजनः एस.के. मिश्रा एवं बी.के. पुरी, हिमालय पब्लिशिंग हाउस

विकास और नियोजन का अर्थशास्त्रः एम.एल. झींगन

विकास और नियोजन का अर्थशास्त्रः एम. तनेजा, एम्.आर मायर

आर्थिक विकास एवं नियोजनः साहित्य भवन पब्लिकेशन

शहरी नियोजन सिद्धांत और व्यवहारः एम. प्रताप राव

क्षेत्रीय नियोजन और विकासः आर.सी. चंदन

विकास और नियोजन का अर्थशास्त्रः लक्ष्मी नारायण अग्रवाल

क्षेत्रीय विकास और नियोजनः जानकी जीवन

विकास और नियोजन की आधुनिक शिक्षाः जे.सी. अग्रवाल

विकास एवं नियोजन का भारतीय अनुभवः सुखमय चक्रवर्ती

ग्रामीण विकास नियोजनः आर.एन. अग्रवाल

एम.ए.ई,सी. 107

खण्ड – 4

ईकाई – 4

भारत में गरीबी कारण एवं निवारण

ईकाई की रूप रेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 गरीबी की परिभाषा

4.3 गरीबी की अवधारणा

4.4 भारत में गरीबी रेखा का निर्धारण

4.5 भारत में गरीबी का अनुमान

4.6 गरीबी एवं समावेशी विकास

4.7 भारत में विभिन्न समितियों द्वारा गरीबी अनुमान

4.8 पुनर्स्मरण अवधि प्रणाली

4.9 भारत में गरीबी के कारक

4.10 भारत में गरीबी निवारण के नीतिगत उपाय

4.11 विश्व बैंक द्वारा गरीबी निवारण सुझाव

4.12 भारत में गरीबी निवारण के सुझाव

4.13 सारांश

4.14 बोध प्रश्न

4.15 कुछ उपयोगी पुस्तके

4.0 उद्देश्य–

1– प्रस्तुत इकाई में गरीबी की परिभाषा के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे 2–प्रस्तुत ईकाई में गरीबी की अवधारणा के बारे में जानेंगे

3–प्रस्तुत इकाई में भारत में गरीबी रेखा के निर्धारण की जानकारी प्राप्त करेंगे

4–प्रस्तुत इकाई में भारत में गरीबी के लगाये गए अनुमानो का अध्ययन करेंगे

5–प्रस्तुत ईकाई में गरीबी एवं समावेशी विकास का अध्ययन करेंगे

6–प्रस्तुत इकाई में गरीबी अनुमान पद्धति का अध्ययन करेंगे

7–प्रस्तुत इकाई में पुनर्स्मरण अवधि प्रणाली का अध्ययन करेंगे

8–प्रस्तुत इकाई में भारत में विभिन्न समितियों द्वारा किये गए गरीबी अनुमान का अध्ययन करेंगे

9–प्रस्तुत ईकाई में भारत में गरीबी के कारकों का अध्ययन करेंगे

10–प्रस्तुत ईकाई में भारत में गरीबी निवारण के नीतिगत उपायों का अध्ययन करेंगे

11– प्रस्तुत इकाई में विश्व बैंक द्वारा गरीबी निवारण हेतु सुझावों का अध्ययन करेंगे

12– प्रस्तुत इकाई में भारत में गरीबी निवारण के सुझावों का अध्ययन करेंगे

4.1 प्रस्तावना–

विश्व के सभी अल्प विकसित या विकासशील देशों में जहां प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है आय की असमानताओं और बेरोजगारी ने विभिन्न बुराइयों को जन्म दिया है जिनमें सर्वाधिक गंभीर बुराई गरीबी या गरीबी है जिसका तात्पर्य यह है की गरीबी, असमानता और बेरोजगारी के मध्य बहुत नजदीकी संबंध है वैश्वीकरण की तीव्रता से बढ़ते हुए भारत की सबसे बड़ी सामाजिक, आर्थिक चुनौती गरीबी है जबकि क्रय शक्ति की दृष्टि से भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व की बड़ी अर्थव्यवस्था में से एक बन चुकी है।

21वीं शताब्दी में गरीबी एक बड़े अनुपात की एक वैश्विक चुनौती के रूप में है विश्व के लगभग 7 बिलियन लोग में से 1.4 बिलियन लोग 1.25 डॉलर प्रतिदिन के स्तर से नीचे जीवन यापन करते हैं प्रत्येक 1000 जन्मो पर 44 शिशु अपने प्रथम जन्म दिवस तक जीवित नहीं रहते तथा

63 की मृत्यु 5 वर्ष की आयु से ही पूर्व हो जाती है स्कूली शिक्षा की आयु में पहुंच जाने वाले 100 बच्चों में से 9 बालक तथा 14 बालिकाएं प्राथमिक स्कूल जा सकने से वंचित रह जाती हैं भविष्य में होने वाले जननांकीय परिवर्तन गरीबी में कमी लाने की चुनौतियों को और भी गंभीर बना देंगे आगामी 25 वर्षों में विश्व जनसंख्या में दो बिलियन की वृद्धि होने का अनुमान है जिसमें से लगभग संपूर्ण अनुमानित 97 प्रतिशत केवल विकासशील देशों में ही होगी जो इन अर्थव्यवस्थाओं पर अत्यधिक गंभीर दबाव उत्पन्न करेगी।

4.2 गरीबी की परिभाषा–

गरीबी एक जटिल मुद्दा है जिसके अपने ही अनेकों आयाम है विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा निम्नलिखित गरीबी की परिभाषा दी गयी है।

एडम स्मिथ के अनुसार किसी मनुष्य को धनी अथवा गरीब इस आधार पर कहा जाता है जिस पर वह मानव जीवन की आवश्यकताओं सुविधाओं व इच्छाओं की पूर्ति कर सकता हो ।

वर्ष 1901 में शिभोह्म राउनट्री ने ऐसे परिवारों को प्राथमिक गरीबी के अंतर्गत परिभाषित किया जिनकी कुल आय उनकी शारीरिक कुशलता के लिए न्यूनतम आवश्यकताओं के लिए भी अपर्याप्त हो इस परिभाषा का आधार जीवन की सर्वाधिक मूलभूत आवश्यकता अर्थात भोजन पर केंद्रित है जो शारीरिक दक्षता के लिए ऊर्जा आवश्यकता पर आधारित है ।

वर्ष 1945 में खाद्य एवं कृषि संगठन के प्रथम निदेशक लॉर्ड वायड ओर्र ने 2300 कैलोरी प्रति व्यक्ति प्रतिदिन के स्तर को भुखमरी की रेखा के रूप में न्यूनतम आवश्यकता निर्धारित किया बाद में इसे गरीबी रेखा के रूप में व्यक्त किया गया।

एक गरीबी रेखा एक मौद्रिक मूल्य जिसे समय–समय पर परिवर्तित किया जाता है इसी रेखा के आधार पर भारत में गरीबों के अनुपात तथा संख्या को मापा जाता है इसके लिए प्रत्येक 5 वर्षों पर एन.एस.एस.ओ. द्वारा पारिवारिक उपभोग व्यय के आधार पर गरीबी रेखा की परिभाषा दी जाती है इसके लिए गरीबी के अनुमानों का निर्धारण योजना आयोग द्वारा समय–समय पर विशेषज्ञ दलों द्वारा दिए गए सुझावों के आधार पर बनाया जाता है।

4.3 गरीबी की अवधारणा–

सामान्यतः जीवन स्वास्थ्य तथा दक्षता के लिए न्यूनतम उपभोग आवश्यकताओं को प्राप्त करने में सामाजिक क्रिया की अयोग्यता को ही गरीबी कहते हैं जब समाज का एक बहुत बड़ा भाग न्यूनतम जीवन स्तर प्राप्त करने में असफल रहता है तथा केवल जीवन निर्वाह स्तर पर ही गुजारा करता है तो इसे समझ में व्यापक गरीबी की संज्ञा दी जाती है जीवन निर्वाह स्तर को

सापेक्ष या निरपेक्ष दृष्टि से भी देखा जाता है तथा गरीबी की अवधारणा का सापेक्ष एवं निरपेक्ष दोनों रूपों में विश्लेषण किया जाता है सापेक्ष दृष्टि से गरीबी को परिभाषित करने हेतु विभिन्न वर्गों या देश के जीवन निर्वाह स्तर की तुलना करके गरीबी के सापेक्ष दशा का निर्धारण किया जाता है जीवन निर्वाह स्तर को आय या उपभोग के रूप में मापा जाता है इस दृष्टि से विकसित देशों की तुलना में भारतीयों में बहुत गरीबी हैं उल्लेखनीय है कि देश के अंदर समाज के सबसे ऊपर के पांच से 10 प्रतिशत लोगों और सबसे नीचे के 5 से 10 प्रतिशत लोगों के जीवन निर्वाह स्तर की तुलना करके गरीबी का पता लगाया जाता है निरपेक्ष दृष्टि से उन लोगों को गरीब कहा जाता है जिनको निर्वाह की न्यूनतम आवश्यकता के लिए खाद्यान्न, दूध, सब्जी,आदि कैलोरी रूप में एवं कपडें और आवास भी प्राप्त नहीं हो पाए क्योंकि भारत में बड़ी संख्या में लोगों को न्यूनतम पोषक आहार नहीं मिल पाता है इसलिए यहां गरीब लोगों की पहचान के लिए निरपेक्ष मापदंड को अपनाया गया है

4.4 भारत में गरीबी रेखा का निर्धारण–

भारत में गरीबी रेखा का निर्धारण पोषण के आहार पर होता है क्योंकि यहां गरीबी का सबसे महत्वपूर्ण पहलू कुपोषण को माना जाता है योजना आयोग ने वैकल्पिक परिभाषा अपनायी है जिसमें पोषण को आहार का आधार कैलोरी को बनाया है इस परिभाषा के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में एक व्यक्ति के प्रतिदिन के भोजन में 2400 कैलोरी तथा शहरी क्षेत्र में एक व्यक्ति के प्रतिदिन के भोजन में 2100 कैलोरी होनी चाहिए पोषक आहार संबंधी इन्ही न्यूनतम आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए वर्ष 1973– 74 के मूल्य पर ग्रामीण क्षेत्र के लिए 49.09 रुपए और नगरीय क्षेत्र के लिए 56.64 रुपये प्रति माह की गरीबी रेखा निर्धारण की गई थी जो वर्तमान मूल्य पर योजना आयोग द्वारा संशोधित होती रहती हैं।

अतः यह कहना उचित है कि ग्रामीण क्षेत्रों में 2400 कैलोरी प्रति व्यक्ति तथा शहरी क्षेत्र में 2100 कैलोरी प्रति व्यक्ति प्रति–दिन पोषक आहार जिन व्यक्तियों को उपलब्ध नहीं होता है उन्हें गरीबी रेखा से नीचे माना जाएगा इसे प्रत्यक्ष तौर पर मापना संभव नहीं होता है अतः आंकड़ों का उपयोग कर इसे न्यूनतम पोषण के लिए आवश्यक आय में बदल दिया जाता है यह प्रक्रिया भारत में राज्यवार की जाती है इसमें राज्य स्तर पर मूल्य आदि का ध्यान रखा जाता है।

गरीबी रेखा का निर्धारण हो जाने के बाद इसके नीचे निर्वाह करने वाले लोगों के अलग–अलग वर्गों की वास्तविक दशा पर संक्षिप्त ध्यान नहीं दिया जाता है गरीबी रेखा के नीचे सबसे निम्न स्तर पर जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति जिन भयावह परिस्थितियों से गुजर रहा होगा उसे गरीबी रेखा द्वारा परिभाषित नहीं किया जा सकता जबकि पूरे देश में कमोबेश इस प्रकार के दृ श्य दिखाई देते हैं स्थाई दुर्गंध में लिप्त गन्दी झुग्गी झोपड़ियां युवा माताए जिनके लिए प्रसूति मात्र आनंद का द्वारा नहीं बल्कि मृत्यु की शैया है नवजात शिशु जिनमें से बहुत मुस्कुराने से

पहले पंचतत्व में विलीन हो जाते हैं बेरोजगार युवक जो जीवन यापन हेतु अपराध में लिप्त हो चुके हैं तथा ईंधन व भोजन की तलाश में खुले स्थानों में चीथड़ों में विचरती युवतियां और बच्चे मानव गरिमा का प्रतिवाद गरीबी भारत में एक विकट समस्या है इस संदर्भ में अमृत्य सेन का यह कथन महत्वपूर्ण है की गरीबी कोई एक आर्थिक वर्ग नहीं बल्कि बहुत सी आर्थिक परिस्थितियों का परिणाम है इसलिए इसके निवारण के लिए स्वयं गरीबी की संकल्पना से परे जाना होगा।

अमृत्यसेन के अनुसार गरीबी के विश्लेषण में दो चरण होने चाहिए प्रथम चरण में इसका निर्धारण होना चाहिए अलग–अलग लोगों को कितना मिला और इस आधार पर प्रति व्यक्ति आय के किसी मापदंड के सहारे गरीबों की गणना होनी चाहिए द्वितीय चरण में इसका निर्धारण होना चाहिए की स्थिति वास्तव में कितनी खराब है और यह दूसरी खराब स्थिति से कितनी भयावह है अर्थात यह जानना सबसे महत्वपूर्ण है कि गरीब लोग कितने गरीब है ना कि यह जानना है की गरीबी रेखा से नीचे कितने लोग निर्वाह कर रहे हैं।

4.5 भारत में गरीबी का अनुमान–

स्वतंत्रता से पूर्व तथा पश्चात अनेक चिंतकों अर्थशास्त्रियों तथा अनुसंधान कर्ताओं द्वारा लगभग गरीबी के अनुमानों के लिए अपनी अपनी विधियों पर आधारित आकलन किए गए थे किंतु इनमें से कोई आधिकारिक नहीं था जुलाई 1962 में योजना आयोग ने डा. गाडगिल की अध्यक्षता में एक अध्ययन दल का गठन किया था कि एक न्यूनतम जीवन स्तर के लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक न्यूनतम व्यय का स्तर निर्धारित किया जा सके गाडगिल समिति द्वारा एक राष्ट्रीय गरीबी रेखा का निर्धारण किया गया जो की ₹20 प्रति व्यक्ति प्रतिमाह (वर्ष 1960–61 पर आधारित) निर्धारित किया जो ग्रामीण एवं नगरीय दोनों क्षेत्रों के लिए समान थी।

भारत में गरीबी के अनुमान भारत में राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन के उपभोक्ता आंकड़ों का प्रयोग करके बहुत से अर्थशास्त्रियों एवं संस्थाओं ने गरीबी के निर्धारण के लिए अपनी अलग–अलग संकल्पनाएं प्रस्तुत की जिससे उनकी गरीबी संबंधी अनुमान कुछ अलग–अलग है फिर भी इन सभी अनुमानों का आधार 2250 कैलोरी के बराबर पोषक आहार का मूल्य ही है योजना आयोग की राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन के आंकड़ों के आधार पर ही गरीबी रेखा से नीचे के लोगों की संख्या का अनुमान लगाता रहा है यहां तक की विश्व बैंक ने अपने देश संबंधी अध्ययन भारत गरीबी रोजगार एवं सामाजिक सेवाएं वर्ष 1989 में गरीबी रेखा निर्धारण करने के लिए वही विधि अपनाई है जो योजना आयोग ने अपनायी थी इसके बावजूद गरीबी रेखा से नीचे जीवन निर्वाह करने वाले लोगों का मुद्दा सदैव विवादास्पद रहा है।

योजना आयोग के विशेषज्ञ दल की रिपोर्ट योजना आयोग ने सितंबर 1989 में भारत में गरीबों की संख्या और अनुपात के अनुमान की कार्य विधि एवं परिकलन के विभिन्न पहलुओं पर

पुनर्मूल्यांकन करने हेतु प्रोफेसर डी.टी. लकड़वाला की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ दल का गठन किया इस विशेषज्ञ दल ने योजना आयोग की गरीबी रेखा निर्धारण की परंपरागत प्रणाली तथा समंको आधार पर प्रदेश में गरीबों के अनुमानित जनसंख्या निर्धारण को अविश्सनीय बताते हुए अपनी रिपोर्ट जुलाई 1993 में प्रस्तुत की इस रिपोर्ट में गरीबी रेखा निर्धारण करने के लिए निम्नलिखित सिफारिश की गई ।

न्यूनतम आवश्यकताओं एवं प्रभावी उपभोग मांग के पूर्वानुमानों पर कार्यदल द्वारा गरीबी रेखा कों आधार रेखा माना जाना चाहिए जिसका मूलाधार वर्ष 1973–74 में वर्तमान उपभोग ढांचे के आधार पर ग्रामीण क्षेत्रों में 2400 कैलोरी तथा शहरी क्षेत्र में 2100 कैलोरी उपभोग हो इस मानदंड को देश के सभी राज्यों के लिए समान रूप से स्वीकार किया जाए चूँकि वर्ष (1973–74) के आधार वर्ष पर बहुत अधिक सुव्यवस्थित कार्य हो चुका था इस आधार वर्ष को ही गरीबी रेखा के अनुमान के लिए जारी रखना चाहिए राज्य विशेष गरीबी रेखा का अनुमान लगाने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर गरीबी रेखा के अनुरूप मानवीकृत वस्तु समूह का प्रत्येक राज्य में आधार वर्ष 1973–74 में वर्तमान मूल्य के अनुसार मूल्य प्राप्त करना चाहिए अर्थात सभी राज्यों एवं केंद्र शासित प्रदेशों में अलग–अलग गरीबी रेखा का निर्धारण होना चाहिए।

ग्रामीण गरीबी रेखा को अद्यतन बनाने के लिए कृषि श्रमिकों को उपभोक्ता मूल्य सूचकांक का प्रयोग होना चाहिए जबकि शहरी गरीबी रेखा के अद्यतन बनाने हेतु औद्योगिक श्रमिकों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक एवं गैर शारीरिक कर्मचारियों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक की साधारण औसत का प्रयोग किया जाना चाहिए

योजना आयोग ने 11 मार्च 1997 प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में संपन्न बैठक में लकड़ावाला समिति की सिफारिश को गरीबी रेखा के निर्धारण हेतु स्वीकार कर लिया इसके तहत वर्ष 1993–94 में गरीबी रेखा से नीचे के जीवन यापन करने वाले लोगों की संख्या 35.97 प्रतिशत आकलित की गई।

4.6 गरीबी और समावेशी विकास–

अमृत्य सेन का निर्धारण माप गरीबों के मध्य आय वितरण की विषमता पर ध्यान केंद्रित करता है यह एक महत्वपूर्ण कारक है जिसके आधार पर गरीबों के मध्य विशिष्ट समूह से संबंधित विशिष्ट कार्यक्रमों का कार्य नियंत्रण किया जा सकता है तथा एन.एस.एस.ओ. द्वारा परिवार उपभोग व्यय के सर्वेक्षण के आधार पर गरीबों के तीन अलग–अलग स्तरों को चिन्हित किया जाता है।

ऐसे व्यक्ति जिनके प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय राज्य विशिष्ट गरीबी रेखा के 100 प्रतिशत से 75 प्रतिशत तक हो उन्हें अल्प गरीब कहा जाता है।

जिन व्यक्तियों का कुल उपभोग व्यय राज्य विशिष्ट गरीबी रेखा के 75 प्रतिशत से 50 प्रतिशत तक हो उन्हें अधिक गरीब कहा जाता है ।

जिन व्यक्तियों का कुल उपभोग व्यय राज्य विशिष्ट रेखा के 50 प्रतिशत से कम होने को अत्यधिक गरीब कहा जाता है।

कृषि एवं खाद्य संगठन के अनुसार ऐसे परिवारों को असाध्याय गरीबी के अंतर्गत माना जाता है जो ना केवल संपूर्ण जीवन काल में गरीबी रेखा के नीचे रहते हैं बल्कि वह उस गरीबी व अभावग्रस्तता को अगली पीढ़ी तक प्रसारित करते हैं इसे अंतर पीढ़ी दीर्घकालिक तथा स्थाई गरीबी के रूप में देखा जाता है।

गरीबी अभावग्रस्तता कि एक स्थित है निरपेक्ष संदर्भ में यह एक व्यक्ति की उस असमर्थता को व्यक्त करता है जो उसे एक निर्वहनीय स्वस्थ्य तथा उत्पादक जीवन के लिए कुछ आवश्यक न्यूनतम मदों को प्राप्त कर सकने में संभव न हो सके प्रचुरता के मध्य गरीबी विश्व की सबसे बड़ी चुनौती है अब यह एक सर्व स्वीकार्य दृष्टिकोण हो गया है की गरीबी का तात्पर्य केवल निम्न आय तथा निम्न उपभोग नहीं बल्कि यह शिक्षा स्वास्थ्य पोषाहार तथा मानव विकास के अन्य क्षेत्रों में निम्न उपलब्धियां से संबंधित है इस आधार पर की लोगों की दृष्टि में गरीबी का अर्थ क्या है इसकी परिभाषा को विस्तृत किया जा सकता है तथा इसके अंतर्गत शक्तिहीनता स्वरहीनता आपादग्रस्तता तथा भय को सम्मिलित किया जा सकता है।

महबूब उल हक के अनुसार हमें यह पढ़ाया गया था कि हम अपनी जीएनपी की चिंता करनी चाहिए क्योंकि यह गरीबी की चिंता कर लेगी हमें इस विचार को उलट देना चाहिए तथा गरीबी की चिंता करनी चाहिए क्योंकि यह जीएनपी की चिंता कर लेगी।

मानव विकास रिपोर्ट 2010 एक नए पैरामीटर अर्थात बहुआयामी गरीबी सूचकांक के रूप में गरीबी का आकलन करता है यह वर्ष 1997 से उपयोग में लाये जा रहे हैं मानव गरीबी सूचकांक के स्थान पर लाया गया बहुआयामी गरीबी अनुपात बहुआयामी तौर पर उसे गरीब आबादी के हिस्से को दर्शाता है जो जीवन स्तर, स्वास्थ्य और शिक्षा की दृष्टि से घोर अभाव में जीता है।

इस पैरामीटर के अनुसार जब चीन और श्रीलंका जैसे देशों की तुलना करते हैं तो भारत को 0.296 गरीबी सूचकांक और 41.26 प्रतिशत गरीबी अनुपात तथा 28.6 प्रतिशत राष्ट्रीय गरीबी रेखा के साथ संतोषजनक स्थिति में नहीं रखा जा सकता वास्तव में भारत के मामले में गरीबी रेखा से नीचे आबादी में अंतर उस समय अधिक हो जाती है जब इस सूचक का इस्तेमाल

राष्ट्रीय गरीबी रेखा के सूचक के स्थान पर किया जाता है जबकि दूसरे देशों के मामले में अंतर कम है और कई मामलों में अंतर समाप्त हो गया है।

भारत में गरीबी अनुमान की विधि राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरों पर ग्रामीण और शहरी क्षेत्र के लिए अलग से गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों की संख्या और अनुपात का अनुमान लगाने के लिए योजना आयोग एक नोडल एजेंसी है योजना आयोग लगभग 5 वर्ष के अंतराल के बाद राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन एन.एस.एस.ओ. द्वारा किए गए परिवार के प्रयोग पर हुए खर्च के वृहद ना होना सर्वेक्षण के आधार पर गरीबी का अनुमान लगाता है योजना आयोग "ऐस्टीमेशन आफ नंबर एंड प्रोपोर्शन आफ पूवर" नामक विशेष समूह की रिपोर्ट लकड़वाला समिति रिपोर्ट के रूप में प्रसिद्ध द्वारा दी गई पद्धति के आधार पर वर्ष 1997 से गरीबी रेखा और गरीबी अनुपात कार्यक्रम कर रहा है जिसे 61 वे दौर (जुलाई 2004 से 2 जून 2005) तक के उपभोक्ता खर्च कर एन.एस.एस.ओ. के आंकड़ों के आधार पर वर्ष 2004–05 में यूनिफॉर्म रिकाल अवधि जिसमें सभी मदों के लिए उपभोक्ता खर्च संबंधी आंकड़े 30 दिन की रिकाल अवधि के लिए एकत्र किए जाते हैं का उपयोग करते हुए राष्ट्रीय स्तर पर गरीबी के अनुपात का अनुमान ग्रामीण इलाकों में 28.3 प्रतिशत शहरी इलाकों में 25.7 प्रतिशत और संपूर्ण देश के लिए 27.5 प्रतिशत लगाया जबकि मिश्रित पुनर्स्मरण अवधि जिसे पांच गैर आहार मदों अर्थात वस्त्रो, जूते, टिकाऊ सामानों, शिक्षा और संस्थागत चिकित्सा पर खर्च होने वाले उपभोक्ता खर्च संबंधी अपने 365 दिन की रिकाल अवधि के लिए तथा शेष मदों के लिए एकत्र किए जाते हैं का उपयोग करते हुए राष्ट्रीय स्तर पर गरीबी के अनुपात का अनुमान ग्रामीण इलाकों में 21.8 प्रतिशत शहरी इलाकों में 21.7 प्रतिशत संपूर्ण देश में 21.8 प्रतिशत लगाया गया है।

4.7 भारत में विभिन्न समितियों द्वारा गरीबी अनुमान –

गरीबी तथा गरीबी रेखा से नीचे परिवारों के आकलन की पद्धति योजना आयोग द्वारा राष्ट्रीय और राज्य स्तरों पर गरीबी का आकलन ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के लिए अलग से कराए जाने के बावजूद ग्रामीण विकास मंत्रालय ग्रामीण इलाकों में गरीबी रेखा से नीचे के अलग–अलग परिवारों का पता लगाने के लिए बी.पी.एल. जनगणना कराया था ताकि यह सुनिश्चित हो सके की ऐसे परिवारों की कुल संख्या योजना आयोग के अनुमानों के अनुरूप हो गरीबी का आकलन और बी.पी.एल. परिवारों के अनुरूप हो गरीबी का आकलन और बी.पी.एल. परिवारों की पहचान करने की पद्धति हमेशा से विवाद का विषय रहा है इस बात को ध्यान में रखते हुए इन मुद्दों की जांच करने के लिए तीन अलग–अलग समितियां गठित की गई थी

1. तेंदुलकर समिति की रिपोर्ट–

तेंदुलकर समिति की रिपोर्ट योजना आयोग ने दिसंबर 2005 में गरीबी का आकलन करने वाली पद्धति की समीक्षा करने के लिए प्रोफेसर सुरेश डी. तेंदुलकर की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ

समूह का गठन किया इस विशेषज्ञ समूह ने दिसंबर 2009 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर गरीबी की बहुआयामी प्रकृति को स्वीकार करते हुए विशेषज्ञ समूह ने गरीबी रेखा को कैलोरी और प्रवेश मानक के बजाय भावी गरीबी रेखा के आधार के तौर पर खपत खर्च के एम.आर.पी. आधारित अनुमानों और ग्रामीण क्षेत्र के लिए नए डी.एल.बी. संदर्भ के तौर पर 25.7 प्रतिशत शहरी आबादी अनुपात के अनुसार शहरी गरीबी रेखा समूह पी. एल. बी. के एम.आर.पी. को अपनाया जाने की सिफारिश की है उपयुक्त पद्धति के आधार पर वर्ष 2004–05 में अखिल भारतीय ग्रामीण गरीबी आबादी अनुपात 41.8 प्रतिशत शहरी गरीबी आबादी अनुपात 25.7 प्रतिशत अखिल भारतीय 37. 02 प्रतिशत होने का अनुमान लगाया यह उल्लेख किया जा सकता है कि तेंदुलकर कमेटी के अनुमान विभिन्न पद्धतियों के कारण गरीबी के सरकारी अनुमानों से सही–सही तुलनीय नहीं है जैसा की 11वीं पंचवर्षीय योजना की मध्यवर्ती मूल्यांकन दर्शाया गया तेंदुलकर समिति द्वारा वर्ष 2004–05 के लिए संशोधित गरीबी रेखा की योजना आयोग द्वारा स्वीकार कर लिया गया तेंदुलकर समिति ने विशिष्ट रूप से उल्लेख किया कि 2004–05 में नए ग्रामीण गरीबी रेखा के लागू करने के फलस्वरुप ग्रामीण गरीबी की प्रतिशतता में उर्ध्वामुखी संशोधन से यह अर्थ नहीं लगना चाहिए कि समय के साथ–साथ गरीबी की सीमा बढ़ गई है समिति द्वारा दी गई रिपोर्ट के अनुसार यह अनुमान स्पष्ट रूप से यह दर्शाते हैं कि हम चाहे पुरानी पद्धति को अपनाये अथवा नई पद्दति को बी.पी.एल. आबादी की प्रतिशतता लगभग उसी मात्रा में घटेगा।

2. ग्रामीण इलाकों में बी.पी.एल. परिवारों की पहचान के लिए सक्सेना समिति की रिपोर्ट

ग्रामीण इलाकों में बी.पी.एल. परिवारों की पहचान के लिए किसी उपयुक्त पद्धति की सिफारिश करने हेतु ग्रामीण विकास मंत्रालय ने डॉक्टर .एन.सी. सक्सेना की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ समूह का गठन किया इस विशेषज्ञ समूह ने अगस्त 2009 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की तथा बी. पी.एल. जनगणना वर्ष 2002 में आने वाले ग्रामीण परिवारों की स्कोर आधारित रैंकिंग को समाप्त करने की सिफारिश की समिति ने कुछ विशेष अधिकार प्राप्त वर्गों के अपने आप से बहिष्कार तथा समिति की गति पर वंचित और अत्यंत कमजोर वर्ग के समय और समावेशन तथा 10 पैमाने पर उनकी रैंक देने के लिए शेष आबादी का सर्वेक्षण करने की सिफारिश की है।

गरीबी रेखा के लिए अपात्र –

वे परिवार जो निम्नलिखित शर्तों में से किसी भी शर्त को पूरा करेंगे उन्हें बी.पी.एल. जनगणना के लिए सम्मिलित नहीं किया जाएगा।

1–जिन परिवारों के पास प्रति खेतीहर परिवार आंशिक तौर पर अथवा पूर्णतः सिंचित कृषिगत भूमि जिला औसत भूमि से दुगनी हो या पूर्णतःअसिंचित होने की दशा में तीन गुना हो।

2–जिन परिवारों के पास जीप और एस.यू.वी. जैसी तीन अथवा चार पहिया वाली मोटर युक्त वाहन हो ।

3–जिन परिवारों के पास ट्रैक्टर, पावर टिलर, थ्रेसर और हार्वेस्टर जैसा कम से कम कोई एक यंत्र चालित फार्म उपकरण हो।

4–जिन परिवारों का कोई एक व्यक्ति किसी गैर सरकारी निजी संगठन में प्रति माह ₹10000 से अधिक वेतन अर्जित कर रहा हो अथवा पेंशन अथवा सामान लाभों के साथ नियमित आधार पर सरकार में नियोजित हो आयकर दाता हो।

गरीबी रेखा के लिए पात्र –

निम्नलिखित को अनिवार्य रूप से बी.पी.एल. सूची में शामिल किया जाएगा जनजाति वर्ग के रूप में पंजीकृत सभी व्यक्तियों को शामिल किया जाएगा।

1–अनुसूचित जाति के वर्गों में सर्वाधिक भेद–भाव ग्रस्त वर्ग अर्थात महा दलित वर्ग के रूप में जो व्यक्ति नामित हो ।

2–एकल महिला शीर्ष वाला परिवार।

3–जीविका अर्जन के रूप में अशक्त व्यक्ति वाला परिवार ।

4–अवयस्क शीर्ष वाला परिवार।

5–वह असहाय परिवार जो जीविकोपार्जन हेतु मुख्यतः भिक्षा पर आश्रित हो बेघर परिवार एवं वे परिवार जिनमें सदस्य के रूप में कोई बंधुवा मजदूर हो।

6– शेष ग्रामीण परिवारों का सर्वेक्षण किया जाएगा तथा अंक समिति द्वारा संस्तुत विभिन्न सामाजिक आर्थिक प्रचालों के आधार पर दिए जाएंगे ग्रामीण विकास मंत्रालय प्रयोग अध्ययन तथा सहभागी ग्रामीण मूल्यांकन करने की प्रक्रिया में है ताकि कार्य प्रणाली के साथ तालमेल अच्छा हो सके।

बी.पी.एल. परिवारों की पहचान हेतु एस.आर.हाशिम समिति की रिपोर्ट–

आवास और शहरी गरीबी उपशमन मंत्रालय शहरी इलाकों में बी.पी.एल. परिवारों को ज्ञात करने के लिए दिशा निर्देश जारी करने हेतु नोडल मंत्रालय है अब तक शहरी गरीबों को पता लगाने के लिए राज्यों व् संघ राज्य क्षेत्र द्वारा कोई एक सामान्य कार्य प्रणाली नहीं अपनाई जा

रही है योजना आयोग द्वारा एस.आर. हाशिम की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ समूह का गठन किया गया ताकि शहरी इलाकों में बी.पी.एल. परिवारों की पहचान हेतु किसी कार्य प्रणाली की सिफारिश की जा सके।

4.8 पुनर्स्मरण अवधि प्रणाली–

भारत में यह प्रणाली सर्वोत्तम वर्ष 1954 में पी.सी. महालनोविस द्वारा पश्चिम बंगाल के क्षेत्र गांव में गरीबी के अनुमान के लिए उपयोग में लाई गई इसके लिए महालनोवीस द्वारा 1254 परिवारों के लिए 30 दिवसीय पुनर्स्मरण अवधि का उपयोग किया गया 30 दिवसीय पुनर्स्मरण का तात्पर्य यह है कि सर्वेक्षण तिथि से एक माह तक संबंधित परिवारों ने क्या व्यय किया था इसे (यू.आर.पी.) यूनिफॉर्म रिकॉल पीरियड कहा गया जिसके अंतर्गत उपभोग व्यय संबंधी आंकड़ों का संग्रह एन.एस.एस.ओ. के सर्वेक्षण द्वारा सभी मतों के लिए 30 दिनों की एक समान अवधि के लिए किया जाता है वर्ष 1999 –2000 के सर्वेक्षण में एन.एस.एस.ओ. द्वारा 365 दिवसीय एक नई पुनर्स्मरण अवधि प्रारंभ की गई इसके अंतर्गत पांच गैर खाद्य मदों पर किया जाने वाला उपभोग भी सम्मिलित किया गया कपड़े फुटवियर, टिकाऊ वस्तुएं, शिक्षा तथा संस्थागत चिकित्सा व्यय इनके अलावा शेष मदों पर उपभोग व्यय के आंकड़े 30 दिवसीय पुनर्स्मरण के आकंड़ो पर आधारित होते हैं अतः इसे मिश्रित पुनर्स्मरण अवधि एम.आर.पी. अवधि कहा जाता है यू.आर.पी. की अपेक्षा एम.आर.पी. एक बेहतर माप है सुरेश तेंदुलकर समिति ने एकसमान स्मरण अवधि आधारित आंकड़ों की बजाय मिश्रित पुनर्स्मरण अवधि आधारित आंकड़ों को अपनाए जाने की संस्तुति की थी ।

4.9 भारत में गरीबी के कारक–

भारत में गरीबी उत्पन्न करने वाले मुख्य कारको को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है आर्थिक और सामाजिक जो निम्नलिखित है।

आर्थिक कारक–

तीव्र जनसंख्या वृद्धि।

व्यापक बेरोजगारी और अल्प रोजगार।

मूल्य वृद्धि की तुलना में आय वृद्धि में कमी।

वैकल्पिक व्यवसाय के अभाव में कृषि पर निर्भरता ।

पर्याप्त उत्पादक रोजगार तथा परिसंपत्तियों का अभाव।

उत्पादन के साधनों तथा आय का आसमान वितरण।

पूंजी का अभाव।

उपक्रम की कमी तथा व्यावसायिक व तकनीकी शिक्षा के अवसरों में कमी।

कृषि और उद्योग में निम्न उत्पादकता।

निम्न स्तरीय आर्थिक गतिविधियों में सलंग्नता।

निम्न मजदूरी दर इत्यादि।

सामाजिक कारक–

विभिन्न राज्यों में क्षेत्रीय असमानताएं।

शिक्षा का अपर्याप्त प्रसार।

सामाजिक व धार्मिक रूढ़िवादिता ।

भारतीयों का आत्मसंतुष्ट एवं समझौता वादी दृष्टिकोण।

संयुक्त कुटुंब प्रणाली एवं जाति व्यवस्था इत्यादि।

4.10 भारत में गरीबी निवारण के नीतिगत उपाय–

भारत में नियोजन के प्रारंभ से ही गरीबी में कमी लाना विकास की नीति का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है इस संदर्भ में संवृद्धि व सामाजिक न्याय विकासात्मक नियोजन का उद्देश्य रहा है वर्ष 1950 के दशक के प्रारंभिक वर्षों से ही गरीबी में कमी लाने के लिए अनेक कदम उठाए गए हैं इसके लिए पहला कदम 1952 में प्रारंभ किया गया सामुदायिक विकास कार्यक्रम था दूसरा कदम भू स्वामित्व में मध्यस्थों की समाप्ति जैसे जमींदारी व जागीरदारी प्रथा की समाप्ति के रूप में था तीसरा कदम हरित क्रांति के द्वारा खाद्यान्नों के तीव्र वृद्धि के रूप में प्रारंभ किया गया ।

विगत 6 दशकों से अधिक समय में गरीबी निवारण के लिए कार्यक्रम प्रारंभ किया गया जिन्हें चार प्रमुख वर्गों में बांटा जा सकता है।

स्वरोजगार कार्यक्रम –

मजदूरी रोजगार कार्यक्रम

सार्वजनिक वितरण प्रणाली एवं पोषाहार कार्यक्रम

सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम

अनेक नीतिगत कदमों तथा कार्यक्रमों के बावजूद आज भी भारत में गरीबी एक बड़ी चुनौती के रूप में विद्यमान है हाल के वर्षों में गरीबी में कमी की तीव्रतम रही है वर्ष 1993–94 से 2004–05 की 11 वर्षों की अवधि में गरीबी अनुपात 0.74 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से कमी आई थी वर्ष 2004– 05 से वर्ष 2011–12 की 7 वर्षों में इन कार्यक्रमों की वजह से गरीबी अनुपात में प्रतिवर्ष 2.8 प्रतिशत की दर से कमी आई है जो कि विगत 11 वर्षों की अवधि में हुई कमी का लगभग तीन गुना है चीन ने वर्ष 1978 से वर्ष 2004 में 26 वर्षों में गरीबों की संख्या में 220 मिलियन की कमी की थी जिसे विश्व स्तर पर सराहा गया था दूसरी ओर भारत ने वर्ष 2004–05 से वर्ष 2011–12 के 7 वर्षों की अवधि में गरीबों की संख्या में 407 मिलियन से घटकर 269 मिलियन लाने अर्थात 138 मिलियन लाने की सफलता प्राप्त की भारत में गरीबी में यह कमी विकास के तुलनात्मक स्तर पर चीन की अपेक्षा कहीं अधिक तीव्र तथा अवधि में संभव हुई भारत में गरीबी में कमी कि दर को और अधिक तीव्र करने की आवश्यकता है ।

जिसे 12वीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक गरीब गरीबी अनुपात 10 प्रतिशत की कमी ले जाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था इसके लिए तीव्र संवृद्धि की आवश्यकता है जिसके लिए उदारीकरण आवश्यक है विशेष कर कृषि में तथा आधारभूत ढांचे के विकास में जो भारत के अधिकार क्षेत्र में अत्यंत घटिया स्थिति में है जिन क्षेत्रों में शिक्षा तथा स्वास्थ्य की स्थितियां गंभीर एवं सामाजिक और स्थापना का विकास अत्यंत आवश्यक शिक्षा व स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार के लिए यह आवश्यक है की राज्य सरकारे अपनी वित्तीय स्थितियों में सुधार करें इसके लिए सामाजिक क्षेत्र में उच्चतर व्ययों की आवश्यकता है किंतु उच्चतर व्ययों के साथ बेहतर संस्थाओं का सुनिश्चित किया जाना भी आवश्यक है इसके लिए सुशासन में गंभीर गहन सुधारात्मक आवश्यक है जो कि भारत के गरीबतम क्षेत्र में प्राय अत्यंत दुर्बल होता है इसके अलावा सेवाओं का अधिक क्षमता मूलक होना भी आवश्यक है ताकि महिलाओं दुर्बल वर्ग तथा निम्न जातियों को अधिक सशक्त बनाया जा सके

4.12 विश्व बैंक द्वारा गरीबी निवारण के सुझाव –

विश्व बैंक ने भी गरीबी में कमी की रणनीति पर ध्यान केंद्रित किया है विश्व विकास रिपोर्ट वर्ष 1990 में विश्व बैंक में इसके लिए दो बिंदुओं की रणनीति सुझाई थी इसके लिए विश्व बैंक ने यह निर्देश दिया था कि जो देश गरीबी पर प्रहार कर सकने में सर्वाधिक सफल रहे उन्होंने समृद्धि का एक ऐसा मार्ग चुना है जिसमें श्रम शक्ति का स्पेशल उपयोग किया गया तथा गरीबों के लिए मानव पूंजी में निवेश किया गया यह दोनों ही मानव तत्व आवश्यक है इनमें से प्रथम गरीबों को उनकी सर्वाधिक प्रचुर परिसंपत्ति अर्थात श्रम के उपयोग के अवसर प्रदान करता है द्वितीय उनके तात्कालिक कल्याण में सुधार लाता है तथा नवनिर्मित अवसरों का लाभ उठा सकने के लिए उनकी क्षमताओं में वृद्धि करता है यह दोनों मिलकर विश्व के अधिकांश गरीबों के जीवन में सुधार ला सकते हैं मानव पूंजी, शिक्षा और स्वास्थ्य विश्व बैंक ने विश्व विकास रिपोर्ट वर्ष 2000–2001 में गरीबी पर प्रहार को अपना केंद्र बिंदु बनाया था अपने विचारों तथा अनुभवों के विश्लेषण के आधार पर विश्व बैंक में गरीबी में कमी लाने की रणनीति के तीन आयाम स्वरूपों का अनुमोदन किया था।

अवसरों का प्रोत्साहन–

गरीबों के लिए आर्थिक अवसरों का विस्तार करना जो समग्र संवृद्धि की दर को बढ़ाकर तथा उनकी परिसंपत्तियों जैसे भूमि तथा शिक्षा का सृजन करके इन परिसंपत्तियों पर बाजार तथा गैर बाजार उपायों द्वारा प्रत्येक वर्ष में वृद्धि करके की जाए।

सशक्तिकरण–

सरकारी संस्थाओं को गरीबों के प्रति अधिक जवाबदेह तथा संवेदनशील बनाना राजनीतिक प्रक्रियाओं तथा स्थानीय स्तरों पर निर्णय लेने की प्रक्रिया में गरीबों की भागीदारी में वृद्धि करना तथा उन सामाजिक अवरोधों को दूर करना जो लिंग धर्म जाति तथा सामाजिक स्तर आदि के आधार पर उत्पन्न होते हैं।

सुरक्षा में वृद्धि–

गरीबों को प्रतिकूल स्वास्थ्य आर्थिक आजादी तथा फसल के नष्ट हो जाने, प्राकृतिक आपदाओं की नीति जनित विस्थापन तथा हिंसा जैसी आपदा ग्रस्तताओं या शंकाओं में कमी लाना तथा साथ ही इन प्रतिकूल आघातों के उत्पन्न होने पर उनका सामना कर सकने के लिए उनकी सहायता करना इसका एक बड़ा भाग ऐसे सुरक्षा कवचों को सुनिश्चित करना है जिससे कि इन आपदाओं के प्रभाव को सामान्य किया जा सके।

इन तीनों क्षेत्रों में प्रगति करना आधारभूत रूप से परस्पर पूरक है इनमें से प्रत्येक स्वयं में महत्वपूर्ण है तथा प्रत्येक अन्य दो को भी सशक्त बनाता है इसके लिए स्थानीय राष्ट्रीय स्तर पर उठाए जाने वाले कम पर्याप्त नहीं है विगत दशक के प्रमाण से वैश्विक कदमों का महत्व स्पष्ट होता है यह आवश्यक है कि वैश्विक एकीकरण तथा तकनीकी उन्नयन के लाभ गरीबों तक पहुंच सके तथा वह वैश्विक परिवर्तनों के परिणाम स्वरुप उत्पन्न होने वाले सुरक्षा के जोखिम और तथा समावेशन की आशंकाओं का प्रबंध कर सके।

4.13 भारत में गरीबी निवारण के नीतिगत सुझाव–

विगत कुछ दशकों में यह अनुभव अर्थव्यवस्था के संचालन से संबंधित एक बेहतर दृष्टिकोण प्रदान किया है जिनके आधार पर निम्नलिखित उपाय गरीबी में कमी को अधिक तीव्र बनाने के लिए महत्वपूर्ण होंगे।

संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग तथा सामाजिक और स्थापना के बेहतर प्रबंधन के लिए सरकार तथा गैर सरकार भागीदारी जो की तुलनात्मक शक्तियों तथा दुर्बलताओं पर विचार करते हुए की जाए ।

एक ऐसी प्रणाली का निर्माण किया जाना जो विकास की प्रक्रिया में दुर्बल वर्गों की भागीदारी सुनिश्चित करते हुए उन्हें सशक्त बनाए।

विकास की प्रक्रिया का लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण किया जाना एक उचित निगरानी प्रणाली का क्रियान्वयन किया जाना ताकि स्थानीय संस्थाएं जवाबदेह तथा क्रियाशील बन सके।

सामाजिक सुरक्षा उपायों को सशक्त बनाना ताकि गरीबों के जोखिमों तथा आपदाग्रस्त होने की आशंकाओं को यथा संभव न्यूनतम किया जा सके।

स्थानीय निकायों को अपने स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों में परिवर्तन किए जाने की छूट प्रदान करना ।

गरीबों को लाभान्वित करने वाले उपयोगी एवं महत्वपूर्ण सूचनाओं तक पहुंच में उच्चतम संभावित वृद्धि करना।

यह सुनिश्चित करना कि जो नियम–कानून गरीबों की सुरक्षा के लिए निर्मित किए गए हो वह वास्तव में उनके विरुद्ध कार्य न करें ।

गरीबों से संबंधित ऐसे प्रतिबंधों को समाप्त करना जो भ्रष्टाचार के लिए व्यापक अवसर प्रदान करते हैं जैसे रिक्शावालों तथा फेरी वालों को लाइसेंस की आवश्यकता को समाप्त करना

जनसंख्या में गरीब वर्गों के लिए अधिक अवसरों और रोजगार का सृजन करना शिक्षा व असमानताओं को दूर करने के लिए उच्चतर समावेशन सुनिश्चित करना जो आयोजन में सहायता उत्पन्न करता है।

आय व्यय में ग्रामीण व नगरीय तथा क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करना।

ग्रामीण क्षेत्रों पर अधिक बल कृषि उत्पादकता का विस्तार साथ ही साथ विस्तार प्रणाली को सशक्त बनाया जाना ताकि ज्ञान का प्रसार अन्य क्षेत्रों में भी हो सके।

सामुदायिक आधारित निगरानी प्रणाली ताकि गरीब परिवारों के स्तर तक विकासात्मक आगतों का वंचित समीकरण सुनिश्चित हो तथा उन्हें अंतत व्यवहार एवं सशक्त व्यक्तियों के रूप में बनाया जा सके ।

एक विशेष आयोग का गठन किया जाना जो पूर्णता आर्थिक विकास रोजगार गरीबी उन्मूलन के उद्देश्यों के प्रति समर्पित हो।

उच्च गरीबी वाले राज्यों में गरीबी में तीव्र कमी किए जाने पर उन्हें प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए एक आर्थिक कोष का निर्माण किया जाना।

एक सतत गरीबी में कमी का उपागम विस्तृत करना ।

गरीबी केंद्रीय श्रमिकों का एक समूह निर्मित करना ।

गरीबी विरोधी नीतियों के लिए एक सशक्त संस्थागत प्रणाली विकसित करना जो गरीबी संबंधी अध्ययनों तथा उन्मूलन के लिए केंद्रित हो।

ऐसी संस्थागत प्रक्रियाओं का निर्माण करना जो गरीबों को कानूनी अधिकार तथा उनके अध्ययन के लिए संगठित करें गरीबों की समस्या का समाधान तब तक नहीं हो सकता जब तक सुशासन की गुणवत्ता में सुधार न किया जाए तथा गरीबों के प्रति चिताओं को प्रमुखता ना दी जाए इसके लिए आवश्यक है कि इसे राष्ट्रीय स्तर पर कार्य सूची में सर्वोच्च वरीयता प्रदान की जाए।

4.13 सारांश–

गरीब व्यक्ति अपने क्रियाकलापों और जीवन की आधारभूत स्वतंत्रता से वंचित रहते हैं जो संपन्न व्यक्तियों के लिए एक सामान्य उपलब्धि होती हुई प्रायः पर्याप्त भोजन तथा आश्रय से शिक्षा तथा स्वास्थ्य से वंचित रहते हैं अर्थात ऐसी अपदाग्रस्ताताओं से ग्रसित रहते हैं जो उन्हें एक ऐसा जीवन जी सकने से दूर रखते हैं जिस जीवन की इच्छा प्रत्येक व्यक्ति को होती हुई प्रायः

प्रतिकूल स्वास्थ्य प्राकृतिक आपदाओं तथा आर्थिक विस्थापन की गंभीर आपदा ग्रस्ताओं का भी सामना करते हैं इसके अलावा भी प्रायः सरकार तथा समाज की संस्थाओं के दुर्व्यवहार का सामना करते तथा उनके अपने जीवन को प्रभावित करने वाले प्रमुख निर्णय में उनकी भूमिका नहीं होती है यह सभी गरीबी के आयाम है गरीबी आर्थिक राजनीतिक तथा सामाजिक प्रक्रियाओं का परिणाम है जो एक दूसरे के साथ अंतर क्रियाएं करती है तथा एक दूसरे को इस प्रकार सशक्त करते हैं जिनके परिणाम स्वरुप गरीबों की आवश्यकताओं में और वृद्धि हो जाती है

4.15 बोध प्रश्न–

1–गरीबी की परिभाषा से आप क्या समझते हैं?

2–गरीबी की अवधारणा का उल्लेख कीजिए।

3–भारत में गरीबी रेखा के निर्धारण से आप क्या समझते है?

4–भारत में गरीबी के लगाए गए अनुमानों का उल्लेख कीजिए।

5–गरीबी एवं समावेशी विकास से आप क्या समझते हैं ?

6–गरीबी अनुमान पद्धति क्या है ?

7–भारत में विभिन्न समितियों द्वारा लगाये गए गरीबी अनुमानों का उल्लेख कीजिए।

8–पुनर्स्मरण अवधि प्रणाली क्या है?

9–भारत में गरीबी के कारकों का उल्लेख कीजिए ।

10–भारत में गरीबी निवारण के नीतिगत उपायों तथा विश्व बैंक द्वारा गरीबी निवारण के सुझावों का उल्लेख कीजिए।

11–भारत में गरीबी निवारण हेतु सुझाव दीजिए।

4.16 कुछ उपयोगी पुस्तके–

आर्थिक विकास एवं नियोजनः एस.के. मिश्रा एवं बी.के. पुरी, हिमालय पब्लिशिंग हाउस

विकास और नियोजन का अर्थशास्त्रः एम.एल. झींगन

विकास और नियोजन का अर्थशास्त्रः एम. तनेजा, एम.आर मायर

आर्थिक विकास एवं नियोजनः साहित्य भवन पब्लिकेशन

शहरी नियोजन सिद्धांत और व्यवहारः एम. प्रताप राव

क्षेत्रीय नियोजन और विकासः आर.सी. चंदन

विकास और नियोजन का अर्थशास्त्रः लक्ष्मी नारायण अग्रवाल

क्षेत्रीय विकास और नियोजनः जानकी जीवन

विकास और नियोजन की आधुनिक शिक्षाः जे.सी. अग्रवाल

विकास एवं नियोजन का भारतीय अनुभवः सुखमय चक्रवर्ती

ग्रामीण विकास नियोजनः आर.एन. अग्रवाल

खण्ड–4
इकाई–5
जनसंख्या लाभांश, तात्पर्य कारण एवं परिणाम, राजकीय सरकारी योजनाओं एवं मूल्यांकन

जनसंख्या की बदलती जनसांख्यिकीय संरचना का किसी राष्ट्र के आर्थिक विस्तार और सामान्य कल्याण पर अनुकूल प्रभाव हो सकता है। जनसांख्यिकीय लाभांश किसी देश की जनसंख्या आयु संरचना में परिवर्तन, विशेष रूप से उच्च से निम्न जन्म और मृत्यु दर में बदलाव के कारण बढ़ी हुई आर्थिक वृद्धि की घटना को संदर्भित करता है, जिसके परिणामस्वरूप जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा कामकाजी उम्र का हो जाता है। भारतीय अर्थव्यवस्था जनसांख्यिकीय लाभांश के दौर का अनुभव कर रही थी, जिसकी विशेषता यह थी कि जनसंख्या का एक महत्वपूर्ण हिस्सा कामकाजी उम्र का था।जनसांख्यिकी लाभांश श्रम बल के विस्तार में योगदान देता है, जिससे शहरीकरण और औद्योगीकरण में तेजी आती है। इसके परिणामस्वरूप भौतिक और मानव बुनियादी ढांचे दोनों में निवेश में वृद्धि हुई है। संवर्धित श्रम शक्ति के परिणामस्वरूप देश की आर्थिक उत्पादकता में वृद्धि होती है। भारत की 15 से 59 वर्ष की आयु की कामकाजी आबादी में जनसांख्यिकीय लाभांश का दोहन करने के उद्देश्य से की गई पहलों में आत्मनिर्भर भारत, मेक इन इंडिया, स्टार्टअप इंडिया

और अन्य शामिल हैं। जनसांख्यिकीय लाभांश जनसंख्या की संरचना और प्रजनन दर से महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित होता है।

जनसंख्या लाभांश

जनसांख्यिकीय लाभांश तब होता है जब कुल जनसंख्या में कामकाजी लोगों का अनुपात अधिक होता है क्योंकि यह इंगित करता है कि अधिक लोगों में उत्पादक होने और अर्थव्यवस्था के विकास में योगदान करने की क्षमता है। युवा और वृद्धों के मध्य लाभांश के कारण, कई लोग तर्क देते हैं कि आर्थिक लाभ की काफी संभावना है, जिसे "जनसांख्यिकीय लाभांश" कहा गया है। आर्थिक विकास के लिए युवा आबादी को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, पर्याप्त पोषण और स्वास्थ्य सहित यौन और प्रजनन स्वास्थ्य तक पहुंच होनी चाहिए। जनसांख्यिकीय लाभांश तब होता है जब कोई देश उच्च प्रजनन दर वाली ग्रामीण कृषि अर्थव्यवस्था से कम प्रजनन और मृत्यु दर वाली शहरी औद्योगिक अर्थव्यवस्था में जनसांख्यिकीय संक्रमण से गुजरता है। यह लेख भारतीय संदर्भ में जनसांख्यिकीय लाभांश और उससे जुड़े अवसरों का विवरण देता है।

जनसंख्या लाभांश के अन्तर्गत अधिकांश देशों में बच्चों के जीवित रहने की दर में सुधार हुआ है, लेकिन उनमें से कई, विशेष रूप से कम विकसित देशों में, अभी भी जन्म दर उच्च है। नतीजतन, ये राष्ट्र शायद ही कभी जनसांख्यिकीय लाभांश कहे जाने वाले आर्थिक लाभ का अनुभव करते हैं। जनसांख्यिकीय लाभांश किसी राष्ट्र में अनुकूल परिस्थितियों को संदर्भित

करता है जब जन्म और मृत्यु दर में कमी के कारण आर्थिक विकास में तेजी से वृद्धि होती है। एक राष्ट्र जो जन्म और मृत्यु दर दोनों में गिरावट का सामना करता है, उसे कार्य करने वाली आबादी के बीच उत्पादकता में वृद्धि से आर्थिक लाभ मिलता है, जिसे आर्थिक लाभांश के रूप में जाना जाता है। निर्धारित किए गए जन्म दर में कमी के साथ, आबादी के संबंध में युवा आश्रितों का अनुपात कम हो जाता है। कम जनसंख्या और बढ़ी हुई कार्यबल के साथ, एक अर्थव्यवस्था अपने संसाधनों को अधिक कुशलता से आवंटित कर सकती है और उन्हें अन्य क्षेत्रों में लगा सकती है, जिससे देश की आर्थिक प्रगति में तेजी आएगी और इसके लोगों की भविष्य की भलाई में वृद्धि होगी। जनसांख्यिकीय लाभांश प्राप्त करने के लिए, एक राष्ट्र को जनसांख्यिकीय परिवर्तन से गुजरना होगा, उच्च प्रजनन क्षमता और मृत्यु दर वाली ज्यादातर ग्रामीण कृषि अर्थव्यवस्था से कम प्रजनन क्षमता और मृत्यु दर वाले शहरी औद्योगिक समाज में संक्रमण करना होगा। इस संक्रमण के शुरुआती चरणों के दौरान, प्रजनन दर में गिरावट आई है, जिसके परिणामस्वरूप श्रम शक्ति अस्थायी रूप से उस आबादी की तुलना में तेज गति से बढ़ रही है जिसका वह समर्थन करती है। इस शर्त के तहत कि अन्य सभी कारक स्थिर रहेंगे, इस अवधि में प्रति व्यक्ति आय में भी अधिक तेजी से वृद्धि होगी। जनसांख्यिकीय बदलाव के दौर से गुजर रहा देश अब अपना पहला आर्थिक लाभ लाभांश के रूप में देख रहा है।

जनसांख्यिकीय लाभांश के प्रकार

पहली भुगतान अवधि अक्सर काफी लंबी होती है, कभी-कभी पांच दशकों या उससे अधिक तक चलती है। समय के साथ, घटती जन्म दर के कारण कार्यबल के विस्तार में कमी आती है। इसके साथ ही, चिकित्सा विज्ञान में प्रगति और उन्नत स्वास्थ्य संलेख के परिणामस्वरूप उच्च आबादी लगातार बढ़ रही है, अतिरिक्त वित्तीय संसाधन में कमी आ रही हैं और जनसांख्यिकीय लाभांश समाप्त हो रहा है। इस बिंदु पर, यदि अन्य सभी कारक स्थिर रहते हैं, तो प्रति व्यक्ति औसत आय धीमी गति से बढ़ती है और प्रारंभिक जनसांख्यिकीय लाभ हानि में परिवर्तित हो जाता है। सेवानिवृत्ति के लंबे समय का सामना करने वाला एक वृद्ध कार्यबल खुद को बनाए रखने के लिए संसाधनों को इकट्ठा करने के लिए दृढ़ता से प्रेरित होता है। आमतौर पर, इन संसाधनों को स्थानीय और वैश्विक दोनों निवेश वाहनों के लिए आवंटित किया जाता है, जो देश की समग्र कमाई में योगदान करते हैं। राष्ट्रीय राजस्व के सतत संचय को अक्सर दूसरे लाभांश के रूप में जाना जाता है।

जनसांख्यिकीय परिवर्तन से प्राप्त लाभ न तो स्वाभाविक रूप से स्वचालित हैं और न ही सुनिश्चित हैं। किसी भी जनसांख्यिकीय लाभांश की प्राप्ति सरकार द्वारा शिक्षा, स्वास्थ्य, शासन और अर्थव्यवस्था जैसे प्रमुख क्षेत्रों में उचित नीतियों के प्रभावी कार्यान्वयन पर निर्भर करती है। इसके अलावा, किसी देश को जनसांख्यिकीय लाभांश से किस हद तक लाभ

होता है, यह उसके युवा वयस्कों के उत्पादकता स्तर पर निर्भर करता है, जो शैक्षिक प्राप्ति, रोजगार प्रथाओं, बच्चे पैदा करने के समय और आवृत्ति, और आर्थिक नीतियों जैसे कारकों से प्रभावित होता है जो भागीदारी की सुविधा प्रदान करते हैं। कार्यबल में युवा माता-पिता. लाभांश राशि आगे बुजुर्ग व्यक्तियों की उत्पादकता से जुड़ी हुई है, जो कर प्रोत्साहन, स्वास्थ्य कार्यक्रमों और पेंशन और सेवानिवृत्ति कानूनों पर निर्भर है।

ऐसे चार मुख्य क्षेत्र हैं जहां कोई देश जनसांख्यिकीय लाभ पाया जा सकता है:

- बचत- जनसांख्यिकीय अवधि के दौरान, व्यक्तिगत बचत बढ़ती है और इसका उपयोग अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहित करने के लिए किया जा सकता है।
- श्रम आपूर्ति- श्रम बल में अधिक श्रमिकों को जोड़ा जाता है, जिनमें अधिक महिलाएँ भी शामिल हैं।
- मानव पूंजी- कम जन्म के साथ, माता-पिता प्रति बच्चे अधिक संसाधन आवंटित करने में सक्षम होते हैं, जिससे बेहतर शैक्षिक और स्वास्थ्य परिणाम प्राप्त होते हैं।
- आर्थिक विकास- निर्भरता अनुपात में कमी के कारण प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि होती है।

https://www.investopedia.com/terms/d/demographic-dividend.asp

जनसांख्यिकीय लाभांश - भारत के लिए अवसर

- भारत में वैश्विक स्तर पर सबसे अधिक युवा कार्यबल है, जिसकी औसत आयु चीन और अन्य विकसित देशों की तुलना में बहुत कम है।
- अन्य देशों में उनकी आबादी का प्रतिशत अधिक होगा जो कामकाजी आयु सीमा के भीतर नहीं है, जिससे लगभग 56 मिलियन की श्रम कमी होगी।
- भारतीय श्रम शक्ति में भारत के अंदर और बाहर दोनों जगह इस कमी को दूर करने की क्षमता है, जिससे महत्वपूर्ण आर्थिक विस्तार होगा।
- जनसांख्यिकीय लाभांश के युग में, व्यक्तिगत बचत में वृद्धि होगी, जिसके परिणामस्वरूप क्रय शक्ति में वृद्धि होगी, जो बदले में आर्थिक विकास को प्रोत्साहित कर सकती है।

जनसांख्यिकीय विभाजन सम्बन्धी भारत के सामने चुनौतियाँ

- कामकाजी उम्र की आबादी की उत्पादकता को अधिकतम करने और देश की जीडीपी में योगदान करने के लिए उनके कौशल को बढ़ाना। 2031 तक, 22 मुख्य राज्यों में से 11 में कामकाजी उम्र की आबादी में लोगों की कुल संख्या कम हो जाएगी। जबकि केरल की आबादी में पहले से ही बुजुर्ग व्यक्तियों के अनुपात में वृद्धि देखी जा रही है, बिहार में कामकाजी उम्र की आबादी 2051 तक बढ़ने का अनुमान है।

- भारतीय स्नातकों की रोजगार दर काफी कम है।
- यूएनडीपी अध्ययन के मुताबिक मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) में भारत की रैंकिंग बेहद कम है।
- भारत में शिक्षा के औसत वर्ष और स्कूली शिक्षा के अनुमानित वर्ष दोनों का स्तर बहुत कम है।
- भारत के ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में बेरोजगारी दर अधिक है।
- भारत में जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा आज भी कृषि पर निर्भर है। इस विशेष समूह की विशेषता उच्च स्तर की अल्परोज़गारी और छिपी हुई बेरोज़गारी भी है।
- असंगठित क्षेत्र, जो कार्यबल का एक बड़ा हिस्सा है, अल्प वेतन और सामाजिक सुरक्षा की कमी से ग्रस्त है।
- अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) और विश्व बैंक के अध्ययनों के अनुसार, भारत में श्रम क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी में गिरावट आई है। महिला साक्षरता में वृद्धि के परिणामस्वरूप व्यावहारिक और विपणन योग्य क्षमताओं का अधिग्रहण नहीं हो पा रहा है। आभासी कक्षाओं के साथ-साथ खुले डिजिटल प्रशिक्षण और व्यावसायिक शिक्षा के मॉड्यूल में महिलाओं के लिए अनुकूलनीय प्रवेश और निकासी प्रक्रियाओं की अनुपस्थिति, आधुनिक व्यवसायों को आगे बढ़ाने की उनकी क्षमता को प्रतिबंधित करती है।

भारत की जनसांख्यिकीय लाभांश के माध्यम

- **स्वास्थ्य और शिक्षा में निवेश**: विशेषज्ञों के अनुसार, भारत सरकार को अपने लोगों की रोजगार क्षमता बढ़ाने के लिए स्वास्थ्य और शिक्षा में अपने निवेश में तेजी लानी चाहिए। 15वें वित्त आयोग ने प्रस्ताव दिया है कि भारत को 2025 तक अपने सकल घरेलू उत्पाद का 2.5% स्वास्थ्य देखभाल पर सार्वजनिक खर्च के लिए आवंटित करना चाहिए। इसी तरह, शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय को सकल घरेलू उत्पाद के 1% के मौजूदा अनुपात से ऊपर बढ़ाने की आवश्यकता है।
- **विनिर्माण गतिविधि में तेजी लाना:** पर्याप्त संख्या में रोजगार के अवसर प्रदान करने के लिए विनिर्माण क्षेत्र की अप्रयुक्त क्षमता का उपयोग करना होगा। क्षेत्र की प्रतिस्पर्धात्मकता बढ़ाने का एक तरीका भूमि और श्रम सुधार लागू करना है।
- **संरचनात्मक मुद्दों को संबोधित करना:** भारत को आर्थिक प्रगति में तेजी लाने के लिए अपनी मूलभूत कठिनाइयों से तुरंत निपटना चाहिए। ऐसा करने का एक तरीका रोजगार सृजन को बढ़ावा देना, स्वास्थ्य देखभाल और शिक्षा में सुधार के लिए संसाधनों का आवंटन करना और विनिर्माण प्रक्रियाओं में तेजी लाना है।

- **केंद्र और राज्यों के बीच सहयोग:** औद्योगिक गतिविधि में तेजी लाने और भारत के युवा जनसांख्यिकीय का पूरी तरह से उपयोग करने के लिए राष्ट्रीय और राज्य सरकारों के बीच सहयोग महत्वपूर्ण है।
- **राज्यों के बीच विविधता को संबोधित करना:** यूएनएफपीए की विश्व जनसंख्या स्थिति रिपोर्ट 2023 भारत को अपने राज्यों के बीच असमानताओं से निपटने की आवश्यकता पर जोर देती है। दक्षिणी राज्य, जो जनसांख्यिकीय परिवर्तन में काफी आगे बढ़ चुके हैं, वहां पहले से ही बुजुर्ग व्यक्तियों का अनुपात अधिक है। भारत का उत्तर-मध्य क्षेत्र देश के कार्यबल का प्राथमिक स्रोत माना जाता है। विशेष रूप से जनसांख्यिकीय परिवर्तन के प्रबंधन के मामले में यह क्षेत्र राज्यों को सहयोग करने के लिए कई अवसर प्रदान करता है।
- **मानव पूंजी निवेश:** भारत को जनसांख्यिकीय लाभांश को प्रोत्साहित करने के लिए अपनी मानव पूंजी को विकसित करने के लिए संसाधनों का आवंटन करना चाहिए। यह निवेश बढ़े हुए आर्थिक उत्पादन, बेहतर स्वास्थ्य, उन्नत शिक्षा और अधिक सशक्तिकरण के रूप में प्रकट हो सकता है। भारत ने हाल ही में एक नई शिक्षा रणनीति लागू की है, जिसमें सरकार देश के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का 6% शिक्षा क्षेत्र में निवेश के लिए आवंटित करने का इरादा रखती है। फिर भी, मौजूदा निवेश सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का मात्र 2.9% है।

- **सतत विकास लक्ष्यों पर ध्यान दें:** राज्यों में आयु वितरण में भिन्नता आर्थिक उन्नति और स्वास्थ्य स्थितियों दोनों में असमानताओं का संकेत है। इसलिए, 2030 सतत विकास लक्ष्य एजेंडा को पूरा करने के लिए सरकारों के लिए सहयोग करना अनिवार्य है।

यूएनएफपीए की विश्व जनसंख्या रिपोर्ट 2023 की रिपोर्ट के अनुसार, भारत में जनसांख्यिकीय बदलाव कामकाजी उम्र की आबादी में लगातार वृद्धि दर्शाता है, जो 2020 में 67.3% और 2015 में 66% की तुलना में 68% तक पहुंच गया है। चीन की कामकाजी उम्र की आबादी अब 69% है, जो 2020 में 70.3% और 2015 में 73% से गिरावट दर्शाती है। वैश्विक जनसंख्या पर संयुक्त राष्ट्र के अनुमान के अनुसार, 2023 में भारत की जनसंख्या 1,428.6 मिलियन थी, जो चीन की जनसंख्या 1,425.7 मिलियन से थोड़ी अधिक है। यूएनएफपीए की रिपोर्ट के अनुसार, एक युवा राष्ट्र होने के नाते, भारत के विभिन्न राज्यों में जनसंख्या की उम्र बढ़ने की दर अलग-अलग है। उन्नत जनसांख्यिकीय बदलाव की विशेषता वाले दक्षिणी राज्यों में पहले से ही बुजुर्ग व्यक्तियों का अनुपात अधिक है। संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट में कहा गया है कि आयु वितरण में भिन्नताएं आर्थिक प्रगति और कल्याण में असमानताओं का संकेत देती हैं, जो 2030 सतत विकास लक्ष्य एजेंडा की शुरुआत में प्रत्येक

राज्य को सामना करने वाली विविध प्रारंभिक स्थितियों की याद दिलाती है। जैसा कि यूएनएफपीए ने रेखांकित किया है, भारत को अपने राज्यों में मतभेदों को स्वीकार करना चाहिए और उनसे निपटना चाहिए। हालाँकि, यह विविधता राज्यों के लिए सहयोग करने की असीमित संभावनाएँ भी प्रस्तुत करती है, विशेषकर जनसांख्यिकीय परिवर्तन के संदर्भ में उत्तर-मध्य क्षेत्र, विशेष रूप से, भारत के कार्यबल के एक मूल्यवान स्रोत के रूप में कार्य करता है।

सरकार द्वारा प्रदत्त सरकारी योजनाएँ

- प्रधान मंत्री जन-धन योजना (पीएमजेडीवाई) ...
- जन-धन से जन सुरक्षा ...
- प्रधानमंत्री जीवन ज्योजति बीमा योजना (पीएमजेजेबीवाई) ...
- प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना (पीएमएसबीवाई) ...
- अटल पेंशन योजना (एपीवाई) ...
- प्रधानमंत्री मुद्रा योजना ...
- स्टैंण्ड अप इंडिया योजना

भारत के जनसांख्यिकीय लाभांश का उपयोग करना

संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष द्वारा परिभाषित जनसांख्यिकीय लाभांश, लाभप्रद आर्थिक परिणाम को संदर्भित करता है जो एक देश तब अनुभव कर सकता है जब उसकी कामकाजी उम्र की आबादी अच्छे स्वास्थ्य, अच्छी तरह से शिक्षित और नियोजित होती है, जबकि आश्रित युवाओं की एक छोटी संख्या होती है। भारत में 2018 से 2055 तक 37 साल की अवधि होने का अनुमान है, जिसमें निर्भरता अनुपात में कमी होगी (चित्र 1 देखें)।

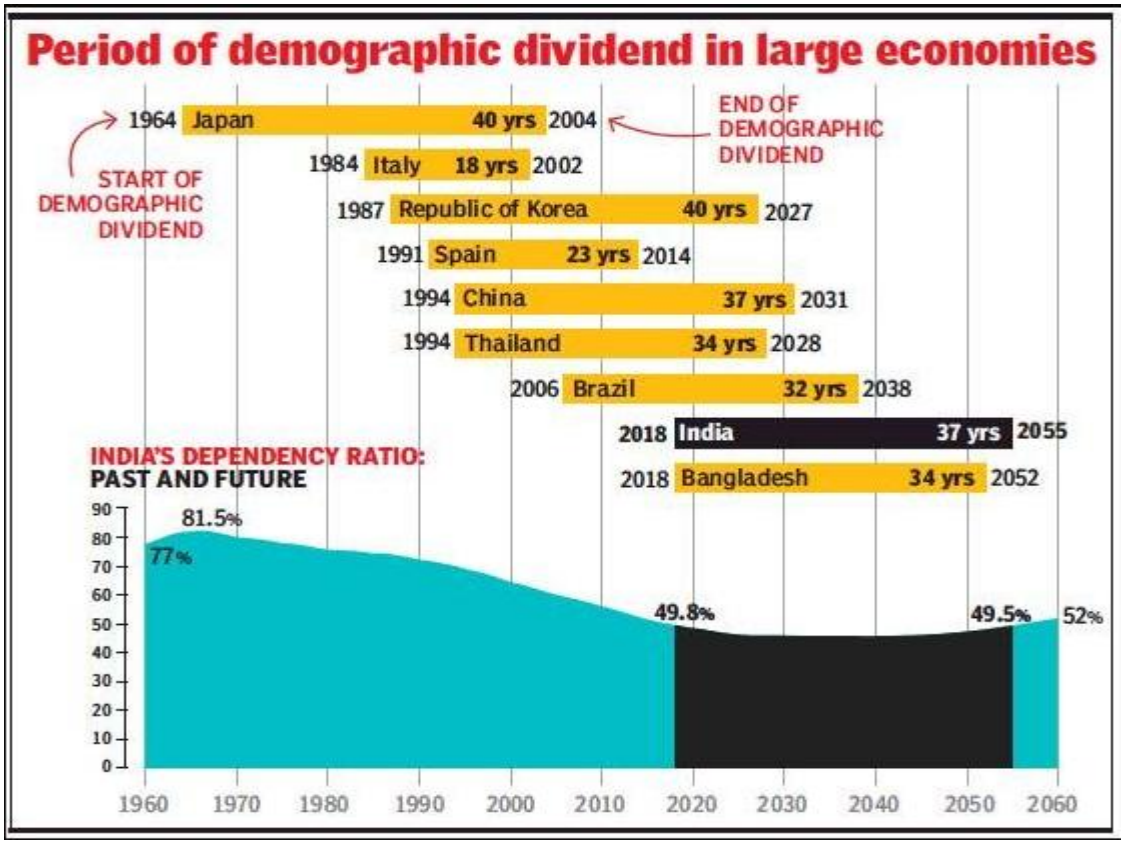

भारत की दो-तिहाई से अधिक आबादी कामकाजी उम्र की है, जिसमें बुजुर्गों की संख्या कुल आबादी का 7% से भी कम है (चित्र 2 देखें)। और यद्यपि सतह पर चीज़ें ठीक लगती हैं, युवा बेरोज़गारी का परिदृश्य निराशाजनक है।

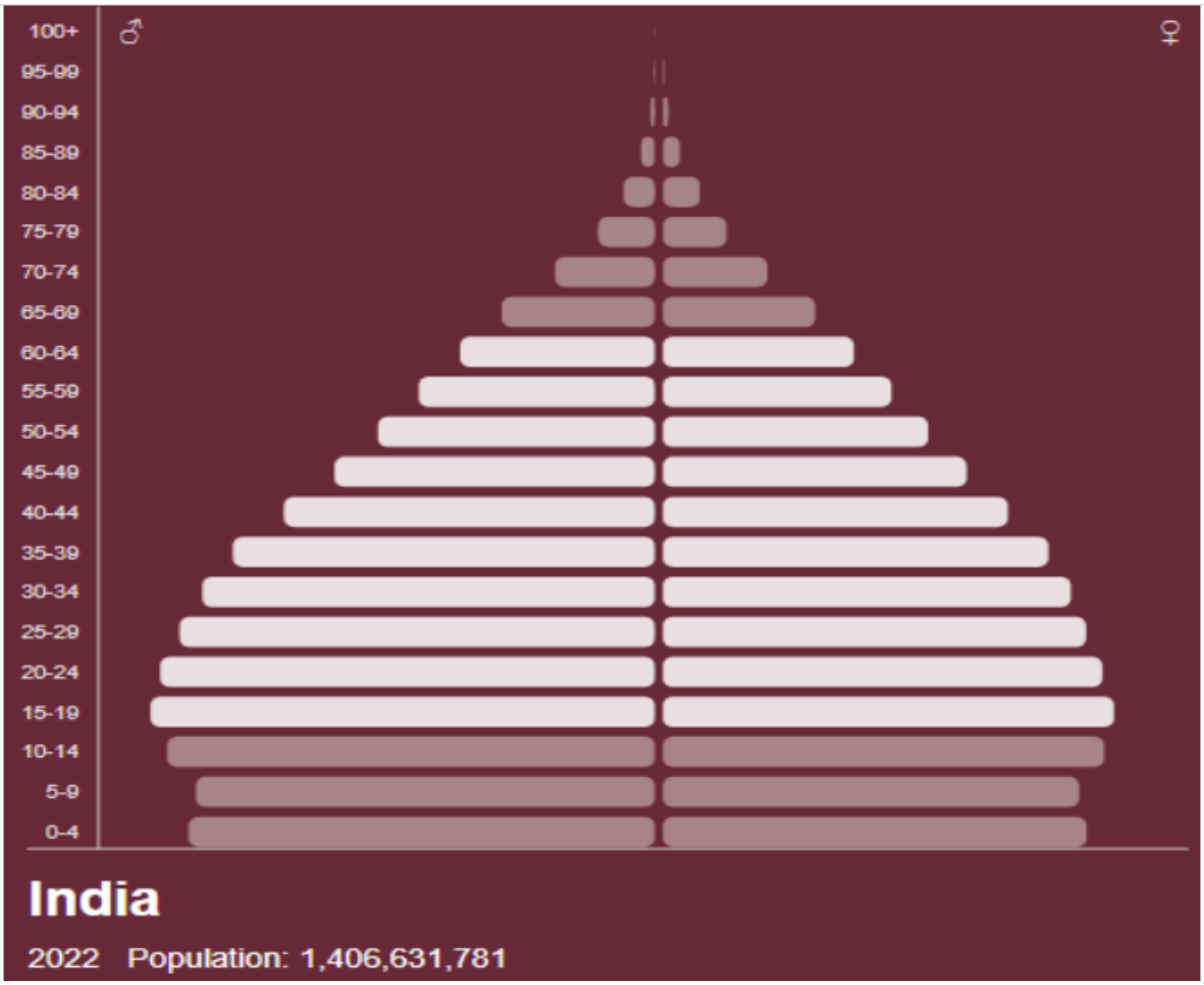

भारत में निराशा बहुत अधिक है क्योंकि युवा बेरोजगारी दर 2005 में 18 प्रतिशत से लगातार बढ़कर इस वर्ष 23 प्रतिशत हो गई है (चित्र 3 देखें)। यह भी ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि पूरे संदर्भ अवधि के दौरान युवा बेरोजगारी दर लगातार समग्र बेरोजगारी

दर से काफी अधिक रही है, जो कि 2019 में 5% की तुलना में 2020 में COVID-19 महामारी के कारण 7% से अधिक पर पहुंच गई। , यह दर्शाता है कि देश में युवा लोग बेरोज़गारी के बोझ का अनुपातहीन हिस्सा झेल रहे हैं। युवा लोगों के बीच व्यापक निरक्षरता और भूख उत्पादक कार्य प्रदान करने के सरकार के प्रयासों का समर्थन नहीं करती है।

अधिकांश बेरोजगार पढ़-लिख नहीं सकते, जिससे उन्हें काम नहीं मिल पाता और वे अपनी शिक्षा में निवेश करने के लिए पर्याप्त पैसा नहीं कमा पाते। यूनिसेफ और नीति आयोग के 2019 के एक शोध के अनुसार, 10 से 19 वर्ष की आयु के बीच के आधे से अधिक भारतीय किशोर (लगभग 6.3 लाख लड़कियां और 8.1 लाख लड़के) कम वजन वाले, कम आकार के या मोटे हैं।

https://www.orfonline.org/expert-speak/encashing-indias-demographic-dividend/

देश के युवाओं को रोजगार लायक बनाने के लिए उनका कौशल बढ़ाना एक और चिंता का विषय है। इस दृष्टिकोण में, सरकार की 'स्किल इंडिया' परियोजना रोजगार को बढ़ावा देने के लिए आईसीटी, इलेक्ट्रॉनिक्स, बीएफएसआई और कृषि में पाठ्यक्रम प्रदान करती है। देश की नौकरशाही सरकार के लिए विनिर्माण क्षेत्र में बड़े पैमाने पर रोजगार पैदा करना मुश्किल बना सकती है। कई प्रमुख बहुराष्ट्रीय कंपनियां भारत में अपने परिचालन में कटौती कर रही हैं।

अपने कम लागत वाले श्रम के बावजूद, भारत आजादी के बाद से एक वैश्विक विनिर्माण गंतव्य बनने में विफल रहा है, जिसका मुख्य कारण ईंट-और-मोर्टार व्यवसाय शुरू करने और चलाने की अमूर्त कठिनाइयाँ हैं। 1990-91 की नई आर्थिक नीति, जिसने अविनियमन, निजीकरण और वैश्वीकरण को बढ़ावा दिया, भारतीय माध्यमिक क्षेत्र को बढ़ावा देने में विफल रही। सबसे तेजी से बढ़ती बड़ी अर्थव्यवस्था होने के बावजूद, भारत का विनिर्माण क्षेत्र सकल घरेलू उत्पाद का बमुश्किल छठा हिस्सा है।

पिछले दो दशकों में, भारत का सेवा उद्योग, जो विनिर्माण की तुलना में कम श्रम-गहन है, तेजी से बढ़ा है। इस प्रकार, देश में बेरोजगारी की भारी वृद्धि हुई है, जो आधिकारिक बेरोजगारी के आंकड़े जो विशेष रूप से पुरानी बेरोजगारी को दर्शाते हैं, आमतौर पर छूट जाते हैं। जबकि विभिन्न क्षेत्रों में सार्थक रोजगार के लिए युवाओं को प्रशिक्षित और प्रशिक्षित करके श्रम बाजार की मांग को संबोधित करने में 'कौशल भारत' कार्यक्रम सराहनीय है, भारत को विश्व जनसंख्या दिवस पर भारतीय बच्चों और किशोरों में व्यापक कुपोषण से निपटने के लिए और अधिक प्रयास करने के लिए प्रतिबद्ध होना चाहिए। भारत के जनसांख्यिकीय लाभांश का लाभ उठाने के लिए नौकरशाही लालफीताशाही को कम

करना महत्वपूर्ण है। नियामक आघात उपचार पुरस्कार उत्तरोत्तर कम हो रहे हैं, इसलिए निजी निवेश को आकर्षित करने के लिए एक पूर्वानुमानित नीति ढांचे की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत जनसंख्या लाभांश से तात्पर्य उन आर्थिक लाभों से है जो एक बड़े और उत्पादक कार्यबल से प्राप्त हो सकते हैं। यह एक ऐसी घटना है जब किसी देश में आश्रितों की तुलना में कामकाजी आयु वाले व्यक्तियों का अनुपात अधिक होता है। जनसंख्या लाभांश के स्रोत को प्रजनन दर में गिरावट, बेहतर स्वास्थ्य देखभाल और बढ़ी हुई जीवन प्रत्याशा जैसे कारकों के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। जनसंख्या लाभांश का परिणाम आर्थिक वृद्धि और विकास में वृद्धि की संभावना है। राज्य सरकारें अक्सर जनसंख्या लाभांश के लाभों का उपयोग करने के लिए योजनाएं और नीतियां लागू करती हैं, जैसे कौशल विकास कार्यक्रम, रोजगार सृजन पहल और शिक्षा और स्वास्थ्य देखभाल में निवेश मूल्यांकन इत्यादि।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. https://www.unicef.org/kosovoprogramme/press-releases/demographic-dividend
2. https://cleartax.in/glossary/demographic-dividend/
3. https://www.eastasiaforum.org/2023/10/28/indias-demographic-dividend/

4. Aiyar, S. S., & Mody, A. (2011). The demographic dividend: Evidence from the Indian states. *IMF Working Papers*, 1–31.
5. Gribble, James N, and Jason Bremner, (2012). Achieving a demographic dividend. *Population Bulletin,* 67, 2. Washington DC: Population Reference Bureau.
6. Lee, R., & Mason, A. (2006). Back to basics: What is the demographic dividend?. Finance and Development, 43(003).
7. Mehrotra, S. 2015. *Realising the demographic dividend: Policies to achieve inclusive growth in India*. Cambridge University Press.
8.

खण्ड–4
इकाई–6
आय वितरण असमानता लोरेन्ज वक

प्रस्तावना

आय असमानता संयुक्त राज्य अमेरिका के अंदर घरेलू स्तर पर और वैश्विक स्तर पर व्यापक स्तर पर एक गंभीर चिंता का विषय है। यह अच्छी तरह से स्वीकार किया गया है कि आय असमानता का बड़ा स्तर प्रतिकूल परिणामों से जुड़ा हुआ है। इसलिए, आय असमानता को स्पष्ट रूप से दर्शाने के लिए एक सीधी विधि प्रदान करना अनिवार्य है। लॉरेन्ज़ वक्र एक ग्राफिकल प्रतिनिधित्व है जिसका उपयोग आय के वितरण में असमानता की डिग्री को दर्शाने के लिए किया जाता है।लॉरेन्ज़ वक्र एक ग्राफिकल प्रतिनिधित्व है जो आय या धन असमानता के वितरण को दर्शाता है। उपरोक्त अवधारणा के विकास का श्रेय वर्ष 1905 के आसपास एक प्रतिष्ठित अमेरिकी अर्थशास्त्री मैक्स लोरेंज को दिया जा सकता है। ग्राफ धन या आय और जनसंख्या के बीच संबंध को दर्शाता है, क्षैतिज अक्ष जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करता है और ऊर्ध्वाधर अक्ष आय या धन का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए, जब x मान 54 है और y मान 12.4 है, तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पूरी आबादी के निचले 54% के पास कुल संपत्ति या आय का 12.4% है। लॉरेन्ज़ वक्र अक्सर 1 के ढलान वाले एक

रैखिक प्रकार्य से जुड़ा होता है, जो धन या आय के वितरण में पूर्ण समानता का प्रतिनिधित्व करता है। लॉरेंज वक्र नीचे स्थित है और वास्तविक वितरण के दृश्य प्रतिनिधित्व के रूप में कार्य करता है। गिनी गुणांक असमानता का एक माप है जो एक सीधी रेखा और एक घुमावदार रेखा के बीच के क्षेत्र को मापता है। अवधारणा को रैखिक वक्र के तहत क्षेत्र की सीमा को दर्शाने वाले अनुपात के रूप में निर्धारित किया गया है। असमानता के स्तर को मापने के लिए गिनी गुणांक एक व्यापक रूप से उपयोग किया जाने वाला उपाय है। विचरण के सापेक्ष माप पर अध्यायन का सांख्यिकी या गणितीय अर्थशास्त्र के क्षेत्र में एक विशेष महत्व है। फैलाव के निरपेक्ष और सापेक्ष मैट्रिक्स का उपयोग करके विभिन्न वितरणों की तुलना की जाती है। इस अध्ययन का उद्देश्य फैलाव के पूर्ण और सापेक्ष उपायों की अवधारणाओं के साथ-साथ लोरेंज वक्र का अन्वेषण करना है, जो फैलाव के ग्राफिकल प्रतिनिधित्व के रूप में कार्य करता है।

आय वितरण असमानता

आय वितरण असमानता की अवधारणा एक अर्थव्यवस्था के भीतर एक राज्य से संबंधित है जहां आबादी के एक निश्चित खंड की औसत आय पूरे देश की कुल औसत आय से बहुत अधिक है। इसका तात्पर्य यह है कि आय के स्तर में महत्वपूर्ण असमानता मौजूद है, कुछ लोग बहुत अधिक आय अर्जित करते हैं जबकि आबादी का एक बड़ा हिस्सा काफी कम आय अर्जित करता है। आय वितरण की गणना में किसी देश के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) को

उसकी जनसंख्या से विभाजित करना शामिल है, जहां जीडीपी उत्पादित सभी उत्पादों और सेवाओं के बाजार मूल्य का प्रतिनिधित्व करता है। इस मीट्रिक का उपयोग अक्सर देश के समग्र आर्थिक प्रदर्शन का अनुमान लगाने के लिए किया जाता है।

लॉरेंज वक्र विधि (Lorenz Curve Method)

- किसी भी देश के भीतर आय असमानता का स्तर लोरेंज वक्र के उपयोग के माध्यम से पता लगाया जाता है।
- इसके माध्यम से वक्र पर प्रत्येक डेटा बिंदु उन व्यक्तियों को प्रदर्शित करता है जिनकी आय एक निश्चित प्रतिशत से कम है।
- यदि 10 प्रतिशत आबादी के पास कुल आय का 10 प्रतिशत है, जबकि 20 प्रतिशत आबादी के पास 20 प्रतिशत आय है, तो यह अनुपात लगातार बढ़ता रहेगा, इन अनुपातों को व्यक्त करने वाली रेखा 45-डिग्री रेखा होगी।
- 'पूर्ण समानता रेखा' या 'पूर्ण समानता रेखा' शब्द एक ही अवधारणा के लिए वैकल्पिक पदनाम हैं।
- लोरेंज वक्र पूर्ण समानता की रेखा के समीप पहुंचता है, वैसे ही आय असमानता की डिग्री कम हो जाती है।

- लोरेंज वक्र का विकास मैक्स ओ. लोरेंज द्वारा 1905 में किया गया था, हालाँकि अन्य स्रोत इसके विकास के संबंध में वर्ष 1906 का भी हवाला देते हैं। उनके योगदान के सम्मान में इस वक्र को "लॉरेन्ज़ वक्र" नाम दिया गया।

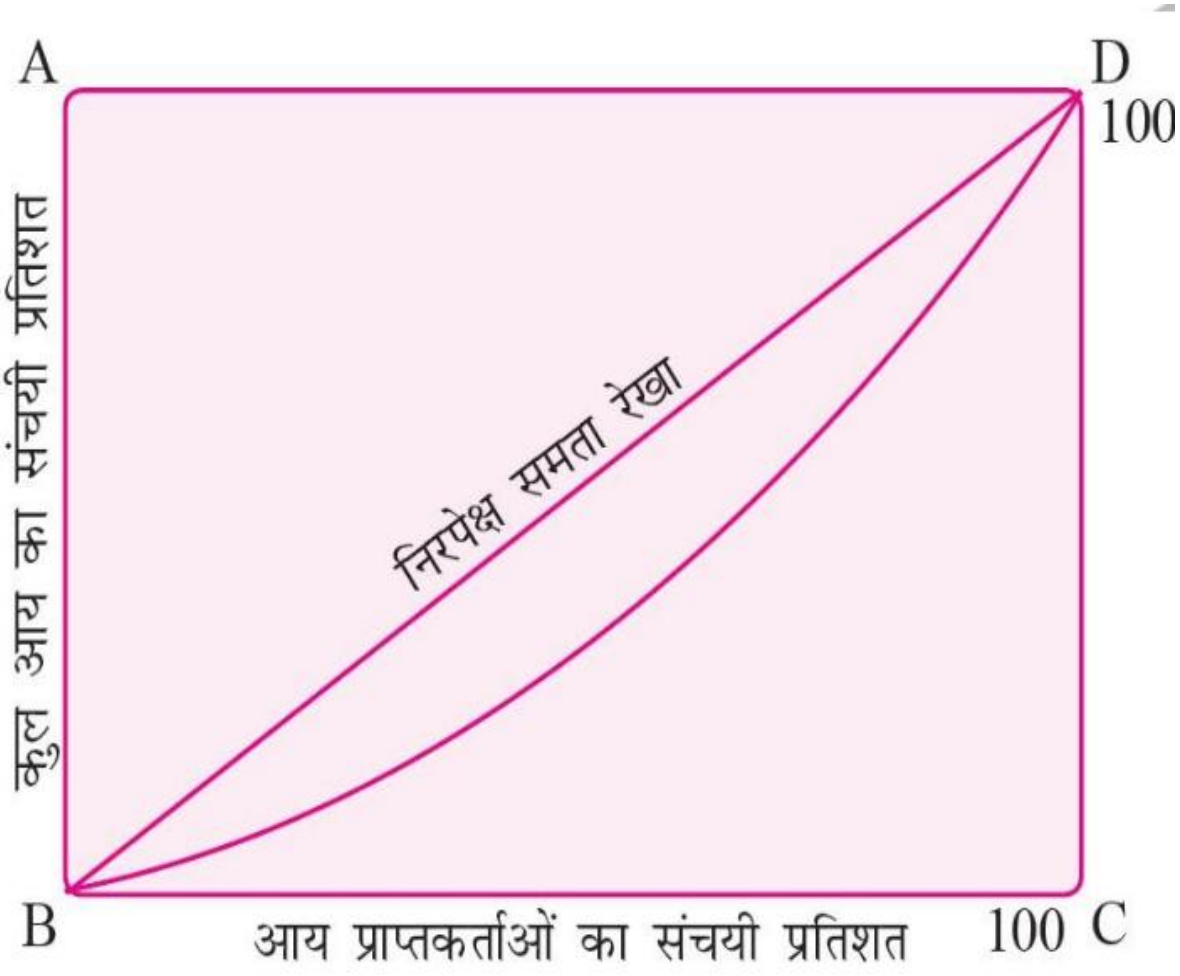

https://www.drishtiias.com/hindi/current-affairs-news-analysis-editorials/prelims-facts/15-06-2019/print

लॉरेन्ज़ वक्र का निर्माण

लॉरेंज वक्र एक दृश्य चित्रण है जो एक अर्थव्यवस्था के भीतर धन के वितरण को दर्शाता है। गणना में राष्ट्र की कुल जनसंख्या को एक धुरी पर स्थित किया जाता है, जबकि संपूर्ण आर्थिक संपदा को दूसरी धुरी पर रखा जाता है। एक आदर्श आर्थिक व्यवस्था में, समृद्ध और गरीब व्यक्तियों के बीच अंतर अस्तित्वहीन होता है। धन का वितरण न्यायसंगत तरीके से लागू किया गया है, जिससे यह सुनिश्चित किया गया है कि सभी के पास वित्तीय संसाधनों का तुलनीय स्तर है, साथ ही अवसरों और सहायक उपायों तक समान पहुंच है।

लॉरेन्ज़ वक्र गणना, जो एक सदी पहले प्रस्तुत की गई थी, आय वितरण की एक मौलिक और व्यापक समझ प्रदान करती है। इसके अलावा, यह गिनी सूचकांक के उपयोग के माध्यम से असमानता को मापने के लिए आधार के रूप में कार्य करता है। वक्र, आय अर्जित करने वाली जनसंख्या की आरोही व्यवस्था के आधार पर, संचयी जनसंख्या द्वारा प्राप्त आय के संचयी अनुपात के बीच सहसंबंध का प्रतिनिधित्व करता है। वितरण में असमानता की डिग्री को उस मात्रा से दर्शाया जाता है जिस मात्रा में वक्र सीधी विकर्ण रेखा के नीचे नीचे की ओर उभरा होता है जिसे समानता की रेखा के रूप में जाना जाता है। इससे पता चलता है कि आर्थिक असमानता मौजूद होने तक वक्र लगातार नीचे की ओर झुकता हुआ पैटर्न प्रदर्शित

करेगा। मतभेदों के कई मापों में सबसे सीधा माने जाने के बावजूद, ग्राफिकल प्रतिनिधित्व भ्रामक हो सकता है और लगातार सटीक परिणाम प्रदान नहीं कर सकता है।

पहले चरण में श्रृंखला को संचयी आवृत्ति श्रृंखला में बदलना शामिल है, जहां संचयी आवृत्ति का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक अलग कॉलम उत्पन्न होता है। इसी तरह से, अवलोकनों के संचयी कुल, अर्थात् आवृत्ति वितरण श्रृंखला के अंदर अंतराल के मध्य-मानों को दर्शाने के लिए एक अतिरिक्त कॉलम बनाया गया है। इसके अलावा, आवृत्तियों और अवलोकनों का संचयी योग नीचे दिए गए सूत्रों का उपयोग करके संबंधित योग के प्रतिशत में बदल दिया जाता है:

अवलोकन के लिए संचयी प्रतिशत= (अवलोकन के अनुरूप संचयी योग÷अवलोकनों का कुल योग)×100

आवृत्ति के लिए संचयी प्रतिशत= (अवलोकन के अनुरूप संचयी योग÷आवृत्ति का कुल योग)×100

इसके बाद, हम X-अक्ष पर संचयी आवृत्तियों और y-अक्ष पर संचयी वस्तुओं को ग्राफ़ करने के लिए आगे बढ़ते हैं। दोनों अक्षों पर मान 0 से 100 तक हैं। इसके बाद, एक समान वितरण का सीमांकन स्थापित करना महत्वपूर्ण है। दी गई रेखा में मूल बिंदु (100,100) को जोड़ने वाली x और y दोनों अक्षों पर 45° का झुकाव है। अंततः, संचयी योगों के मान, जो लोरेंज वक्र के प्रतिनिधित्व के रूप में कार्य करते हैं, ग्राफिक रूप से दिखाए जाते हैं। पूर्ण समानता की रेखा से लोरेंज वक्र का एक महत्वपूर्ण प्रस्थान डेटासेट के भीतर परिवर्तनशीलता के पर्याप्त स्तर को इंगित करता है।

वह वक्र जो किसी चर के वास्तविक वितरण का प्रतिनिधित्व करता है उसे अक्सर लोरेंज वक्र के रूप में जाना जाता है। जब लोरेन्ज़ वक्र समान वितरण रेखा के करीब पहुंचता है, तो यह वितरण में परिवर्तनशीलता के कम स्तर को इंगित करता है। हालाँकि, जब लोरेंज वक्र और समान वितरण रेखा के बीच असमानता अधिक स्पष्ट होती है, तो यह वितरण में उच्च स्तर की परिवर्तनशीलता का संकेत देती है। इसके अलावा, जब दो लोरेंज वक्र एक ही ग्राफ पर दिखाए जाते हैं, तो वह वक्र जो समान वितरण की रेखा से अधिक दूर होता है, उच्च स्तर के विचरण को इंगित करता है।

<u>उदाहरण 1:</u>

नीचे दिए गए डेटा का लोरेन्ज़ वक्र बनाएं:

आय रुपये में	100	200	400	500	800
लोगों की संख्या	80	70	50	30	20
आय	संचयी योग	संचयी प्रतिशत	लोगों की संख्या	संचयी आवृत्ति	संचयी आवृत्ति प्रतिशत में
100	100	5	80	80	32
200	300	15	70	150	60
400	700	35	50	200	80
500	1200	60	30	230	92
80	2000	100	20	250	100
2000			250		

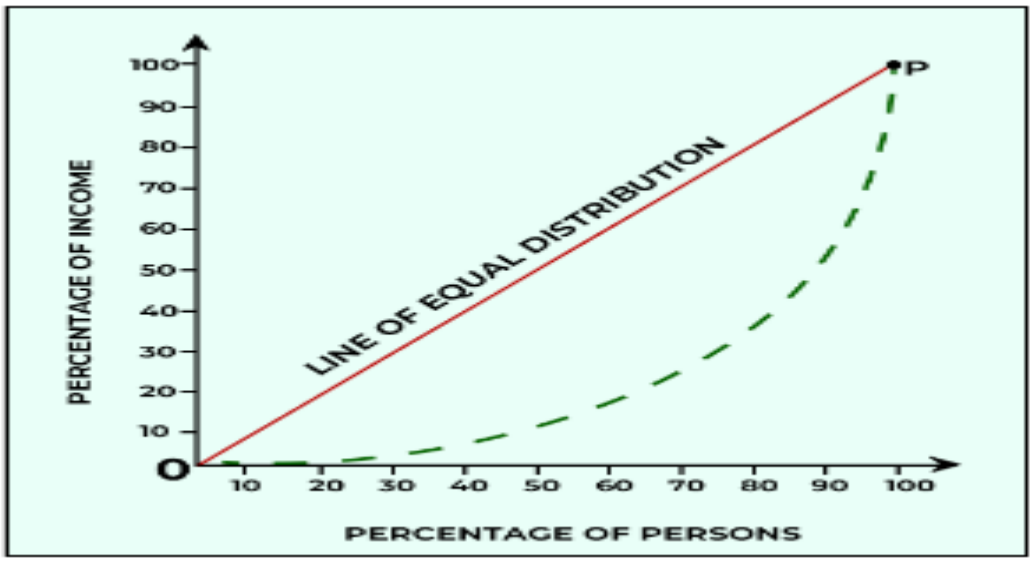

https://www.geeksforgeeks.org/lorenz-curve-meaning-construction-and-application/

उदाहरण 2:

निम्नलिखित डेटा की सहायता से दो अलग-अलग फर्मों में मजदूरी में असमानता दिखाने के लिए लोरेंज वक्र का उपयोग करें:

वेतन रुपये में	50-70	70-90	90-110	110-130	130-150
श्रमिकों की संख्या (फर्म A)	20	15	20	25	20
श्रमिकों की संख्या (फर्मB)	150	100	90	110	50

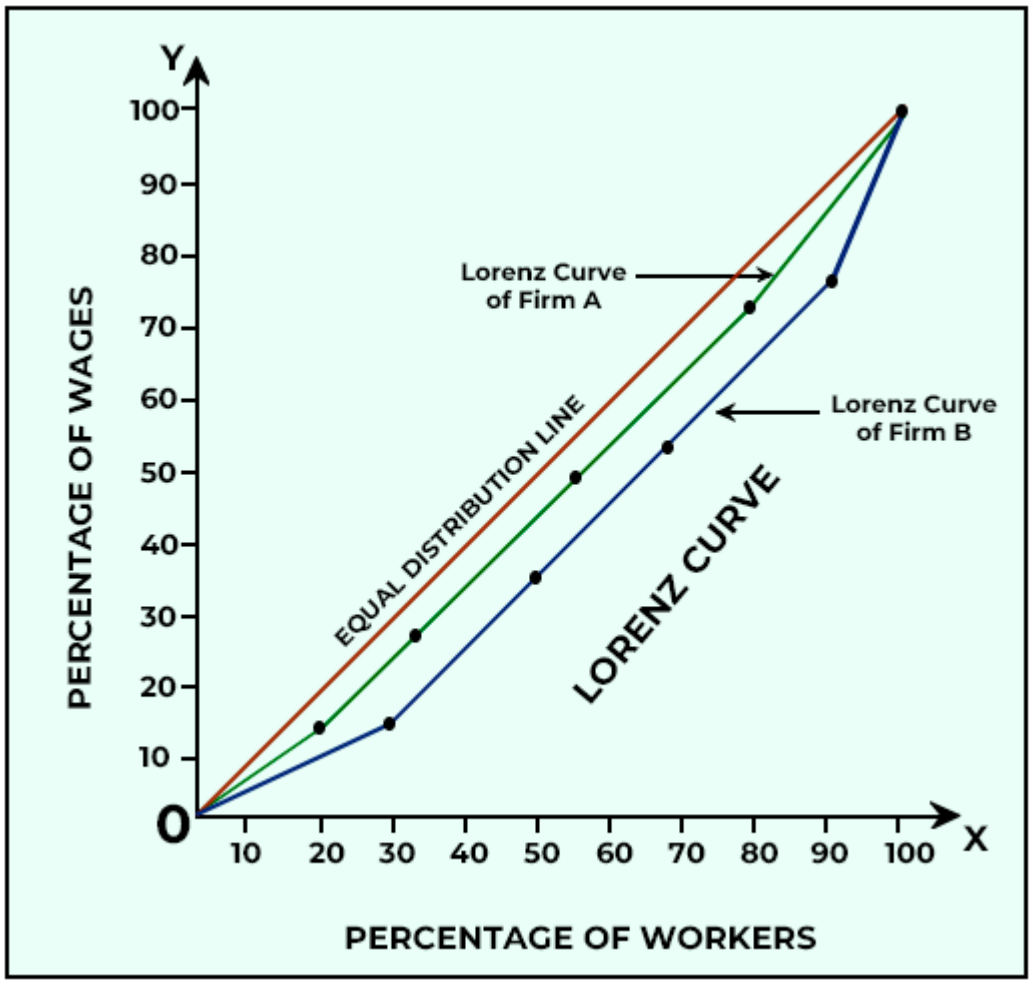

https://www.geeksforgeeks.org/lorenz-curve-meaning-construction-and-application/

अवलोकन: फर्म ए और बी दोनों में, मजदूरी का वितरण बराबर नहीं है। फर्म बी के लोरेंज वक्र और समान वितरण रेखा के बीच का अंतर फर्म ए की तुलना में अधिक है, जिसका अर्थ है कि फर्म बी के वितरण में अधिक भिन्नता है।

आर्थिक विश्लेषण में लॉरेन्ज़ वक्र का उपयोग

लोरेंज वक्र एक ग्राफिकल प्रतिनिधित्व है जिसका उपयोग सांख्यिकीय श्रृंखला के भीतर फैलाव का आकलन करने के लिए किया जाता है। प्रदान किया गया सांख्यिकीय वितरण उपयोगकर्ता को औसत मूल्य से विचलन की सीमा का त्वरित मूल्यांकन प्रदान करता है, जिससे यह एक सीधा मीट्रिक बन जाता है। प्रोफेसर लोरेन्ज़ द्वारा उपयोग किए गए फैलाव के माप का उपयोग पहली बार कई देशों या एक ही देश के भीतर अलग-अलग समय अवधि में आय और धन के वितरण से संबंधित आर्थिक असमानता का आकलन करने के लिए किया गया था। इसके बाद, कई मापदंडों में वेतन और मुनाफे के वितरण में असमानता की सीमा का आकलन करने में लोरेंज वक्र का उपयोग व्यापक हो गया है।

वह पैरामीटर जिनमें लोरेन्ज़ वक्र को अब फैलाव की माप के लिए लागू किया जाता है, इस प्रकार हैं:

- आय का वितरण
- मजदूरी का वितरण
- धन का वितरण
- लाभ का वितरण
- उत्पादन का वितरण
- जनसंख्या का वितरण

लारेन्ज वक्र महत्व

लोरेन्ज़ वक्र का उपयोग ज्यादातर आर्थिक असमानता को दर्शाने के लिए एक ग्राफिकल उपकरण के रूप में किया जाता है। हालाँकि, इसका उपयोग किसी भी प्रक्रिया या प्रणाली के भीतर आवंटन में असमानताओं को दर्शाने के लिए भी किया जा सकता है। लोरेन्ज़ वक्र संदर्भ रेखा से विचलित होने पर वितरण में असमानता की डिग्री बढ़ जाती है। लोरेंज वक्र आय या धन में असमानता की डिग्री को दर्शाने के लिए अर्थशास्त्र के क्षेत्र में व्यापक रूप से उपयोग किया जाने वाला उपकरण है। धन और आय के बीच अंतर करना महत्वपूर्ण है, क्योंकि इन शब्दों का परस्पर उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। यह कल्पना की जा सकती है कि पर्याप्त

संपत्ति वाले व्यक्ति की आय कम हो सकती है, जबकि बड़ी आय वाले किसी अन्य व्यक्ति की निवल संपत्ति सीमित हो सकती है।

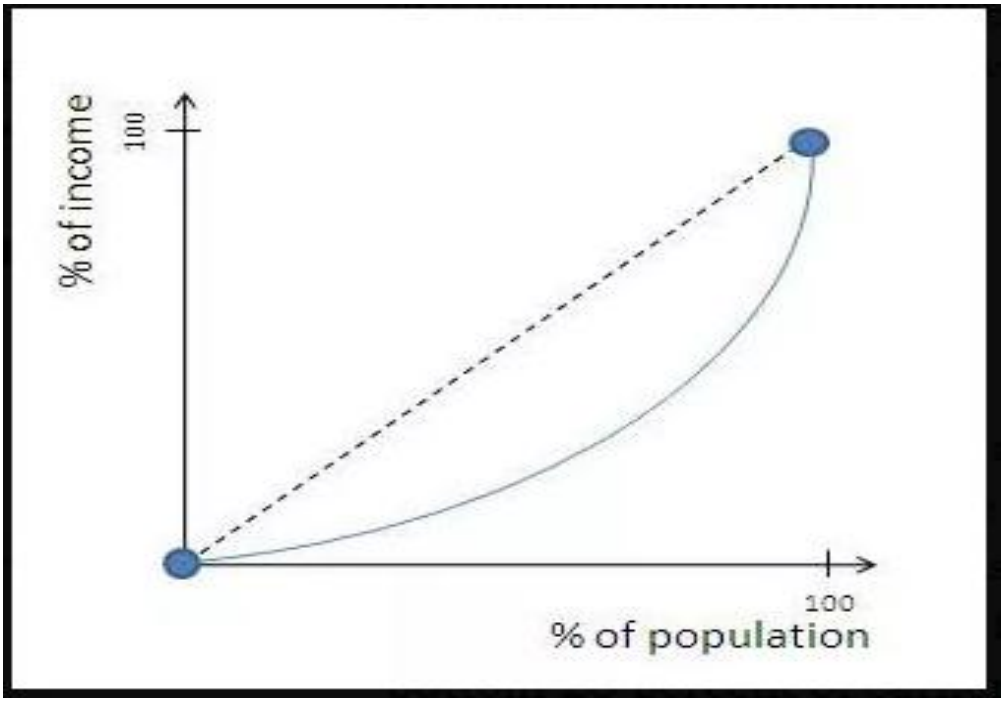

https://www.thoughtco.com/the-lorenz-curve-1147712

लोरेंज वक्र, जैसा कि उपरोक्त उदाहरण में देखा गया है, इसके निर्माण के कारण लगातार नीचे की ओर झुकता हुआ दिखाई देता है। इस घटना को गणितीय असंभाव्यता के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है कि निचले 20 प्रतिशत कमाने वाले कुल राजस्व के 20 प्रतिशत से अधिक कमाने की सीमा को पार कर जाते हैं, निचले 50 प्रतिशत कमाने वाले पूरी आय के 50 प्रतिशत से अधिक कमाने के निशान को पार कर जाते हैं। ग्राफिकल संरचना

में एक बिंदीदार रेखा है जिसे 45-डिग्री रेखा के रूप में जाना जाता है, जो एक अर्थव्यवस्था के भीतर आदर्श आय समानता का प्रतिनिधित्व करती है। आय समानता का आदर्श परिदृश्य ऐसी स्थिति की विशेषता है जहां प्रत्येक व्यक्ति समान मात्रा में आय अर्जित करता है। इसका तात्पर्य यह है कि जनसंख्या के सबसे निचले 5 प्रतिशत के पास कुल आय का 5 प्रतिशत है, जबकि सबसे निचले 10 प्रतिशत के पास कुल आय का 10 प्रतिशत है, इत्यादि।

गिनी गुणांक

गिनी गुणांक, जो लॉरेंज वक्र से प्राप्त होता है, इसका उपयोग किसी देश में आर्थिक विकास के संकेतक के रूप में किया जा सकता है। गिनी गुणांक, असमानता की सीमा को मापने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला एक माप, 0% (पूर्ण समानता का संकेत) से 100% (पूर्ण असमानता का प्रतिनिधित्व) तक फैला हुआ है। शून्य का गिनी गुणांक पूर्ण समानता का सूचक है। यह कथन बताता है कि प्रत्येक व्यक्ति के पास धन या आय का समान वितरण है। लोरेंज वक्र, जो पूर्ण समानता का प्रतिनिधित्व करता है, 1 की निरंतर ढलान के साथ एक रैखिक विकर्ण रेखा की विशेषता है। यह घटना वक्र के नीचे क्षेत्र की अनुपस्थिति के कारण होती है, जिसके परिणामस्वरूप शून्य का गिनी गुणांक होता है। 1 का गिनी गुणांक इंगित करता है कि अर्जित राजस्व या धन के लिए एक ही व्यक्ति जिम्मेदार है।

गिनी गुणांक में मामूली वृद्धि से पता चलता है कि सरकारी नीतियों में समावेशिता का

अभाव है और यह असमान रूप से समृद्ध व्यक्तियों का पक्ष ले सकती है, शायद निचले सामाजिक-आर्थिक स्तर के लोगों द्वारा प्राप्त लाभों को पार कर सकती है। उदाहरण के लिए, यात्री रेल टिकटों के लिए सब्सिडी के आवंटन में पर्याप्त वित्तीय प्रतिबद्धता शामिल हो सकती है और इसका उद्देश्य निम्न आय स्तर वाले लोगों की सहायता करना हो सकता है। हालाँकि, यह प्रशंसनीय है कि ऐसी सब्सिडी का लाभ अंततः उन व्यक्तियों को मिल सकता है जो निम्न आय वर्ग में नहीं आते हैं। जनसंख्या के व्यापक दायरे में आर्थिक उन्नति से प्राप्त लाभों का अधिक न्यायसंगत वितरण प्रदान करने के लिए सामाजिक-आर्थिक असमानता को कम करने की आवश्यकता महत्वपूर्ण है। एक उच्च गिनी गुणांक संभावित रूप से सरकारों को सामाजिक कार्यक्रमों के लिए अधिक संसाधन आवंटित करने और समृद्ध व्यक्तियों को लक्षित करने वाली प्रगतिशील कराधान नीतियों को लागू करने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत अर्थशास्त्र में आय वितरण असमानता के सम्बन्ध में लोरेन्ज वक्र को समझने का प्रयास किया गया है। आय वितरण का प्रतिनिधित्व एक रेखीय ग्राफ द्वारा दिखाया गया है जो वित्तीय संसाधनों के आवंटन को सटीक रूप से चित्रित करता है। लॉरेंज वक्र प्रत्याशित स्तर से नीचे राजस्व के वितरण को दर्शाता है। रैखिक फ़ंक्शन और लोरेंज वक्र से घिरे क्षेत्र को अक्सर गिनी गुणांक के रूप में जाना जाता है, एक मीट्रिक जो आय

असमानता की सीमा निर्धारित करता है। जैसे-जैसे कोई वक्र से नीचे की ओर बढ़ता है, विषमता का स्तर बढ़ता जाता है। लारेन्ज वक्र का उपयोग अक्सर आय असमानता को चिह्नित करने के साधन के रूप में किया जाता है। इसके अतिरिक्त, इसका उपयोग वैकल्पिक प्रणालियों के भीतर असमानताओं को दर्शाने के लिए किया जा सकता है। रैखिक और अरेखीय वक्रों से घिरा क्षेत्र गिनी गुणांक से मेल खाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Damgaard, Christian. Lorenz. From MathWorld–A Wolfram Web Resource, created by Eric W. Weisstein. Retrieved from http://mathworld.wolfram.com/LorenzCurve.html on July 14, 2018
2. Gastwirth, Joseph. A General Definition of the Lorenz Curve. Econometrica Vol. 39, No. 6 (Nov., 1971), pp. 1037-1039. Retrieved from https://www.jstor.org/stable/1909675 on July 15, 2018.
3. NIST. Lorenz Curve. NIST Statistical Engineering Division Dataplot Reference Manual 1. Retrieved from https://www.itl.nist.gov/div898/software/dataplot/refman1/auxillar/lorenz.htm on July 14, 2018
4. https://www.drishtiias.com/hindi/current-affairs-news-analysis-editorials/prelims-facts/15-06-2019/print
5. https://www.wallstreetmojo.com/lorenz-curve/
6. http://ddugu.ac.in/ePathshala_Attachments/STUDY332@971066.pdf
7. https://www.geeksforgeeks.org/lorenz-curve-meaning-construction-and-application/

8. https://www.geeksforgeeks.org/lorenz-curve-meaning-construction-and-application/
9. https://www.thoughtco.com/the-lorenz-curve-1147712
10. https://panaceaconcept.in/लारेंज-वक्र-कुजनेट्स

भारत में विदेशी व्यापार की संरचना एवं दिशा

भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए विदेशी व्यापार महत्वपूर्ण है। विदेशी वाणिज्य देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है क्योंकि यह कई प्रकार की वस्तुओं के आयात को सक्षम बनाता है। भारत विभिन्न वस्तुओं का व्यापक निर्यात करता है और साथ ही उतनी ही मात्रा में अन्य वस्तुओं का आयात भी करता है। भारत की अर्थव्यवस्था को धीरे-धीरे उदार बनाया गया है, लेकिन इसके टैरिफ तुलनात्मक रूप से ऊंचे हैं और इसके निवेश नियम अभी भी सख्त हैं। कुछ पर्यवेक्षक भारत को तेजी से वैश्वीकरण करने वाले राष्ट्र के रूप में देखते हैं, जबकि अन्य इसे एक ऐसी अर्थव्यवस्था के रूप में देखते हैं जो दृढ़ता से संरक्षणवाद का समर्थन करती है। हालाँकि, व्यापार और निवेश नीति पर सरकार के रुख में हाल ही में एक महत्वपूर्ण बदलाव आया है, जिससे उसका ध्यान उत्पादकों की सुरक्षा से हटकर उपभोक्ताओं की मदद करने पर केंद्रित हो गया है। कुछ दशकों पूर्व भारत का विदेशी व्यापार प्रतिस्पर्धी लागत और लाभप्रदता के विचारों के बजाय भारत और ब्रिटेन के बीच औपनिवेशिक संबंधों से प्रभावित था। स्पष्ट करने के लिए, ब्रिटिश शासकों को यह चुनने का अधिकार था कि भारत अपने राष्ट्र के सर्वोत्तम हितों के आधार पर किन देशों के साथ व्यापार करेगा। स्वतंत्रता प्राप्त करने से पहले, भारत का अधिकांश व्यापार ब्रिटेन, उसके उपनिवेशों

और सौहार्दपूर्ण संबंध वाले देशों के साथ होता था। स्वतंत्रता के कुछ वर्षों बाद ही, भारत को भी ऐसा ही परिदृश्य दिखाई देने लगा, क्योंकि इससे पहले उसने अन्य देशों के साथ वाणिज्यिक संबंध स्थापित करने में कोई उल्लेखनीय उपलब्धि हासिल नहीं की थी। वर्ष 1950-51 में भारत के निर्यात राजस्व में इंग्लैंड और अमेरिका का योगदान 42 प्रतिशत था। उसी वर्ष, भारत के आयात व्यय में उनका हिस्सा 39.1 प्रतिशत था। फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी, इटली, जापान आदि पूंजीवादी देशों के साथ-साथ सोवियत संघ, रोमानिया, पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया आदि साम्यवादी देशों के साथ व्यापार सीमित था। समय के साथ, जैसे-जैसे इन देशों के साथ भारत के राजनीतिक संबंध आगे बढ़े, उसके आर्थिक संपर्क भी बेहतर होने लगे। वर्तमान में, स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं, और 70 वर्षों के समन्वय के दौरान, व्यापार संबंधों में कई परिवर्तन देखे गए हैं।भारत के व्यापार भागीदार देशों को प्रमुख तौर पर निम्न भागों में बांटा जा सकता है-

- आर्थिक विकास सहयोग संगठनः जिसमें कनाडा, जापान,यूरोपीय समुदाय, अमेरिका, इत्यादि शामिल हैं।
- तेल निर्यातक देशों का संगठनः जिसमें सऊदी अरब, इराक, कुवैत, ईरान,इत्यादि शामिल हैं।

- पूर्वी यूरोपः जिसमें रूस प्रमुख राष्ट्र है।
- विकासशील राष्ट्रः जिसमें अफ्रीका, एशिया, लैटिन अमेरिका एवं कैरेबिया के विकासशील राष्ट्र शामिल हैं।
- पांचवां समूह अन्य बचे राष्ट्रों का है।

विदेशी व्यापार में भारत का स्थान

भारत की जनसंख्या विश्व की जनसंख्या का 16 प्रतिशत से अधिक है। लेकिन विदेशी व्यापार में भारत की हिस्सेदारी 1 फीसदी से भी कम है। इस प्रकार, यह इस तथ्य को दर्शाता है कि विदेशी व्यापार में भारत की स्थिति नगण्य है। लेकिन इसका हिसाब देश के बड़े आंतरिक व्यापार और विशाल आयामों के कारण हो सकता है जो बदले में देश के भीतर व्यापार के लिए एक ठोस आधार प्रदान करता है।

विदेशी व्यापार की विविधता

विदेशी व्यापार में तीन अलग-अलग अवधारणाएँ समावेशित हैं जिनमें आयात, निर्यात और पारगमन व्यापार है। आयात से तात्पर्य देश के अंदर खरीदारों द्वारा अन्य देशों में उत्पादित वस्तुओं को प्राप्त करने के कार्य से है। इसमें निर्यात के साथ-साथ देश का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संतुलन भी शामिल है। निजी और कानूनी संस्थाएं ऐसा करने में सक्षम हैं। इसके अलावा, यह कार्य सार्वजनिक आर्थिक संस्थानों और सरकार द्वारा पूरा किया जा सकता है। किसी देश

की व्यापार स्थिति का विश्लेषण करते समय, आयात में कमी का उस देश पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। पर्याप्त आयात स्तर का अनुभव करने वाले देशों में व्यापार असंतुलन है। आयात कम दरों पर उच्च गुणवत्ता वाली वस्तुओं के अधिग्रहण को सक्षम बनाता है। ऐसा करने से, उन्हें अधिक आकर्षक मार्जिन पर बेचा जा सकता है। इन फायदों के अलावा इसके नुकसान भी हैं। आयात से स्थानीय उद्योग में गिरावट आ सकती है, जिसके परिणामस्वरूप देश के आर्थिक विकास में कमी आ सकती है। इसके अतिरिक्त, आयात के लिए वस्तु एवं सेवा कर का भुगतान भी करना पड़ सकता है। अपना लेन-देन करने के लिए लाइसेंस और दस्तावेज़ीकरण प्राप्त करना आवश्यक है। निर्यात का तात्पर्य घरेलू स्तर पर उत्पादित उत्पादों या सेवाओं को विदेशी बाजारों में बेचने के वाणिज्यिक लेनदेन से है। इस गतिविधि को अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य कहा जाता है। निर्यात से तात्पर्य विदेशी मुद्रा के बदले किसी विदेशी राष्ट्र को उत्पाद या सेवा बेचने के वाणिज्यिक लेनदेन से है। इसका किसी राष्ट्र के व्यापार संतुलन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। इसे दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है: अप्रत्यक्ष निर्यात और प्रत्यक्ष निर्यात। उत्पादों का निर्यात किसी राष्ट्र के समग्र आर्थिक उत्पादन में योगदान देता है। निर्यात आपको अपनी कंपनी को विश्व स्तर पर विकसित करने के लाभ का लाभ उठाने में सक्षम बनाता है। रोजगार दर को बढ़ाता है, घरेलू प्रतिस्पर्धी माहौल को बढ़ावा देता है, और राष्ट्रों के बीच संचार को मजबूत करता है। इन कारकों के अलावा, अत्यधिक परिवहन व्यय, प्रारंभिक पूंजी निवेश आवश्यकताएं और संभावित लाभ हानि जैसी कमियां भी हैं। निर्यात करने के लिए

परमिट और दस्तावेज प्राप्त करना आवश्यक है। पारगमन व्यापार से तात्पर्य किसी विदेशी-आधारित फर्म या गोदाम द्वारा प्राप्त वस्तुओं के परिवहन से है, या तो विदेशों में या मुक्त क्षेत्रों में, और हमारे देश के माध्यम से किसी अन्य विदेशी-आधारित कंपनी या गोदाम में ले जाया जाता है। ट्रांजिट व्यापार करते समय, बैंकों से ट्रांजिट ट्रेड फॉर्म पूरा करना और प्राप्त करना आवश्यक है। पारगमन व्यापार नीति में निर्धारित नियमों के कारण पारगमन व्यापार के साथ संगत नहीं हो सकता है। जिन देशों के आयात और निर्यात पर प्रतिबंध है उनके साथ पारगमन व्यापार नहीं किया जा सकता है। ये तीन धारणाएँ, जो अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य के विभिन्न रूपों से संबंधित हैं, कानूनी आदेशों के माध्यम से निरीक्षण और विनियमन के अधीन हैं।

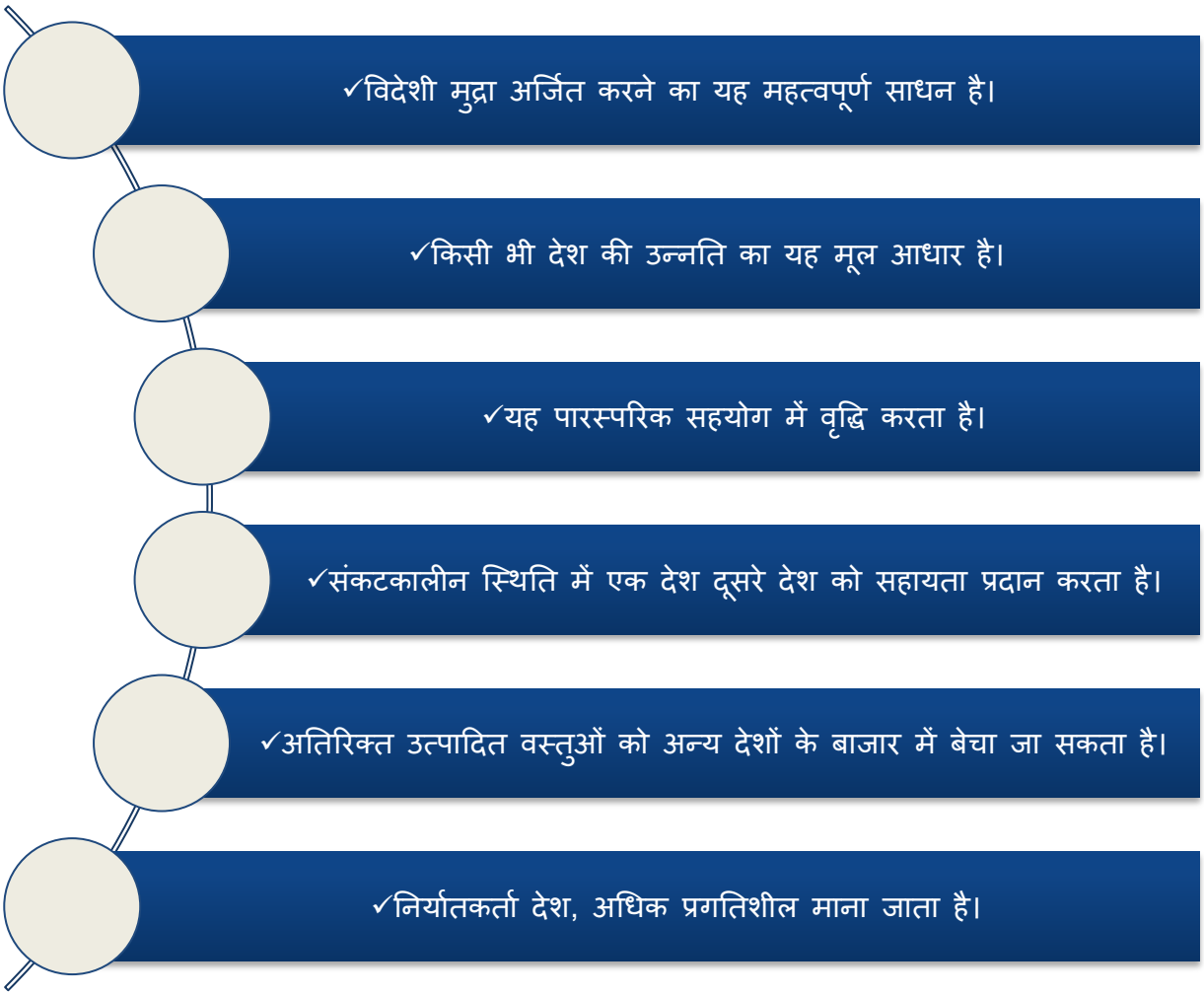

➢ **चित्र.1 विदेशी व्यापार के महत्व**

विदेशी व्यापार की चुनौतियाँ

विदेशी व्यापार में अनेक लाभ होने के बाद भी इसके विकास में चुनौतियों एवं बाधाओं का सामना करना पड़ता है जो है-

➢ **सम्पर्क स्थापित करने की कठिनाई** - दूर-दूर के देशों में सम्पर्क स्थापित करने में कठिनाई आती हैं। जल, थल एवं वायु यातायात के पर्याप्त विकास होने के बाद भी ये साधन जनसाधारण को सस्ते मूल्य पर उपलब्ध नहीं हैं। इस कारण किस देश में कौन

से माल की खपत या उपलब्धियाँ हैं, इसकी जानकारी प्राप्त करने में कठिनाई आती है।

- **अत्यधिक जोखिम -** विदेशी व्यापार में अधिकतर माल सामुद्रिक मार्ग से आता-जाता है इस कारण जहाज के डूबने, लुटने, उलटने या तूफान से नष्ट होने का भय हमेशा बना रहता है। इस कारण इसमें अत्यधिक जोखिम होने के कारण देशी व्यापार की तरह इसका शीघ्र विकास नहीं हो सका है।
- **अयात-निर्यात लायसेंस की प्राप्ति -** विदेशी व्यापार पर सरकार का पूर्ण नियंत्रण रहता है वे अपने-अपने देश के आर्थिक हितों को ध्यान में रखकर ही आयात-निर्यात लाइसेंस देते हैं, साथ ही सेंस प्राप्त करने की विधि से भी अपरिचित होने के कारण विदेशी व्यापार वृद्धि में कठिनाई आती है।
- **वस्तुओं का आकार-प्रकार -** विदेशी वस्तुओं के आकार-प्रकार का स्पष्ट अनुमान न होने के कारण, नमूना, ट्रेडमार्क, भाव सूची, आदि मांगने, उनसे पत्र व्यवहार करने में काफी देरी लगती है।
- **नापतौल की भिन्नता -** अलग-अलग देशों में अलग-अलग प्रकार की नापतौल की लियाँ प्रचलित होने से वस्तु की मात्रा एवं मूल्य निश्चित करने में कठिनाई आती है।

- **विदेशी मुद्रा की उपलब्धि -** विदेशों में माल खरीदने के लिए विदेशी मुद्रा उपलब्ध है या नहीं, के भुगतान हेतु प्राप्त हो सकेगी अथवा नहीं इस बात की भी शंका नहीं रहती है। इस कारण व्यापारी निश्चित पूर्वक व्यापार करने में कठिनाई आती हैं।

- **माल भेजने की कठिनाई -** विदेशों से माल मंगवाने एवं भेजने के लिए यातायात के साधन शीघ्रगामी एवं समय पर उनका उपलब्ध होना जरूरी है। ये साधन शीघ्रतापूर्वक उपलब्ध नहीं हो इस कारण भी विदेशी व्यापार में कठिनाइर् आती है।

- **भाषाओं की भिन्नता -** अलग-अलग देशों में अलग-अलग भाषाएं प्रचलित होने के कारण व्यवहार द्वारा जानकारी प्राप्त करने, सम्पर्क स्थापित करने में कठिनाई आती है।

- **भुगतान -** जिस देश से माल खरीदा जाता है उस देश की मुद्रा में भुगतान करना आवश्यक है। की उपलब्धता सुलभ होना चाहिए एवं मुद्राओं के भाव भी न बढ,े़ विनिमय दर में स्थिरता होना आवश्यक है। इसके अभाव में भुगतान में कठिनाई आती है।

भारत के विदेश व्यापार की संरचना

विदेशी व्यापार संरचना किसी देश के अंदर माल के आयात और निर्यात की मात्रा से संबंधित है। यह किसी राष्ट्र की आर्थिक रूपरेखा और उन्नति का पता लगाने में सहायता करता है। ऐतिहासिक रूप से, यह देखा गया है कि विकासशील देश ज्यादातर असंसाधित संसाधनों, कृषि वस्तुओं और मध्यवर्ती वस्तुओं का निर्यात करते हैं, जबकि औद्योगिक देश मुख्य रूप से पूर्ण उत्पादों, मशीनरी और उपकरणों का निर्यात करते हैं। भारत की अंतर्राष्ट्रीय व्यापार रणनीति का उद्देश्य देश के आर्थिक विकास को बढ़ाना है।

भारत अब अपने विकास के एक महत्वपूर्ण बिंदु पर है जब उसे स्थिरता बनाए रखने और अपनी आर्थिक ताकत को मजबूत करने के लिए अपने निर्यात को बढ़ाने की जरूरत है। देश इस क्षेत्र में अथक प्रयास कर रहा है, फिर भी, खुद को विश्वव्यापी ताकत के रूप में स्थापित करने के लिए इसे काफी समय की आवश्यकता है। भारत वैश्विक आयात-निर्यात बाजार में उच्च स्थान हासिल करने के लिए, विशेष रूप से सेवाओं के क्षेत्र में, अपनी मूलभूत दक्षताओं पर ध्यान केंद्रित कर रहा है।

भारत के आयात की संरचना

FY22 के अप्रैल-फरवरी के दौरान भारत की शीर्ष आठ आयात वस्तुएँ थीं:

- पेट्रोलियम क्रूड और उत्पाद (कुल आयात का 25.7 प्रतिशत)
- इलेक्ट्रॉनिक सामान (11.8 प्रतिशत)
- सोना (8.2 प्रतिशत)
- विद्युत एवं गैर-विद्युत उपकरण (6.6 प्रतिशत)
- मोती, अर्ध-कीमती और कीमती पत्थर (5 प्रतिशत)
- अकार्बनिक एवं कार्बनिक रसायन (5 प्रतिशत)
- कोयला, कोक, आदि (4.9 प्रतिशत)
- प्लास्टिक सामग्री, कृत्रिम रेजिन, आदि (3.3 प्रतिशत)

वित्त वर्ष 2012 में, आयात वस्तुओं की इन मुख्य आठ श्रेणियों का कुल आयात में 70.6 प्रतिशत हिस्सा था।

भारत के आयात की संरचना को निम्नानुसार तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है:

- कच्चा माल
- पूंजीगत सामान, और
- उपभोक्ता उत्पादों।

कच्चा माल

इस श्रेणी में पेट्रोलियम तेल, खाद्य तेल, स्नेहक, लोहा और इस्पात, अलौह धातु, उर्वरक, कीमती पत्थर, मोती और अन्य सामान शामिल हैं। इन वस्तुओं के कुल आयात के अनुपात में पर्याप्त वृद्धि हुई, जो 1960-61 में 47 प्रतिशत से बढ़कर 1980-81 में लगभग 80 प्रतिशत हो गया। वर्तमान में, रूस द्वारा यूक्रेन पर आक्रमण के कारण आपूर्ति श्रृंखला में महत्वपूर्ण रुकावटें पैदा हो गई हैं, जिसके परिणामस्वरूप तेल की कीमतें अभूतपूर्व स्तर पर पहुंच गई हैं। यह देखते हुए कि भारत अपनी 80 प्रतिशत तेल आपूर्ति के लिए रूस से आयात पर निर्भर है, मौजूदा स्थिति में किसी भी बदलाव का व्यापार असंतुलन पर सीधा प्रभाव पड़ेगा।

भारत का पेट्रोलियम आयात जनवरी में 13.1 बिलियन डॉलर से बढ़कर 22 फरवरी, 2022 को 15.3 बिलियन डॉलर हो गया। वैश्विक तेल की कीमतों में वृद्धि, गतिशीलता में वृद्धि और घरेलू और विदेशी तेल की बढ़ती खपत के कारण पेट्रोलियम आयात में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, जो कि 72.4 बिलियन डॉलर से बढ़ गया।

पूंजीगत माल

इस श्रेणी में गैर-विद्युत और विद्युत मशीनरी, लोकोमोटिव, धातु, अन्य परिवहन उपकरण आदि शामिल हैं। ये वस्तुएं किसी देश के औद्योगिक विकास में मदद करती हैं। 1960-61 में

पूंजीगत वस्तुओं का आयात कुल आयात का 32% था, जिसकी राशि लगभग 356 करोड़ रुपये थी जो धीरे-धीरे कम हुई और 1992-93 में 21 प्रतिशत के स्तर पर पहुंच गई।

उपभोक्ता उत्पादों

यह श्रेणी बिजली के सामान, दवाएँ, खाद्यान्न, कागज आदि से बनी है। भारत अपनी तीसरी पंचवर्षीय योजना तक भारी मात्रा में खाद्यान्न आयात करता था। वर्तमान समय में भारत खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर है।

भारत के निर्यात की संरचना

अप्रैल-फरवरी FY22 अवधि में शीर्ष आठ निर्यात वस्तुएँ थीं:

- इंजीनियरिंग सामान (कुल निर्यात का 26.9 प्रतिशत)
- पेट्रोलियम उत्पाद (14.8 प्रतिशत)
- रत्न एवं आभूषण (9.4 प्रतिशत)
- कार्बनिक एवं अकार्बनिक रसायन (7.1 प्रतिशत)
- औषधि एवं फार्मास्यूटिकल्स (5.9 प्रतिशत)
- कपड़ा (3.8 प्रतिशत)
- इलेक्ट्रॉनिक सामान (3.7 प्रतिशत)

- सूती धागा/कपड़े/मेड-अप, हथकरघा उत्पाद, आदि (3.7 प्रतिशत)।

इन आठ वस्तुओं ने वित्त वर्ष 2012 में कुल निर्यात का लगभग 75 प्रतिशत हिस्सा बनाया।

भारत की निर्यात संरचना को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है:

• पारंपरिक उत्पाद निर्यात

• गैर-पारंपरिक उत्पाद निर्यात

पारंपरिक उत्पाद

पारंपरिक वस्तुओं में चाय, कॉफी, जूट के सामान, जानवरों की खाल, लौह अयस्क, कपास, खनिज, मछली और मछली उत्पाद आदि का निर्यात शामिल है। योजना युग की शुरुआत में इन उत्पादों का हमारे कुल निर्यात का लगभग 80 प्रतिशत हिस्सा था। हालाँकि, तब से गैर-पारंपरिक वस्तुओं का योगदान और अधिक तेजी से बढ़ रहा है।

गैर-पारंपरिक उत्पाद

इंजीनियरिंग सामान, रसायन, चीनी, बिजली के सामान, लोहा और इस्पात, रत्न और आभूषण, और चमड़ा इत्यादि।

भारत में विदेश व्यापार की दिशा

भारत वैश्विक अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में एक प्रमुख भागीदार बन रहा है।

1991 में, भारत ने अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर अपनी स्थिति को सही करने के लिए "नई आर्थिक सुधार" नामक नई नीतियां लागू कीं। निर्यात के लिए विनियमन, खुलेपन और समर्थन पर जोर दिया गया था। आर्थिक सुधारों के बाद के दौर में भारत में निर्यात क्रांति आई है, जो देश के लिए फायदेमंद रही है।

कई अन्य देशों की तुलना में भारत की दरें ऊंची बनी हुई हैं। 1992 का विदेशी व्यापार (विकास और विनियमन) अधिनियम भारत की एक्ज़िम नीति को नियंत्रित करता है। फिर भी, भारत उत्तरोत्तर निर्यात और आयात दोनों के प्रति अधिक उदार दृष्टिकोण अपना रहा है। यह दृष्टिकोण बाजार विविधीकरण और वस्तुओं के विविधीकरण की आवश्यकता को पहचानने और स्वीकार करने के लिए बनाया गया था। प्रदर्शन ने 15 सबसे महत्वपूर्ण बाजारों में निर्यात के लिए 15 सबसे प्रमुख उत्पाद श्रेणियों को प्रदर्शित किया। आँकड़ों ने संकेत दिया कि 1996-97 में 71 प्रतिशत से 2000-01 में 66 प्रतिशत की कमी हुई। रत्न और आभूषण, कपास और कपड़ा जैसे प्राथमिक निर्यात लगातार बने रहे। हालाँकि, ये निर्यात प्राप्त करने वाले प्रमुख देश 2000-01 में अमेरिका, ब्रिटेन और जापान से अमेरिका, हांगकांग और संयुक्त अरब अमीरात में स्थानांतरित हो गए। सरकार ने अपना जोर उत्पादकों के हितों को बढ़ावा देने से हटाकर उपभोक्ताओं के कल्याण की सुरक्षा पर केंद्रित

कर दिया है। अपनी नई निर्यात-आयात नीतियों के साथ, यह खुद को आउटबाउंड और इनबाउंड व्यापार दोनों के लिए एक प्रमुख केंद्र के रूप में स्थापित करने का प्रयास कर रहा है। इस संबंध में एक उदाहरण भारत की EXIM नीति थी, जिसमें कई संशोधन हुए और 2004-09 की अवधि के दौरान लागू किया गया था। भारत अब रोजगार सृजन पर विशेष ध्यान देने के साथ अपने निर्यात की जीवंतता को बढ़ाने के लिए एक रणनीति तैयार कर रहा है। भारत का उद्देश्य उच्च गुणवत्ता वाली वस्तुओं का निर्माण और खेती करके खुद को एक अग्रणी निर्यातक के रूप में स्थापित करना है, जिसमें अंतरराष्ट्रीय ग्राहकों को आकर्षित करने की प्रबल क्षमता है। अत्यधिक प्रतिस्पर्धी और गुणवत्ता-संचालित माहौल की स्थापना इस उद्देश्य को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण योगदान देगी।

भारत सेवा उद्योग में वैश्विक व्यापार प्रबंधन के लिए अधिक संतुलित दृष्टिकोण सक्रिय रूप से अपना रहा है। यदि राष्ट्र इस क्षेत्र में उत्कृष्टता प्राप्त करना जारी रखता है, तो इसमें स्वयं को निर्यात सेवाओं के केंद्र के रूप में स्थापित करने की क्षमता है।

निष्कर्ष

विदेशी व्यापार की संरचना उन विशिष्ट वस्तुओं और सेवाओं से संबंधित है जिनका आयात और निर्यात किया जा रहा है। भारत के विदेशी व्यापार में पिछले सत्तर वर्षों में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन देखा गया है, जिसमें व्यापार किए जाने वाले उत्पादों के प्रकार में कुल

बदलाव आया है। भारत के निर्यात विस्तार को आगे बढ़ाने में विनिर्माण एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत के विदेशी व्यापार के परिमाण, संरचना और प्रक्षेप पथ में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। कच्चे माल के प्रमुख निर्यातक से तैयार उत्पादों के निर्यातक बनने में भारत का परिवर्तन उल्लेखनीय है। आयातित पूंजीगत वस्तुओं और खाद्यान्नों पर देश की निर्भरता भी कम हो गई है। इनमें से अधिकांश समायोजन आर्थिक विकास आवश्यकताओं के अनुरूप हैं। वर्तमान दौर में भारतीय अर्थव्यवस्था मूलभूत परिवर्तनों का अनुभव कर रही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Gupta, Dr. Shuchi, An Analysis of Indian Foreign Trade in Present Era (April 2019). Available at SSRN: https://ssrn.com/abstract=3540833 or http://dx.doi.org/10.2139/ssrn.3540833
- Ananthakrishnan, P and Jain-Chandra, S. (2005). The impact on India of trade liberalization on the textiles and clothing sector. IMF Working Paper, WP/05/214.
- Pradhan, J.P., Das,K. and Paul,M. (2011). Export-Orientation of Foreign Manufacturing Affiliates in India: Factors, Tendencies and Implications. Eurasian Journal of Business and Economics, 4 (7), 99-127.
- Kalirajan,K. and Singh, K. (2007). A comparative Analysis of Recent Export Performances of China and India. Asian Economic papers, Vol. 7, No.1, 1-28.
- Awdhesh Pathak, "An Analysis of India‟s Foreign Trade Policy (2015-20). Altius Shodh Journal of Management and Commerce: ISSN 2348-8891.
- . Dr. M. Rajarajan (2015), "An Empirical Study on Foreign Trade in India". Asia Pasific Journal of Research: ISSN 2320-5504
- **https://www.tutorialspoint.com/composition-of-india-s-foreign-trade**

- **https://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/87959/1/UNIT%2018.pdf**
- Rehman, Obaid Ur. (2016). India's foreign trade since 1947-2015 impact on Indian economy growth. International Journal of Management and Commerce Innovations, 3(2), 602-608.

भारत में बैंकिग सुधार तथा अन्तर्राष्ट्रीय तरलता की समस्या

व्यापार और उद्योग के कामकाज और विकास के लिए बैंकिंग आवश्यक है। समकालीन परिस्थिति में, बैंकिंग क्षेत्र वर्तमान वाणिज्यिक परिचालन के लिए मौलिक समर्थन प्रणाली के रूप में कार्य करता है। किसी राष्ट्र की प्रगति और विकास अधिकतर उसकी वित्तीय प्रणाली पर निर्भर करता है। बैंक एक वित्तीय इकाई है जो जमा स्वीकार करने, ऋण प्रदान करने और अन्य विभिन्न संबद्ध वित्तीय सेवाएँ प्रदान करने में माहिर है। यह जमा के माध्यम से बचत में रुचि रखने वालों से धन प्राप्त करता है और वित्तीय सहायता की आवश्यकता वाले व्यक्तियों को ऋण प्रदान करता है। भारत की बैंकिंग प्रणाली में राष्ट्रीयकृत बैंकों की प्रमुख उपस्थिति है। भारतीय बैंकिंग प्रणाली और अर्थव्यवस्था के प्रदर्शन के बीच संबंध किसी भी अन्य क्षेत्र की तुलना में अधिक मजबूत है। बैंकिंग प्रणाली की भूमिका महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सेवा उद्योग में एक प्रमुख और अपरिहार्य क्षेत्र है। भारतीय बैंकिंग क्षेत्र परिसंपत्ति गुणवत्ता में वृद्धि, विवेकपूर्ण जोखिम प्रबंधन तकनीकों को अपनाने और पूंजी पर्याप्तता सुनिश्चित करने पर ध्यान केंद्रित कर रहा है।

भारतीय बैंकिंग क्षेत्र के समग्र प्रदर्शन में सुधार लाने के लक्ष्य के साथ बैंकिंग क्षेत्र में सुधार शुरू हुए। आर्थिक उदारीकरण और वैश्वीकरण की ओर बढ़ते रुझान के संदर्भ में, परिचालन दक्षता में सुधार और बैंकों के स्वास्थ्य और वित्तीय विश्वसनीयता को बढ़ावा देने के लिए

भारत में विभिन्न बैंकिंग क्षेत्र में सुधार पेश किए गए हैं ताकि भारतीय बैंक प्रदर्शन के अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत मानकों को पूरा कर सकें। भारतीय बैंकों को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाना और विकास सुधारों की प्रक्रिया को तेज करने में प्रभावी भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित करना महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत में बैंकिंग क्षेत्र में सुधारों का उद्देश्य बैंकों की स्थिरता, दक्षता और प्रभावशीलता को बढ़ाना है। यह ऋण वितरण प्रणाली में परिचालन संबंधी कठोरता को दूर करता है और आवंटन दक्षता और सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति सुनिश्चित करता है। सुधार उन उपायों को मजबूत कर रहे हैं जिनका उद्देश्य आर्थिक माहौल में उतार-चढ़ाव की स्थिति में बैंकों की भेद्यता को कम करना है। इनमें पूंजी पर्याप्तता, आय पहचान, परिसंपत्ति वर्गीकरण, प्रावधान मानदंड, एक्सपोजर मानदंड, पारदर्शिता के उन्नत स्तर और प्रकटीकरण मानक शामिल हैं।

भारतीय बैंकिंग उद्योग की सफलता अर्थव्यवस्था की सामान्य भलाई से निकटता से जुड़ी हुई है, शायद किसी भी अन्य क्षेत्र की तुलना में अधिक हद तक। इस क्षेत्र की प्राथमिक जिम्मेदारी स्थापित वाणिज्यिक जिलों और पृथक ग्रामीण क्षेत्रों दोनों में कृषि, लघु-स्तरीय कंपनियों, निर्यात और वित्तीय संचालन सहित कई आर्थिक क्षेत्रों को सहायता प्रदान करना है। भारतीय बैंकिंग प्रणाली मुख्य रूप से संपत्ति की गुणवत्ता बढ़ाने, उचित जोखिम प्रबंधन तरीकों को लागू करने और पर्याप्त पूंजी पर्याप्तता बनाए रखने पर ध्यान केंद्रित करती है।

बैंकिंग क्षेत्र में सुधारों के कार्यान्वयन का उद्देश्य बैंकिंग प्रणाली की स्थिति को बेहतर बनाना है। भारत ने अपने आर्थिक उदारीकरण प्रयासों के तहत और वैश्वीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति के जवाब में अपने बैंकिंग उद्योग में कई बदलाव लागू किए हैं। प्राथमिक लक्ष्य परिचालन दक्षता को बढ़ाना और बैंकों की वित्तीय सुदृढ़ता और निर्भरता को बढ़ावा देना है, जिससे भारतीय बैंक विश्व स्तर पर स्वीकृत प्रदर्शन मानकों का पालन करने में सक्षम हो सकें।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में, वैश्विक आबादी में कोविड-19 महामारी के लगातार कई उछाल देखे गए, जिसके परिणामस्वरूप आपूर्ति श्रृंखला और लॉजिस्टिक्स में महत्वपूर्ण व्यवधान आया। भारत की मौद्रिक नीति समिति (एमपीसी) ने मुद्रास्फीति को वांछित सीमा के भीतर रखते हुए दीर्घकालिक आर्थिक विकास को प्राप्त करने और बनाए रखने के लिए वर्तमान नीति रेपो दर को बनाए रखने का विकल्प चुना है। इसके अलावा, भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) ने अखिल भारतीय वित्तीय संस्थानों (एआईएफआई) को विशेष पुनर्वित्त सुविधाएं प्रदान करके क्षेत्र की ऋण आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपने केंद्रित प्रयास जारी रखे। कोविड-19 महामारी के दौरान विशेष रूप से स्वास्थ्य देखभाल से संबंधित बुनियादी ढांचे और सेवाओं के विकास और रखरखाव के लिए धन उपलब्ध कराने के लिए एक टर्म लिक्विडिटी सुविधा स्थापित की जा रही है।

पिछले दशक में, भारत में बैंकिंग प्रणाली में महत्वपूर्ण बदलाव देखे गए हैं, जो ज्यादातर उद्योगों को ऋण देने से लेकर व्यक्तिगत ऋण, ऑटो ऋण, क्रेडिट कार्ड और गृह ऋण का प्राथमिक स्रोत बन गया है। देश में प्राथमिक ऋणदाताओं के रूप में निजी बैंक धीरे-धीरे सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का स्थान ले रहे हैं। 2016 के अंत से 2021 तक सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का बकाया कर्ज 200 करोड़ रुपये बढ़ गया. 14.4 ट्रिलियन (यूएस $ 180.26 बिलियन), जबकि निजी बैंकों का बकाया ऋण रु। 22.8 ट्रिलियन (यूएस $285.41 बिलियन), जिसके परिणामस्वरूप लगभग 60% की असमानता हुई।

बैंकिंग उद्योग में एक और हालिया विकास ई-बैंकिंग का उदय है, जो ग्राहकों को उन्नत सेवाएं प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इंटरनेट बैंकिंग, ई-वॉलेट और मोबाइल बैंकिंग ने पारंपरिक लेनदेन तरीकों की जगह ले ली है।

भारत के वित्तीय नियामकों ने वैश्विक स्तर पर सबसे मजबूत बैंकिंग और वित्तीय प्रणालियों में से एक को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारत सरकार ने बैंकिंग अनुभवों को बढ़ाने और पहुंच में सुधार के लिए कई सुधार और नियम विकसित किए हैं। ये उपाय राष्ट्र को आर्थिक उतार-चढ़ाव और जनसांख्यिकीय बदलावों को प्रभावी ढंग से प्रबंधित करने में सक्षम बनाते हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी और इलेक्ट्रॉनिक मनी ट्रांसफर प्रौद्योगिकियां अब बैंकिंग क्षेत्र में तकनीकी प्रगति के मूलभूत स्तंभ हैं। आधुनिक बैंक आज सामानों की एक विस्तृत श्रृंखला प्रदान करते हैं जो पारंपरिक बैंकिंग सेवाओं से परे हैं, और ये पेशकश चौबीसों घंटे उपलब्ध हैं।

डिजिटल प्रौद्योगिकी में प्रगति के परिणामस्वरूप आधुनिक उपभोक्ताओं को वर्चुअल बैंकिंग अनुभवों से अधिक उम्मीदें हैं। महामारी ने तनाव को कम करने वाली वित्तीय वस्तुओं और सेवाओं तक सुविधाजनक पहुंच की आवश्यकता को बढ़ा दिया है, साथ ही बैंकिंग उत्पादों, सेवाओं और सूचनाओं तक तेज और सहज पहुंच की आवश्यकता को बढ़ा दिया है। ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में दक्षता बढ़ाने और ग्राहक सेवा से संबंधित लागत को कम करने के लिए ऑनलाइन और मोबाइल बैंकिंग के बाद भुगतान बैंक एक अतिरिक्त चैनल के रूप में काम करेंगे। डिजिटल रुपया जैसी आसन्न तकनीकी सफलताओं का भविष्य में भारत के बैंकिंग उद्योग पर गहरा प्रभाव पड़ेगा।

विवेकपूर्ण विनियमन

बैंकिंग नियमों को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है: आर्थिक नियम और विवेकपूर्ण नियम। सुधार-पूर्व अवधि के दौरान, भारतीय रिज़र्व बैंक ने ब्याज दरों पर प्रतिबंध लगाकर, प्रवेश आवश्यकताओं को कड़ा करके और बैंक ऋण के जिम्मेदार उपयोग की गारंटी के लिए ऋण देने का निर्देश देकर बैंकों पर नियम लागू किए। फिर भी, बैंकों पर आर्थिक नियमों के

कार्यान्वयन से उनकी उत्पादकता और दक्षता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इसलिए, आरबीआई ने विवेकपूर्ण विनियमन में परिवर्तन किया, जिसमें बैंकों के पूंजी स्तर के लिए न्यूनतम आवश्यकता निर्धारित करना शामिल है। लक्ष्य विशेष रूप से बैंकों की वित्तीय परिसंपत्तियों को संरक्षित करना और संपूर्ण वित्तीय प्रणाली की स्थिरता और विश्वसनीयता की गारंटी देना है। यह अकेले आर्थिक नियमों द्वारा अनुमत की तुलना में बाजार शक्तियों के अप्रतिबंधित संचालन के लिए कहीं अधिक व्यापक रेंज प्रदान करता है। भारतीय रिज़र्व बैंक (RBI) ने बैंकिंग क्षेत्र सुधार समिति, अप्रैल 1998 (जिसे दूसरी नरसिम्हन समिति के रूप में भी जाना जाता है) के सुझावों के आधार पर विवेकपूर्ण आवश्यकताओं को लागू किया। ऐसे नियमों को स्थापित करने का प्राथमिक उद्देश्य बैंकों की वित्तीय सुरक्षा, स्थिरता और शोधनक्षमता सुनिश्चित करना था। इन सिद्धांतों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि बैंक अपनी गतिविधियों को जिम्मेदार व्यवसायों के रूप में संचालित करें, अत्यधिक जोखिम लेने से बचें और लाभ की खोज में बैंकिंग नियमों का अनुपालन करें।

सुधारों का मुख्य तीन क्षेत्रों पर था:

(i) एनपीए

(ii) पूंजी पर्याप्तता

(iii) परिचालन का विविधीकरण

(i) **गैर-निष्पादित परिसंपत्तियां (एनपीए):** 1990 के दशक में, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के लिए गैर-निष्पादित ऋण (एनपीए) एक प्रमुख मुद्दा था। गैर-निष्पादित परिसंपत्तियां (एनपीए) वे हैं जिनके भुगतान में छह महीने से अधिक की देरी हुई है। 1998 की दूसरी नरसिम्हन समिति की रिपोर्ट में कहा गया है, "अग्रिमों के संबंध में एनपीए के आंकड़ों की तुलना में कोई अन्य संकेतक परिसंपत्तियों की गुणवत्ता और बैंकों की व्यवहार्यता पर उनके प्रभाव को नहीं दर्शाता है।" 31 मार्च 1998 से 31 मार्च 2002 तक, अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों (एससीबी) की सकल गैर-निष्पादित संपत्ति (एनपीए) 51,815 करोड़ रुपये से बढ़कर 70,924 करोड़ रुपये हो गई। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों (पीएसबी) की सकल गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों (एनपीए) में भी वृद्धि देखी गई। 1998 और 2002 के बीच, कुल एनपीए में पीएसबी का अनुपात 90% से गिरकर 82% हो गया। इसके अलावा, कुल संपत्ति और अग्रिमों में गैर-निष्पादित ऋण (एनपीए) का अनुपात घट रहा है। इन अनुपातों का उपयोग बैंक स्थिरता के संकेतक के रूप में किया जाता है क्योंकि ये बैंकों की संपत्ति की गुणवत्ता को दर्शाते हैं। इस दौरान, एससीबी के सकल अग्रिम और कुल संपत्ति के प्रतिशत के रूप में उनके सकल और शुद्ध एनपीए में क्रमशः उल्लेखनीय कमी आई। हालाँकि, 2001-02 के बाद, जब

मजबूत वित्तीय संस्थानों का कम मजबूत संस्थानों में विलय हो गया, तो नए निजी क्षेत्र के बैंकों के लिए सकल ऋण और कुल संपत्ति के लिए सकल और शुद्ध गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों का अनुपात नाटकीय रूप से बढ़ गया है। हालाँकि, खराब ऋण की बढ़ती हिस्सेदारी एनपीए वृद्धि का मूल कारण है। कुछ बैंकों की शुद्ध गैर-निष्पादित आस्तियाँ उनकी इक्विटी से अधिक थीं। इससे पता चलता है कि ये वित्तीय संस्थान घाटे में थे।

(ii) **पूंजी पर्याप्तता अनुपात-** बैंकिंग उद्योग में बदलाव शुरू करने के लिए विवेकपूर्ण नियमों, अर्थात् पूंजी पर्याप्तता अनुपात (सीएआर) के कार्यान्वयन का उपयोग किया गया था। इन परिवर्तनों का सार विश्व स्तर पर मान्यता प्राप्त मानकों के अनुरूप विवेकपूर्ण नियमों का विस्तार करना है। 1988 में, अंतर्राष्ट्रीय बैंकिंग पर्यवेक्षण के लिए बेसल समिति ने एक वैश्विक पहल लागू की जिसका उद्देश्य बैंक की पूंजी पर्याप्तता अनुपात (सीएआर) को उसके ऋण पोर्टफोलियो से जुड़े जोखिम के स्तर से जोड़कर बैंक विफलताओं की घटना को कम करना था। दुनिया भर के वाणिज्यिक बैंक सुरक्षा सुनिश्चित करने के उद्देश्य से न्यूनतम मात्रा में पूंजी निधि बनाए रखने के लिए कानूनी रूप से बाध्य हैं। किसी बैंक के पूंजी आधार का महत्व उसकी दीर्घकालिक परिवर्तनशीलता को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका में निहित है। इसके अतिरिक्त, यह झटके को सहने की क्षमता प्रदान करके

और वित्तीय विफलता की संभावना को कम करके मध्यवर्ती अवधि में एक बफर के रूप में कार्य करता है।

(iii) **बैंक परिचालन में विविधीकरण:** आर्थिक विनियमन के युग के बीच, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों ने अपने परिचालन के दायरे में काफी विस्तार किया है। उन्होंने म्यूचुअल फंड, मर्चेंट बैंकिंग, उद्यम पूंजी निवेश और अन्य गैर-पारंपरिक बैंकिंग गतिविधियों जैसे लीजिंग, हायर-परचेज, फैक्टरिंग, फॉर्फिटिंग और अन्य जैसे नए क्षेत्रों में अपने परिचालन का विस्तार किया है। प्राथमिक लक्ष्य आकार और दायरे की अर्थव्यवस्थाओं को अधिकतम करके, ग्राहक आधार का विस्तार करके और प्रत्यक्ष संचालन और सहायक कंपनियों दोनों के माध्यम से वित्तीय सेवाओं की एक विस्तृत श्रृंखला की पेशकश करके लाभ उत्पन्न करना है। एसबीआई सहित कई बैंक व्यापक वित्तीय सेवा केंद्र में तब्दील हो गए हैं।

भारतीय बैंकिंग क्षेत्र में सुधार के बाद की चुनौतियाँ

भारतीय वाणिज्यिक बैंकों ने वार्षिक जमा और ऋण वृद्धि, लाभप्रदता और एनपीए में गिरावट की प्रवृत्ति सहित सभी प्रदर्शन मापदंडों में अच्छी प्रगति की है, कुल पूंजी पर्याप्तता 31 मार्च 2012 तक 16 प्रतिशत तक पहुंच गई है। बैंकिंग क्षेत्र में सार्वजनिक जमा के आरामदायक स्तर ने अधिकांश बैंकों को सुनिश्चित किया है एक आरामदायक तरलता

प्रोफ़ाइल प्राप्त करने के लिए। पिछले दशक के दौरान बैंकों को अच्छी आर्थिक वृद्धि से लाभ हुआ है, SARFAESI अधिनियम का कार्यान्वयन, क्रेडिट सूचना ब्यूरो की स्थापना, नवीनतम प्रौद्योगिकी और बुनियादी ढांचे का लाभ उठाना, जोखिम प्रबंधन प्रक्रियाओं को अद्यतन करना आदि सभी ने समग्र सुधार में योगदान दिया है। हालाँकि, भारतीय बैंकिंग क्षेत्र को कुछ प्रतिकूलताओं का भी सामना करना पड़ा है जैसे 2008-09 के दौरान अर्थव्यवस्था में मंदी, तरलता की तंग स्थिति, बैंकिंग प्रणाली में वेतन वृद्धि, उच्च प्रावधान और पूंजी आवश्यकताएँ आदि। 2010-11 के बाद से सकल एनपीए बढ़ रहा है। उधारकर्ताओं के क्रेडिट प्रोफाइल के कमजोर होने के कारण, निम्नलिखित कारकों के अलावा, अन्य कारण:

- मांग/अर्थव्यवस्था में मंदी
- बढ़ते लागत दबाव के परिणामस्वरूप कॉर्पोरेट भारत का परिचालन लाभ कम हो गया है
- उच्च ब्याज दरें जो अनुकूल नहीं हैं
- इक्विटी बढ़ाने के लिए पूंजी बाजार

भारतीय वाणिज्यिक बैंक वर्तमान में कई चुनौतियों का सामना कर रहे हैं, जिनमें बचत दरों का विनियमन, कड़ी मौद्रिक नीति, विशेष रूप से विमानन, सूक्ष्म वित्त, राज्य उपयोगिताओं, बुनियादी ढांचा क्षेत्र, बेसल III आवश्यकताओं के कार्यान्वयन आदि जैसे क्षेत्रों में तनावग्रस्त संपत्तियों में वृद्धि शामिल है।

निष्कर्ष

बदलते परिवेश के साथ तालमेल बिठाने के लिए प्रत्येक देश अपनी आर्थिक नीति बनाता है और भारत भी इसका अपवाद नहीं है। नई आर्थिक नीति (उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण) भारत में भी आर्थिक माहौल को बदलने के लिए जिम्मेदार है। इन गतिशील परिवर्तनों को पूरा करने के लिए, वित्त, धन और पूंजी बाजार के रूप में आर्थिक संरचना समय-समय पर बदल रही है और बैंकिंग भी उनमें से एक है। आर्थिक सुधारों से पहले भारतीय अर्थव्यवस्था में बहुत सारी कमियाँ और कठोरताएँ थीं। भारतीय वित्तीय क्षेत्र चौराहे पर था। 1991 के गंभीर संकटों को दूर करने और भारतीय वाणिज्यिक बैंकों के प्रदर्शन में सुधार करने के लिए, 1991 में पहला बैंकिंग क्षेत्र सुधार पेश किया गया और उनकी सफलता के बाद सरकार ने 1998 में सुधारों के दूसरे चरण को बहुत महत्व दिया। छह साल के अंतराल के बाद , अब वैश्विक युग में कुछ पुराने सुधारों को संशोधित करना और कुछ नए सुधारों को लागू करना अनिवार्य हो गया था। सुझाए गए सुधारों का तीसरा

चरण विभिन्न चुनौतियों की पहचान करके और दूर करने के लिए आवश्यक उपायों को शामिल करके चल रहे आर्थिक सुधारों को मजबूत करने में मदद करेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Ahluwalia, Montek S. (2002), " Economic reforms in India since 1991: Has Gradualism worked?", Journal of economic Prespectives, 16(3), pp. 67-88.
- Arora, Sangeeta and Kaur, Shubpreet. (2006), "Financial Performance of Indian Banking Sector in Post Reforms Era", The Indian Journal of Commerce, Vol. 9, No. 1, Jan-March.
- Shete N.B. (2003), "Banking Sector Reforms and Priority Sector Credit", Management and Accounting Research, Vol. 3. No. 1, July- September 2003, pp. 1-20.
- Singh Tejmani N and Das Niranjan Chandra.(2002), "Reforms in the Banking Sector – An Overview", Banking Finance, June 2002, pp. 7-8.
- Janaki Ramudu P, Durga Rao. (2006), "A Fundamental analysis of Indian Banking Industry", The ICFAIJournal of Bank Management.
- Sanjeev Kumar.(2010), "Performance of the Indian Banking Sector: Impact of Reform". Shivamagi H. B. (2000), "Reforms in Rural banking – Need for Bolder Approach", Economic and Political Weekly, May 13, 2000, pp. 1714-18.
- Singh, Gupta and Shandilya. (2010), "Banking and financial sector reforms in India", Serials Publication, New Delhi, India.

आर्थिक उदारीकरण एवं वैश्वीकरण

भारत में आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया 1984 और 1985 में औद्योगिक रणनीति के कार्यान्वयन के माध्यम से शुरू की गई थी। हालाँकि, लोगों, भारत सरकार और व्यापार ने इसे पूरी तरह से स्वीकार नहीं किया। 1991 की औद्योगिक नीति ने अपने व्यापक दृष्टिकोण के साथ भारत के आर्थिक सुधारों की शुरुआत को चिह्नित किया। उदारीकरण में नियामक बाधाओं को कम करना शामिल है, जो किसी राष्ट्र की आर्थिक उन्नति को सुविधाजनक बना सकता है। उदारीकरण उन कानूनों, विनियमों, प्रशासनिक प्रतिबंधों और प्रक्रियाओं का उन्मूलन और छूट है जो किसी राष्ट्र की आर्थिक प्रगति में बाधा डालते हैं। वैश्वीकरण का तात्पर्य दुनिया भर में वाणिज्य, सेवाओं या प्रौद्योगिकी के विकास, वृद्धि, विस्तार और प्रसार के साथ-साथ विभिन्न वैश्विक बाजारों में विविध उद्योगों और उद्यमों के विस्तार से है। वैश्वीकरण, जिसे प्रवाह भी कहा जाता है, में विचारों, उत्पादों, परिवहन, धन और वाणिज्य के आदान-प्रदान सहित आंदोलन के कई रूप शामिल हैं। परिणामस्वरूप, उपरोक्त व्याख्यानों को वैश्वीकरण कहा जा सकता है। इसे प्राप्त करने के लिए वैश्विक बाजार में उद्यमों के बीच परस्पर निर्भरता और आत्मनिर्भरता के स्तर को बढ़ाना आवश्यक है। वैश्वीकरण का प्रभाव राष्ट्रों के प्रभुत्व पर पड़ता है। किसी देश का कामकाज विदेशी या आंतरिक प्रभावों से

कमजोर हो सकता है, जो बदले में राज्य की मौलिक संस्कृति और उसकी धारणा को कमजोर करता है। राष्ट्रों, सरकारों और समाज में होने वाले परिवर्तनों को उनके परिणामों के रूप में वर्णित किया जा सकता है।

आर्थिक उदारीकरण

1991 में भारतीय अर्थव्यवस्था में उदारीकरण हुआ। भारत में, आर्थिक उदारीकरण के कार्यान्वयन का उद्देश्य औद्योगीकरण, निजी और अंतर्राष्ट्रीय निवेश की बढ़ती भागीदारी और मुक्त बाजार प्रणाली की स्थापना सहित कई लक्ष्यों को पूरा करना था। परंपरागत रूप से केवल सरकारी क्षेत्र तक सीमित कई महत्वपूर्ण क्षेत्रों तक पहुंच बनाने वाले निजी उद्यमों पर लगे प्रतिबंधों में ढील दी गई। उदारीकरण का तात्पर्य कुछ निजी व्यक्ति कार्यों पर बाधाओं को समाप्त करना है, जो अक्सर आर्थिक प्रणाली से संबंधित होते हैं। उदारीकरण अक्सर उन सीमाओं को आसान बनाने या हटाने के कार्य को संदर्भित करता है जो पहले सरकार की आर्थिक या सामाजिक नीतियों पर लागू की गई थीं। आर्थिक उदारीकरण में देश की अर्थव्यवस्था में मूलभूत बाधाओं और नियमों को खत्म करना शामिल है, जिससे कंपनियों और उद्यमों को अपने प्रभाव को अनुकूलित करने की अनुमति मिलती है। फिर भी, यह स्वीकार करना महत्वपूर्ण है कि उदारीकरण बिना नियमों के अर्थव्यवस्था में शामिल नहीं होता है।

भारत में आर्थिक उदारीकरण की प्रेरणा 1985 के भुगतान संतुलन संकट से उत्पन्न हुई। इस संकट के परिणामस्वरूप, सरकार अपने आवश्यक आयात की लागत को कवर करने और अपने ऋण दायित्वों को पूरा करने में असमर्थ थी। भारत वित्तीय पतन के कगार पर था। इसकी प्रतिक्रिया में डॉ. मनमोहन सिंह, जो उस समय भारत के वित्त मंत्री थे, ने देश में आर्थिक उदारीकरण की शुरुआत की। भारत में उदारीकरण की विशेषताएं 1991 में आर्थिक सुधारों के एक घटक के रूप में शुरू की गईं। उदारीकरण के उपायों में निम्नलिखित विशेषताएं शामिल हैं: देश की स्थापना के बाद से चली आ रही दीर्घकालिक नीतियों को समाप्त करना। नई नीतियों के प्रस्ताव की प्रक्रिया में नियमों का एक जटिल सेट शामिल है जो 1947 से 1990 तक उद्यमों के संचालन और स्थापना पर लागू किया गया था। ब्याज दरों और शुल्क में कमी। हमारी अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में सार्वजनिक क्षेत्र में एकाधिकार प्राप्त करने का प्रयास करें। कई उद्योगों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति दें। भारत में आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया में उपरोक्त विशेषताएं शामिल थीं और कुल मिलाकर, इसके परिणामस्वरूप निजी क्षेत्र की भागीदारी में वृद्धि हुई। लाभप्रद बनने के लिए कई सीमाएं हटा दी गईं। भारत में उदारीकरण लागू करने के मुख्य लक्ष्यों को इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है: भारत में आसन्न भुगतान संतुलन के मुद्दे को संबोधित करने के लिए। भारत की अर्थव्यवस्था की उन्नति में निजी क्षेत्र की भागीदारी। पालन-पोषण या प्रोत्साहन करना। भारतीय उद्यमों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का स्तर बढ़ाना। इसका उद्देश्य भारत में स्थानीय उद्यमों के बीच प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देना है। भारत की आर्थिक

क्षमता को अनुकूलित करने के लिए बहुराष्ट्रीय और निजी कंपनियों के विस्तार को बढ़ावा देना आवश्यक है।

इसका उद्देश्य भारतीय अर्थव्यवस्था में वैश्वीकरण को शामिल करना है। सीमाओं के पार वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह की निगरानी करने और अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य को प्रोत्साहित करने के लिए संरचित किया गया। भारतीय अर्थव्यवस्था पर उदारीकरण के प्रभाव उदारीकरण के प्रभावों का विश्लेषण करते समय, हमारे देश की अर्थव्यवस्था पर अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रभावों को शामिल करना महत्वपूर्ण है।

उदारीकरण के लाभ अर्थव्यवस्था में मुक्त पूंजी प्रवाह -उदारीकरण ने हमारे देश में पूंजी की मुक्त आवाजाही को सक्षम किया है, जिससे कंपनियों को निवेशकों से इसे आसानी से प्राप्त करने की अनुमति मिली है। उदारीकरण से पहले की अवधि में, पूंजी की कमी के कारण आकर्षक परियोजनाओं को शुरू करना एक वर्जित था, जिसे 1991 में उच्च विकास दर की शुरुआत करते हुए सुधारा गया था।

निवेशक पोर्टफोलियो का विविधीकरण- उदारीकरण के बाद, निवेशकों को अपने पोर्टफोलियो का एक प्रतिशत एक विविध परिसंपत्ति वर्ग में निवेश करने की स्वतंत्रता है, इस प्रकार अधिक लाभ उत्पन्न होता है।

शेयर बाजार के प्रदर्शन में सुधार - आर्थिक कानूनों में ढील से भी शेयर बाजार के मूल्य में वृद्धि होती है, जिससे निवेशकों के बीच अधिक व्यापार को बढ़ावा मिलता है।

कृषि क्षेत्र पर प्रभाव - यद्यपि कृषि क्षेत्र पर उदारीकरण के प्रभाव को स्पष्ट रूप से नहीं मापा जा सकता है, 1991 के बाद की अवधि में, सम्पूर्ण देश में कृषि क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण संशोधन हुआ था।

उदारीकरण के नुकसान आर्थिक अस्थिरता - इस तरह के एक गंभीर आर्थिक सुधार के कारण राजनीतिक और आर्थिक शक्ति का पुनर्वितरण हुआ जिसने भारतीय अर्थव्यवस्था को काफी हद तक अस्थिर कर दिया।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों से बढ़ी प्रतिस्पर्धा -उदारीकरण से पहले की अवधि में, बहुराष्ट्रीय कंपनियों की भारतीय अर्थव्यवस्था में कोई भूमिका नहीं थी। हालांकि, इसके तुरंत पश्चात्, भारतीय कंपनियों को बहुराष्ट्रीय कंपनियों से बढ़ती प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा, जिससे कई छोटी फर्मों के अस्तित्व को संकट का सामना करना पड़ा।

बैंकिंग क्षेत्र पर एफडीआई प्रभाव - बैंकिंग और बीमा क्षेत्रों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से प्रतिबंध हटाने से इन दोनों क्षेत्रों में सरकार की हिस्सेदारी में गिरावट आई है।

अधिग्रहण और विलय में वृद्धि -उदारीकरण के बाद की अवधि में विलय और अधिग्रहण के बढ़ते दायरे ने छोटी फर्मों के कर्मचारियों के लिए खतरा पैदा कर दिया है। बड़ी कंपनियों के

साथ विलय की स्थिति में, छोटी फर्मों के कर्मचारियों को कठोर पुन: कौशल से गुजरना पड़ा जिससे उत्पादकता में ठहराव आ गया।

उदारीकरण का महत्व

विकासशील बाज़ार देशों को उदार बनाने की प्रक्रिया निवेशकों को उनके पोर्टफोलियो विविधता और वित्तीय लाभ को बढ़ाने के लिए नई संभावनाएँ प्रदान करती है। आर्थिक उदारीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक राष्ट्र अंतरराष्ट्रीय वाणिज्य, कानूनों, करों और अन्य पहलुओं के प्रति अधिक खुला दृष्टिकोण अपनाता है जो अक्सर उसके आर्थिक वातावरण को प्रभावित करते हैं। किसी राष्ट्र में आर्थिक उदारवाद की डिग्री का आकलन आम तौर पर उस देश के अंदर निवेश और वाणिज्यिक गतिविधियों के संचालन के मामले में आसानी के स्तर का मूल्यांकन करके किया जा सकता है। सभी औद्योगिक राष्ट्र पहले ही उदारीकरण की प्रक्रिया से गुजर चुके हैं, जबकि उभरते राष्ट्रों में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलेंगे।

उदारीकरण के परिणामस्वरूप विशिष्ट विकास हुआ जिससे मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था की स्थापना हुई। आमतौर पर, इसमें घरेलू और विदेशी दोनों लेनदेन पर प्रत्यक्ष अधिकार में कमी और आर्थिक संचालन को व्यवस्थित करने के लिए मूल्य निर्धारण तंत्र का उपयोग करने की प्राथमिकता शामिल है। इसमें विनिमय प्रतिबंधों का कार्यान्वयन और कई विनिमय दरों से सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत परिवर्तनीय मुद्रा में परिवर्तन शामिल है। भारत में उदारीकरण को अपनाने का उद्देश्य आर्थिक विस्तार और सामाजिक विकास की प्रक्रिया को

तेज करना था। उदारीकरण के माध्यम से, भारतीय और विदेशी दोनों व्यवसायों को ऊर्जा, परिवहन, संचार और पेट्रोलियम सहित कई क्षेत्रों तक पहुंच प्रदान की गई है। इसके अतिरिक्त, सरकार को सामाजिक और आर्थिक विकास पहलों को क्रियान्वित करने का अधिक अधिकार दिया गया है। जुलाई 1991 में नई औद्योगिक नीति को अपनाने का उद्देश्य नौकरशाही के प्रभाव को कम करना था, जिसने औद्योगिक क्षेत्र के तेजी से विस्तार में बाधा उत्पन्न की थी। इसका उद्देश्य औद्योगिक क्षेत्र के विकास को बढ़ावा देने के लिए, प्रशासनिक भागीदारी को कम करते हुए, बाजार शक्तियों को लाभ प्रोत्साहन के आधार पर कार्य करने में सक्षम बनाकर मुक्त प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देना था। उदारीकरण की प्रक्रिया ने अधिकांश उद्योगों के लिए औद्योगिक लाइसेंस की आवश्यकता को समाप्त कर दिया। भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण ने अधिकतम 51 प्रतिशत इक्विटी के साथ प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति दी। इसने सरकारी सब्सिडी कम करने की रणनीति लागू की। इसने अधिकांश निर्यातित और आयातित वस्तुओं के साथ-साथ विदेशी निवेश पर लगी सीमाओं को समाप्त कर दिया। इससे आयात शुल्क में उल्लेखनीय कमी आई। विनिवेश का उद्देश्य सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों (पीएसयू) में सरकार के स्वामित्व को कम करना था। देश उदारीकरण के पाँच प्रभाव नीचे दिए गए हैं।

- आर्थिक उदारीकरण को आमतौर पर विकासशील देशों के लिए एक लाभकारी और वांछनीय प्रक्रिया के रूप में माना जाता है।
- आर्थिक उदारीकरण का अंतर्निहित लक्ष्य अप्रतिबंधित पूंजी को देश में और बाहर प्रवाहित करना, आर्थिक विकास और दक्षता को बढ़ावा देना है।
- उदारीकरण के बाद, एक देश को विदेशी निवेश से होने वाली स्थिरता से राजनीतिक रूप से लाभ होगा, जो लगभग उभरते देश के लिए निदेशक मंडल की तरह काम करता है।
- इन देशों को उनके शुरुआती चरणों में उच्च जोखिम वाला माना जाता है, लेकिन यह संस्थागत निवेशकों से महत्वपूर्ण निवेश को रोकता नहीं है जो पहले प्राप्त करना चाहते हैं।

उदारीकरण शब्द का अर्थ कुछ निजी व्यक्तिगत गतिविधियों से प्रतिबंध हटाना है, जो आमतौर पर आर्थिक प्रणाली से संबंधित हैं। आमतौर पर, उदारीकरण का उपयोग सरकार के आर्थिक या सामाजिक नीतियों पर पहले से लगाए गए प्रतिबंधों को शिथिल करने के संदर्भ में किया जाता है।

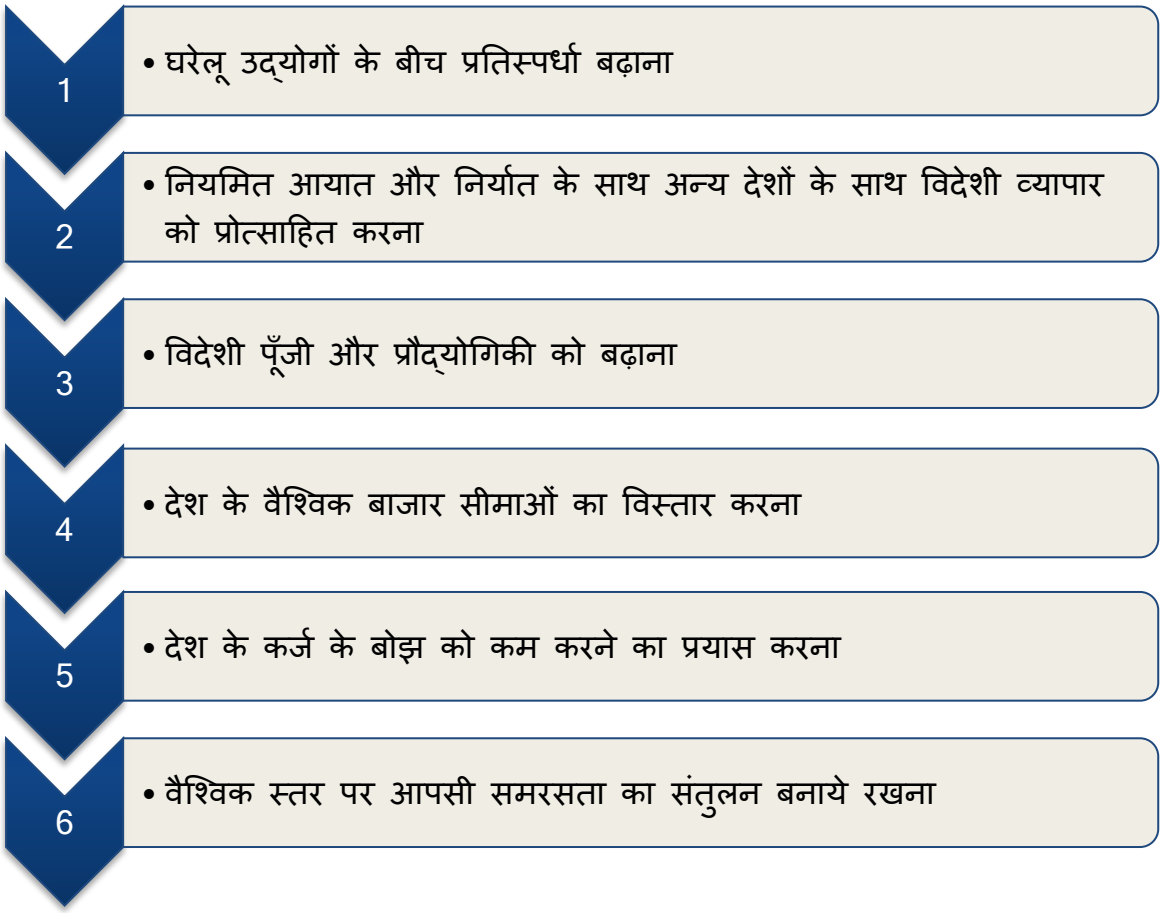

उदारीकरण नीति के उद्देश्य

उदारीकरण की विशेषताएँ

उदारीकरण के अन्तर्गत जो देश तेजी से व्यापार उदारीकरण लागू करते हैं, उन्हें निकट अवधि में आयात में वृद्धि देखने को मिल सकती है, जिसके परिणामस्वरूप व्यापार और चालू खाता घाटा दोनों हो सकते हैं। उदारीकरण से अल्पकालिक सकल घरेलू उत्पाद में तेजी आ सकती है और निर्यात की तुलना में अधिक आयात की विशेषता वाला व्यापार असंतुलन हो सकता है। संचार की पहुंच में हाल के वर्षों में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखे गए हैं,

जैसे-जैसे प्रौद्योगिकी आगे बढ़ रही है, उस पर बहुत अधिक ध्यान दिया जा रहा है। यह तर्कसंगत है, यह देखते हुए कि वायरलेस या फाइबर ऑप्टिक्स जैसी प्रौद्योगिकी में प्रगति ने क्षमताओं में काफी वृद्धि की है और कीमतें कम की हैं। फिर भी, बाजारों तक इन अग्रिमों की पहुंच को सुविधाजनक बनाने में उदारीकरण के महत्व को हाल ही में व्यापक मान्यता मिली है। इसका एक उदाहरण फाइबर ऑप्टिक्स का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहन है, जो लंबी दूरी के दूरसंचार क्षेत्र के भीतर प्रतिद्वंद्विता से उत्पन्न हुआ था। प्रीपेड कार्ड जैसी प्रगति सहित वायरलेस सेवा का तेजी से विस्तार, मोबाइल संचार के क्षेत्र में भयंकर प्रतिद्वंद्विता से प्रेरित था। एकाधिकारवादी माहौल में वाणिज्यिक इंटरनेट का उद्भव अत्यधिक असंभव है, और इसके गतिशील नवाचार के लिए उत्प्रेरक बनने की संभावना बहुत कम है। भारतीय अर्थव्यवस्था में उदारीकरण के दौर में उदारीकरण की विशेषताएं निम्नलिखित प्रकार से है-

1. **व्यापारिक प्रतिबंधों का उन्मूलन-** उदारीकरण नीति के अन्तर्गत व्यापारिक प्रतिबंधों के उन्मूलन का कार्य किया जाता है एवं ऐसे नियम व कानूनों को निस्काषित किया जाता है जिसमें अर्थव्यवस्था के विकास में बाँधा उत्पन्न करने का कार्य होता है।
2. **निजीकरण को बढ़ावा-** उदारीकरण के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था पर सरकारी प्रभाव को धीरे धीरे कम किया जाता है। निजीकरण प्रक्रिया द्वारा सार्वजनिक क्षेत्रों में उद्यमों व संस्थानों के माध्यम से सरकारी स्वामित्व को निजी क्षेत्र में परिवर्तित किया जाता है।

3. **करों में रियायत-** व्यापारिक गतिविधियों के अनुसार उनकों बढ़ावा देने हेतु सरकार व्यापारिक करों में छूट प्रदान करती है। टैक्स रिबेट, टैक्स डिडक्शन जैसे रियायतों द्वारा सरकार बाजार में व्यापार के लिए सकारात्मक वातावरण बनाने का प्रयास करती है।

4. **सीमा शुल्क में कटौती-** अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रगतिशील बनाने हेतु सरकार आयात और निर्यात के सीमा शुल्क में कटौती करती है। निर्यात उद्योगों से जुड़ी इकाइयों को निर्यात सहायता राशि के माध्यम से प्रोत्साहित करने का कार्य किया जाता है। बेहतर और उत्तम गुणवत्ता के साथ आयात करने के लिए आयात शुल्क में कमी की जाती है।

5. **मुक्त बाजार व्यवस्था-** उदारीकरण के अन्तर्गत मुक्त बाजार व्यावस्था को प्रसारित करने का कार्य किया जाता है। मुक्त बाजार व्यवस्था जिसमें पदार्थों की कीमत पर सरकार का नियंत्रण नहीं रहता है। ऐसी व्यवस्था जिसमें उत्पादों व सेवाओं की कीमत बाजार की माँग व पूर्ति पर आधारित होती है और पूरी तरह से निर्भर करती है।

6. **आधुनिकीकरण को बढ़ावा-** उदारीकरण नीति अर्थव्यवस्था को वैश्वीकरण की ओर उन्मुख करती है। जिसके चलते व्यापार और आधुनिक संतुलन का आदान प्रदान काफी सुगमता से होने लगता है और आर्थिक विकास तेजी से होने लगता है।

7. **मंदी से छुटकारा-** उदारीकरण प्रक्रिया के अन्तर्गत सरकार व्यापार को प्रोत्साहित करने हेतु छूट प्रदान करती है जिसके कारण उत्पादकों को अपने उत्पादन हेतु बढ़ावा मिलता है। उत्पादन ज्यादा होने से उत्पादों के दाम भी कम होने लगते है और दूसरी तरफ

उदारीकरण द्वारा बाजार में प्रतियोगिता बढ़ने लगती है जिसके परिणामस्वरुप उत्पादों के दामों में कमी होना शुरु हो जाती है।

वैश्वीकरण

आर्थिक विनियमन और अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य की वृद्धि के परिणामस्वरूप वैश्वीकरण की घटना तेज हो गई है। 1991 में संकट के बाद, विदेशी वाणिज्य में भारत की भागीदारी अपेक्षाकृत हाल ही में शुरू हुई। अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य को अपनाने को नई आर्थिक नीति दृष्टिकोण के एक महत्वपूर्ण घटक और सुधार प्रक्रिया के एक बुनियादी तत्व के रूप में देखा जाना चाहिए। 1991 में, सरकार ने व्यापार, विदेशी निवेश और कराधान सहित नीति समायोजन की एक श्रृंखला लागू की, जिसे "नए आर्थिक सुधार" के रूप में जाना जाता है। उदारीकरण, खुलेपन, पारदर्शिता और वैश्वीकरण पर जोर देते हुए 1991 में शुरू की गई आर्थिक सुधार प्रक्रिया ने भारतीय अर्थव्यवस्था को वैश्विक समुदाय के साथ बेहतर एकीकरण की सुविधा प्रदान की है। भारत के वाणिज्य की विकास दर कई चरों पर अधिक निर्भर होती जा रही है, जिसमें वैश्विक व्यापार का विस्तार (विशेषकर व्यापारिक साझेदारों के साथ), अंतर्राष्ट्रीय कीमतों में उतार-चढ़ाव और प्रतिद्वंद्वी देशों में विकास का प्रवाह शामिल है। भारत में आर्थिक उदारीकरण देश की आर्थिक नीतियों को उदार बनाने की प्रक्रिया से संबंधित है, जिसका लक्ष्य निजी और अंतर्राष्ट्रीय निवेश की अधिक भागीदारी को

बढ़ावा देते हुए अर्थव्यवस्था के बाजार और सेवा अभिविन्यास को बढ़ाना है। आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए किसी राष्ट्र को कौन सी इष्टतम नीतियां अपनानी चाहिए, इस पर लगातार और निरंतर चर्चा चल रही है। क्या सरकार को विकास के लिए क्षेत्रों के चयन में हस्तक्षेप करना चाहिए, या निजी क्षेत्र को उत्पादन चुनने की स्वायत्तता होनी चाहिए? जबकि 1991 में समायोजन और परिवर्तन आर्थिक आवश्यकताओं से प्रेरित थे, यह राजनीतिक प्रक्रिया थी जिसने उनके कार्यान्वयन को सक्षम बनाया। फिर भी, उदारीकरण की प्रक्रिया मुख्य रूप से व्यक्तियों की आर्थिक इच्छाओं या विकास के दीर्घकालिक लक्ष्यों के बजाय सरकार की आर्थिक चुनौतियों से प्रभावित थी। आर्थिक उदारीकरण के आगमन ने बढ़ती बेरोजगारी, स्थायी गरीबी और बढ़ती असमानता जैसे मुद्दों को जन्म दिया है।

चित्र.1 वैश्वीकरण के दौर में अर्थव्यवस्था की संरचना

1980 के दशक के बाद, नीतिगत सुधारों को लागू करने और भारतीय अर्थव्यवस्था में बदलाव लाने के लिए एक ठोस प्रयास किया गया। उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण के किस ढांचे के तहत एल.पी.जी. संचालन? मूलरूप के रूप में संदर्भित। इस रणनीति को लागू करने का उद्देश्य भारत की अर्थव्यवस्था के विकास में तेजी लाना और उत्तरोत्तर अन्य देशों के आर्थिक मानकों के करीब पहुंचना है। इसमें सार्वजनिक या सरकारी क्षेत्र के स्वामित्व में किसी भी हस्तक्षेप के बिना, निजी क्षेत्र के लिए वाणिज्य और सेवाओं में

निजी संस्थानों की भागीदारी शामिल है। पाठ में केवल एक शब्द है: "है।" 24 जुलाई 1991 को सही मायनों में भारत का आर्थिक स्वतंत्रता दिवस कहा जा सकता है। भारत ने 30 साल पहले 24 जुलाई को बजट पेश करके आर्थिक सुधार और उदारीकरण की शुरुआत की थी, जो एक नई और खुली अर्थव्यवस्था की स्थापना का प्रतीक था। 1991 में आर्थिक संकट मुख्य रूप से देश के भुगतान संतुलन में महत्वपूर्ण असंतुलन के कारण हुआ था। इस मुद्दे का 1990 के दशक में देश की आर्थिक स्थिति पर हानिकारक प्रभाव पड़ा। देश का विदेशी मुद्रा भंडार ख़त्म होने की कगार पर था। आयातित माल की केवल शेष आपूर्ति थी जो 15 दिनों की अवधि तक चलेगी। इसके बाद, राष्ट्र को अपना सोना संपार्श्विक के रूप में गिरवी रखकर विदेशी मुद्रा सुरक्षित करनी पड़ी। देश की अर्थव्यवस्था की संघर्षपूर्ण स्थिति के बीच उपाय के रूप में आर्थिक सुधार लागू किये गये। भारत की व्यापक आर्थिक स्थितियों को बेहतर बनाने और विकास को प्रोत्साहित करने के लिए, एक व्यापक रूपरेखा शुरू की गई, जिसमें कई आयाम शामिल थे और आर्थिक उदारीकरण की रणनीति लागू की गई। लाइसेंस परमिट राज के विपरीत, सरकार ने ऐसी नीतियां लागू कीं जिन्होंने खुली अर्थव्यवस्था में निजी कंपनियों के लिए स्वतंत्रता को बढ़ावा दिया। इन नीतियों में निजी उद्योगों को प्रोत्साहित करना, सरकारी निवेश को कम करना और खुले बाज़ार को बढ़ावा देना शामिल था। इसके अतिरिक्त, सरकार ने निजी बैंक खोलने की अनुमति दी, दूरसंचार क्रांति को बढ़ावा दिया,

हवाई सेवाओं का विस्तार किया और विदेशी पूंजी निवेश को आकर्षित किया। इन बदलावों ने बैंकिंग क्षेत्र पर काफी प्रभाव डाला। क्षेत्रों में सुधार पहलों को क्रियान्वित किया गया।

1991 की आर्थिक सुधार भारत के स्वतंत्रता के बाद एक ऐतिहासिक क्षण था। जिसने अर्थव्यवस्ता के मौलिक तरीकों को बदल दिया। बीते 3 दशकों में सभी सरकारों ने देश को 3 ट्रिलियनडालर की अर्थव्यवस्था और विश्व की सबसे बडी अर्थव्यवस्थाओं की लीग में ले जाने के लिए इस रास्ते का अनुसरण किया। बीते 3 दशकों में भारत ने बहुत ही ज़बरदस्त आर्थिक प्रगति भी की है।वे सारे कदम काफी सराहनीय थे जिन हालात में आर्थिक सुधार का कार्य शुरू किया गया था वो अपने आप में बहुत ही कठिन निर्णय था। उस समय भारत की अर्थव्यवस्था पूरी तरह से निष्क्रीय पड़ गया था। जी डी पी ग्रोथ भी बहुत कम हो गया था। इन्ही सारी दिक्कतों को देखते हुए यह बहुत ज़रूरी हो गया था कि पूरे सिस्टम को व देश की अर्थव्यवस्था को पुनः से दुरूस्त किया जाए। नयीपाॅलिसी का निर्माण किया गया। नयीइमपोर्ट-एक्सपोर्ट पालिसी नयीइन्डस्ट्रियल पालिसी बनायी गयी जिसमें ज्यादा से ज्यादा प्रइवेट सेक्टर को आगे किया गया ताकि प्राइवेट सेक्टर जो भी काम जानते है वह वे ठीक से करें और पहले जो उनके ऊपर जो भी बाधाएं थी उनको भी हटाया गया।आर्थिक य व्यापारिक किसी भी प्रकार का कार्यक्रम, का उददेश्य एक मात्र लाभ प्राप्त करना ही होता है।

व्यापार द्विआयामी शब्द है जिसमे से एक लाभ अर्जित करना तथा दूसरा अधिमतमीकरण है। दुनियाभर के देशों का आपस में मैत्रीय संबंध को बनाये रखने के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर घरेलू व्यापार को बढ़ावा देने पर जोर देना चाहिए जिससे हमारा विश्व आधुनिक वैश्विक

विश्व बन सके जहाँ हर देश के राष्ट्रो की रणनीतियों का विस्तार करने का मौका हो आपस में प्रतिस्पर्धात्मक का महौल रहे जिससे वे आपस में आगे जाने की होड़ में सम्मिलित हों और आर्थव्यवस्था का तेजी से विकास हो सके। अन्तराष्ट्रिय व्यापार और अन्तराष्ट्रिय बाजार, व्यापार, बाजार दोनो है यह समानार्थी रूप से प्रयुक्त शब्द जो आपस में जुड़े हुए से हैं। विदेशी व्यापार में सीमा पार आयात व निर्यात होता है जिसमे दो देशों के बीच आपस में वस्तुओं व मुद्राओं का आदान प्रदान होता है। इसके व्यवस्थित विकास के लिए आवश्याक वातावरण देने, सेवा को दुरूस्त करने के लिए कई अधिनियम पारित किए गए है जिनमें विदेश व्यापार विकास एवं विनियमन अधिनियम,1992 सीमा शुल्क अधिनियम,1996 और विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम,1999 शामिल है।भारत सोने की चिड़िया यूहींनही कहलाता है यहाँ कई सदियों पहले से ही विदेशी व्यापार होता रहा है, जोकि भारतीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाता रहा है। भारत विदेश व्यापार नीति का अक्सर केन्द्र रहा है भारत जैसे विकासशील देश में विदेशी व्यापार ने उत्प्रेरक का काम किया है भारतीय अर्थव्यवस्था वैश्वीकरण को आमंत्रित कर अवसरों का निर्माण करती है व विदेशी पूंजी व वस्तुओं को भी देश में लाने का काम करती है। किसी देश की शक्ति व ताकत उसके आर्थिक घटकों पर निर्भर रहती है। जिसमे से एक घटक विदेशी व्यापार भी है जो कि विदेशी व्यापार में महत्वपुर्ण भूमिका निभाता है। विदेशी व्यापार के कारण प्रत्येक देश की आर्थिक प्रगती व समृद्धि में वृद्धि होती है। किसी देश की अर्थव्यवस्थाओं की विशेषज्ञता की उन्नति और क्षेत्रीय

सहयोग में सम्मिलित होने से उसका आर्थिक विकास होना सम्भव होता है।अर्थव्यवस्था की संरचना जैसा कि हम पहले भी बात कर चुके है कि साल 1991 से पहले भारत की आर्थिक परिस्थियाँ काफी कमजोर हो गयी थी। भारत के सरकारी कोष मे केवल २ हफ़्तों के निर्यात बिल चुकाने की क्षमता बची थी।उदारीकरण नीति को अपनाने के बाद भारत की अर्थव्यवस्था उत्तरोतर बढ़ती चली गयी। आज भारत दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन गया है।

निष्कर्ष

वैश्वीकरण और उदारीकरण परस्पर जुड़ी हुई अवधारणाएँ हैं जो सामाजिक और आर्थिक प्रतिबंधों में ढील देने से संबंधित हैं, जिससे अर्थव्यवस्थाओं और देशों का अधिक एकीकरण होता है। वैश्वीकरण और उदारीकरण आधुनिकता के परिणाम हैं। जैसे-जैसे अर्थव्यवस्थाएँ बढ़ती और फलती-फूलती हैं, एकीकरण, लचीलेपन और परस्पर निर्भरता में वृद्धि होती है, जिससे इसमें शामिल सभी लोगों को आर्थिक लाभ होता है। उदारीकरण आर्थिक परिवर्तन की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। मूलतः यह अर्थव्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप को कम करके बाजार प्रणाली पर निर्भरता बढ़ाने की प्रक्रिया को संदर्भित करता है। कृषि, उद्योग और सेवाएँ आदि उदारीकरण के प्रमुख क्षेत्रों पर सकारात्मक प्रभाव डालते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Al-Amin, Abul Quasem, Globalization and Liberalization a Macro Economic Issue at Bangladesh in the Millennium (September 12, 2007). Available at SSRN: https://ssrn.com/abstract=1014013 or http://dx.doi.org/10.2139/ssrn.1014013
- SINGH, A., and GHOSH, J. "Import Liberalisation and the New Industrial Strategy: An Analysis of Their Impact on Output and Employment," Economic and Political Weekly, Vol. 23, Nos. 45–47, Special Number (1988).
- Hax, A. C., Building the Firm of the Future, Sloan Management Review, Spring, 1989

- Levitt, T., The Globalization of Markets, Harv. Bus. Rev., May-June 1983; The Borderless World: Power and Strategy in the Interlinked Economy.
- **file:///C:/Users/PC/Downloads/Globalization_Its_Effects.pdf**
- Brittan 1999. "Responding to the Challenges of Globalization: an Opportunity for Reform", The Economist Conference, 28 April, europa.eu.int/comm/dg01/slb2904.htm
- **https://byjus.com/free-ias-prep/difference-between-globalization-and-liberalization/**
- **https://unacademy.com/lesson/vaishviikrnn-udaariikrnn-evn-nijiikrnn-kaa-bhaartiiy-arthvyvsthaa-pr-prbhaav-part-2/NIQ5UNGD**

भारत के आर्थिक विकास में विदेशी पूँजी की आवश्यकता एवं उद्देश्य

विदेशी पूंजी विदेशी स्रोतों से घरेलू देश में पूंजी का प्रवाह है। विदेशी पूंजी, विदेशी निवेश, विशेष रूप से प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के बारे में व्यापक जानकारी प्रदान करता है। सभी देशों की सरकारें विदेशी धन का पर्याप्त प्रवाह आकर्षित करना चाहती हैं, क्योंकि यह देश के आर्थिक विकास में सकारात्मक योगदान देता है। विदेशी पूंजी का तात्पर्य विदेशी स्रोतों से घरेलू देश में वित्तीय संसाधनों के प्रवाह से है। आर्थिक प्रगति के लिए देशी पूंजी की अपर्याप्तता के कारण भारत जैसे उभरते देशों में विदेशी धन की मांग विकसित होती है। विदेशी पूंजी को देश के विकास लक्ष्यों को पूरा करने के लिए घरेलू स्तर पर सुलभ बचत, सरकारी आय, विदेशी मुद्रा और नियोजित निवेश के बीच अंतर को पाटने के साधन के रूप में देखा जाता है।

विदेशी पूंजी द्वारा भरे गए विभिन्न प्रकार के अंतरालों का उल्लेख किया गया है जिन्हें विदेशी पूंजी द्वारा भरा जाता है:

- सरकार को विदेशी मुद्रा की वांछित मात्रा और शुद्ध निर्यात लाभ और शुद्ध सार्वजनिक विदेशी सहायता के संयुक्त योग के बीच अंतर को पाटने के लिए विदेशी

पूंजी की आवश्यकता है। इस घटना को अक्सर विदेशी मुद्रा या व्यापार अंतर के रूप में जाना जाता है।

- सरकार को अपने भुगतान संतुलन में मौजूदा असंतुलन को दूर करने के लिए निजी विदेशी धन के प्रवाह की आवश्यकता है।

विदेशी पूँजी के विभिन्न रूपों का उल्लेख

कोई देश विदेशी पूंजी तीन अलग-अलग रूपों में प्राप्त कर सकता है- विदेशी निवेश, रियायती सहायता और गैर-रियायती सहायता।

- विदेशी निवेश में दो अलग-अलग श्रेणियां शामिल हैं: प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) और विदेशी पोर्टफोलियो निवेश (एफपीआई)। विदेशी निवेश देश की प्रबंधन, प्रौद्योगिकी, प्रतिभा और उद्यमिता की कमियों को दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- गैर-रियायती सहायता का तात्पर्य बाहरी वाणिज्यिक उधार (ईसीबी), अनिवासी भारतीयों (एनआरआई) से प्राप्त जमा और विदेशी सरकारों से प्राप्त ऋण के माध्यम से प्राप्त विदेशी धन से है।
- रियायती सहायता का तात्पर्य अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) और विश्व बैंक जैसे बहुपक्षीय संस्थानों से द्विपक्षीय ऋण और अनुदान के माध्यम से प्राप्त विदेशी पूंजी से है।

आर्थिक विकास में विदेशी पूंजी की भूमिका

किसी देश के विकास में विदेशी पूंजी के महत्व को निम्नलिखित बिंदुओं से समझा जा सकता है:

निवेश में वृद्धि

विदेशी पूंजी प्रवाह स्थानीय बचत को पूरक करता है, बुनियादी ढांचे, उद्योग और प्रौद्योगिकी जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में निवेश के लिए पूरक धन प्रदान करता है। संयुक्त अरब अमीरात ने दुबई को वित्त और पर्यटन के एक प्रमुख केंद्र के रूप में विकसित करने के लिए अंतरराष्ट्रीय निवेश को सफलतापूर्वक आकर्षित किया। इस प्रयास से हवाई अड्डों, बंदरगाहों और गगनचुंबी इमारतों जैसे शीर्ष बुनियादी ढांचे का निर्माण हुआ।

तकनीकी हस्तांतरण

विदेशी पूंजी अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी, विशेष ज्ञान और प्रभावी प्रबंधन क्षमताओं की शुरूआत की सुविधा प्रदान करती है, जिससे उत्पादकता बढ़ती है, उद्योगों का आधुनिकीकरण होता है और रचनात्मकता को बढ़ावा मिलता है। 1960 के दशक में, दक्षिण कोरिया ने सफलतापूर्वक अंतर्राष्ट्रीय वित्त और ज्ञान हस्तांतरण को आकर्षित किया, जिसने इसके इलेक्ट्रॉनिक्स और ऑटोमोटिव क्षेत्रों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसने,

बदले में, दक्षिण कोरिया को एक महत्वपूर्ण वैश्विक खिलाड़ी के रूप में उभरने में बहुत योगदान दिया।

रोज़गार निर्माण

विदेशी पूंजी निवेश से रोजगार सृजन को बढ़ावा मिलता है, बेरोजगारी दर में कमी आती है और स्थानीय आबादी के जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि होती है। भारत में, विशेष आर्थिक क्षेत्रों (एसईजेड) के गठन ने अंतरराष्ट्रीय निवेश को आकर्षित किया, जिसके परिणामस्वरूप विनिर्माण, आईटी सेवाओं और फार्मास्यूटिकल्स जैसे क्षेत्रों में रोजगार के अवसर सृजित हुए।

वैश्विक बाज़ारों तक पहुंच

विदेशी पूंजी राष्ट्रों को वैश्विक बाजारों में प्रवेश पाने में सक्षम बनाती है, जिससे उनके निर्यात का विस्तार, उनकी अर्थव्यवस्थाओं का विविधीकरण और वैश्विक मूल्य श्रृंखलाओं में एकीकरण की सुविधा मिलती है। वियतनाम की उदारीकरण नीतियों के कार्यान्वयन ने अंतर्राष्ट्रीय निवेश को सफलतापूर्वक आकर्षित किया, जिसके परिणामस्वरूप इसके निर्यात-उन्मुख विनिर्माण क्षेत्र का महत्वपूर्ण विस्तार हुआ। सैमसंग जैसे प्रमुख व्यवसायों ने देश में

उत्पादन सुविधाएं स्थापित कीं, जिससे आर्थिक विकास को बढ़ावा मिला और निर्यात में वृद्धि हुई।

आर्थिक स्थिरता और विकास

विदेशी पूंजी प्रवाह विदेशी मुद्रा भंडार में योगदान देता है, आर्थिक स्थिरता बढ़ाता है और दीर्घकालिक विकास परियोजनाओं का समर्थन करता है। इथियोपिया ने सड़क, रेलवे और बिजली संयंत्रों जैसी बुनियादी ढांचा परियोजनाओं के लिए विदेशी पूंजी को आकर्षित किया है, जिससे इसकी आर्थिक वृद्धि और विकास में योगदान मिला है।

भारत में विदेशी पूंजी: विदेशी पूंजी की आवश्यकता और स्वरूप

दुनिया भर की सरकारें, विशेष रूप से समृद्ध देशों की सरकारें, विदेशी निवेश आकर्षित करने के लिए प्रतिस्पर्धा कर रही हैं। किसी देश की आर्थिक प्रगति पर विदेशी पूंजी के लाभकारी प्रभाव पर विश्वास 1980 के दशक के मध्य से काफी तीव्र हो गया है। दक्षिण पूर्व एशियाई देशों (1986-1995) के अनुभव ने इस धारणा को स्पष्ट रूप से मान्य किया है और इसके परिणामस्वरूप उन कानूनों और प्रतिबंधों में धीरे-धीरे कमी आई है जो विदेशी पूंजी के प्रवाह में बाधा बन सकते थे।

विदेशी पूंजी की आवश्यकता:

विदेशी धन की आवश्यकता निम्नलिखित कारकों के कारण उत्पन्न होती है। भारत जैसे कई उभरते देशों में, आर्थिक विकास को समर्थन देने के लिए स्थानीय पूंजी अपर्याप्त है। विदेशी पूंजी को अक्सर बचत, विदेशी मुद्रा, सरकारी आय के घरेलू रूप से सुलभ भंडार और विकासात्मक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक निवेश के बीच असमानताओं को पाटने के साधन के रूप में देखा जाता है। बचत और निवेश के बीच असमानता के उदाहरण के रूप में, एक ऐसे परिदृश्य पर विचार करें जहां उत्पादन की इच्छित वार्षिक वृद्धि दर 7 प्रतिशत है और पूंजी और उत्पादन का अनुपात 3 प्रतिशत है। इस मामले में, आवश्यक बचत दर 21 प्रतिशत होगी।

यदि घरेलू स्तर पर जुटाई गई बचत राशि 16 प्रतिशत है, तो बचत में 5 प्रतिशत की कमी या घाटा मौजूद है। राष्ट्रीय विकास में विदेशी पूंजी का प्राथमिक योगदान लक्षित निवेश और घरेलू स्तर पर जुटाई गई बचत के बीच अंतर को पाटने की क्षमता है। वांछित विदेशी मुद्रा आवश्यकताओं और शुद्ध निर्यात लाभ और शुद्ध सार्वजनिक विदेशी सहायता के संयोजन के बीच अंतर को पाटने के लिए विदेशी पूंजी आवश्यक है। इस घटना को अक्सर विदेशी मुद्रा या व्यापार घाटा कहा जाता है। यदि कोई विदेशी स्वामित्व वाली फर्म निर्यात राजस्व का शुद्ध सकारात्मक प्रवाह प्रदान कर सकती है, तो निजी विदेशी पूंजी का प्रवाह धीरे-धीरे भुगतान संतुलन में असंतुलन को खत्म कर सकता है।

विदेशी पूंजी, विशेष रूप से विदेशी निवेश, तीसरे अंतर को पाटने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जो सरकारी कर आय और स्थानीय रूप से उत्पन्न करों के बीच मौजूद है। विकासशील देशों की सरकारें विदेशी कंपनियों की कमाई पर कर लगाकर ऊर्जा और बुनियादी ढांचे जैसी महत्वपूर्ण आर्थिक विकास पहलों के लिए धन जुटाने में सक्षम हैं।

विदेशी निवेश प्रबंधन, उद्यमिता, प्रौद्योगिकी और विशेषज्ञता में शून्य को भरता है। इन आवश्यक घटकों सहित बंडल को प्रशिक्षण कार्यक्रमों और अनुभवात्मक शिक्षा के माध्यम से स्थानीय राष्ट्र तक पहुंचाया जाता है। विदेशी उद्यम औद्योगिक प्रक्रियाओं में उन्नत तकनीकी विशेषज्ञता का भी योगदान करते हैं और आधुनिक उपकरणों को उभरते देशों में स्थानांतरित करते हैं जिनके पास पैसे की कमी है।

वर्तमान में, एक व्यापक धारणा है कि विदेशी धन में उभरती अर्थव्यवस्थाओं की उत्पादक प्रणालियों को महत्वपूर्ण रूप से बदलने की क्षमता है, जिसके परिणामस्वरूप आर्थिक विस्तार की पर्याप्त दर होती है। इसके अलावा, विदेशी धन भारत जैसे देशों में रोजगार वृद्धि को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि यह नई उत्पादक संपत्तियों के निर्माण की सुविधा प्रदान करता है।

विदेशी पूंजी के स्वरूप:

विदेशी पूंजी विदेशी निवेश, गैर-रियायती सहायता या रियायती सहायता द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

1. विदेशी निवेश में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) और विदेशी पोर्टफोलियो निवेश (एफपीआई) दोनों शामिल हैं। एफपीआई में यूरो इक्विटीज, ग्लोबल डिपॉजिटरी रिसीट (जीडीआर) और अमेरिकन डिपॉजिटरी रिसीट (एडीआर) के माध्यम से भारतीय निगमों द्वारा उत्पन्न धनराशि शामिल है।

2. गैर-रियायती सहायता में मुख्य रूप से बाहरी वाणिज्यिक उधार (ईसीबी), विदेशी सरकारों/बहुपक्षीय एजेंसियों से बाजार दरों पर ऋण और अनिवासी भारतीयों (एनआरआई) से एकत्रित जमा शामिल हैं।

रियायती सहायता से तात्पर्य वित्तीय सहायता से है जिसमें कम ब्याज दरों और विस्तारित पुनर्भुगतान शर्तों पर प्राप्त अनुदान और ऋण शामिल हैं। आमतौर पर, यह सहायता या तो द्विपक्षीय समझौतों के माध्यम से या विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ), और अंतर्राष्ट्रीय विकास संघ (आईडीए) जैसे अंतर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा दी जाती है। आमतौर पर, ऋण विदेशी मुद्रा का उपयोग करके वापस किया जाना चाहिए। हालाँकि, कुछ मामलों में,

ऋणदाता प्राप्तकर्ता राष्ट्र को अपनी मुद्रा का उपयोग करके ऋण चुकाने की अनुमति दे सकता है।

अनुदान गैर-चुकौती योग्य धनराशि है जो अधिकतर अस्थायी आपात स्थितियों को संबोधित करने के लिए प्रदान की जाती है और उन्हें भुगतान की आवश्यकता नहीं होती है। अर्थव्यवस्था में अस्थायी कमी को दूर करने के लिए कृषि वस्तुओं या औद्योगिक कच्चे माल के प्रावधान के माध्यम से विदेशी सहायता भी प्राप्त की जा सकती है। एक प्रकार की विदेशी सहायता के रूप में तकनीकी सहायता भी प्रदान की जा सकती है।

निष्कर्ष

यह देश के विदेशी मुद्रा भंडार के प्राथमिक स्रोत के रूप में कार्य करता है। अर्थव्यवस्था में विदेशी मुद्रा का प्रवाह सरकार को पर्याप्त संसाधन बनाने में सक्षम बनाता है, जिससे भुगतान संतुलन के स्थिरीकरण में योगदान होता है। विदेशी धन नवीन प्रौद्योगिकी का भी परिचय देता है जो एक राष्ट्र के अंदर कंपनियों को उन्नत करता है। विदेशी पूंजी किसी देश में बाहर से आने वाले वित्तीय संसाधनों का प्रवाह है, जिसमें प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई), विदेशी पोर्टफोलियो निवेश (एफपीआई), विश्व बैंक जैसे अंतरराष्ट्रीय संगठनों से ऋण या विदेशी सरकारों से ऋण जैसे कई स्रोत शामिल हैं। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश भारत की आर्थिक वृद्धि को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- https://unacademy.com/content/bank-exam/study-material/general-awareness/foreign-capital/
- https://www.studyiq.com/articles/foreign-capital
- https://www.gktoday.in/upsc-questions/foreign-capital-is-very-important-for-a-developing/
- https://www.adb.org/sites/default/files/publication/29427/inrm4.pdf
- Roohi Javed and Farheen Javed, "A Panel Data Analysis of Foreign Direct Investment Inflows into India Since 1991 to 2015" ,The Indian Economic Journal 65(1–4) 27–36.
- Vanita Tripathi, Ritika Seth and Varun Bhandari , "Foreign Direct Investment and Macroeconomic Factors: Evidence from the Indian Economy", Asia-Pacific Journal of Management Research and Innovation 11(1) 46–56
- Sahana Joshi and R.V. Dadibhavi, "An Analysis of the Regional Distribution of Foreign Direct Investment (FDI) in India during Post-Liberalisation (1991-2003)", The Indian Economic Journal • Volume 55(4), January-March 2008
- Upadhyay, Archana, Foreign Direct Investment and Indian Economy (January 2, 2016). Available at

SSRN: https://ssrn.com/abstract=2710148 or http://dx.doi.org/10.2139/ssrn.2710148

बहुराष्ट्रीय निगमों का महत्व ,फेरा और फेमा

बहुराष्ट्रीय निगम या कंपनियां जिनको हम साधारण रूप से अथवा साधारण बोलचाल की भाषा में ऍम. ऍन. सी के नाम से जानते हैं| वर्तमान समय में अधिकांशिता अर्थव्यवस्थाओं फिर वह चाहे विकासशील देशों की हो ,विकसित देशों की हो, की मुख्य विशेषताएं होती हैं| यह आर्थिक संगठनों के मुख्य स्वरूप में से एक जिनका फैलाव युद्ध के बाद धीरे-धीरे शुरू हुआ और धीरे-धीरे इन्होंने अपने महत्व को लंबी सीमाओं तक फैलाया| कुछ महत्वपूर्ण शब्द इनमें ऐसे हैं जो इसके विभिन्न तरीकों को प्रत्यक्ष रूप से दर्शित करते हैं जैसे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश, एफडीआई, अंतरराष्ट्रीय संयुक्त उद्यम, अंतरराष्ट्रीय विलय और अधिग्रहण| यह सभी ऐसे शब्द हैं जो बहुराष्ट्रीय कार्यक्रमों को उनके स्वरूपों के माध्यम से अभिहित करते हैं| सामान्य बोलचाल की भाषा में , परिभाषा के रूप में यदि कहा जाए तो बहुराष्ट्रीय निगम वे होती है जो एक से अधिक देशों में उत्पादन की प्रक्रिया को लागू करती है अथवा नियंत्रित करती है| उनके द्वारा उसके प्रबंधन को भी देखा जाता है, युद्ध के बाद की अवधि में बहुराष्ट्रीय क्रियाकलापों के महत्व का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि वह राष्ट्रीय कंपनियां अथवा निगम का कुल विश्व निर्यात में करीब 25% तक का हिस्सा है| कुछ ऍम. ऍन. सी जैसे जनरल मोटर्स अपने भौगोलिक सीमाओं की दृष्टि से इतनी अधिक फैले हुए हैं अथवा अपने आकार में इतने विकसित हो चुके हैं कि उनकी कुल वार्षिक बिक्री का

कारोबार कुछ देशों के राष्ट्रीय आय से भी अधिक होता है| यूनाइटेड स्टेट्स, यूनाइटेड किंगडम ,जर्मनी, नीदरलैंड, फ्रांस, स्वीटजरलैंड, इटली इत्यादि कुछ ऐसे उल्लेखनीय देश हैं जहां से बड़े पैमाने पर एक बड़ी मात्रा में धन का निवेश हुआ है| विश्व के 100 ऐसे बड़े ऍम. ऍन. सी यूनाइटेड स्टेट्स ,जापान फ्रांस, यूनाइटेड किंगडम जर्मनी के हैं ,कम से कम 1970 तक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में सबसे बड़े स्रोत के रूप में उभरे थे, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है| प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का प्रवाह सिर्फ विकसित देशों की ओर से नहीं होता बल्कि विकासशील देशों की ओर से भी होता है| विश्व के कुछ ऐसी बहुराष्ट्रीय निगम हैं जिनमें जनरल मोटर्स, फोर्ड मोटर , रॉयल डच, सेल ग्रुप, नीदरलैंड, डमर, बेज जर्मनी, नेस्ले स्वीटजरलैंड फिएट इटली, रेनॉल्ट फ्रांस से उभरी है| भारतीय बहुराष्ट्रीय कंपनियां जिन्होंने विदेशों में अपनी क्षमता को प्रकट किया है वह है रिलायंस उद्योग, टाटा इस्पात, टेल्को, गोदरेज, प्लेनेट एशिया और माइक्रोलैंड विदेश में अपनी परिसंपत्तियों के माध्यम से ही विस्तृत है| विकासशील देशों की 550 सबसे बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियों में रिलायंस उद्योग का 39 वां स्थान है| नवीनतम आंकड़ों को देखा जाए तो हम पाते हैं 80 के दशक के उत्तरार्ध तक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश प्राप्त करने वाले अधिकांश देश एशिया ,लैटिन अमेरिका और अफ्रीका के थे| नवीनतम विश्व रिपोर्ट के अनुसार विश्व की सबसे बड़ी 100 बहुराष्ट्रीय कंपनियों की 1808 बिलियन डॉलर की विदेशी संपत्तियां मौजूद हैं विदेश में, इनकी बिक्री 2149 बिलियन डॉलर के मूल्य के बराबर है| इन बहुराष्ट्रीय निगम की उपस्थिति तेजी से

बड़ी है| इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने इलेक्ट्रॉनिक्स, इलेक्ट्रिकल उद्योग, फार्मास्यूटिकल, रसायन ,ऑटो मोटिव पेट्रोलियम, खनन खाद्य उद्योगों में मुख्य रूप से वृद्धि को स्थापित किया है| भारत में 70 के दशक के मध्य में बहुत सारी बहुराष्ट्रीय कंपनियों की उपस्थिति लगभग न के बराबर थी |जब कुछ विद्यमान बहुराष्ट्रीय कंपनियों को देश से बाहर किया गया तथा इस समय बीतने के साथ ही भारतीय अर्थव्यवस्था में बहुराष्ट्रीय क्रियाकलाप बढ़ने लगा| तब से भारत ने उदारीकरण के साथ भूमंडली कृत युग में प्रवेश किया है, विभिन्न क्षेत्रों में निजी निवेश के लिए विभिन्न रास्ते खोजे गए हैं ताकि प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को देश के भीतर बढ़ावा दिया जा सके| भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश पिछले कुछ वर्षों में पूर्व की तुलना में, प्रेस सूचना ब्यूरो भारत सरकार के अनुसार, 4 वर्षों में ,प्रत्यक्ष निवेश की भूमिका सकारात्मक रूप से वृद्धिगत देखी गई है| प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के साथ-साथ बहुराष्ट्रीय कार्यक्रम के अंतर्गत निगमों के स्वरूपों की उपस्थिति भी उल्लेखनीय रही है| भारत में कुछ बहुराष्ट्रीय कंपनियां इस प्रकार हैं -जैसे एशिया ब्राउन बावरी, सिटी बैंक, एचएसबीसी, फिलिप्स, सैमसंग, सीमेंट, सेल इत्यादि| भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का फैलाव किसी एक अथवा कुछ ही क्षेत्र तक सीमित नहीं है अपितु यह अनेकों परंपरागत और गैर परंपरागत क्षेत्र में फैली हुई है| तकनीकी माध्यमों से यह जानकारी मिली है कि दूरसंचार, विद्युत उपकरण, परिवहन, रसायन और खाद्य क्षेत्र में वृहद बहुराष्ट्रीय कंपनियां, अपनी रुचि दिखा रही है| इनमें से विद्युत क्षेत्र और दूरसंचार ऐसे दो मुख्य क्षेत्र हैं| जिनमें अधिकतम

स्वीकृतियां प्राप्त हुई हैं, यदि हम इन क्षेत्रों में शिव शक्तियों की प्रवृत्ति को देखें तो यह प्रतीत होता है कि आने वाले भविष्य में आधारभूत संरचना के क्षेत्र में बड़े पैमाने पर बहुराष्ट्रीय मूल्य वर्धन की प्रक्रिया प्रत्यक्ष होगी| बहुराष्ट्रीय कंपनियां या निगम, एक कंपनी जिनके आर्थिक कार्यों के क्रियाकलाप अपने देश की सीमाओं से बाहर पहले होते हैं| उनको परंपरागत रूप से बहुराष्ट्रीय कंपनी का दर्जा दिया जाता है| दूसरे शब्दों में कहीं तो एक कंपनी या निगम अपने उत्पादन निर्णय के लिए संपूर्ण भूमंडलीय बाजार पर फैलाव हेतु विचार करती है| ऐसी कंपनियों को बहुराष्ट्रीय कंपनी निगम कहा जाता है क्योंकि इनमें अधिकांश कंपनियों के शेयर सार्वजनिक रूप से स्वामित्व के अंतर्गत आते हैं |साहित्य में कंपनी और उपक्रम का उपयोग समझ के रूप में होता है| इस प्रकार बहुराष्ट्रीय कंपनियां और बहुराष्ट्रीय उपक्रमों को अनुचर के रूप में प्रयोग करने की प्रवृत्ति होती है और इसमें सूक्ष्म अंतर प्रदर्शित होता है| साझेदारी फर्म जिसमें संगठन निर्गमन की बात नहीं है बल्कि बहुराष्ट्रीय उपक्रम के रूप में है, जो की एक व्यापक परिभाषित शब्द है, जिसके अंतर्गत निर्गमन एक से अधिक देशों में क्रियाशील सभी बहुराष्ट्रीय उपक्रम में आती हैं |

दूसरे शब्दों में कहें इनका व्यापार दूसरे क्षेत्र देश में फैला हुआ है| कुल मिलाकर उपक्रमों और सार्वजनिक, दोनों की परिभाषा एक उपक्रम के रूप में परिभाषित की जा सकती है जो प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से संलग्न है| इस प्रकार अनेक देशों में मूल्य संवर्धन क्रियाकलापों के अंतर्गत यह कंपनियां स्वामित्व में आती हैं और स्वयं पर उनका नियंत्रण रखती हैं| इस प्रकार उनका वर्गीकरण करने का तरीका बहुदा व्यावहारिक रूप से आसान नहीं है|

बहुराष्ट्रीय कंपनियां स्टॉक एक्सचेंज में सूचीबद्धवी कंपनियां होती हैं जिनमें अधिकांश शेयर विदेशी प्रवर्तक या संयुक्त उद्यमी पर आधारित होता है, वे पूर्ण रूप से या आंशिक स्वामित्व वाली अनुसांगिक, अंतर्राष्ट्रीय प्रचलन के अंतर्गत आती हैं।

बहुराष्ट्रीय संगठनों के विभिन्न स्वरूप

एक बहुराष्ट्रीय उपक्रम का स्वामित्व या नियंत्रण प्रबंधन निजी तौर पर या सार्वजनिक तौर पर हो सकता है| बहुराष्ट्रीय उपक्रमों की परिसंपत्तियों का प्रबंधन और स्वामित्व अनेकों तरीकों से किया जा सकता है सिर्फ एक देश के स्वामित्व के अंतर्गत आना और उसका प्रबंध करना भी सही माना जाता है| राष्ट्रीय नियंत्रण के अंतर्गत आने वाली ऐसी कंपनियां जो अंतरराष्ट्रीय तौर पर भी अपने स्वामित्व और प्रबंधन को स्थापित करती हैं, वह बहुराष्ट्रीय संगठनों के अंतर्गत आता है| इनकी संगठन के तरीके के आधार पर बहुराष्ट्रीय कार्यों, विभिन्न स्वरूपों के अंतर्गत आते हैं जो विश्व में अलग-अलग कंपनियों के रूप में प्रत्यक्ष होते हैं| सभी

बहुराष्ट्रीय उपक्रमों की एक मुख्य विशेषता यह होती है कि उनके मूल्य संवर्धन क्रियाकलाप राष्ट्रीय सीमाओं से परे होते हैं| बहुराष्ट्रीय क्रियाकलाप का सबसे सरल स्वरूप अंतरराष्ट्रीय बिक्री है, जिसमें उत्पादन से संबंधित समस्त कार्यों को खुद के देश में संपादित करन होता है और फिर तैयार उत्पादक को अन्य देशों में भेज जाता है दूसरा उसका विपणन कारोबार भी होता है जो दूसरे देशों से संपर्क के माध्यम से आयातित अथवा निर्यातित होता है| इस प्रकार वे न सिर्फ उत्पादन में, विपणन कारोबार में भी अंतरराष्ट्रीय प्रचलन के अंग को प्रदर्शित करती हैं| बाजार और उत्पादन के प्रति उनकी विश्व व्यापी अथवा भूमंडलीय

बहुराष्ट्रीय क्रियाकलाप सर्वाधिक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश अथवा पूर्ण स्वामित्व वाली विदेशी अनुसांगिक कंपनियों के अंतर्गत आता है | परिभाषा को उदित करते हुए विश्व निवेश के अनुसार प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की परिभाषा एक अर्थव्यवस्था में निवासी सत्ता के, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के अतिरिक्त, अर्थव्यवस्था में निवासी उपक्रम के निवेश से जुड़ा रहता है, जिसमें दीर्घकालिक संबंध निहित होता है| अस्थाई हित और नियंत्रण को परिलक्षित करने में सहायक होता है| आसान शब्दों में कहें तो प्रत्यक्ष विदेशी निवेश उस समय होता है जब एक देश की कोई कंपनी दूसरे देश में अवस्थित संगठनात्मक स्वामित्व हासिल करने हेतु उस देश में निवेश को तैयार होती है |अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने अपने सांख्यिकी प्रयोजनों के लिए विदेशी निवेश की परिभाषा प्रत्यक्ष रूप से परिभाषित की है यदि निवेशक किसी उपक्रम में 10 से कम प्रतिशत की शेयर की हिस्सेदारी है तो वस्तुतः किसी भी सत्ता के प्रबंधन में अपनी उपस्थिति दर्ज करने के लिए न्यूनतम 10% की शेयर हिस्सेदारी आवश्यक होती है| कभी-कभी कम शेयर रखने वाली सत्ता प्रबंधन की कंपनियां ,अपने स्वरूप में निष्क्रिय भूमिका अदा करती हैं जबकि अधिक शेयर वाली कंपनी सट्टा प्रबंधन में सक्रिय भूमिका को दर्शाती है |पूर्ण स्वामित्व वाली विदेशी अनुसांगी कंपनियों के मामले में जैसा कि नाम से प्रतीत होता है किसी विशेष देश के दूसरे देश के अनुसांगी में अपने स्वरूप में परिवर्तन कर निवेश के लिए सक्षम होती है, जिसमें इसका कंपनी पर पूरा-पूरा नियंत्रण स्थापित होता है| इस मामले में इस स्वामित्व से कोई परिवर्तन निहित नहीं रहता है| इस प्रकार एक स्थान से

दूसरे स्थान में स्थानांतरित संसाधनों पर मूल फर्म का पूरा-पूरा नियंत्रण बना रहता है| इस तरह की इक्विटी प्रबंधन मूल फर्म के पास अपने नियंत्रण अधीन संसाधनों को हस्तानांतरित करने का अधिकार होता है| भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का उदाहरण सोनी, सम्संग इत्यादि है|

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का दूसरा स्वरूप स्थानीय फर्म का अधिग्रहण अथवा विलय करने से जुड़ा होता है| अंतरराष्ट्रीय अथवा सीमा पार वाले मामले में दो विलेय कारी फर्म स्थानीय और विदेशी की परस्पर संपत्तियों और प्रचलन को एक नई वैधानिक सत्ता के माध्यम से जन्म देती है जबकि सीमा पर अधिग्रहण के मामले में परिसंपत्तियों का नियंत्रण ,स्वामित्व अधिकार से अधिग्रहित फर्म , प्रबंध अधिग्रहण करने वाली विदेशी निकाय को हस्तानांतरित कर सकती है| पूरे भूमंडल में प्रचलित बहुराष्ट्रीय संगठन का दूसरा उल्लेख स्वरूपिक रूप से अंतरराष्ट्रीय संयुक्त उद्यम से जुड़ा हुआ है इस प्रकार के संगठन में मूल देश की फर्म मेजबान देश में उपस्थित फर्म के साथ संयुक्त उद्यम की स्थापना कर सकती है और नई सट्टा नीति की को जन्म दे सकती है, जिसमें दो या दो से अधिक सहभागी फर्म , इक्विटी पूंजी के बड़े हिस्से पर अपना नियंत्रण स्थापित कर सकती हैं और कंपनी में अपनी निर्णायक भूमिका अदा कर सकते हैं| अंतरराष्ट्रीय सीमा पर संयुक्त उद्यम में संबंधित आर्थिक सट्टा दो या दो से अधिक देशों का प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रखती है| भारत में बिरला, यामाहा, डीसीएम, टोयोटा, रॉक्स काइनेटिक, होंडा ,महिंद्रा ,ब्रिटिश टेलीकॉम इत्यादि जैसी कुछ अंतरराष्ट्रीय संयुक्त उद्यम की कंपनियां मौजूद हैं| संगठन का एक अन्य महत्वपूर्ण स्वरूप

विदेशी अल्पसंख्यक से जुड़ी शेयर पूंजी होती है |बहुराष्ट्रीय संगठनात्मक व्यवस्थाओं पर स्वामित्व की दृष्टि से देखने के साथ-साथ, यदि इस पर अधिक व्यापक परिदृश्य से देखा जाए तो भारतीय आर्थिक क्रियाकलापों में संगठनात्मक रूप से उनके स्वरूप को परिलक्षित होते हैं।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के निर्धारण के मानक –

अनेक प्रकार के कारकों के माध्यम से और प्रतिक्रियाओं के फल स्वरुप फर्म बहुराष्ट्रीय क्रियाकलापों के अंतर्गत आती हैं जिनके प्रेरक अनेक माध्यमों के हो सकते हैं जिसके कारण फर्म सीमा पार से निवेश को तैयार होती हैं| बहुराष्ट्रीय क्रियाकलापों की व्याख्या निम्न प्रकार से की जा सकती है-

- एक विदेशी या अंतरराष्ट्रीय उत्पादन के उद्देश्य को ध्यान में रखकर अथवा दूसरा बहुराष्ट्रीय क्रियाकलापों की आर्थिक और व्यावहारिक निर्धारण से जुड़ी मानकों को पहचान कर उसका उन्मूलन करना
- सर्वप्रथम, उनका व्यावहारिक निर्धारण किया जाता है इसके बाद विदेश में प्रत्यक्ष निवेश से संबंधित उत्तरदाई कारकों पर चर्चा की जाती है|
- वर्तमान साहित्य के अनुसार तीन प्रमुख उद्देश्यों जैसे संसाधनों को प्राप्त करने के उद्देश्य ,बाजार प्राप्त करने के उद्देश्य, दक्षता प्राप्त करने के उद्देश्य से फर्म निवेश में प्रत्यक्ष रूप से विदेशी निवेश करने हेतु कंपनी प्रेरित होती है|

विदेशी निवेश पर उद्यम करने का तात्कालिक उद्देश्य संसाधनों के अधिग्रहण से जुड़ा हुआ होता है जो काम वास्तविक लागत पर उपलब्ध हैं ऐसे उपक्रम को निश्चित रूप से लाभ प्राप्त करने में कठिनाई नहीं होती है| लंबे समय तक प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य होता है |ऐतिहासिक विवरण से पता चलता है कि कुछ विकसित देशों की आरंभिक निवेशकों के लिए प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के पीछे प्रमुख उद्देश्य खनिजों और प्राथमिक उत्पादों के विश्वसनीय स्रोत की उपलब्धता को जानना होता है| प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिए प्रेरक के रूप में प्राकृतिक संसाधनों के महत्व में कमी आ जाती है किंतु इसका महत्व पूरी तरह से समाप्त नहीं हुआ है| प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता के अलावा फर्म कम लागत पर उत्पादन के अवसर को सकारात्मक रूप से खोजती है| इस प्रकार अनेक मूल्य संवर्धन क्रियाकलापों में सस्ती श्रमिकों की उपलब्धता भी प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का मुख्य निर्धारण होती है |बाजार का उद्देश्य भी अत्यंत महत्वपूर्ण होता है क्योंकि फर्म विशेष बाजार में बने रहने और विकास करने के लिए स्वयं को उत्तरदायी मानती है ताकि उसे उचित मात्रा में लाभ प्राप्त हो सके|

आर्थिक विकास में बहुराष्ट्रीय कंपनियां अथवा मनको की निर्णायक भूमिका-

भूमंडलीय संस्थाओं द्वारा बहुराष्ट्रीय उपक्रमों को बहुदा विकास हेतु प्रेरक माना जाता है संभावित रूप से देखा जाए तो बहुराष्ट्रीय उपक्रम विभिन्न क्षेत्रों जैसे पूंजी ,निर्माण, मानव संसाधन, पर्यावरण प्रौद्योगिकी और मूल देश के साथ-साथ मेजबान देश के व्यापार में भी योगदान की क्षमता रखता है| स्थानीय कंपनियों के साथ अपनी सलंग्नता के साथ वह पूंजी

निर्माण में योगदान को सकारात्मक रूप दे सकते हैं और अपनी कार्य कुशलता में भी वृद्धि कर सकते हैं| बहुराष्ट्रीय उपक्रमों की उपस्थिति ,रोजगार की सृजनता ,विश्व स्तरीय प्रबंधन कौशल भावना को प्रशिक्षण प्रदान करने में सहायक हो सकती है| यह भी विश्वास किया जाता है कि बहुराष्ट्रीय उपक्रम अर्थ नियोजित अथवा नियोजित संसाधनों के उपयोग के माध्यम से सहायक हो सकते हैं| इस प्रकार बहुराष्ट्रीय उपक्रम विकास और रोजगार में सहायक होते हैं| संसाधनों के स्तंभ उपयोग और संसाधनों की गुणवत्ता में उन्नयन से मेजबान देश को लाभ प्राप्त हो सकता है| कम विकसित देशों में संसाधनों के अभाव के मध्य बहुराष्ट्रीय उपक्रमों द्वारा किया गया निवेश वर्धमान में वास्तविक साबित हो सकता है और उसका अधिक विकास वास्तविक रूप से प्रेरित हो सकता है| अनुबंध की अनुपस्थिति से अंत क्षेत्र अर्थव्यवस्था का सृजन करता है, यह सर्वाधिक तत्व है कि बहुराष्ट्रीय उपक्रम आधुनिक प्रौद्योगिकी स्थापित अनुसंधान और विकास के विपुल संग्रह और औद्योगिक उन्नयन के लिए वरदान साबित हो सकते हैं |मूल फर्म सामान्यतः मेजबान देश के प्रमुख ध्येय को सर्वोत्तम प्रबंधन की कौशल प्रणाली, प्रौद्योगिकी तथा उपकरण उपलब्ध कराती है हालांकि यह विचार का विषय है कि मेजबान देश इन सर्वोत्तम तकनीक को आत्मसात करते हैं अथवा नहीं, जब तक की प्रबंधन में कुछ सीमा तक नियंत्रण की अनुमति नहीं दी जाती है, प्रौद्योगिकी स्वामी सामान्यतः अपनी प्रौद्योगिकी उपलब्धता को अनुमति अनुरूप नहीं मानते हैं| इस प्रकार बहुराष्ट्रीय क्रियाकलाप में जहां निवेदक का संसाधनों पर कुछ प्रबंधकीय निर्णय भौतिक होता है| मेजबान देश को सर्वोत्तम प्रतियोगिकी उपलब्ध हो पाती है| यह न सिर्फ केवल आधुनिक प्रौद्योगिकी को उपलब्ध कराता है ,स्वच्छ वातावरण और अनुकूल

प्रौद्योगिकी को भी संरक्षण प्रदान करता है| बहुराष्ट्रीय उपक्रम एक संगठन की भांति विभिन्न प्रकार के संसाधन क्षमताओं तथा बाजार को भी उपलब्धता की अनुशीलता प्रदान करता है| बहुराष्ट्रीय उपक्रम न सिर्फ रोजगार और परि संपत्तियों के सृजन को प्रोत्साहित करती है अपित विभिन्न प्रकार के उद्योगों में अपनी भागीदारी के माध्यम से विदेशी मुद्रा की आपूर्ति में भी मदद करती है| बहुराष्ट्रीय उपक्रमों का किसी अर्थव्यवस्था पर महत्वपूर्ण रूप से राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक प्रभाव पड़ता है| सर्वप्रथम बहुराष्ट्रीय उपक्रम मेजबान देश जो व्यापार घाटा से जूझ रहा है उसके लिए पूंजी प्रवाह के रूप में व्यापारिक घाटे से जुड़ी समस्या को कम देने काम करने में मददगार साबित होती है |यह पाया गया है कि आरंभ में बहुराष्ट्रीय उपक्रम का भुगतान संतुलित मेजबान देश को अपने अनुकूल या मूल देश के प्रतिकूल दर्शित करता है बाद में यह स्थिति उल्टी हो जाती है| मेजबान देश की कुछ वास्तविक आशंकाएं होती हैं| यह कहा जाता है कि जहां संसाधनों को जताने का प्रश्न होता है बहुराष्ट्रीय उपक्रम की तुलना में स्थानीय उद्यमी पीछे जाते हैं| इस प्रकार स्थानीय उद्यमियों अथवा कंपनियों की सफलता की संभावना बनी रहती है उनमें उपलब्ध सर्वोत्तम स्थानीय संसाधनों पर कब्जा कर लेने की क्षमता अधिक होती है |एक देश में एक निश्चित स्तर तक विकास के बाद बहुराष्ट्रीय उपक्रम की भागीदारी मेजबान देश के अनुसंधान और विकास क्रियाकलापों के कमी को सीमित कर सकती है |बहुराष्ट्रीय उपक्रमों का प्रभाव सिर्फ मेजबान देश तक ही सीमित नहीं होता है इसका मूल देश के स्थिति पर भी प्रभाव पड़ता है| किसी अन्य देश में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के कारण मूल देश में नौकरियों के जाने का खतरा भी बढ़ जाता है| एक तर्क यह भी दिया गया है, कि मूल देश की प्रौद्योगिकी विशेषता के

समाप्त होने की संभावना भी बनी रहती है क्योंकि उसकी अंतरराष्ट्रीय पूंजी बाजार में सीधी पहुंच होती है और उसकी घरेलू मौद्रिक नीतियां उसे धोखा दे देती हैं |स्थानीय प्रथाओं और रोजगार को नियंत्रित अथवा विनियमित करने के लिए समस्त आर्थिक नीतियों के बावजूद बहुराष्ट्रीय उपक्रम, नियोजन के विभिन्न पहलुओं , रोजगार के स्तर को भी आकर्षित करते है| प्रतिफल प्रतिपूर्ति ,कार्य दशा, संसाधन विकास, औद्योगिक संबंधकी गुणवत्ता द्वारा संबंधित कारकों को प्रभावित किए जाने की संभावना होती है| जब व्यापार पर बहुराष्ट्रीय उपक्रमों के प्रभाव की बात आती है तो व्यापार बहुराष्ट्रीय उपकरण के प्रभाव को मानक के रूप में संश्लेषित करने की क्षमता रहता है|

फेरा और फेमा - सन 1973 में विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम पारित किया गया, जिसका मूल उद्देश्य विदेशी मुद्रा का सदुपयोग सुनिश्चित करना था लेकिन यह कानून देश के विकास में बाधक बन गया था यही कारण है कि दिसंबर 1999 में संसद के दोनों सदनों द्वारा फेमा प्रस्तावित किया गया| राष्ट्रपति के अनुमोदन के पश्चात 1999 में फेमा प्रभाव में आ गया।

फेरा का वास्तविक रूप- शेयर कानून का मूल कार्य विदेशी भुगतान पर नियंत्रण लगाना था |पूंजी बाजार में काले धन पर नियंत्रण रखना| विदेशी मुद्रा के आयात और निर्यात पर नजरे रखना और विदेशियों द्वारा अचल संपत्तियों की खरीद को नियंत्रित करना मात्र था| इस कानून को देश में तब लागू किया गया था, जब देश का विदेशी मुद्रा भंडार बहुत ही खराब

हालत में पहुंच गया था |इसका उद्देश्य विदेशी मुद्रा के संरक्षण और आर्थिक विकास में आ रही कमियों को दूर करना था |

फेमा का वास्तविक रूप- फेमा का महत्वपूर्ण कार्य विदेशी मुद्रा से संबंधित सभी कानून का संशोधन करते हुए एकीकरण करना था| इसके अलावा फेमा का लक्ष्य देश में विदेशी भुगतान और व्यापार को बढ़ावा देना था ताकि देश में विदेशी पूंजी और निवेश बढ़ जाए और औद्योगिक विकास और निर्यात को भी बढ़ावा दिया जा सके|

ऐसे में फेमा भारत में विदेशी मुद्रा बाजार के रखरखाव और सुधार को प्रोत्साहित करने का कार्य करता है| फेमा भारत में रहने वाले एक व्यक्ति को पूरी तरह से स्वतंत्रता प्रदान करता है कि वह भारत के बाहर संपत्ति को खरीद सकता है और उसे संपत्ति का मालिक भी बन सकता है| उसका मालिकाना हक किसी और को भी देना चाहे तो दे सकता है।

फेरा और फेमा के बीच मूल अंतर-

फेरा-

इसे संसद में 1973 में मंजूरी दी गई थी, यह वर्तमान में लागू नहीं है|

इसमें अनुभागों की संख्या 81 दर्शी गई है|

इसे भारत में विदेशी भुगतानों पर नियंत्रण लगाने और विदेशों में विदेशी मुद्रा का सदुपयोग करने के लिए बनाया गया था|

इसमें भारत का नागरिक इस व्यक्ति को माना जाता था जो भारत का नागरिक हो|

इसमें अपराध को क्रिमिनल अपराध की श्रेणी में रखा जाता था और दोषी पाए जाने के लिए पर सजा का प्रावधान था|

इसके तहत उक्त व्यक्ति पर मुकदमा दर्ज होता था ताकि आरोपी व्यक्ति को दोषी माना जा सके और उसे साबित करना होता था कि उसने इस दोष को नहीं किया है|

फेमा- इसे संसद ने 1999 में मंजूरी दी थी |यह वर्तमान समय में लागू है, इसमें अनुभागों की संख्या 49 है| इसका मूल उद्देश्य विदेशी व्यापार और विदेशी भुगतानों को बढ़ावा देना है ताकि देश में विदेशी मुद्रा भंडार को बढ़ाया जाए और देश की आर्थिक स्थिति को मजबूत किया जाए|

इसमें भारत का वास्तविक नागरिक वह व्यक्ति होता था जो 6 महीने तक भारत में रहा हो|

इसमें अपराधी को दीवानी अपराध की श्रेणी में रखा जाता था |

इसमें दोषी पाए जाने पर सजा तभी होती थी जब व्यक्ति नोटिस की तिथि से 90 दिन के भीतर निर्धारित अर्थ दंड न जमा करें|

इसमें सबूत देने का बोझ आरोपी पर नहीं बल्कि फेमा लागू करने वाले अधिकारी पर लागू होता है|

क्षेत्रीय सहयोग- संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा अन्य अंतरराष्ट्रीय संगठनों के साथ-साथ बड़ी संख्या में क्षेत्रीय संगठन की उपस्थिति को 1945 के बाद अंतरराष्ट्रीय संबंधों की सबसे महत्वपूर्ण घटनाओं में से एक माना जाता है| इस तथ्य से कतई इंकार नहीं किया जा सकता

कि क्षेत्रीय संगठन प्राचीन काल से ही अंतरराष्ट्रीय संबंधों के साधन के रूप में जाने जाते हैं लेकिन इस तथ्य को भी स्वीकार लेना उचित होगा कि विश्व युद्ध के बाद के वर्षों में विकास प्रदर्शित हुआ है| विश्व युद्ध के बाद के पहले 20 वर्षों में गुटीय राजनीतिक अंतरराष्ट्रीय संबंधों की कुंजी लगभग नियामक हिस्सेदारी के रूप में रही| क्षेत्रीय संगठन दो महाशक्तियों के बीच युद्ध के माध्यम से अपनी प्रमुखता को स्थापित किए है | आज के दौर में भी उनकी सैनिक सुरक्षा, गुटों की भूमिका पूर्ण रूप से समाप्त कर दी गई है लेकिन उन्हें अब भी अंतरराष्ट्रीय आदान-प्रदान का सशक्त साधन माना जाता है|

आसियान यूरोपीय संघ आदि क्षेत्रीय आर्थिक संस्थागत संबंध बनाए रखने और क्षेत्रीय सहयोग ,आर्थिक सहयोग और विकास के प्रोत्साहन के लिए आवश्यक और उपयोगी साधन उपलब्ध कराते रहते हैं |सुरक्षा पर आधारित क्षेत्रीय गुट बंदी निश्चित रूप से समाज के लिए हानिकारक होती है| वास्तव में बड़ी संख्या में क्षेत्रीय सहयोग संगठन अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों की संचालन हेतु उपयोगी साधन के रूप में प्रचलित है| क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग बढ़ाने के संलग्न में कुछ उल्लेखनीय संगठन है| जैसे आसियान , आई ओ आर ए आर सी, एपिक यूरोपीय संघ आदि , इन उल्लेखनीय संगठनों ने क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग के क्षेत्र में पर्याप्त सफलता अर्जित की है|

आसियान- दक्षिण पूर्व एशियाई राष्ट्र संगठन की स्थापना 1967 में इंडोनेशिया ,मलेशिया, फिलिपींस, सिंगापुर और थाईलैंड द्वारा साझा प्रयासों के माध्यम से की गई थी| यह एक आर्थिक संगठन है इसके बाद इसमें अनेक देश शामिल हुए| भारत भी इस संगठन का पूर्ण

सहभागी सदस्य है और वह पूर्णकालिक सदस्य बनने की इच्छा रखता है| आसियान संगठन आर्थिक विकास ,सामाजिक प्रगति आदि पर विशेष ध्यान रखता है।

सार्क -आसियान की तर्ज पर ही दक्षिण एशिया के देशों ने भी आपस में आर्थिक और सांस्कृतिक सहयोग बढ़ाने के लिए एक क्षेत्रीय संगठन बनाने का निश्चय किया| अतः इस क्षेत्र के साथ देश ने दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन की रचना की| इस संगठन की औपचारिक उत्पत्ति 1985 में हुई| सार्क के गठन का मूल उद्देश्य दक्षिण एशियाई देशों में क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ावा देना है | संगठन के दो बड़े देश भारत और पाकिस्तान में राजनीतिक विवादों और पाकिस्तान द्वारा भारत और श्रीलंका ,भारत और बांग्लादेश में फूट पैदा करने की साजिशों के चलते आर्थिक सहयोग बढ़ाने के प्रयास को बार-बार ठेस पहुंचती है| पाकिस्तान सदैव से भारत के साथ अपनी बराबरी करता रहता है| भारत के असर को कम करने के लिए वह अनेको हानिकारक प्रयास करता है ताकि भारत में गड़बड़ी को पैदा किया जा सके|

हिंद महासागर क्षेत्रीय सहयोग संगठन- यह संगठन हिंद महासागर के आसपास स्थित देश के बीच क्षेत्रीय सहयोग और महाद्वीपों के बीच व्यापारिक संबंध बढ़ाने की दिशा में एक बड़े कदम के रूप में माना जाता है परंतु सुरक्षा संबंधी मामलों और मानवाधिकार अधिकारों को लेकर इसके उद्देश्य पत्र को सदैव से बाहर रखा गया| इसके कार्यक्रमों और गतिविधियों का लक्ष्य आर्थिक सहयोग के उन क्षेत्रों पर किया गया जहां सामान हित साधने और आपसी लाभ हासिल करने के लिए अधिक से अधिक अवसर प्राप्त होते हैं | इस समय इसमें प्राथमिक

व्यापार अवस्था का प्रावधान नहीं है परंतु सदस्य देश आपस में व्यापार समझौते को करने के लिए स्वतंत्र हैं| संगठन इस सिद्धांत पर चलता है कि सदस्य देश एक दूसरे के साथ निष्पक्षता के साथ व्यवहार करें|

एशिया प्रशांत आर्थिक सहयोग एपेक, एशिया प्रशांत आर्थिक सहयोग प्रशांत महासागर के देशों के मंच के रूप में विश्व की कुछ सर्वाधिक शक्तिशाली मुक्त व्यापार अर्थव्यवस्थाओं को एक स्थान पर लाकर जोड़ता है 21 देश का यह संगठन ऑस्ट्रेलिया के प्रधानमंत्री के प्रयासों से 1989 में बना| इनमें मूल सदस्यों की संख्या शुरुआत में 18 थी, इसमें अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, जापान, दक्षिण कोरिया, न्यू मलेशिया, थाईलैंड, सिंगापुर, फिलिपींस, इंडोनेशिया और ब्रुनेई जैसे देश शामिल है | इस के सदस्य देशों ने इस क्षेत्र में आर्थिक सहयोग और विकास के लिए सिद्धांतों की एक घोषणा पत्र को जारी किया |

यूरोपीय संघ- यूरोपीय संघ सबसे अधिक प्रभावशाली और सुसंगठित आर्थिक संगठन है| इसका वर्तमान रूप 1992 में की गई मास्ट संधि पर आधारित है 1 नवंबर 1993 को यह संधि लागू हुई| यूरोपीय संघ 1 जनवरी 1952 को गठित हुआ, इसके 6 सदस्य थे |बेल्जियम, फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी, लक्जमबर्ग, इटली, हॉलैंड, इन 6 देशों ने शुरू में अपने कोयले और इस्पात के संसाधनों का प्रयोग करते हुए आर्थिक सहयोग करने का निश्चय किया| बाद में 1957 की रोम संधि के अनुसार इन 6 देशों ने यूरोपीय आर्थिक ऊर्जा समुदाय और यूरोपीय

परमाणु ऊर्जा समुदाय का गठन किया| इस तरह यूरोपीय संघ की संख्या 25 हो गई |यूरोपीय परिषद तथा यूरोपीय आयोग इसमें शामिल हैं| भारत यूरोपीय संघ के साथ अपने संबंध मजबूत बनाने का लगातार प्रयास कर रहा है 2002 में भारत यूरोपीय संघ की शिखर बैठक हुई, जिसके फल स्वरुप यूरोपीय संघ की ओर से भारत में अनेक परियोजनाओं में निवेश के लिए नीति तैयार की गई| यह संगठन पिछली कुछ वर्षों में मजबूत आर्थिक आधार वाले एक आर्थिक समुदाय के क्रम में उभर कर आया है| इसका एक समान मुद्रा यूरो और एकमात्र बैंकिंग संघ है परंतु इंग्लैंड, डेनमार्क ,स्वीडन ने अभी यूरो मुद्रा को स्वीकार नहीं किया है| इसकी आर्थिक सफलता इतनी

निष्कर्ष - बहुराष्ट्रीय निर्गमन के ऐसे समर्थक जो इन्हें आर्थिक औद्योगिक और प्रौद्योगिकी के विकास के ऐसे साधन मानते हैं जो विकसित और विकास से जुड़े हुए दोनों तरह के देशों को लाभान्वित कर रहे हैं| उनकी राय में जरूरत इस बात की है कि अंतरराष्ट्रीय महा संस्थाओं के संसाधनों का इस्तेमाल इस प्रकार से किया जाए कि विश्व को युद्ध, गरीबी पिछड़े पन से मुक्ति दिलाई जा सके| इन कंपनियों के आलोचक विशेष कर विकासशील देशों के पढ़े-लिखे लोग बहुराष्ट्रीय निर्गमन के उदय और प्रगति को वर्तमान युग का सबसे बड़ा अभिशाप समझते हैं| बहुराष्ट्रीय कंपनियों का इस्तेमाल अंतरराष्ट्रीय शांति सुरक्षा और विकास के साधन के रूप में किया जाए| इन्हें विकसित और विकासशील दोनों देशों को हानि पहुंचाने से रोका जाना चाहिए| इसलिए यह आवश्यक है कि अंतरराष्ट्रीय कानूनी राजनीतिक दायरे

से बाहर रहने के लिए उनके मौजूदा दर्जे को समाप्त कर दिया जाना चाहिए| सभी देशों को एक ऐसी राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं को जन्म देने का प्रयास करना चाहिए जो इन विशाल आर्थिक संस्थानों को नियंत्रित करने में सक्षम हो सके|

संदर्भ ग्रंथ सूची -

- बार्टलेट, सी.ए./घोशाल, एस., सीमाओं के पार प्रबंधन। अंतरराष्ट्रीय समाधान,
- बोस्टन, एमए: हार्वर्ड बिजनेस स्कूल प्रेस 1989।
- बेल, जे./मैकनॉटन, आर./यंग, एस., 'बॉर्न-अगेन ग्लोबल' फर्म का एक विस्तार 'जन्मजात वैश्विक' घटना, जर्नल ऑफ इंटरनेशनल मैनेजमेंट, 7, 2001, पीपी. 173-189.
- बोमर्स, जी.बी.जे./पीटरसन, आर.बी., बहुराष्ट्रीय निगम और औद्योगिक संबंध: पश्चिम जर्मनी और नीदरलैंड का मामला, ब्रिटिश जर्नल ऑफ़ इंडस्ट्रियल रिलेशन्स, 15, 1977, (मार्च), पृ. 45-62.
- बकले, पी.जे./कैसन, एम., बहुराष्ट्रीय उद्यम का आर्थिक सिद्धांत, लंदन: मैकमिलन 1985.

- बुसेनिट्ज़, एल.डब्ल्यू./गोमेज़, सी./स्पेंसर, जे.डब्ल्यू., कंट्री इंस्टीट्यूशनल प्रोफाइल: अनलॉकिंग एंटरप्रेन्योरियल फेनोमेना, एकेडमी ऑफ मैनेजमेंट जर्नल, 43, 2000, पीपी. 994-1011.
- कैलोर, आर./लुबटकिन, एम./वेरी, पी./वेइगा, जे.एफ., मॉडलिंग द ओरिजिन्स ऑफ नेशनलीबाउंड एडमिनिस्ट्रेटिव हेरिटेजेज: ए हिस्टोरिकल इंस्टीट्यूशनल एनालिसिस ऑफ फ्रेंच एंड ब्रिटिश फ़र्म्स, संगठन विज्ञान, 8, 1997, पीपी. 681-696।
- डिकेन, पी., ग्लोबल शिफ्ट: ट्रांसफॉर्मिंग द वर्ल्ड इकोनॉमी। लंदन: पॉल चैपमैन 1998.
- डिमैगियो, पी.जे./पॉवेल, डब्ल्यू.डब्ल्यू., परिचय, डब्ल्यू.डब्ल्यू. में। पॉवेल, डब्ल्यू.डब्ल्यू./डिमैगियो, पी.जे.
- (संस्करण), द न्यू इंस्टीट्यूशनलिज्म इन ऑर्गनाइजेशनल एनालिसिस, शिकागो: यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस 1991, पृ. 1-38.
- डाउलिंग, पी./वेल्च, डी.ई./शूलर, आर., अंतर्राष्ट्रीय मानव संसाधन प्रबंधन: बहुराष्ट्रीय संदर्भ में लोगों का प्रबंधन, सिनसिनाटी: साउथ-वेस्टर्न कॉलेज प्रकाशन 1999.

- फ़र्नर, ए., कंट्री ऑफ़ ओरिजिन इफ़ेक्ट्स एंड ह्यूमन रिसोर्स मैनेजमेंट इन बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ', मानव संसाधन प्रबंधन जर्नल, 7, 1997, पृष्ठ 19-37।
- घोषाल, एस./नोहरिया, एन., बहुराष्ट्रीय निगमों के भीतर आंतरिक भेदभाव, स्ट्रैटेजिक मैनेजमेंट जर्नल, वॉल्यूम। 10, 1989, पृ. 323-337.

भारत एवं विश्व अर्थव्यवस्था, विश्व व्यापार संगठन, G20

भारत के संदर्भ में पिछले दशकों की सबसे बड़ी घटना इसके वैश्विक परिदृश्य में उपस्थित है। भारतीय अर्थव्यवस्था 80 के प्रारंभिक दशक से धीरे-धीरे चलने वाली विकास दर की बेड़ियों से मुक्त हो गई है। 90 के दशक के बीच तक 1991 से 93 तक के आर्थिक सुधारो के फल स्वरुप भारत ने वैश्विक अर्थव्यवस्था में सामान्य रूप से महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करने वाले एक सशक्त देश के रूप में अपनी पहचान बनाने का प्रयास किया है। उसके पश्चात 90 के दशक के आखिरी तक पूर्वी एशियाई संकट के फल स्वरुप और 21वीं सदी के पहले दशक के प्रारंभिक वर्षों से भारत ने पीछे पलट कर नहीं देखा। भारत का निर्यात धीरे-धीरे बढ़ने लगा है। इसका विदेशी मुद्रा भंडार जो कई दशकों से लगभग 5 मिलियन डॉलर की सीमा को छू रहा था, उसमें आर्थिक सुधारो के चलते आधिकारिक बढ़ोतरी हो रही है और एक दशक से कम अवधि में यह बढ़कर 300 बिलियन डॉलर तक पहुंच गई । भारतीय उद्योगपतियों द्वारा कभी-कभार भारत से बाहर जाने का जोखिम भी उठाया गया, वे अचानक संपूर्ण विश्व में और यहां तक की कुछ औद्योगिक देशों में निवेश हेतु अपने कदम आगे की ओर ले गए।जब भारत वैश्विक नीति समूह का महत्वपूर्ण सदस्य था तब भारत के

लिए उदारीकरण से नए अवसर सामने आए लेकिन इसमें नहीं-नई चुनौतियां और अनेक दायित्व भी आए ,इसका सामान्य अभिप्राय यह माना जाता है कि वैश्विक अर्थव्यवस्था को अब केवल दशक के जरिए देखने की बजाय भारत इसमें स्वयं व्यापक रूप से निहित है । प्रत्येक समय विश्व के किसी न किसी भाग में मुख्य आर्थिक संकट बना रहा है यही कारण है कि ऐसे मामलों के लिए एक ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है । यह वैश्विक अर्थव्यवस्था की जांच को प्रमाणित करता है। भारत की उसमें स्थिति को भी प्रकट करता है। यह मौजूदा वैश्विक मंदी और यूरोजोन संकट के विश्लेषण को विचार करता है, जिसका भारत ,नीतिगत चुनौतियों के माध्यम से अंतरराष्ट्रीय मामलों का देशी परिपेक्ष में बहुत बड़ा महत्व है । भारत इसके बदलते वैश्विक व्यवस्था में रचनात्मक भागीदार की भूमिका को प्रदर्शित करता है। विश्व की प्रमुख अर्थव्यवस्था में पिछले वर्ष घटित घटनाओं में कोई बहुत बड़ी उत्साहवर्धक घटना नहीं हुई है यह आशंका जताई जाती है कि वैश्विक आर्थिक बहाली की प्रक्रिया जो 2008 के वित्तीय संकट के बाद आरंभ हुई थी उसमें ठहराव आने की प्रवृत्ति प्रकट हो रही है तथा यूरो जोन के क्षेत्र में सरकारी ऋण संकट कुछ समय के लिए अपनी स्थिति को स्थिर कर सकता है। इन जोखिम क्षेत्र से स्वयं को बचाने के लिए प्रयास किया जा रहे हैं किंतु विश्व को इसका अनुभव बहुत सीमित मात्रा में है, यही कारण है हमें इस दिशा में और प्रयास करने की जरूरत है। अमेरिका के अर्थव्यवस्था में कुछ सकारात्मक सुधार प्रकट होता है किंतु आर्थिक विकास की दर वहां भी धीमी चल रही है। वैश्विक अर्थव्यवस्था के बढ़ोतरी में 3.3

प्रतिशत की वृद्धि होने का अनुमान है जो वर्ल्ड इकोनामिक आउटलुक के अध्ययन के अनुसार अतरराष्ट्रीय मौद्रिक की सामान्य अवस्था से .8% कम है।

वैश्विक अर्थव्यवस्था और उसका बदलता संतुलित आयाम-

वैश्विक संघ में मुख्य अर्थव्यवस्थाओं की भागीदारी, निर्माण और व्यापार जैसे क्षेत्रों में कुछ परंपरागत स्थितियों को दर्शाती है । विश्व अर्थव्यवस्था में एकाकार होने से विशेष रूप से पिछले दशकों की तुलना में महत्वपूर्ण बदलाव प्रदर्शित हुआ है। पिछले 20 वर्षों में कई बड़ी उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं ने वैश्विक रूप से विश्व अर्थव्यवस्था में ब्रिक्स की अर्थव्यवस्था के अंतर्गत सतत विकास के स्वरूप को धारण करते हुए वैश्विक संघ में अपनी भागीदारी को दर्शाया है। परिणाम स्वरुप विश्व अर्थव्यवस्था में मूल्य वर्धन उन्नत देशों से उभरती अर्थव्यवस्थाओं की स्थितियां सकारात्मक हुई है। भागीदारी में गिरावट मुख्यतः यूरोपीय देशों के मामले में एशिया की तरफ से झुकाव को प्रभावित करती हैऔर एशिया के भीतर जापान से चीन तक भारत की तरफ से यह परिवर्तन सकारात्मक ही रहा है । वैश्विक संघ में चीन की हिस्सेदारी 5 गुना तक बढ़ गई है और वह विश्व में दूसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था के रूप में उभर कर निकाला है । भारत की भागीदारी में बढ़ोतरी यद्यपि संतुलित है किंतु वह पी पी पी के संदर्भ में चौथी बड़ी अर्थव्यवस्था को पाने में सफल रहा है। उन्नत अर्थव्यवस्थाओं की भागीदारी में गिरावट जो एक ओर उसे मंदी की वजह से प्राप्त हुई है। तो दूसरी ओर यूरो जोन संकट और लगभग दो दशकों से जापान में आर्थिक ठहराव आ जाने की

वजह से आई है। मध्य आय वाले देशों विशेष कर भारत और चीन जैसे बड़े देशों में विकास दर के कारण भी वहां ऐसी व्यवस्थाएं बनी है। इस परिपेक्ष में देश के प्रति व्यक्ति आय का अभिसरण हो रहा है । उन देशों में भागीदारी में गिरावट की बावजूद विकसित और विकासशील देशों के बीच सीमित अवधि के भीतर बड़े आर्थिक बदलाव देखने में आए हैं। वित्तीय और आर्थिक संकट के फल स्वरुप विकसित देशों में मंदी तो जरूर आई है लेकिन यह एक अस्थाई दौर है, जिस कारण से मंदी से जुड़े हुए कारण की खोज करते हुए इससे उबरने हेतु वैश्विक स्तर पर सभी अर्थव्यवस्थाओं को एकजुट होते हुए हर संभव प्रयास करना चाहिए। असमानता की पूर्ववर्ती दिशा अंतर व्यक्तित्व सामान्य को ग्रहण नहीं करती है। विश्व बैंक के वित्त द्वारा किए गए आंकड़ों के अध्ययन के अनुसार वैश्विक असमानता 50% लोगों सहित काफी अधिक स्तर पर दिखाई देती है जहां तक भारत का संबंध है यहां 80 के दशक से ही तीव्र आर्थिक विकास प्रदर्शित हुआ है । यह विकास अतीत में इसके द्वारा प्राप्त विकास की तुलना में बहुत अधिक है और इसने अपने पीछे कई देशों को छोड़ा है जो अपनी धीमी विकास दर के चलते पीछे रह गए हैं। वैश्विक संघ में उन्नत अर्थव्यवस्थाओं के सहयोग के कारण विनिर्माण स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है यह प्रक्रिया 90 के दशक से ही सक्रिय थी लेकिन मौजूदा दशक में इनकी गति में तेजी आई है।भागीदारी में वृद्धि एक महत्वपूर्ण स्वरूप को जन्म देती है जबकि ब्राजील, भारत ,इंडोनेशिया जैसी अन्य उभरती हुई अर्थव्यवस्थाएं विश्व निर्माण मूल्य वर्धन में भागीदारी को बढ़ाने हेतु लगातार प्रयास कर

रही है। सभी देशों में वैश्विक संघ और विनिमय वितरण में परिवर्तन होने के कारण इस बात पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता होती है कि उन्नत देश बहुत प्रौद्योगिकी और सेवाओं में मूल्य आयोजित के भंडार होने के अलावा भी औद्योगिक उत्पादन हेतु अनेक कदम उठाने की आवश्यकता पर बल दें। वैश्विक व्यापार निर्यात विनिर्माण मूल्य ,योजित के वितरण में कुछ सीमा तक परिवर्तन विश्व व्यापार से संबंध परिलक्षित दिखाई देता है। एक बार फिर विकसित देशों की हिस्सेदारी में गिरावट और उभरती अर्थव्यवस्थाओं में चीन के महत्व में वृद्धि स्पष्ट रूप से प्रदर्शित हुई है। विश्व में निर्यात में भारत के हिस्सेदारी वर्तमान में पांच प्रतिशत से बढ़कर 7% तक हो गई है। निर्यात में भी उच्च आय वाले देशों में गिरावट के ग्राफ देखने को मिल जाते हैं लेकिन उनका वैश्विक सेवा निर्यात 79% तक बड़े योगदान से निर्मित है। चुकि भारत में अपनी सूचना प्रौद्योगिकी केवल सेवा निर्यात की हिस्सेदारी 3.3 प्रतिशत तक बढ़ी है जो चीन के लिए अब एक बड़े कीर्तिमान के रूप में है। अर्थव्यवस्था के अलावा चालू लेखा अधिशेष और आरक्षित निधियां के बड़े संकेत को वैश्विक अंतुलनो के बड़े संकट और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा प्रणाली में अस्थिरता के संभावित स्रोतों के रूप में देखा गया है । वैश्विक संदर्भ में यह बात बताई जाती है कि आरक्षित संचयन मुद्रा अधिनियम रोकने का परिणाम तथा घरेलू मांग के व्यापार निर्यात से होने वाले उत्पादन को प्रेरणा देने के लिए एक प्रयास किया गया। महत्वपूर्ण उदीयमान चालू लेखा अधिशेष अर्थव्यवस्थाओं का आरक्षित निधि संचयन जो मुख्य रूप से डॉलर परिसंपत्ति के रूप में धारित है, इसने

अमेरिका में चालू लेखा घाटा बढ़ने के बावजूद सशक्त अमेरिकी डॉलर का समर्थन किया है । इसकी विनियम में दर, समायोजन को निष्फल कर यह कार्य वैश्विक आर्थिक असंतुलनों में योगदान को प्रदर्शित कर रही है। दूसरी तरफ यह तर्क भी दिया गया है कि आरक्षित निधियों का भंडार आरक्षित निधि मुद्रा जारी कर्ता करने वाले देशों के माध्यम से अनुकरण की जाने वाली शिथिल मौद्रिक नीतियों का परिणाम है। जबकि यह तथ्य भी सही है कि वे नियमन दर प्रबंध मुद्दा चालू लेखा, अधिशेष और आरक्षित निधियों के भंडार को पृथक रूप से प्रदर्शित नहीं कर सकता। यह मुद्दे अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक चर्चाओं से घिरे हुए हैं। वर्तमान में वैश्विक अर्थव्यवस्था के प्रतियोगिता के फल स्वरुप चालू लेखा अधिशेष और आरक्षित निधियां आपस में संतुलन हेतु विषमता बनाए हुए हैं।

बचते और निवेश- विश्व अर्थव्यवस्था के अंतर्गत "न्यू नॉर्मल" की विशेषताओं में से एक प्रगति और उदयीमान अर्थव्यवस्थाओं के बीच वितरित मार्ग, बचत और निवेश दरें होती हैं। अति उन्नत अर्थव्यवस्थाओं के अंतर्गत सकल बचत कर 20% से नीचे रहती हैं जो इसके विपरीत ई एम ई की सत्यता पर आधारित है। निवेश प्रवृत्तियां वृद्धि की संचालक मानी जाती है और बचत में दिखने वाले विचलन निवेश दरों के लिए लगभग समान आंकड़ों को प्रदर्शित करती हैं। उदाहरण के लिए भारत की निवेश दरें 1990 के दौरान लगभग 12% थी जो 2010 11 तक 35.01% पर आ गई थी।

वैश्विक विचलन के निहितार्थ का आकलन-वैश्विक अर्थव्यवस्था की संरचनात्मक परिवर्तन पर अब तक हुई चर्चाओं में माल उत्पादन के वैश्विक संतुलन के अंतर्गत अवगामी विचलन का संकेत प्राप्त होता है चुकि सेवाएं उन्नत अर्थव्यवस्थाओं के बड़े स्तर पर केंद्रीकरण के माध्यम से जारी होती हैं। अतः विश्व जनसंख्या का बड़ा हिस्सा उच्च वृद्धि दर के साथ जुड़ जाता है इसका निर्धारण यह है कि ईएमई और विकासशील देश माल सेवा और वैश्विक बाजार, में वृद्धि को बढ़ना जारी रखेगा। आपूर्ति और मांग के माध्यम से संचालित वैश्विक आर्थिक संतुलन की अंतर्गत आने वाले परिवर्तन इसलिए 'न्यू नॉर्मल' प्रतीत होते है क्योंकि इसके आने वाले वर्षों में गंभीर होने की संभावना है। इस अवसर पर कई उन्नत अर्थव्यवस्थाएं अपने संघ के संबंध में निजी उपयोग के अंतर्गत और सरकारी उपयोग के अंतर्गत आने वाले उच्च स्तरों के अनुकूलन में रहती हैं। दीर्घकालीन संतुलन और घरेलू बचत पर गहरा दबाव डालती है जिससे निवेश और उनकी संभावित वृद्धि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार हम कम वृद्धि की संभावना और कम वृद्धि के दुष्चक्र के सामंजन को सीमित नहीं कर पाते हैं। यही कारण है कि यदि अर्थव्यवस्थाओं ने वैश्विक अर्थव्यवस्था में निश्चित की नई नीति के कारण वृद्धि में मंदी दर्शाई तो ऐसे परिणाम होंगे जिनका दुष्प्रभाव पूरे विश्व पर पड़ेगा। भारत पूरे विश्व में उच्च विकास दर के साथ चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था के स्वरूप को धारण कर रहा है और प्रति व्यक्ति आय के मामले में भी वैश्विक रैंकिंग में इसने अपने भीतर सुधार किया है । फिर भी उनकी प्रति व्यक्ति आय बिल्कुल भी निम्न है। ऐसी परिस्थितियों में इस बात का समाधान खोजना, भारत के लिए एक बहुत बड़ी

चुनौती है इसके बावजूद भारत के घरेलू और विदेशी दोनों प्रकार के विभिन्न घटक ऐसे हैं जो भविष्य में इसके विकास की संभावना में वृद्धि करने में सक्षम है । भारत जनसंख्या की 1.2 बिलियन व्यक्तियों के साथ भारत का विश्व की जनसंख्या में लगभग स्थान प्रथम की ओर अग्रसर है जहां जनसंख्या वृद्धि में निरंतर कमी की आवश्यकता है । वही श्रम के उत्पादन के घटक को देखें तो जनसंख्या की लाभांश विकास के लिए स्पष्ट रूप से सकारात्मकता तो है इस बात पर जनसंख्या में अधिकांश वृद्धि वर्तमान समय में गरीब राज्यों में ही दिखाई देगी अतः इस लाभांश के लिए पर्याप्त मात्रा में मानव पूंजी निर्माण हेतु एक बड़े पूंजी की आवश्यकता होगी ।

निर्यात और विदेशी मांग -भूमंडलीय प्रक्रिया में निर्यात में बढ़ोतरी प्रदर्शित हुई है जो 2010 में समग्र रूप से विश्व का 27.9% है जबकि कुछ देशों में निर्यात कहीं अधिक निर्भरता प्रदर्शित करता है। कथित रूप से पूर्व एशियाई चमत्कारी अर्थव्यवस्थाओं का यह तथ्य था कि निर्यात के माध्यम से, निवेश के माध्यम से ,कार्य नीति के माध्यम से विकास को और विनिर्माण योग्यताओं को पर्याप्त रूप में बढ़ाने में सहायता मिलेगी किंतु इस कार्य नीति को अनुकूल विनिमय दर, सस्ता ऋण अपेक्षाकृत कम मजबूत मजदूरी की सहायता से बढ़ाने का तो प्रयास हुआ है किंतु इसमें प्रतिस्पर्धात्मक लाभ ही प्राप्त हो पाया है। माल की वैश्विक मांग विशेष कर उन्नत बाजारों में विकास कार्य नीति को सहायता देने में समर्थ रही है। अतः इन अर्थव्यवस्थाओं की वजह से विनिर्माण में मूल्य श्रृंखला आगे बढ़ सकती है । निर्यात के

माध्यम से भारत का विकास उन्नत अर्थव्यवस्था में मंदी से विकास की ओर बढ़ रहा है । इस समय कुछ हद तक हल्की मंदी प्रतीत हो रही है। दूसरी बात यह रह गई है कि कुछ देशों में क्षमता निर्माण अधिक हो जाने से भी देश के लिए कुछ समय के लिए रुकावट पैदा हो गई है जो दूसरे देशों की विकास दर को प्रभावित कर रही हैं। निर्माण क्षमता अधिक हो जाने से ऊर्जा की लागत भी बड़ी है और जलवायु के संबंध में चिंताएं भी बढ़ रही है । अतः निर्यात की विशेष, अवस्था के कारण विकासशील अर्थव्यवस्था में बढ़ने की आशा है जिसमें से अधिकांश देश एशियाई और अफ्रीका के है।वहीं कुछ संतृप्त बाजार महत्वपूर्ण हो सकते हैं हालांकि समूह के लिए समग्र रूप से इसमें गिरावट की आशंका लगातार बनी रहती है। इसके अतिरिक्त वैश्विक बाजार का मुख्य लाभ वैश्विक मानकों को बेंचमार्क पहुंचाना रहता है तथा इस प्रकार अपने लिए आर्थिक अधिकार का अनुसरण भी करता है । इसके अतिरिक्त घरेलू और निर्यात से संबंधित मांगों की दो शक्तियों का लाभ यह है की अर्थव्यवस्था वैश्विक मांग के उतार-चढ़ाव को अधिक लचीलापन प्रदान करने में सक्षम रहती है।

विकास दर और नवाचार से जुड़ी निवेश की सीमाएं-

विश्व बैंक के 'भारत के नवाचार को उन्मुख करना', नामक अध्ययन में यह पाया कि भारत उच्च प्रौद्योगिकी वाले उत्पादों और सेवाओं में शीर्ष वैश्विक प्रवर्तक के रूप में उभरा है फिर भी देश अपने नवाचार सभ्यता की दृष्टि से कम निष्पादन की ओर प्रगति कर रहा है। भारत अनुसंधानिक और विकास के क्षेत्र में जिसमें मूल अनुसंधान अनुप्रयुक्त अनुसंधान और

प्रयोगात्मक अनुसंधान विकास के अंतर्गत शामिल है ।जिसका कारण है कि इसका वैश्विक सूची में 41 रैंकिंग को दर्शित करता है । इजराइल यहां पर शीर्ष स्थान पर है। ज्यादातर देश अपने संघ का दो प्रतिशत से भी अधिक अनुसंधान और विकास पर खर्च करते हैं जहां अनुसंधान और विकास में अधिक संसाधनों की आवश्यकताएं होती हैं ,वहीं दूसरी ओर औपचारिक अनुसंधान और विकास हेतु स्थापित मौजूद संस्थाओं और संगठनों का दोहन किया जाना भी समान रूप से महत्वपूर्ण होता है । साथ ही आधारभूत स्तर के नवाचार को भी प्रोत्साहित किए जाने की संभावना होती है इस तथ्य की बढ़ती हुई स्वीकृत को देखते हुए भूमि जल और ऊर्जा के समाप्त होने की संभावनाओं को भी नकारा नहीं जा सकता है। और पर्यावरण में यह एक महत्वपूर्ण चिंता के रूप में है भारत पूर्ण रूप से मितव्ययी नवाचार के मार्ग पर अग्रसर है । और बुनियादी तौर पर विशिष्ट अनुप्रयोग को धारण करते हुए विकासशील विश्व ,अन्य देशों के लिए भी नये बाजार के रूप में अपने आप को प्रस्तुत किए हुए हैं ऐसी परिस्थितियों में भारत अपने अनुसंधान और विकास प्रयासों को तुरंत शुरू करने हेतु एक विशाल मंच का लाभ उठाने के लिए पूर्ण रूप से तैयार है । सामरिक रूप से भारत का अनुसंधान और विकास , मुख्य केंद्र बिंदु के रूप में प्रौद्योगिकी और उत्पादों हेतु अपने लिए एक बड़ी पूंजी की व्यवस्था करने का प्रयास कर रहा है ।

खाद्य सुरक्षा- भारतीय संदर्भ के अंतर्गत देखा जाए तो खाद्य सुरक्षा से जुड़े सभी लोगों के लिए सामान्य कीमतों पर अपेक्षित पोषक तत्वों से संबंधित सभी न्यूनतम ऊर्जा और प्रोटीन

मानक पूर्ति के अंतर्गत आते हैं । बढ़ोतरी के साथ ही भारत में खाद्य की मांग बढ़ने की संभावना दृष्टिगत है यह भी देखा गया है कि भारत में विशिष्ट खाद्य वस्तुओं में मामूली कमी से भी अंतरराष्ट्रीय बाजार में संबंध कीमतों पर समानुपाती रूप से प्रभाव पड़ने लगता है। हालांकि भारत अधिकांशत खाद्य उत्पादों का वर्षों से आयात नहीं कर रहा है किंतु वैश्विक बाजारों पर निर्भरता से कीमतों और उपलब्धता के अंतर्गत अधिक संवेदनशील स्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं। जिनमें वित्त पोषित और उनकी अस्थिरता के प्रभाव, अंतरराष्ट्रीय चिंता के रूप में विश्व पर प्रदर्शित होने लगते हैं हालांकि कारण, निवारण संबंध पर अभी कोई स्पष्ट मत निर्गत नहीं हुआ है । विकास के अंतर्गत संसाधन और पूंजी की उपलब्धता, न्यूनतम अवस्था और उसके क्रियाकलापों के अलग होने की आवश्यकता के आधार पर वास्तविक तथ्यों का पता चलता है । भारत के आर्थिक मामलों के संबंध में सरकारी व्यय व बाजार अर्थव्यवस्थाओं को प्रोत्साहित करने का प्रयास कर रहा है। अतः राजकोषीय, धन की आवश्यकता होने पर उनकी प्राथमिकता संसाधन को इकट्ठा करने की होती है ।विकसित अर्थव्यवस्था में हाल ही के घटनाक्रम से यह जानकारी मिलती है कि राजस्व को आधार बनाए रखना और सरकारी वित्त साधनों की मात्राओं को नियंत्रित रखना बहुत महत्वपूर्ण होता है ,जैसा कि भारत पर विदेशी अर्थव्यवस्थाओं के प्रभाव को देखने से पता चलता है। अतः राजस्व आधार पर आधारित इसकी राजकोषीय शक्ति महत्वपूर्ण रूप से निर्दिष्ट ना हो जाए इसके लिए प्रयास करना चाहिए।भारत की आर्थिक अर्थव्यवस्था का आकलन वैश्विक

आर्थिक संकट के आधार पर, बाजार और राष्ट्र की सापेक्षिक भूमिका राष्ट्र प्रेरित अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में प्रजातांत्रिक अर्थव्यवस्थाओं को सापेक्ष लाभ से जोड़ने का प्रयास करती है । प्रजातांत्रिक और संघीय प्रणाली के अंतर्गत मिश्रित अर्थव्यवस्था का संचालन चुनौती के रूप में एक जटिल कार्य है । राष्ट्र प्रेरित प्रदर्शन प्रणाली स्थानांतरण की चुनौती को अधिक प्रभावित करती है । किसी भी मामले के बढ़ने हेतु प्रणाली के आर्थिक परिणाम को ठोस रूप में देने की आवश्यकता होती है। राजनीतिक आधार के रूप में प्रजातंत्र प्रणाली को बाजार के परिणामों से अधिक प्रभावी बनाना चाहिए ।

विकास और नौकरियों के लिए कार्य योजना-

शिखर सम्मेलन के अंतर्गत घोषित कार्य योजना में बहुपक्षीय योजना का प्रयास जो एम ए पी के केंद्र पर आधारित है, के प्रति सभी देशों को लगातार सहयोग करने की आवश्यकता है, तैयार किए हुए प्रमुख नीति कार्यों के अंतर्गत नेताओं द्वारा घोषित उपाय के त्वरित क्रियान्वयन हेतु इन कार्यों को शीघ्रता से निपटने , के लिए कड़े और सख्त नियम बनाने की ओर बोल देना चाहिए मध्यवर् जिनका उद्देश्य मध्य अवधि में संतुलन को दूर करना था और सुदृढ़ अस्थाई और संतुलित विकास को प्रगति हेतु सुनिश्चित करना है उन्हें अधिक बेरोजगारी और अपर्याप्त सामाजिक सुरक्षा से जुड़ी व्यवस्थाओं के अंतर्गत सामाजिक मुद्दों के लिए दबाव बनाने हेतु एक बड़े संकल्प के साथ कार्य योजना की ओर क्षमता निर्माण हेतु सहायता और अवसंरचना की आवश्यकता है । भारत के वैश्विक अर्थव्यवस्था में इसके स्वरूप

को देखते हुए भारत को वैश्विक स्तर पर सक्रिय भूमिका न केवल उन वाद विवादों में निरंतर चल रहे संकट की ओर सक्रिय करतीहै बल्कि भविष्य में सभी प्रकार के ऐसे संकट जो उसकी आर्थिक स्थिति को नुकसान पहुंचवे उनको रोकने हेतु वैश्विक अर्थव्यवस्था से जुड़ी पूंजी प्रवाह, विधि विनयमन, जलवायु परिवर्तन, वैश्विक वित्तीय संस्थाओं के मुद्दों के लिए ध्यान देने की आवश्यकता है। भारत को वर्तमान में संघर्षपूर्ण वैश्विक बहस में निष्क्रिय मुद्दे को धारण करना चाहिए और संकट की अवधि तक प्रतीक्षा करनी चाहिए।अतः विश्व में हो रहे घटनाक्रम से भारत पर एक गहरा प्रभाव पड़ेगा इसलिए भारत के लिए यह आवश्यक है कि वह कार्य और विचारों से विश्व की समक्ष अपना ताल मेल सक्रिय रूप से स्थापित रखें।

जी 20 संगठन-

एशिया में हो रहे वित्तीय संकट के बाद वित्त मंत्रियों और केंद्रीय बैंक के गवर्नर के द्वारा वैश्विक आर्थिक और वित्तीय मुद्दों पर विचार करने के लिए एक मंच पर आने हेतु जी 20 की स्थापना की गई थी । भारत में केंद्रीय बैंक भारतीय रिजर्व बैंक के नाम से जाना जाता है। अंतरराष्ट्रीय आर्थिक सहयोग के प्रमुख मंच के रूप में जी-20 की स्थापना की गई| जो सभी प्रमुख अंतरराष्ट्रीय आर्थिक मुद्दों पर वैश्विक संरचना और शासन को आकार देने हेतु एक महत्वपूर्ण भूमिका को दर्शित करता है। जी-20 अपने आर्थिक मंच के माध्यम से इसके सदस्य देशों को आर्थिक और आपसी सहयोग हेतु प्रयास करने के लिए प्रेरित करता है । इस तरह जी 20 अपने सदस्य देशों के बीच एक अंतरराष्ट्रीय संगठन के रूप में विकसित है। जी 20 के

सदस्य देश हैं, अर्जेंटीना ऑस्ट्रेलिया ब्राजील कनाडा चीन फ्रांस जर्मनी भारत तुर्की यूनाइटेड किंगडम संयुक्त राष्ट्र अमेरिका यूरोपीय संघ । यह दुनिया भर के ऐसे देश है जो समस्त वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद की लगभग 85% व्यापार और दुनिया की लगभग दो तिहाई आबादी का प्रतिनिधित्व करते हैं यही कारण है कि जी 20 वर्तमान आर्थिक राजनीतिक, सामाजिक ,सांस्कृतिक संदर्भुमि के, अंतर्गत एक महत्वपूर्ण संगठन है क्योंकि यह सदस्य देशों के वैश्वीकरण के संदर्भ में आर्थिक विकास और आत्मनिर्भर बनाने हेतु लगातार प्रयास करता है।

जी 20 का प्रतीक चिन्ह- इसके प्रतीक चिन्ह को भारत के स्वदेशी ज्ञान के अंतर्गत बनाया गया है| यह मानव अस्तित्व की व्यापक दृष्टिकता को प्रदर्शित करता है। जिसके अनुसार 'वसुदेव कुटुंबकम 'विश्व एक परिवार का है । हाल ही में भारत के प्रधानमंत्री से नरेंद्र मोदी द्वारा इसके वेबसाइट को माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी द्वारा लोकार्पित किया गया है। जी-20 प्रतीक चिन्ह को बनाने में भारत के राष्ट्रीय ध्वज की जीवित रंगों केसरिया ,सफेद, हरा और नीले रंगों से प्रेरणा ली गई है । यह भारत की राष्ट्रीय पुष्प कमल के साथ पृथ्वी ग्रह को जोड़ता हुआ प्रदर्शित होता है, जो चुनौतियों के बीच हो रहे विकास को प्रकट करने में सक्षम है। इसके माध्यम से सभी मानव पशु, पक्षी ,सूक्ष्मजीव व्यापक रूप से परस्पर संबद्धता के अवमूल्यों की पुष्टि करते है|

जी 20 की कार्य सूची- मुख्य रूप से व्यापक समस्त अर्थशास्त्र के मुद्दों पर यह केंद्रित है किंतु समय-समय पर आवश्यकताओं के अनुसार इसके कार्य में विस्तार को प्रतिबद्ध किया गया है| इसमें व्यापार, जलवायु, परिवर्तन, सतत विकास, स्वास्थ्य, शिक्षा, ऊर्जा ,पर्यावरण ,कृषि और भ्रष्टाचार विरोधी कार्य शामिल है| यह संगठन सदस्य देशों के लिए वर्तमान समय में जरूरत के अनुसार विचार विमर्श करने और उन्हें लाभान्वित करने हेतु तैयार रहते हैं| जी 20 के प्रयास से जुडी गतिविधियां जी 20 दुनिया के प्रमुख विकसित और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को एक साथ लाती है| अतः यह अंतरराष्ट्रीय सहयोग की भावना का एक प्रमुख मंच भी है| यह एक ऐसा मंच है जो विकसित और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को एक दूसरे के परस्परिक सहयोग हेतु आपस में जोड़ता है और उनके बीच असमानता और विषमता को कम करने का प्रयास भी करता है| भारत सरकार द्वारा अपनी अध्यक्षता के दौरान देश में विभिन्न गतिविधियों और कार्यक्रमों की शुरुआत की गई है| जी 20 जनता को एक दूसरे के करीब लाता है| सही अर्थों में इस अनुभव के लिए वर्ष भर जन भागीदारी गतिविधियों के माध्यम से, नागरिकों के सार्वजनिक रूप से विकास हेतु, अनेक योजनाओं पर क्रियान्वयन किया जा रहा है| जी-20 प्रतिनिधियों, मेहमानों को भारत में समग्र सांस्कृतिक विरासत की एक झलक पेश करने और उन्हें एक दिवसीय भारतीय अनुभव प्रदान करने हेतु भी अवसर प्रदान किया जाता है।

विश्व व्यापार संगठन-

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना सन 1995 में व्यापार संबंधी सामान्य कार्य के उत्तराधिकारी के रूप में की गई थी| वर्तमान में इसमें 160 सदस्य देश हैं| भारत इस बहुद्देशीय संस्था का संस्थापक सदस्य व सक्रिय भागीदार देश के रूप में जुड़ा हुआ है| सतत विकास के उद्देश्य की पूर्ति हेतु वैश्विक संस्थाओं का इष्टतम उपयोग करते हुए वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन से जुड़ी और व्यापार से जुड़ी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विश्व व्यापार संगठन वैश्विक व्यापार समझौते को प्रदर्शित करता है| व्यापार वार्ताओं के लिए मंच प्रदान करता है, देशो के बीच व्यापारिक विवादों से जुड़े मामलों का निपटारा भी करता है| राष्ट्रीय व्यापार नीतियों की समीक्षा करने में भी यह सक्षम है| तकनीकी सहायता, क्षमता निर्माण जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से व्यापार नीति संबंधी समस्याओं का निराकरण भी करता है| अंतरराष्ट्रीय व्यापार में आने वाली बधाओ को दूर करने हेतु यह अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के साथ सहयोग की भावना भी रखता है ताकि सभी देशों को सामान अवसर प्राप्त हो सके| यह सभी देशों की आर्थिक वृद्धि और विकास में योगदान को सुनिश्चित करता है|

खाद्य सुरक्षा और विश्व व्यापार संगठन से जुड़ी वार्ताएं-

खाद्य और कृषि संगठन का यह मानना है कि खाद्य सुरक्षा तब होती है जब सभी लोगों के पास हर समय सक्रिय स्वास्थ्य हेतु अपने भोजन संबंधी आवश्यकताओं और खाद्य प्राथमिकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त पोशाक खाद्य सामग्री भौतिक व आर्थिक रूप में आसानी से उपलब्ध हो पाए| अतः अन्य अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों के माध्यम से इस तथ्य को रेखांकित किया गया कि प्रगति के बावजूद विश्व की बड़ी आबादी के पास पर्याप्त भोजन

और पोषाहार की कमी है, अतः इस पृष्ठभूमि की विपरीत खाद्य सुरक्षा के माध्यम से विश्व व्यापार संगठन के बीच बड़ी महत्वपूर्ण वार्ताओं को सुनिश्चित किया गया है| व्यापार संबंधी अंतरराष्ट्रीय नियमों और खाद्य सुरक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रीय और वैश्विक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु काफी लंबे समय से विश्व व्यापार संगठन की समक्ष यह विवादित विषय एक बड़ी कठिनाई के रूप में सक्रिय है| यद्यपि विश्व व्यापार संगठन संबंधी कृषि समझौते की प्रस्तावना और इसके समझौते में कई अन्य स्थानों पर खाद्य सुरक्षा से जुड़े मामलों का उल्लेख किया गया है| इसके बावजूद भी कोई सफल और सही मार्ग न मिलने के कारण यह समस्या अभी बनी हुई है|

निष्कर्ष –

भारत अगले 20 वर्षों में आर्थिक महाशक्ति बनने की ओर अग्रसर है| यदि वर्तमान समय में देश के इस मुद्दे पर चर्चा की जाए और आवश्यक सकारात्मक कदम उठाए जाए तो वह अगले चरण में भारत को बड़े आर्थिक लाभ की ओर ले जाने में सक्षम होगा | भारत गुणवत्तापूर्ण पूंजी, संसाधनों से युक्त उत्पादों का उत्पादन करें ताकि वैश्विक निर्यात में हमारी हिस्सेदारी को बढ़ाया जा सके| यद्यपि निर्माण क्षेत्र में भारत से बहुत से देश आगे हैं किंतु भारत में आईटी सेवा क्षेत्र की काफी संभावनाएं मौजूद हैं| जनसंख्या की के अनुसार भी वैश्वीकरण और प्रमुख संरचनात्मक सुधारो के अंतर्गत भारत में आने वाले अगले 10 वर्षों में जीडीपी वृद्धि, बड़े देशों को पीछे छोड़ने की क्षमता रखती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

- https://www.orfonline.org/hindi/research/purpose-platform-and-power-advancing-trade-under-indias-g20-presidency/
- https://www.investopedia.com/terms/g/g-20.asp
- https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/world-trade-organisation
- खंडेला मान चन्द्र (2008), भारतीय अर्थव्यवस्था की चुनौतियाँ, अरिहन्त पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर
- डॉ. अर्चना बी. जैन (2021), विश्व व्यापार संगठन और भारत, कासमोस मल्टिडिसीपनरी रिसर्च ई जर्नल, वाल्यूम 6 ईशू2